श्री मेघदानजी दधवाड़िया स्मृति-ग्रन्थ-माला
पुष्प एक

प्रकाशकीय

इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय ।
पूत सिखावे पालणे, मरण वढाई माय ।।

वीर प्रसूती राजस्थान की भूमि का कण-कण इतिहास और साहित्य से परिपूरित है, किन्तु प्रकाशन के अभाव में हम इस धरोहर से अनभिज्ञ हैं। हमारी यह साहित्यिक धरोहर ठीक रख-रखाव व समुचित सुरक्षा के अभाव में धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है। ऐसे समय में इसकी सुरक्षा और सर्व साधारण तक इस धरोहर को पहुचाना हम सब का नैतिक कर्तव्य हो जाता है। इस निज धरोहर को सर्व-साधारण तक पहुंचाने के उद्देश्य से साहित्य और इतिहास के अनुपम ग्रन्थों को प्रकाशित कर, मेरे श्वसुर स्वर्गीय श्री मेघदानजी दधवाड़िया की स्मृति में मैंने एक अनुपम माला गूंथने का संकल्प किया है।

ईसा की 19वीं सदी के प्रसिद्ध इतिहासकार कविराजा श्यामलदास दधवाड़िया के अनुपम इतिहास-ग्रन्थ "वीर-विनोद" खण्ड-एक के सुसम्पादित संस्करण को प्रकाशित करने के साथ ही इस मणि-माला का श्रीगणेश किया जा रहा है। देश के सुप्रतिष्ठित ऐतिहासिक शोध-केन्द्र, श्री नटनागर शोध-संस्थान, सीतामऊ, (मालवा), के तत्वावधान में सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ० रघुवीरसिंहजी, डी. लिट्. के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में युवा इतिहास संशोधकों द्वारा "वीर-विनोद" का यह सम्पादित संस्करण तैयार किया गया है। ऐसे अनुपम ऐतिहासिक ग्रन्थ का प्रकाशन करते हुए हम गौरव का अनुभव करते हैं।

आशा है कि, यह सुसम्पादित संस्करण संशोधकों व इतिहासकारों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

पुष्पा देवल

भूमिका

"ख्यात" के रूप में इतिहास-लेखन की परम्परा मारवाड़ में चूण्डा के मण्डोर पर अधिकार तथा जोधा द्वारा जोधपुर गढ़ तथा नगर की स्थापना के कुछ ही समय वाद प्रारम्भ हो गई थी, जो ईसा की 19 वीं शताब्दी के मध्य के वाद तक चलती रही। उधर मेवाड़ में यद्यपि संस्कृत या व्रज आदि भाषाओं में लिखे गये ऐतिहासिक काव्य लिखे जाते रहे, परन्तु मारवाड़ की तरह विस्तृत तथा निरन्तर लिखी गई ख्यातों का लगभग अभाव ही रहा है। ईसा की 19 वीं शताब्दी के तीसरे दशक के अन्तिम वर्षों (1829 ई०) व उसके वाद (1832 ई०) में जब लेफ्टनेण्ट कर्नल जेम्स टॉड ने अपना सुविख्यात ग्रन्थ "एनल्ज एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान (खण्ड 1-2)" प्रकाशित करवाया तव राजस्थान के इतिहास-लेखन में सर्वथा नई परम्परा प्रारम्भ हो गई। अंग्रेजी सरकार के साथ मेवाड़ की सन्धि हो जाने के वाद अंग्रेजी सरकार की ओर से मेवाड़ में पॉलिटिकल एजण्ट नियुक्त किये जाने पर टॉड फरवरी, 1818 ई० से जून 1, 1822 ई० तक मेवाड़ में रहा था। तव उसने राजस्थान के विभिन्न राज्यों का दौरा कर या अपने भारतीय सहायकों के द्वारा वहां के इतिहासों के वारे में वहुत-कुछ जानकारी ही नहीं प्राप्त की, परन्तु इतिहास विषयक वहुत-कुछ आधार सामग्री भी एकत्र की, जिसे वह अपने साथ इंगलैण्ड ले गया था। इसका अधिकांश भाग अव रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन, के संग्रहालय में सुरक्षित है, जहां वह स्वयं 1823-1831 ई० तक इसके पुस्तकाध्यक्ष पद पर कार्यरत रहा। मात्र- "राजस्थान" शीर्षक से सुज्ञात जेम्स टॉड के इस सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ का मेवाड़ में वहुत प्रचार-प्रसार हुआ, जिसके फलस्वरूप कालान्तर में मेवाड़ के महाराणा शंभुसिंह (1861-1874 ई०), ने सन् 1872 ई० में उदयपुर में "इतिहास-विभाग" स्थापित किया, परन्तु कुछ समय तक चल कर वह टूट गया।

महाराणा सज्जनसिंह (1874-1884 ई०) को इतिहास और पुरातत्व से भी बड़ी रुचि थी। अतः उन्होंने कविराजा श्यामलदास को "वीर-विनोद" नामक वृहद् इतिहास-ग्रन्थ तैयार करने का आदेश दिया, तथा तदर्थ व्यय करने के लिये एक लाख रुपये की स्वीकृति दी। कविराजा श्यामलदास ने इतिहास कार्यालय की स्थापना कर उसमें संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, फारसी और अरबी आदि विभिन्न भाषाओं के ज्ञाताओं की नियुक्ति कर उन अनेक भाषाओं में रचित इतिहास व पुरातत्व सम्बन्धी ग्रन्थों का संग्रह किया और प्राचीन शिलालेखों की छापें भी तैयार करवाने की व्यवस्था की। राजपूतों के विभिन्न वंशों के बड़वा-भाटों की पोथियों मे आवश्यक अंशों की नकलें करवा ली गई। इस प्रकार बहुत बड़ी सामग्री एकत्र हो जाने पर कविराजा श्यामलदास ने यह "वीर-विनोद" ग्रन्थ लिखने का काम प्रारम्भ किया। इसमें महाराणा सज्जनसिंह की बड़ी रुचि थी, परन्तु दुर्भाग्यवश "वीर-विनोद" भाग 2, में जब कविराजा श्यामलदास महाराणा जयसिंह के इतिवृत के साथ प्रसंग वश बादशाह औरंगजेब के शासनकाल का सितम्बर, 1686 ई० तक का विवरण ही लिख पाया था (वीर-विनोद 2, पृ० 709-10) कि जोधपुर में महाराणा सज्जनसिंह की बीमारी बढ़ जाने के कारण वहां से उन्हें उदयपुर वापस ले आने के लिये कविराजा को जोधपुर भेजा गया। यों उदयपुर वापस लौट आने के सोलह दिन बाद दिसम्बर 23, 1884 ई० को उनका देहान्त हो गया।

महाराणा सज्जनसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा फतेहसिंह ने भी कविराजा श्यामलदास को अपना सारा समय "वीर-विनोद" को लिखने में ही लगाने का निर्देश दिया। यों पूरे दस वर्ष के निरन्तर परिश्रम के फलस्वरूप सन् 1892 ई० में "वीर-विनोद के लेखन का कार्य पूरा हुआ। उससे पहले ही कविराजा के अधीनस्थ उदयपुर के सज्जन यन्त्रालय-प्रेस में "वीर-विनोद" छपने लगा था। "वीर-विनोद" के प्रूफ तैयार होने पर महाराणा फतेहसिंह को प्रस्तुत किये जाते और वे उन्हें पूरा-पूरा सुनकर उसे छापने की स्वीकृति देते, तब ही वे छापे जाते थे। महाराणा फतेहसिंह ने अपनी ओर से उनमें कुछ भी परिवर्तन नहीं किया। यों छपे हुए फर्मो की सौ-सौ प्रतियाँ कविराजा के निज के लिये थीं, जिनमें से एक बारहठ कृष्णसिंह, दूसरी मास्टर रामप्रसाद को, जो बाद में मेयो कॉलेज, अजमेर, चले गये थे, और तीसरी

पं० गौरीशंकर ओझा को दी जाती थी, जो सन् 1887 ई० में इस इतिहास-विभाग में नियुक्त हुए थे। आगे चलकर वे ही प्रतियाँ डॉ० गौरीशंकर ओझा के इतिहास ग्रन्थों का आधार बनीं। कविराजा का संकल्प था कि "वीर-विनोद" छपकर वितरित हो जाने पर वे सन्यास ले लेंगे। परन्तु विधि का विधान दूसरा ही था, जून 2, 1892 ई० को उनको सहसा पक्षघात हुआ, तथा रविवार, जून 3, 1894 ई० को उनका देहान्त हो गया।

उनकी इस असहाय अवस्था से लाभ उठाने को कविराजा के विरोधियों ने षड्यन्त्र चलाया कि कविराजा को विशेष उदारतापूर्वक पुरस्कृत करना होगा। पुनः इस ग्रन्थ के प्रकाशन से सभी सरदारों के विभिन्न अधिकारों और मान-सम्मान की पुष्टि होती है, जो राज्य की यथेच्छ नीति के लिए बाधक होगी। महाराणा फतेहसिंह मन से अनुदार होने के साथ ही सरदारों को शक्तिहीन बनाने को सदैव विशेष समुत्सुक रहता था। अतः कविराजा के इन विरोधियों की बातों में आकर उन्होंने आदेश दिया कि सज्जन-यंत्रालय मे "वीर-विनोद" की कुल प्रतियाँ ही नहीं, उसके प्रूफों की रद्दी तक उठा कर महलों में लाई जावे तथा उन्हें ताले में बन्द कर उसकी चाबी महाराणा फतेहसिंह को पेश कर देवें। इस आदेश का अक्षरशः पालन किया गया, जिसके फलस्वरूप भारत के स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद लगभग दो दशक तक "वीर-विनोद" सर्वथा अप्राप्य रहा। अंततः वह जब विक्रयार्थ सुलभ हुआ, तब तक इन छपे फार्मों का कागज टूटने लगा था। आज तो ये जीर्ण-शीर्ण भंगुर फार्म भी दुर्लभ हो गये हैं।

कविराजा श्यामलदास ने इस इतिहास-ग्रन्थ में सर्वप्रथम मेवाड़ के परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण देश की भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों पर यथोचित प्रकाश डाला। तदनन्तर मेवाड़ के इतिहास को अपना मुख्य विषय बनाकर लिखना प्रारम्भ किया। संदर्भानुसार साथ ही राजस्थान के अन्य राज्यों के इतिहासों को भी उसने अपने इस ग्रन्थ में स्थान दिया। दिल्ली, मालवा और गुजरात के सुलतानों, मुगल बादशाहों और दक्षिण के मराठों आदि के इतिवृत्तों को भी इस बृहदाकार इतिहास में वर्णित किया है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, मूल दस्तावेजों के मूल पाठों के रूप में प्राप्य ऐतिहासिक सामग्री भी कविराजा श्यामलदास ने इस इतिहास-ग्रन्थ में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कर दी है, जिससे यह ग्रन्थ इतिहास और

ऐतिहासिक सामग्री का अति महत्त्वपूर्ण संकलन बन गया तथा सम्पूर्ण देश के लिये एक अति उपयोगी इतिहास-ग्रन्थ है।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रामाणिक ढंग से एक भारतीय द्वारा लिखा गया यह इतिहास-ग्रन्थ "वीर-विनोद" आज सर्वथा अप्राप्य है। भारतीय इतिहास के अध्येताओं के साथ ही विशेषतया राजस्थान के इतिहास के गहन संशोधकों को कविराजा श्यामलदास कृत "वीर विनोद" सुलभ करने को नया संस्करण तैयार करने का यह आयोजन श्री नटनागर शोध-संस्थान, सीतामऊ, की शोध-परियोजना के रूप में प्रारम्भ किया गया, जिसमें नवीन शोधों को जोड़ने का भी प्रयत्न किया गया है। मेवाड़ के शासकों का गौरव शीर्षक के अन्तर्गत कविराजा द्वारा दिये गये सब ही उद्धरणों वाले ग्रन्थों के सही शीर्षक तथा तत्कालीन संस्करणों के यथा-संभव संदर्भ भी दिये गये हैं। मूल ग्रन्थ में आये अब दुरूह हो गये अरबी, फारसी और उर्दू शब्दों के स्थान पर हिन्दी शब्दों का प्रयोग कर ग्रन्थ के पाठ को सरल बनाने का प्रयास किया है।

"वीर-विनोद" के इस सम्पादित संस्करण के इस प्रथम खण्ड में मेवाड़ के भौगोलिक व सांस्कृतिक विवरण से लेकर महाराणा अमरसिंह (प्रथम) तक के मेवाड़ के गुहिल सीसोदिया राजवंश का इतिहास सम्मिलित किया गया है। आशा है कि, संशोधकों तथा इतिहास-प्रेमियों के लिये यह प्रकाशन उपयोगी सिद्ध होगा।

"वीर-विनोद" के इस प्रथम खण्ड के प्रकाशन के लिये मयंक प्रकाशन, जयपुर (राजस्थान), के आभारी हैं, जिसने इस खण्ड का सुव्यवस्थित ढंग से प्रकाशन कर इतिहास के क्षेत्र में खोज कार्यों को आगे बढ़ाने में समुचित सहयोग दिया है।

"रघुवीर निवास"
सीतामऊ, (मालवा),
458-990
मार्च 14, 1986 ई०

रघुबीरसिंह

———

विषय-सूची

——

महामहोपाध्याय
कविराजा श्यामलदास दधवाड़िया



जन्म—
मंगलवार, आषाढ़ कृ० 7,
1893 विक्रम

मृत्यु—
रविवार, ज्येष्ठ कृ० 30,
1952 विक्रम

अध्याय एक

मेवाड़ का भूगोल और सामान्य परिचय

(1) राजपूताना का भूगोल

सीमा—राजपूताना के उत्तर में पंजाव, पश्चिम में सिन्ध व गुजरात, दक्षिण में माहीकांठा और मालवा तथा पूर्व में ग्वालियर और रुहेलखण्ड हैं। इसकी लम्वाई 530 मील, चौड़ाई 460 मील और क्षेत्रफल 1,32,461 वर्गमील है।[1] सन् 1881 ई० की जनगणना के अनुसार यहाँ की आवादी 1,07,29,114 है।

पहाड़—अरावली पहाड़ राजपूताना में सवसे वड़ा और मुख्य है। यह पहाड़ी श्रेणियां ईशान कोण से शुरू होकर नैऋत्य कोण तक चली गई है। आवू स्थान पर इसकी सवसे वड़ी चोटी "गुरुशिखर" है, जो समुद्र की सतह से 5,653 फीट ऊंची है। इस पहाड़ के वीच में स्थित होने से राजपूताना के दो भाग हो गये हैं, अर्थात् एक उत्तर-पश्चिमी और दूसरा दक्षिण-पूर्वी। उत्तर-पश्चिमी विभाग के दक्षिणी क्षेत्र में कहीं-कहीं पर छोटी-छोटी पहाड़ियां हैं।

अरावली पहाड़ से दक्षिण की तरफ विकट झाड़ियां और पहाड़ी शृंखलाएें फैलकर दक्षिण में विन्ध्याचल तक पहुँच गयी हैं। पूर्व की तरफ छोटी-छोटी पहाड़ियां हैं। अरावली के अतिरिक्त राजपूताना में कोई दूसरा पहाड़ वर्णन करने योग्य नहीं है।

---

1. ओझा के अनुसार राजपूताना का क्षेत्रफल लगभग 1,30,462 वर्गमील। ओझा, राजपूताना०, भाग 1, पृ० 3 (सं०)।

नदियां—राजपूताना के पश्चिमोत्तर भाग में प्रसिद्ध नदी **लूनी** है, जो प्राय: 200 मील दक्षिण और पश्चिम में बहकर कच्छ के रण में चली जाती है। सबसे बड़ी नदी **चम्बल** है, जो शहर कोटा के पास बहती हुई जमुना से जा मिलती है। चम्बल के बाद प्रसिद्ध नदी **बनास** है। यह मेवाड़ में बहकर चम्बल में जा गिरती है। मेवाड़ की दक्षिणी-पश्चिमी पहाड़ियों के बीच में पश्चिमी बनास और साबरमती निकलती है। लेकिन राजपूताना को पार करने के पहिले यह बड़ी नहीं होती, इसलिये यहां अधिक प्रसिद्ध नहीं है। **माही,** जो गुजरात की बड़ी नदी है, वह कुछ दूर तक प्रतापगढ़ और बांसवाड़ा के राज्यों में बहती है।

झीलें—राजपूताना में बड़ी झील **सांभर** है, जो खारी झील के नाम से प्रसिद्ध है। **ढेबर** (जय समुद्र), **राज समुद्र** और **उदयसागर** ये तीनों झीलें मेवाड़ में हैं और इनके अतिरिक्त इस प्रदेश में कई एक छोटी-छोटी कृत्रिम झीलें भी हैं।

किले—राजपूताना में लड़ने योग्य बहुत से किले हैं। जिनमें मुख्य **चित्तौड़गढ़** और **कुम्भलगढ़** मेवाड़ में; **रणथम्भोर** जयपुर में और **नागोर** व **जालोर** जोधपुर में हैं। ये पुराने और सुदृढ़ समझे जाते हैं।

राजपूताना में 18 खुदमुख्तार रियासतें (स्वाधीन राज्य) अर्थात् उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बूंदी, टोंक, भरतपुर, करोली, जैसलमेर, सिरोही, कृष्णगढ़[1] डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, अलवर, झालरापाटन[3] और धौलपुर हैं। जिनमें से प्रत्येक का भौगोलिक विवरण संक्षिप्त रूप में उनके इतिहास के प्रारम्भ में दिया जायेगा। इसलिये राजपूताना के भूगोल को अधिक नहीं बढ़ाकर अब हम मेवाड़ का भूगोल शुरू करते हैं।

(2) मेवाड़-राज्य का भूगोल

सीमा—इस देश की सीमा अलग-अलग समय में अलग-अलग रूप से

---

1. किशनगढ़। (सं०)
2. झालावाड़ राज्य। (सं०)

गिनी जाती थी। 'जैसे किसी समय में पूर्व में भेलसा[1] व चन्देरी, दक्षिण में रेवाकांठा व माहीकांठा, पश्चिम में पालनपुर, पश्चिमोत्तर में मंडोवर व रूण, उत्तर में वयाना, पूर्वोत्तर में रणथम्भोर व ग्वालियर तक थी। परन्तु मराठों के उपद्रव में मेवाड़ के बहुत से जिले स्वार्थी लोगों ने दग़ावाजी से दवा लिये, अर्थात् किसी ने फौज देने के बहाने से, किसी ने गिरवी के रूप में, किसी ने नौकरी के वदले और किसी ने आपस की फूट का मौका देखकर भी दवाये। अत: इनको छोड़कर अब हम वर्तमान राज्य के अधिकार में जितना देश है, उसी का वर्णन करते हैं। इससे यह नहीं मानना चाहिये कि मेवाड़ से अलग होने वाले जिलों का दावा छोड़ दिया गया है। वल्कि अंग्रेजी सरकार ने भी वादा किया है, कि "रियासतों के अहदनामे" वदले जायें, उस समय मेवाड़ का दावा सुनने के योग्य है।

भूमि का सामान्य वृतांत—मेवाड़ का राज्य, जो हिन्दुस्तान में प्रथम श्रेणी का गिना जाता है, राजपूताना के दक्षिणी विभाग में स्थित है। यह 15°-58' से 23°-49'-12" उत्तर अक्षांश और 75°-51'-30" से 73°-7' पूर्व देशान्तर तक फैला हुआ है। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण में 147.60 मील और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम में 163.04 मील है, और कुल विस्तार 12,929.9 वर्गमील हैं[2].

देश का आकार—इस राज्य का आकार कुछ टेड़ा-वांका है, परन्तु यह कहा जा सकता है, कि यह देश उत्तर में अजमेर के सरकारी जिलों से वायव्य कोण में, अजमेर के कुछ हिस्से व मारवाड़ से पश्चिम में मारवाड़ व सिरोही से नैऋत्य कोण में दांता और ईडर से दक्षिण में, डूंगरपुर और थोड़ासा वांसवाड़ा से अग्नि-कोण में प्रतापगढ़ और कुछ ग्वालियर से, पूर्व में टोंक, ग्वालियर, इन्दोर, कुछ झालावाड़ और कुछ कोटा व वूंदी से, ईशान-कोण में वूंदी और कुछ जयपुर से घिरा हुआ है।

भैंसरोड़ के पास इस राज्य के एक निकले हुए जमीन के टुकड़ों से कोटा स्पर्श करता है। जिसके दक्षिण में होल्कर का रामपुरा जिला है।

---

1. वर्तमान विदिशा। (सं०)
2. ओझा० उदयपुर० भाग 1, पृ० 2 के अनुसार मेवाड़ राज्य का क्षेत्रफल 12,691 वर्गमील। (सं०)

अग्निकोण में कई राज्यों के हिस्से हैं। टोंक[1], ग्वालियर व इन्दौर द्वारा शासित प्रदेशों के छोटे-छोटे टुकड़े चारों तरफ मेवाड़ की भूमि से घिरे हुए हैं। सिंधिया के थोड़े से गांव, जो एक दूसरे से भिन्न-भिन्न दूरी पर हैं, और जिनसे गंगापुर का परगना बनता है, मेवाड़ के बीचो-बीच में स्थित है। केवल पालसोड़ा का छोटा परगना, जो नीमच से 12 मील अग्निकोण में स्थित है, मेवाड़ का एक हिस्सा है, जो देश के मुख्य भाग से बिलकुल अलग है। इसी तरह पीपलिया का परगना भी है।

राज्य के उत्तरी व पूर्वी हिस्सों में अच्छी खुली हुई नाहमवार (ऊंची-नीची) जमीन का एक ऊंचा टीला बहुत दूर तक फैला हुआ है। जिसका ईशान कोण का भाग किसी तरह ढालू है, जैसा कि बनास और उसकी सहायक नदियों से पता चलता है। जब नदियां अरावली पहाड़ से निकल कर पहले चम्बल और अन्त में यमुना व गंगा के साथ मिलकर समुद्र का रास्ता लेती हैं। इस देश में अकेली-अकेली या समूहों में बहुतसी पहाड़ियां हैं। तथा भिन्न-भिन्न चौड़ाई की छोटी-छोटी पहाड़ी पंक्तियां समस्त देश में पाई जाती हैं।

हिन्दुस्तान का बड़ा ऊंचा भाग, जो बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों के बहाव को खंभात की खाड़ी में जानेवाली नदियों के बहाव से अलग करता है, लगभग मेवाड़ के बीच में से होकर गुजरता है। वह एक ऐसी रेखा से दिखलाया जा सकता है, जो पूर्व में नीमच से बड़ी सादड़ी होती हुई उदयपुर और वहां से गोगूंदा के आसपास की ऊंची जमीन व बनास के निकासों और पश्चिम में कुम्भलगढ़ के बड़े पहाड़ी किले के निकट से होकर

1. टोंक का नींबाहेड़ा तीन तरफ से मेवाड़ और एक तरफ से सिंधिया की सीमा से मिला हुआ है। मेवाड़ का कणेरा तीन तरफ सिंधिया की सीमा से मिला है। सिंधिया का भींचोर चारों तरफ मेवाड़ से घिरा हुआ है। इसी तरह होल्कर का नंदवास और सिंधिया का जाट, सिंगोली, और खेड़ी स्थान अधिकांश रूप में मेवाड़ के भीतर आ गये हैं। झालावाड़ का एक गांव कृपापुर भी मेवाड़ की सीमा के भीतर है। इसी तरह मेवाड़ का कुआंखेड़ा सिंधिया की अमलदारी से मिला हुआ है। इसका यह अर्थ है, कि होल्कर सिंधिया व टोंक के ये जिले मूलरूप से मेवाड़ के ही हिस्से हैं।

अरावली पर से अजमेर को खेंची जाय। ईशान कोंण की ओर झुकाव साधारण है, परन्तु बराबर एकसा है। उदयपुर नगर समुद्र की सतह से 1,957 फीट और देवली जो ईशान कोंण के सिरे पर है, 1,112 फीट ऊंचा है।

इस ऊंचे हिस्से को पार करने के पश्चात् देश की सूरत व शक्ल बहुत बदली हुई है। यहां अच्छे खुले हुए ऊंचे-नीचे मैदानों के स्थान पर दक्षिण और पश्चिम का हिस्सा चट्टानों, पहाड़ियों और घने जंगलों से ढका हुआ है।

अरावली पहाड़—जो पश्चिमी किनारे पर मेरवाड़ा में से होकर निकलता है, राज्य के बिलकुल नैऋर्त्य कोंण व दक्षिणी हिस्सों में अर्थात् नैऋर्त्य कोंण की तरफ डूंगरपुर के किनारे पर सोम की तराई तक और दक्षिण की तरफ माही की तराई तक फैला हुआ है, अन्त में अग्निकोंण की ओर जाखम[1] नदी की तराई के निकट विन्ध्याचल का हिस्सा बनाने वाली पहाड़ियों के साथ मिल जाता है। देश के दक्षिणी हिस्से का कुछ बहाव ढेवर (जय समुद्र) तालाब में रुक जाता है, शेष सारा बहाव जाखम और सोम नदी में होकर माही में जाता है और वहां से खंभात की खाड़ी में पहुंचता है। इस तरफ देश बहुत नीचा होता चला गया है। सोम की ऊंचाई समुद्र की सतह से केवल 650 फीट है। यहां तक ऊपर बयान किये हुए टीले से 25 मील में 950 फीट का ढाल है। अर्थात् प्रतिमील करीब 40 फीट का ढाल है। इसके आगे बानसी से धरियावद तक 17 मील की दूरी में 850 फीट अर्थात् प्रतिमील 50 फीट ढाल है। इस प्रकार झुकाव का एक दम बढ़ जाना निःसंदेह प्रदेश के इस विकट पहाड़ी टुकड़े के कारण ही है। प्रारम्भ में यह क्षेत्र 10 या 12 मील तक थोड़ा बहुत जंगल से ढका हुआ है और पहाड़ियां लगभग बराबर ऊंचाई की हैं। लेकिन दक्षिण की तरफ से पहाड़ी श्रृंखलाएं ऊंची होती चली गयी हैं या यह कि घाटियां नीची होती जाती हैं, जहां ऊपरी हिस्से की अपेक्षा जंगल अधिक सघन है। इस ऊंचे-नीचे हिस्से को पार करने और सोम के पास वाले क्षेत्र में पहुंचने के बाद धरती बहुत खुली हुई है। जिसमें बहुत से गांव हैं, और खेती बाड़ी भी भली-भांति

---

1. जाखम नदी, पर वर्तमान में बांसवाड़ा के पास बांध बना दिया गया। (सं०)

होती है। राज्य के दक्षिण का यह जंगली क्षेत्र "छप्पन" के नाम से प्रसिद्ध है।

मेवाड़ के पश्चिम की तरफ समस्त पहाड़ी भूमि, दक्षिण में डूंगरपुर की सीमा से उत्तर में सिरोही व मारवाड़ की सीमा तक "मगरा" कहलाती है। इस हिस्से में अरावली का सबसे चौड़ा भाग आ गया है। यद्यपि दक्षिणी पंक्ति की चोटी उत्तर की चोटियों से बहुत कम ऊंची है, फिर भी इस तरफ जमीन एक दम नीची हो जाने के कारण घाटियों के ऊपर की ऊंचाई में अधिक अन्तर नहीं है।

गोगून्दा–उदयपुर से वायव्य कोंण में करीब 16 मील दूर और समुद्र की सतह से 2,750 फीट ऊंचा है। इससे अग्निकोंण की तरफ आते हुए उदयपुर 1,957 फीट, उसके बाद ढेबर झील 960 फीट, और सोम नदी के पास वाला हिस्सा समुद्र से 650 फीट ऊंचा पाया जाता है। गोगूंदा से सोम तक लगभग 66 मील का अंतर है, जिसमें प्रतिमील 32 फीट का ढाल है। इसके बाद ठीक दक्षिण की तरफ खैरवाड़ा की छावनी तक, जो समुद्र से लगभग 1,000 फीट ऊंची है, 53 मील में प्रतिमील 33 फीट का ढाल है। कोटड़ा की छावनी से[1] नैर्ऋत्य कोंण की ओर साबरमती की एक शाखा पर स्थित ईडर में केर के बंगले तक प्रतिमील 35 फीट से अधिक का ढाल है पश्चिम और वायव्य कोंण का ढाल इससे भी अनिश्चित ढंग का है, क्योंकि बीरवाड़ा गाँव, जो सिरोही में पिंडवाड़ा के पास है, गोगूंदा से सिर्फ 33 मील दूर और 1525 फीट नीचे है, जिससे प्रतिमील 46 फीट का ढाल सिद्ध होता है। तथा गोडवाड़ के गांव वेड़ा तक 28 मील में 1635 फीट का ढाल है। जो प्रतिमील 58 फीट से भी अधिक का ढाल है। मेवाड़ के पश्चिमी हिस्से का बहाव दक्षिण की ओर है। जिसमें खम्भात की खाड़ी में गिरने वाली साबरमती नदी के मुख्य स्रोते हैं।

पश्चिमी पहाड़ियों में से दो नदियां निकलती हैं। प्रथम गोराई, जो वायव्य कोंण की तरह ऐरनपुर से बढ़कर लूनी में गिरती है और दूसरी छोटी बनास जो नैर्ऋत्य कोंण की ओर चलकर कच्छ के रण में गिरती है।

---

1. यहां की ऊंचाई 1033 फीट है।

भूमि रचना—कप्तान सी०ई० येट अपने राजपूताना के गजेटिअर में लिखते हैं कि मध्य अरावली का विस्तार संक्षेप में शीघ्रता पूर्वक देखा गया है और इसके विषय में इतना कम जाना गया है कि, इसकी बनावट का वर्णन विधिपूर्वक नहीं हो सकता। इस पहाड़ी श्रेणी की सामान्य प्रकृति इसकी असल बनावट है। ग्रेनिट (कड़ा पत्थर) गहरे नीले रंग के स्लेट[1] पत्थर के गढ़े और भारी चट्टानों के ऊपर भिन्न-भिन्न झुकावों पर ठहरा हुआ है (झुकाव नीचे को प्रायः पूर्व की ओर है)। भीतरी घाटियों में कई प्रकार के क्वार्ट्ज (Quartz)[2] पत्थर और प्रत्येक रंग के स्लेट बहुत कस्रत से हैं, बीच-बीच में नीस (Gneiss)[3] और साइनाइट (Syenite) की चट्टानें मालूम होती हैं। इस पहाड़ी शृंखला में गहरी घाटियों वाली चट्टानों की पँक्ति है। जहां पर सबसे नीचे वाली चट्टानें बहुधा नीस की पाई जाती हैं। छोटी पहाड़ियों पर केवल ऊपरी चट्टान ही पाई जाती है। खैरवाड़ा के दक्षिण से आरम्भ होने वाले तह में रेतीला पत्थर हौर्न स्टोन,[4] पोरफिरी[5] (Hornstone, Porphyry) आदि पत्थर देखा गया है। ग्रेनिट व नीस, जावर के निकट अभ्रक की मिट्टी और क्लोराइट स्लेट (अर्थात् ऐसा स्लेट जिसमें क्लोरिन का अंश पाया जाता है); फिर उदयपुर के पास ग्रेनिट क्रम से पाया जाता है। खैरवाड़ा के निकट और जावर के आस-पास नीले और लाल मार्लस् (Marls)[6] और सड़ी मिट्टी के पत्थर बहुत पाये जाते हैं।

मेवाड़ में मकान बनाने के लिए नीचे लिखे प्रकार के पत्थर निकाले जाते हैं—ज्वालामुखी की चट्टानों में से सामान्य डोलोमाइट(Dolomite) और बासाल्ट (Basalt) उदयपुर के निकट बहुत पाये जाते हैं। 20 फीट की

---

1. इस पत्थर की तख्तियां आसानी से अलग-अलग हो सकती हैं। यह पत्थर छत के काम में अधिक लाया जाता है।
2. यह बिल्लौरी पत्थर अर्थात् चमकीला पत्थर है। इसमें सब प्रकार के बिल्लौरी पत्थर गिने जाते हैं।
3. यह एह किस्म का बिल्लौरी पत्थर है, जो अभ्रक आदि अनेक पदार्थों का बना हुआ होता है।
4. यह जल्दी टूटने वाला चमकीला पत्थर है।
5. संग समाक (एक प्रकार का बड़ा पत्थर)।
6. यह पत्थर मिट्टी, रेत आदि से बना हुआ होता है।

पट्टियां मटांट की खान से और 14 फीट तक बांसदरा पहाड़ (सज्जनगढ़) की खान से निकलती हैं। राजधानी की बहुत सी इमारतें इसी से बनती हैं। देवी माता के निकट थोड़ी सी पुरानी खानों में ट्रैपिअन चट्टान पायी जाती है, जो उदयपुर से कुछ मील दूर है। पुरोहितजी के तालाब का बांध, जो एकलिंग जी की सड़क पर चीरवा के घाटे के निकट है, इसी पत्थर का बना हुआ है। जो इस पत्थर की दृढ़ता का प्रमाण है। उदयपुर से 16 मील दूर नीमच की सड़क पर ग्रेनिट का 6 मील लम्बा और एक मील चौड़ा एक पेटा (तह) है, परन्तु वहां की खानें इस कारण से छोड़ दी गई हैं, कि ठोस और नीले रंग का जो पत्थर है, उसको निकालने में अधिक व्यय और कठिनता पड़ती है। पानी से बने हुए चट्टानों में रेतीले पत्थर के ढौंके हैं, जो ढेवर[1] की पाल में भरे गये हैं। यह रेतीला पत्थर दो रंग का है, एक गुलाबी और दूसरा हल्के रंग का अर्थात् सब्जा। प्रथम प्रकार का पत्थर दूसरे की अपेक्षा अधिक सरलता से टूटता है। इसमें मटर के बराबर से लेकर अण्डे के बराबर क्वार्ट्ज के कंकर होते हैं। मेवाड़ में, विशेषकर ढेवर के नजदीक और देवारी की पहाड़ियों में, रेतीला पत्थर बहुतायत से पाया जाता है। परन्तु देवारी का पत्थर इतना नरम होता है कि बहुत काम का नहीं है। मांस के समान गुलाबी रंग का पत्थर महुवाड़ा और ढींकली गांवों में पाया जाता है। इससे चक्की बनाई जाती है। इस कार्य से बहुत लोगों की आजीविका चलती है। कंकर पहाड़ों में नहीं पाया जाता, परन्तु मेवाड़ के मैदानों में बहुत मिलता है। कुछ आसमानी और सफेद रंग का ठोस पत्थर, जिससे चूना बनता है, उदयपुर से लगभग दो मील की दूरी पर मिलता है। उस पर अच्छी घटाई हो सकती है। अच्छा सफेद रंग का पत्थर राजनगर में बहुत निकलता है। इसी संगमरमर से वहां राजसमुद्र की पाल बंधी हुई है। उसको जलाने से चूना बनता है, जो बहुत चमकदार होता है और राजधानी में बहुत से कामों में लगाया जाता है। संग मूसा (काला पत्थर) चित्तौड़ में पाया जाता है और वैसा ही अच्छा होता है।

हल्के पीले रंग के पत्थर पहाड़ों में बहुत मिलते हैं। "क्वार्ट्ज" समस्त रियासत में बहुत सा मिलता है। जिस पहाड़ी चट्टान के ऊपर राजधानी के महल बने हैं, उसके भीतर उसकी एक गहरी तह है। परसाद और उदयसागर की पहाड़ियां भी क्वार्ट्ज की हैं।

---

1. ढेवर = जयसमंद झील। (सं०)

मिट्टी का "स्लेट पत्थर" बहुत मिलता है, यह काले रंग का और एक चौथाई से एक इंच तक मोटा होता है। ऋषभदेव और खैरवाड़ा के बीच में मैला, सब्जा और सर्प के वदन पर जैसे दाग होते हैं वैसे दाग वाला पत्थर निकलता है। जिसकी मूर्तियां और प्याले आदि बनाये जाकर, यात्रियों के हाथ बेचे जाते हैं। इसी से खैरवाड़े का नया गिरजाघर बनाया गया है। शिस्ट पत्थर (Schist) मेरवाड़ा और खैराड़ के पहाड़ी जिलों में बहुत मिलता है। मगरों में नीस बहुत हैं। जावर के पांच मंदिर और तालाब इस नीस पत्थर के ही बने हैं। जो टीड़ी की खानों से लाया गया था। इसके अतिरिक्त जयसमुद्र (ढेबर) की पाल तथा ऋषभदेव के मन्दिर भी इसी पत्थर से बने हैं, जो जयसमुद्र से 16 मील दूर बरोड़ा की खान से लाया गया था।

पहाड़ और पहाड़ियों की पंक्ति अरावली पहाड़—मेवाड़ में बहुत दूर तक फैला हुआ है। यह अजमेर से मेरवाड़ा होकर दिवेर के[1] निकट आ निकला है। यह समुद्र की सतह से 2,383 फीट ऊंचा, और थोड़े ही मील चौड़ा है। वहां से नैऋत्य कोण में मारवाड़ के किनारे-किनारे जाकर धीरे-धीरे बड़ा हो गया है। कुम्भलगढ़ पर 3,568 फीट ऊंचा हो गया है, और जर्गा पहाड़ी पर, जो गोगूंदा से 15 मील उत्तर में है, 4315 फीट की ऊंचाई तक पहुंच जाता है। फिर वह राज्य के नैऋत्य कोण और दक्षिणी हिस्सों के अंत तक फैला हुआ है। जहाँ उसकी चौड़ाई लगभग 60 मील है। ऐसा कहा जा सकता है कि 24° उत्तर अक्षांश से कुछ दक्षिण की तरफ समाप्त हो जाता है। इसके बाद देश का स्वरूप बिलकुल बदल गया, अर्थात् बहुत खुला मैदानी इलाका हो गया है तथा अरावली की संकड़ी समानान्तर पंक्तियों के बदले पानी के बहाव से परस्पर रगड़ खाकर चिकने और गोल बने हुए पाषाणों की पहाड़ियां अलग-अलग पाई जाती हैं। ये समानान्तर पहाड़ी पंक्तियां पश्चिम और प्रायः ईशान कोण को चली गई हैं तथा धीरे-धीरे दक्षिण की ओर वहां तक मुड़ गई है, जहां से करीब-करीब अग्नि-कोण को चली जाती है। वहां से अधिक टूटी हुई और पृथक-पृथक हैं।

पश्चिमी ढालों में यद्यपि जंगल बहुत है परन्तु पानी बहुत ही कम है। जीलवाड़ा की नाल में परलोकवासी महाराणा शम्भूसिंह की बाल्यावस्था में सड़क बनने के पहले बर से (जो ब्यावर, नया शहर के निकट है) ईडर तक

---

1. दिवेर के उत्तर अक्षांश 25° 24′ है।

अर्थात् पूर्व से पश्चिम की तरफ इस 250 मील की दूरी तक अरावली में गाड़ियों पर जो माल की ढुलाई होती थी, उसमें एक बाधा थी।

जीलवाड़ा की नाल, जिसको लोग 'पगल्या नाल" भी कहते हैं, अनुमानतः 4 मील की लम्बी और बहुत संकड़ी है। परन्तु जीलवाड़ा गांव के पास वाले टीले की चोटी के नीचे की तरफ प्रारम्भिक आधा मील के बाद का उतार बहुत सरल है। देसूरी (जो मारवाड़ में नाल के नीचे है), एक छोटी चट्टानी पहाड़ी के निकट गांव है, जिसके चारों ओर एक दीवार है। इस दीवार के ऊपर समुद्र की सतह से 1587 फीट ऊंचा एक गढ़ है। देसूरी से कुछ मील उत्तर की तरफ "सोमेश्वर नाल" है। यह बहुत लम्बी और विकट है। इसलिये देसूरी की नाल के खुल जाने पर लोगों ने इससे आवागमन बन्द कर दिया।

देसूरी से दक्षिण में लगभग 5 मील की दूरी पर "हाथी गुड़ा की नाल"[1] है, जो नीचे की तरफ मार्ग का करीब $\frac{1}{3}$ भाग रोके हुए है और जिसके ऊपर एक मोर्चाबन्ध फाटक है। जहां मेवाड़ के सिपाहियों का पहरा रहता है। कुम्भलगढ़ का पहाड़ी किला नाल के ठीक ऊपर है और उसको रक्षित किये हुए हैं। केलवाड़ा का कस्बा उसके ठीक ऊपर है। यह नाल कुछ मील लम्बी है, उसके प्रथम 3 मील तक झुकाव बहुत है और दोनों तरफ पहाड़ियां नदी के पाट (तल) से लगभग सीधी उठी हुई हैं। किनारों पर सघन जंगल हैं और देखने में अति रमणीय स्थान है। कोठार बड़ से नीचे का आधा हिस्सा, जहां एक कुआं और थोड़ासा खुला मैदान है, गाड़ियों के आने-जाने के योग्य है। नाल में जो लोग लड़ाई में मारे गये, उनके बहुत से चबूतरे (स्मारक) बने हुए हैं तथा उन मोर्चों का कुछ-कुछ निशान भी अभी तक है, जिन्हें घाणेराव के ठाकुर ने मेवाड़ की तरफ से बनवाया था।[1]

---

1. ऐसा मत प्रचलित है कि महाराणा कुम्भा जब कुम्भलगढ़ पर रहते थे तो उनके हाथी इस नाल के नीचे रहा करते थे। जहां पर एक छोटा गांव था जो हाथी गुड़ा के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसी के नाम से "हाथी गुड़ा की नाल" प्रसिद्ध हुई।

2. उन दिनों घाणेराव का ठाकुर मेवाड़ की सेवा में रहता था।

जबकि इस (उन्नीसवीं) सदी के आरम्भ में जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने उसको घाणेराव से निकाल दिया था[1]।

भाणपुरा की नाल, जो घाणेराव से 6 मील दक्षिण में है, विशेषरूप से राणकपुर के जैन मन्दिरों के लिये प्रसिद्ध है। लोग ऐसा कहते हैं कि प्राचीन नगर के स्थान पर ये (मन्दिर) बने हैं। नाल से आधी दूर ऊपर की तरफ एक प्राचीन पत्थर के बांध का कुछ भाग बचा हुआ है, जो वहां नदी के आरपार बंधाया गया था, जिसकी चोटी पर से वृक्षों के बीच प्राचीन मंदिर बड़े शोभायमान दिखाई पड़ते हैं।

सादड़ी के आगे और कोई अच्छी नाल नहीं है। पहाड़ियों के बीच में केवल पगडंडियां और बैलों के आने-जाने के रास्ते हैं। उदयपुर से सीधा मार्ग जो गोगूंदा होकर आबू की तरफ जाता है, वह सिरोही राज्य में रोहेड़ा गांव के पास जा निकलता है तथा पोसीना और कोटड़ा से भी इस तरफ सड़क आती है। राज्य के दक्षिण की ऊंची जमीन से नीचे की ओर केवल दो मार्ग ही ऐसे हैं, जिनका वर्णन आवश्यक है। एक बानसी से करीब-करीब दक्षिण में धरियावद होकर बांसवाड़ा को जाता है, और दूसरा उदयपुर से सलूम्बर होकर डूंगरपुर को[2]। इनमें गाड़ियां नहीं जा सकती हैं, परंतु सब प्रकार के लद्दू जानवर बोझा लादे हुए आसानी से जा सकते हैं।

राज्य के पूर्वी किनारे पर पहाड़ियों का एक समूह है, जो उत्तर से दक्षिण की तरफ समानान्तर संकड़ी घाटियां बनाता हुआ चला गया है। जिनमें से सबसे बड़ी घाटी में विजयपुर का एक छोटा कस्बा है। सबसे ऊंची दो पहाड़ियां ठीक 2,000 फीट से कुछ अधिक ऊंची हैं, परन्तु पहाड़ियों की औसत ऊंचाई 1,850 फीट के लगभग है।

यहां पानी का अधिकांश बहाव उत्तर से दक्षिण की ओर है। उत्तर की तरफ का बहाव सीधा बेड़च में जाता है, और दक्षिण का बहाव गम्भीरी

1. घाणेराव के ठाकुर राव दुर्जनसिंह से महाराजा मानसिंह द्वेष रखता था। अतः महाराजा ने जून, सन् 1804 ई० में सेना भेजकर घाणेराव पर अधिकार कर लिया था। (सं०)
2. वर्तमान महाराणा ने एक सड़क उदयपुर से जयसमुद्र तक बनवाई है है, जिसमें बग्घी, गाड़ी अच्छी तरह से जा सकती है।

नाम की एक छोटी नदी में जा मिलता है। यह नदी पश्चिम को वह कर पहाड़ियों को घेरती हुई उनके पश्चिमी किनारों से मुड़कर चित्तौड़ के पास वेड़च में मिल जाती है।

चित्तौड़ से पश्चिम की तरफ का प्रदेश खुला हुआ है, परन्तु इसके आरपार चलने में पड़त जमीन के वड़े-वड़े टुकड़े पाये जाते हैं तथा अकेली पहाड़ियां और छोटे-छोटे ढूहे[1] उस पर फैले हुए हैं। चित्तौड़ के नैर्ऋत्य कोंण में पहाड़ियाँ अधिक ऊंची और जंगल से ढकी हुई हैं, इन शृंखलाओं के पश्चिम में भदेसर है। इन पहाड़ियों की शोभा, विशेष कर उन निकली हुई सफेद चट्टानों के कारण अति रमणीय है। इनकी (सफेद चट्टानों) वड़ी-वड़ी ऊंची चोटियां जंगल के ऊपर दिखाई देती हैं। भदेसर की पहाड़ी के दक्षिण का प्रदेश पुनः अधिक खुला हुआ है। परन्तु कम ऊंचाई की पहाड़ी शृंखलाएें इस प्रदेश में भी विद्यमान हैं।

वड़ी सादड़ी से एक वड़ी भारी, ऊंची और पेचीदा पहाड़ियों की पंक्ति अग्निकोंण की तरफ जाती है और जाखम के ऊपर एकदम समाप्त हो जाती है। ये पहाड़ियां एक बड़े चौड़े और सघन जंगल से ढकी हुई जमीन वाली एक वड़ी घाटी की पश्चिमी सीमा है, जहां की जमीन नीची है। समुद्र सतह से उसकी औसत ऊंचाई 1,250 फीट से अधिक नहीं है। परंतु वह उत्तर की तरफ धीरे-धीरे ऊंची होती गई है और कहीं पर भी अधिक ढाल नहीं है। निःसन्देह ये पहाड़ियां विन्ध्याचल की शाखा हैं, परन्तु ये अरावली में मिल जाती हैं। इसलिये देश के आरपार जो पहाड़ों की पृथक पंक्ति वे वनाती हैं, पूर्व की तरफ कुछ लुप्त हो जाती हैं और दूर पश्चिम में वे विलकुल लुप्त हो जाती हैं तथा अरावली की अकेली समानान्तर शाखा रह जाती है। पहाड़ों की एक और पंक्ति वायव्य कोंण को जाती हुई जहाजपुर तक चली गई है, जो उस पहाड़ी भाग के पश्चिम में है। जिसको मीनों का प्रदेश "खैराड़" कहते हैं। इस पर मांडलगढ़ का किला स्थित है। उसके दक्षिण में वूंदी राज्य के मध्य से होकर ईशान कोंण को जाने वाली पहाड़ की पंक्ति आरम्भ होती है।

धातु और कीमती पत्थर—टॉड के वयान और हमारे अनुमान से

---

1. ढूहे अर्थात् ऊंची जमीन जो वहुत दूर तक चली गई हो।

मेवाड़ में पहले धातु बहुत पैदा होती थी। जावर व दरीवा की शीशे की खानों से प्रतिवर्ष 3,00,000 रु० से अधिक की आमदनी होती थी, परन्तु बहुत वर्षों से वे छोड़ दी गई हैं। इससे अब वे पानी से भर गई हैं। जावर[1] उदयपुर से ठीक दक्षिण की तरफ लगभग 18 मील की दूरी पर स्थित है। अब यह खण्डहर की स्थिति में है। खण्डहरों के भीतर व बाहर के स्थानों में अभी तक अच्छे-अच्छे कुछ मंदिर हैं। पास वाली एक पहाड़ी पर एक बड़े गढ़ की दीवार का निशान भी पाया जाता हैं। शहर के पश्चिम में एक छोटी नदी बहती है, जिसके तीर पर एक बहुत अच्छा कुआं है और पत्थर से बने हुए एक बांध का कुछ हिस्सा है। पूर्वकाल में यह बहुत पानी रोकता रहा होगा ? परन्तु अब बिलकुल फूट गया है। प्रत्यक्ष में मालूम होता है कि पहले समय में यहां धातु बहुत गलाई जाती थी। क्योंकि प्राचीन स्थानों की बहुत सी दीवारें केवल प्राचीन धरियों[2] से बनी हुई हैं, जिनसे उनका एक अद्भुत आकार हो गया है। सन् 1873 ईसवी (वि० 1930 = हि० 1290) में खानों को फिर से प्रारम्भ करने की कोशिश की गई थी, और बहुतसा धन भी व्यय हुआ, परन्तु उसका परिणाम कुछ नहीं निकला। एक मुख्य दरार में सुरंग बनायी गयी, और उसमें से 11 फीट पानी निकाला गया। परन्तु यह मालूम हुआ कि प्रथम जो खान की तह सोची जाती थी, वास्तव में वह पत्थर और मिट्टी का एक ढेर है तथा एक दूसरी सुरंग बहुत नीचे बनाना आवश्यक है। फिर खोदने के समय पांच ढेर या ढेले, जिनमें सबसे बड़ा 10½ सेर का था, पाये गये। धातु निखालिस गैलिना (खान से निकला हुआ अशोधित शीशा) पाई गई। जिसमें 71 प्रतिशत से अधिक पाषाणमय अंश नहीं था। परन्तु चांदी के हेतु परीक्षण करने से एक टन (28 मन) शीशे में 10 औंस[3] 12 पेनीवेट, 8 ग्रेन चांदी पाई गई। तब काम रोक दिया गया। क्योंकि बिना मशीन के सब पानी दूर करना असंभव था, जिसका खर्च महाराणा नहीं देना चाहते थे, क्योंकि चांदी बहुत कम मिलती थी। इसका परीक्षण बुशल ने हमारे सामने किया था।

---

1. प्राचीन प्रशस्तियों में इसका नाम जोगिनीपुर लिखा है। इस नाम की उत्पत्ति एक देवी के स्थान से है, जिसको लोग जावर की माता के नाम से पुकारते हैं।
2. धरिया—मिट्टी का एक पात्र, जिसमें धातु गलाई जाती है।
3. सोने चांदी के तौल के हिसाब से एक अंग्रेजी पाउण्ड 32 रुपये भर-

मांडलगढ़ जिले के गुहली गांव में, जहाजपुर जिले के मनोहरपुर में, गंगराड़ में रेलवे लाइन पर और बड़ी सादड़ी से कुछ मील दक्षिण की ओर पारसोला में भी लोहे की खानों का काम अभी तक जारी है। परन्तु वर्तमान समय में बहुत कम लोहा निकाला जाता है। खान में काम करने वाले लोग कच्ची धातु को गलाने के लिये हवा से गर्म होने वाली भट्टियां रखते हैं। यह एक विचित्र बात है कि मैल साफ करने के लिये नमक को काम में लाना, जो आधुनिक तरीका समझा जाता है, वह पारसोला में पीढ़ियों से चला आ रहा है।

सादड़ी, हमीरगढ़ और अमरगढ़ के जिलों में पुरानी खानें हैं, जिनका काम बहुत समय से बन्द कर दिया गया है। राज्य की दक्षिणी पहाड़ियों में बेदावल की पाल और अञ्जेनी के बीच में भी बहुतसा लोहा, और फिर कुछ पश्चिम में तांबा पाया जाता है। परन्तु आजकल काम नहीं होता। देलवाड़ा में भी तांबा पाया गया है। उदयपुर के निकट केवड़ा की नाल में भी बहुतसी प्राचीन खानें हैं।

पोटला और दरीबा में शीशे की खानें बहुत दिनों से बन्द हैं। तामड़ा (रक्तमणि), जो बहुमूल्य पाषाण है, मेवाड़ में बहुत पाया जाता है। मांडलपुर और भीलवाड़ा के जिलों में तथा दरीबा में, जिन खानों से यह निकाला जाता है वह अभी तक काम करने के योग्य है।

जंगल—अरावली पहाड़ प्रायः बांस और छोटे-छोटे वृक्षों से ढका हुआ है, परन्तु नदियों के किनारों पर उगने वाले वृक्षों के अतिरिक्त और बहुत छोटे और अनुपयोगी वृक्ष भी हैं। राज्य के अग्निकोण में बानसी और धरियावद के जंगल सबसे बड़ी और बहुमूल्य लकड़ी के हैं। वहां से बहुतसी सागवान की लकड़ी काट-काट कर मेलों में बेची जाती है। घाटियों में महुआ और आम बहुत होते हैं। राज्य के बहुत से भागों में बहुत से झाड़ और छोटे-छोटे पेड़ों से ढके हुए बड़े-बड़े भूमि खण्ड हैं और अधिकांश छोटी-छोटी पहाड़ियां भी अच्छी तरह से ढकी हुई हैं।

होता है। पाउण्ड का 12 वां भाग औंस, औंस का 20 वां भाग पेनीवेट और पेनीवेट का 24 वां भाग ग्रेन कहलाता है।

नदियां—चम्बल जो यथार्थ में मेवाड़ की नदी नहीं है, वह राज्य में कुछ मील तक ही बहती है। वह भी केवल कोटा के निकट भैंसरोड़ के एक निकले हुए भू-भाग[1] पर है।

साल भर बहने वाली नदियां मेवाड़ में बहुत कम है। बनास में भी ग्रीष्म ऋतु में कई जगहों पर खड्डों में पानी भरा रहता है। प्रायः इस नदी में चट्टानें और बालू है और सतह से नीचे पानी बहुत समय तक बहता है, जो नदी के दोनों तरफ के किनारों पर बने कुओं में जाता है। अरावली की पहाड़ी श्रृंखला में कुम्भलगढ़ से नैऋत्य कोण में 3 मील की दूरी पर 25°-7' उत्तरांश पर बनास का सिरा है। प्रथम 15 मील तक यह नैऋत्य कोण में जर्गा की श्रेणी के समानान्तर रेखा पर बहती है। फिर वह एकदम पूर्व में मुड़कर पहाड़ के दक्षिणी किनारे की ओर घूमकर 5-6 मील तक पहाड़ी श्रेणी में होकर बहती है। इस प्रकार 20 मील तक बहने के बाद खुले मैदान में पहुंच जाती है। फिर थोड़ीसी दूर नाथद्वारा के पास ईशान कोण के मैदान में बहकर मांडलगढ़ के समीप पहुंचती है। वहां पर दाहिनी ओर से आकर "बेड़च" इसमें मिलती है। उसी स्थान पर "मेनाली" नदी भी इसमें मिल गई है। जिससे उस स्थान को "त्रिवेणी तीर्थ" मानते हैं। फिर ठीक उत्तर की तरफ बहने के बाद थोड़ी दूर पर बाईं तरफ से "कोटेश्वरी" (नदी) भी आ मिली है। वहां से जहाजपुर की पहाड़ियों में होकर उनकी पश्चिमी तलहटी के समीप होती हुई ईशान कोण को बहकर अन्त में देवली के निकट[2] राज्य से अलग होती है। फिर अजमेर और जयपुर की सीमा में पहुंचती है। वहाँ लगभग 300 मील बहने के बाद चम्बल में जा गिरती है।

खारी—मेवाड़ की नदियों से सबसे उत्तर में है। यह मेवाड़ के दीवेर जिले की पहाड़ियों में से निकलती है, और देवगढ़ के पास ईशान कोण को बहती हुई अजमेर की सीमा में लगभग 115 मील बहकर जयपुर की सीमा में बनास से जा मिलती है। इसके दक्षिण में कुछ मील के अन्तर पर

---

1. उदयपुर राज्य में भैंसरोड़ के निकट 9 मील तक इस का बहाव है। (सं०)
2. बनास नदी का मेवाड़ में कुल बहाव 180 मील है। ओझा० उदयपुर०, भाग 1, पृ० 4। (सं०)

इसकी सहायक नदी "मानसी" भी 60 मील तक इसके (खारी) समानान्तर रेखा पर वहती है, और अजमेर की सीमा पर फूलिया के समीप इसमें जा मिलती है। इसके अतिरिक्त दो और छोटी नदियां भी बनेड़ा के पास से निकल कर शाहपुरा के समीप होती हुई 40 मील वहकर सावर के पास इसी में आ मिलती है।

खारी के दक्षिण में "कोटेशरी" (कोठारी) नदी वहती है, जो अरावली पहाड़ों से निकल कर दीवेर से दक्षिण में 90 मील वहने के वाद ठीक पूर्व में नन्दराय से एक कोस की दूरी पर वनास से जा मिलती है। वनास के दक्षिण में 'वेड़च' वहती है, जो उदयपुर की पश्चिमी पहाड़ियों से निकलती है लेकिन उदयसागर में गिरने से पहले "आहाड़ की नदी" कही जाती है। इसके वाद कुछ मील तक "उदयसागर का नाला" कहलाती है आगे कुछ दूर वहने पर "वेड़च" कही जाती है। फिर यह पूर्व में वहती हुई चित्तौड़ पहुंचती है। वहां से उत्तर की तरफ ईशान कोण को झुकती हुई वनास में जा गिरती है।[1]

जाखम, छोटी सादड़ी के समीप राज्य के नैर्ऋत्य कोण से निकलती है, और दक्षिण की तरफ प्रतापगढ़ के नैर्ऋत्य कोण में वहती है। जहाँ उस में वाईं तरफ से "करमरी" नदी आ मिलती है। फिर वहां से मेवाड़ में धरियावद के पास होकर नैर्ऋत्य कोण को वहती हुई "सोम" में जा मिलती है। यह लगभग अपना समस्त वहाव चट्टानों और जंगलों में रखती है। इस कारण अधिकांश स्थानों में वहुत सुन्दर दिखाई देती है।

राज्य के समस्त नैर्ऋत्य कोण के हिस्से का और जयसमुद्र के निकास का पानी "सोम" में जाता है, जो वहां पश्चिम से पूर्व को वहती है। फिर वह ववराना गांव के पास दक्षिण दिशा में मुड़कर माही में जा गिरती है।

झीलें—जयसमुद्र झील, उदयपुर से 32 मील दक्षिण में है। कप्तान येट् लिखता है कि, यह तालाव संसार में मनुष्य द्वारा वनाया हुआ कदाचित् सवसे वड़ा जलाशय है। यह 9 मील लम्वा और 6 मील चौड़ा है। जिसके

1. इस नदी का सम्पूर्ण वहाव 130 मील है तथा मांडलगढ़ के पास वनास से मिलती है 4। (सं०)

8 वर्गमील विस्तार में द्वीप है, और 690 वर्गमील का पानी इसमें जाता है। इसकी सबसे अधिक गहराई 80 फीट है। यह तालाब जो समुद्र की सतह से 960 फीट ऊंचा है, महाराणा जयसिंह ने सं० 1744 विक्रमी से 1748 विक्रमी (1687 से 1691 ई० = 1098 से 1102 हि०) तक एक सुन्दर संगमरमर का बांध पहाड़ों के बीच की नाल को बांध कर बनाया है। उसकी पीछे की दीवार समान लम्बाई और ऊंचाई की बनवाई गई थी। परन्तु मध्य की खाली जगह भरी नहीं गई। दोनों दीवारें अलग-अलग खड़ी रहीं, क्योंकि संगमरमर का बांध ऐसा दृढ़ बंधवाया गया था कि, वह अकेला अपने सामने के सब पानी के दबाव को रोक सकता था। सन् 1875 ई० (वि० 1932 = हि० 1292) के जल प्रवाह में जब उसके टूट जाने का भय हुआ, तो वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह ने बांध की मरम्मत करवा कर. 2 00,000 से अधिक रुपया खर्च कर, बीच के खड्डे का ⅔ भाग भरवा दिया था तथा बांध और पहाड़ पर बने महलों का भी जीर्णोद्धार करवाया। जल की तरफ वाला पुश्त[1] 1000 फीट लम्बा, 95 फीट ऊंचा, और 50 फीट चौड़े आधार पर है, जिसका ऊपरी भाग 15 फीट चौड़ा है। इसके पूर्वी किनारों पर गुम्बदों वाले महल और मध्य में एक बड़ा मंदिर है, जिसके दोनों ओर बांध पर छतरियां और पानी की तरफ पत्थर के हाथी बने हुए हैं। बांध के एक किनारे पर वर्तमान महाराणा* ने भी महल बनवाये हैं। पीछे की दीवार 1,300 फीट लम्बी है, क्योंकि उधर पहाड़ियों की दरार बढ़ती गई है। अब तक इसका पानी कम खर्च किया गया है। इस झील के अग्निकोंण पर पानी का एक निकास है, जहां से एक धारा सोम नदी में जा मिलती है।

राजसमुद्र झील—जो राजधानी से करीब 40 मील उत्तर में है, 4 मील लम्बी और 1¾ मील चौड़ी है। इसमें 194 वर्गमील का पानी जाता है। इसका आरम्भ महाराणा राजसिंह ने 1662 ईसवी (वि० 1718= हि० 1072) में किया और 14 वर्ष में बन कर तैयार हुआ।[2] यह तालाब

1. पुश्त = पानी की रोक के लिये बनवायी गई दीवार। (सं०)

*महाराणा फतहसिंह। (सं०)

2. माघ कृ० 7, 1718 वि० के दिन प्रारम्भ होकर 14 वर्ष के बाद माघ शु०15, 1732 वि० के दिन इसकी प्रतिष्ठा हुई। लेकिन आषाढ़

एक मैदान के गड्ढे में है।जहां पर वर्ष भर जल धारण करने वाली गोमती नामक एक छोटी नदी तीन मील के लम्बे अर्द्ध वृताकार बांध से रोक दी गई है। इसके दक्षिण में राजनगर कस्वा है। अग्निकोण में कांकड़ोली नामक कस्वा है, जिसमें द्वारिकानाथ का एक प्रसिद्ध मंदिर वांध पर बना है। यह वांध राजनगर की पहाड़ी से निकले हुए संगमरमर का वना है और ऊपर से लेकर पानी के किनारे तक इसी पाषाण की सीढियां वनी हैं। वांध के ऊपर सुन्दर मण्डपाकार गृह है जिनको "नौ-चोकियां" कहते हैं। इस झील का नाप व लागत आदि का सविस्तार वृतान्त महाराणा राजसिंह के विवरण में लिखा जायेगा।

इसके वाद एक दूसरा तालाव उदयपुर से करीब 6 मील पूर्व में "उदयसागर" के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी लम्बाई 2½ मील, चौड़ाई 2 मील है और 179 वर्गमील भूमि का पानी[1] उसमें जाता है। इसका पानी एक बड़े ऊंचे वांध से रुका है, जो वड़ी चट्टानों से एक पहाड़ी नाल के पार देवारी दरवाजे, जो उदयपुर जाने के लिये पूर्वी दरवाजा है, से 2 मील दक्षिण की तरफ वनाया गया है।[2] प्रमुख रूप से इस तालाव में "अहाड़ की नदी" का पानी आता है और इसके निकास से वेड़च निकली है। इसके आस-पास की पहाड़ियां वड़े जंगल से ढकी हुई हैं और किनारों की पहाड़ियों पर महाराणा के आखेट-गृह वने हैं, जो वड़े शोभायमान दृष्टिगत होते हैं।

राजधानी उदयपुर में "पीछोला" तालाव 2¼ मील लम्बा और 1½ मील चौंड़ा है। इसमें 56 वर्गमील भूमि का वहाव आता है। इस तालाव के वनाने के लिये जो धारा रोकी गई है, वह पहिले अहाड़ की नदी

1735 वि० तक कार्य चलता रहा। इसके निर्माण कार्य, प्रतिष्ठा और पुरस्कार आदि में कुल 1,05,07,584 रु० खर्च हुए थे। (सं०)

1. ओझा के अनुसार 185 वर्गमील का पानी इसमें आता है।
   —ओझा० उदयपुर०, भाग 1, पृ० 7। (सं०)
2. महाराणा उदयसिंह ने सन् 1559-1564 ई० के मध्य इसका निर्माण करवाया था। (सं०)

में मिलती थी, जो नदी उदयसागर में जाती है। यह तालाव 15वीं सदी विक्रमी के मध्य में महाराणा लाखा के समय किसी वणजारे ने बनवाया था। इसका बांध 334 गज लम्बा और इसका ऊपरी भाग 110 गज चौड़ा है, जो आधार की ओर बढ़ता जाता है। सं० 1852 विक्रमी (1210 हि० = 1795 ई०) में यह बांध टूट गया था। जिससे आधा शहर डूब गया था। वैसी ही विपत्ति का भय 1875 ईसवी (वि० 1932 = हि० 1292) की घोर वर्षा में भी हुआ। परन्तु ईश्वर की कृपा से कुछ हानि नहीं हुई।

इस तरह इन चार तालावों में 1,119 वर्गमील भूमि का पानी जाता है। दूसरे दो तालाव ग्राम बड़ी और देवाली के हैं जो 15 वर्ग मील जमीन का पानी खींचते हैं। ये भी उदयसागर में जाने वाले पानी का कुछ भाग रोकते हैं। इनके अतिरिक्त और भी तालाव राज्य के उत्तरी और पूर्वी भागों में बहुत हैं। इनके प्रमुख रूप से घासा, सेंसरा, कपासन, लाखोटा, गुरलां, मांडल, दरौली, भटेवर और भूताला आदि स्थानों में हैं। इनका पानी बांध के नीचे के खेतों को सींचने के काम में लाया जाता है।

(३) जानवरों व परिन्दों का वर्णन—

मेवाड़ में अनेक प्रकार के मांसाहारी, तृणचर, और उड़ने वाले जानवर हैं। जिनमें से कुछ जानवरों का हाल यहां पर लिखा जाता है—

सिंह—अरावली पहाड़, खैराड़ और ऊपर-माल आदि में पहले बहुत थे, जिनसे पहाड़ी गांवों के अतिरिक्त मैदानी प्रदेश के गांवों में भी हर जगह चौपायों को खतरा रहता था। लेकिन मेरे (कविराजा श्यामलदास के) देखते ही देखते वे इतने कम हो गये हैं कि, वर्तमान महाराणा पश्चिमी और पूर्वी पहाड़ों में हर जगह प्रवन्ध व निगरानी रखवाते हैं, तव बड़े प्रयत्न करने पर उनका शिकार प्राप्त होता है, जिसका विवरण वर्तमान महाराणा के हाल में लिखा जायेगा।

बघेरा, जिसको अधवेसरा शेर भी कहते हैं और "टीमर्‍या" "चौफ़ुल्या" आदि नामों से इसके और भी भेद प्रसिद्ध हैं, हर एक जगह की पहाड़ियों से अधिक संख्या में मिलता है। यह जानवर बछड़ा, बकरी, भेड़,

सूअर के बच्चे व हिरण आदि छोटे-छोटे जानवरों को मार कर अपना गुजारा कर लेता है। कभी-कभी बैल, गाय आदि भी मारता है। दबाया हुआ और घायल होने की हालत में आदमी पर भी हमला करता है।

चीते—राजा लोगों के शिकारी कारखानों में हिरण के शिकार के लिये रहते हैं। मेवाड़ में हुरड़ा, भीलवाड़ा और चित्तौड़ के जिलों में पहले मिलते थे, परन्तु अब नजर नहीं आते।

भेड़िया—जिसको संस्कृत में वृक और मेवाड़ी भाषा में "वरघड़ा" और "स्याल" बोलते हैं, अधिक खूंखार नहीं होता। यह बकरी, भेड़ आदि छोटे जानवरों को मार कर पेट भरता है. और सब जगह पाया जाता है।

बन्दर—ये जानवर यहां काले मुंह और सफेद रंग का होता है और फल-फूल व पत्तों से अपना पेट भर लेता है। कूदने में 20 या 25 फीट जमीन को या इतनी ही दूरी के, एक से दूसरे वृक्ष को अच्छी तरह छलांग जाता है और पेड़ों पर रहता है। इनके झुण्ड में एक नर, अपने अतिरिक्त दूसरे नर को नहीं आने देता।

रीछ—यह जन्तु मूल रूप से तृणचर है। परन्तु इस पर शेर आदि जानवर हमला नहीं करते और न यह दूसरों से बोलता है। अधिकतर बाजीगर लोग इनके बच्चों को पहाड़ों से पकड़ कर नाचना सिखाते हैं और शहरों व गांवों में उनसे अपना रोजगार कमाते हैं। शिकारी लोग बंदूक से इसका शिकार करते हैं। अधिकांश रूप से यह पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी पहाड़ों में मिलता है। यह जानवर तंग होने की हालत में या घायल होने पर इसके पास जा निकलने पर, आदमी के ऊपर जरूर हमला करता है।

सांभर—एक तृणचर पशु बड़े महिष (भैंसे) के बराबर होता है। जिसके बहुत बड़े-बड़े शाखादार सींग होते हैं। यह किसी को दु:खदायी नहीं है। सिंह अधिकतर इन्हीं जानवरों से अपनी क्षुधा शान्त करता है। इसी का दूसरा भेद चीतला सांभर है। जिसके बदन पर सुनहरी रंग में सफेद धब्बे होते हैं। यह भी देखने में बड़ा सुन्दर होता है। मेवाड़ के दक्षिण में जयसमुद्र की तरफ व पश्चिमी पहाड़ों में इन जानवरों के झुण्ड के झुण्ड मिलते

हैं। शिकारी लोग मार-मार कर इनका मांस भक्षण करते हैं,. और इनके कीमती चमड़े को तैयार कर अपने काम में लाते हैं।

हिरण—यह भी एक प्रसिद्ध तृणचर और गरीव जानवर है। अधिकांश चौड़े मैदानों में इसके झुण्ड के झुण्ड रहते हैं। दौड़ने और छलांग मारने की शक्ति इसमें अधिक होती है। यह जानवर कई प्रकार का होता है। अर्थात् कोई काला, कोई छींकला व कोई चौसींगा। जिसके चार सींग होते हैं, इसको भेड़ला और कहीं-कहीं बूटाड़ भी कहते हैं, जो हिरण की एक किस्म है।

सियाहगोश—इस जानवर का कद, कुत्ते से कुछ छोटा होता है और यह मांसाहारी है। ये दो-दो जानवर साथ रहते हैं। यदाकदा अकेले भी मिलते हैं। लेकिन बहुत थोड़े हैं।

जंगली कुत्ते-जो कुत्ते के वरावर और मांसाहारी होते हैं। दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह का झुण्ड बनाकर रहते हैं। ये सूअर आदि को अच्छी तरह मारते है और इनसे शेर भी डरता है, कुछ लोग इन्हीं को "करू" कहते हैं क्योंकि करू भी ऐसा ही होता है।

गीदड़ (सियाल)—यह मांसाहारी और कन्द-मूल फलाहारी जानवर मेवाड़ में वहुत पाया जाता है।

लोमड़ी—यह भी सियाल की किस्म का एक छोटा जंगली जानवर है।

जरख—यह मेवाड़ में वहुतायत से मिलता है। इसके सम्वन्ध में देहाती लोगों में प्रसिद्ध है कि, इस जानवर पर डाकिन सवारी करती है। इसी कारण इसको डाकिन का घोड़ा भी कहते हैं।

सूअर—यह जानवर तृण और कन्दचर है, परन्तु मिलने पर मांस भी खा जाता है। गुस्से की स्थिति में यह शेर से वरावरी का मुकावला करता है। वहादुरी में सवसे वढ़कर है। राज्य में आखेट के लिये रक्षित जंगलों में तथा सरदारों के कितने एक इलाकों में तो अधिक और वाकी हर एक जगह कम संख्या में पाया जाता है। राजपूत लोग इसका शिकार वड़े उत्साह के साथ वन्दूक से अथवा घोड़े पर सवार होकर वर्छे से करते हैं।

रोझ—यह तृणचर जानवर मेवाड़ के पूर्वी-दक्षिणी जंगलों में कहीं कहीं पर मिलता है। इसका कद घोड़े के समान होता है।

घरेलू जानवर—हाथी उत्तराखण्ड की तरफ नेपाल की तराई में, आसाम के जंगलों में और दक्षिणी हिन्दुस्तान के जंगलों में होते हैं। जिन्हें व्यापारियों के माध्यम से राजा लोग खरीद-खरीद कर अपने काम में लाते हैं। कभी-कभी महाराणा के पीलखाना में 50 से कम और 30 से ज्यादा हाथी रहते हैं। लेकिन इस समय 45 मौजूद है।[1] सुनते हैं कि, पहले समय में 100 हाथी खास पीलखाना में रहते थे। उदयपुर के हाथियों की लड़ाई प्रसिद्ध है, और वास्तविकता में यहां के हाथी लड़ते भी अच्छे हैं। ये शेर का शिकार करने के समय मजबूत और दिलेर होते हैं। सवारी के काम में भी यहां हाथी अधिक लाये जाते हैं। मुझको हाथी की सवारी की अधिक आदत रही है। अगर हाथी पाठा हो, तो आराम के लिये पालकी की सवारी से कम नहीं है। बड़ी जलूसी सवारियों में अथवा शिकार के समय महाराणा भी अधिकांशतः हाथी ही पर सवार होते हैं। गजनायक नाम का एक हाथी नेपाल के महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह ने महाराणा जवानसिंह को उपहार में भेजा था। वह ऊंचाई, लम्बाई, चौड़ाई और खूबसूरती में ऐसा कि, यद्यपि मैंने हजारों हाथी देखे, लेकिन वैसा कोई दूसरा हाथी देखने में नहीं आया। वह महाराणा शम्भुसिंह के समय में मर गया। वर्तमान समय के हाथियों में विजय श्रृंगार नामक हाथी ऊंचाई, लम्बाई और मोतबरी में प्रसिद्ध है।

घोड़े—ये जानवर महाराणा स्वरूपसिंह के अंतिम समय तक मेवाड़ में बहुत थे। अर्थात् चौथा बांटा देने वाले हर एक राजपूत के घर में 1 या 2 घोड़ा या घोड़ी अवश्य मिलते थे। बड़े ठिकानेदार तो अच्छे राजपूत और अधिक संख्या में घोड़े-घोड़ी रखने में अपनी इज्जत समझते थे। परन्तु वर्तमान समय में महाराणा के तबेले के[2] अतिरिक्त दूसरे सरदारों में यह शोक कम हो गया है।

---

1. देवस्थानों और उमरावों के हाथियों की संख्या इस से अलग है।
2. महाराणा के तबेले में अरबी आदि सब प्रकार के घोड़े व्यापारियों से खरीदे जाते हैं।

ऊँट—यह जानवर मेवाड़ में अधिकतर बारबरदारी[1] के काम में लाया जाता है, किन्तु सवारी में कम। केवल राज्य के शुतरखाना में 30 या 40 उत्तम नश्ल के सांडिये सवारी के लिये मेरे अधिकार में हैं। उनमें से कितने एक पचास-पचास कोस का धावा एक दिन में कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त ठिकानेदारों के यहाँ भी ऊँट रहते हैं। परन्तु उंट की सवारी इस देश में अधिक नहीं की जाती। मारवाड़ और शेखावटी में इसकी सवारी का अधिक प्रचलन है।

गधे—इस देश में छोटे होते हैं · इस जानवर को यहां धोबी और कुम्हार व ओड[2] आदि अधिकतर मिट्टी और पत्थर ढोने के काम में लाते हैं। इस देश में अपराधी को सजा देने के समय गधे पर बैठाकर शहर के बाहर निकाल देते हैं। इसी कारण से यहां गधे की सवारी को हीनदृष्टि से देखा जाता है। अन्यथा धर्मशास्त्र में तो ऊंट और गधे की सवारी का बराबर दोष लिखा है। परन्तु यहां ऊंट की सवारी का दोष नहीं समझते।

गाय और भैंस—मेवाड़ में बहुतायत से हैं। सब लोग इनको पालते हैं। बहुत से लोगों का खास इन्हीं के जरिये (माध्यम) से गुजारा होता है। किसान लोगों के यहां तो गाय भैंसों के झुण्ड के झुण्ड रहते हैं। भैंस का दूध मीठा और गाढ़ा, गाय का दूध[3] कुछ फीका और पतला होता है। गाय की अपेक्षा भैंस के दूध से घी अधिक निकलता है। भैंस का मूल्य मेरे बचपन में 20 से 25 रु० और गाय का 5 से 8 रुपये से अधिक नहीं था। परन्तु वर्तमान समय में भैंस की कीमत 50 या 60 और गाय की 25-30 रु. तक बढ़ गई है। भैंस के नर बच्चे "पाडे" का मोल 10-12 रुपये से अधिक नहीं लगता और गाय के नर बच्चे बैल का मोल 80 रुपये तक या इससे भी अधिक होता है। आसूदाहाल (धनी) किसानों के यहां 50 से लेकर 100 तक गाय भैंस रहती हैं। यहां की भैंस और गाय न बहुत छोटी न बहुत बड़ी, अधिकतर मंझले कद की होती हैं।

बकरी और भेड़—मेवाड़ में बहुत होती हैं। प्रथम श्रेणी में गूजर,

---

1. बोझ ढोने के लिये प्रयुक्त होते हैं। (सं०)
2. तालाब खोदने वाली जाति। (सं०)
3. यहां की गाय दूध कम देती है।

गाडरी और दूसरी श्रेणी में रेवारी व भील आदि जातियां इन जानवरों के झुन्ड के झुण्ड रखते हैं। इस मवेशी को पालने में केवल आदमी की जरूरत है और किसी तरह का खर्च नहीं होता। अकाल में इस मवेशी को रखने वाले निर्भय रहते हैं।

कुत्ता, बिल्ली —आदि जानवरों को यहां कोई नहीं पालता। ये शहर और गांवों में बहुत से लावारिस फिरा करते हैं। कहीं-कहीं बकरी, भेड़ों और खेती की रक्षा करने के लिये अथवा शिकार के लिये कुत्ते पाले जाते हैं।

परिन्द (पक्षी) जानवरों में 'सफेद बतक, मुर्गा और कबूतर हर एक जगह पालतू मिलते हैं। **तोता** आदमी की बोली बोलने में चतुर होता है। साधारण तोता हर एक जगह मिल सकता है, लेकिन गागरौनी सूआ, जो कद में भी बड़ा होता है और जिसके पंखों पर लाल दाग होते हैं, आदमी की बोली अच्छी तरह से बोल सकता है। इस पक्षी को बेगम (बेगूं) पट्टे के धामणघाटी गांव में से लाते हैं और उदयपुर के दक्षिणी पहाड़ों में भी मिलता है। जंगली पक्षी गीध, ढींच, चील, शिकरा, कौआ, तोता, कबूतर, मोर, जंगली मुर्गा, कोयल, पपीहा, तीतर, बटेर और हरियल आदि हजारों पक्षी हैं। कितने ही शिकारी परिन्दे खास मौसम में बहार में यहां चले आते हैं, जिनकी गिनती करने से एक बड़ी किताब बन सकती है।

पानी के ऊपर रहने वाले परिन्दें, बक (बगुला), हंजा, घरट, सारस, टिटहरी, बतक (आड), जलकुक्कुट, जलकाक आदि सैकड़ों किस्म के पंक्षी हैं। पानी के भीतर रहने वाले जानवर मगर, मछली, जलमानस[1], मेंढक, कछुआ, कर्कट (केंकड़ा) और जलसर्प (डिण्डू) आदि अनेक प्रकार के जन्तु होते हैं। मछली बहुत प्रकार की बहुतायत से मिलती है। यहां देवस्थानों में व बहुत से अन्य जलाशयों में मछली मारने की पूरी मनाही है। गूंछ जाति की एक मछली, जो बेड़च और बनास नदी में मिलती है, वजन में एक मन से भी अधिक होती है। उसके मुंह में दांतों की लकीर, बड़ी मूंछे और

---

1. यह जानवर बिल्ली के आकार का होता है, लेकिन यहां इसको जल-मानस कहते हैं। शायद यह नाम बिल्ली के दूसरे नाम से पलट गया हो। क्योंकि राजपूताना में बिल्ली को "मनखी" बोलते हैं। यह शब्द भी जल-मानखी का जलमानस हो गया होगा।

उसका सिर वहुत कठोर होता है। उसका मांस देखने में वहुत अच्छा, लेकिन खाने में अधिक स्वादिष्ट नहीं होता। 1938 विक्रमी (हि० 1298=ई० 1881) में एक वड़ी गूंछ मछली मार कर कहार लोग चित्तौड़ किले पर लाये थे, जिसको हम लोगों ने वैकुण्ठवासी महाराणा के सामने हाथों-हाथ पकाया। लेकिर वह खाने में मजेदार नहीं थी।

(4) कुएं और सतह के नीचे वाले जल की सामान्य आकृति—

सतह के नीचे की धरती ऐसी कड़ी अर्थात् कठोर है, कि कुओं को वनाने में वड़ा परिश्रम और व्यय होता है। सतह के कुछ फीट नीचे कड़ी चट्टान की एक तह है, जिसके नीचे का पानी सुरंग की सहायता से प्राप्त होता है, परन्तु मुख्य स्रोता तो सुरंग लगाने पर भी कठिनाई से निकलता हैं। कुएं कम या अधिक तेज वहने वाले स्रोतों से भरे जाते हैं। अति गहरे और अत्यन्त अधिक व्यय वाले कुएं अधिकांशतः थोड़े ही घंटों तक पानी निकाले जाने से सूख जाते हैं और जब तक फिर नया पानी न निकले, किसान को ठहर जाना पड़ता है। इसलिए एक मौसम में हर एक कुए से बहुत कम जमीन सींची जाती है, सवसे उत्तम जमीन भी पांच वीघा से अधिक तो थोड़े ही स्थलों में सींची जाती है। कभी-कभी दो वीघा अथवा एक एकड़ से कुछ अधिक जमीन सींची जाती है। अकाल के वर्ष में संभव है कि इनसे जल विलकुल न निकले। इन कुओं को देखने से कहा जा सकता है कि यथार्थ में देश में नदियां ही सिचाई का मुख्य स्रोत हैं। नदियों के दोनों तरफ की जमीन में पानी वहुत दूर तक चला जाता है, जिससे सतह के पास ही वहुत पानी रहता है, उसको "सेजा" कहते हैं। ऐसे स्थानों पर कुएं वहुत होते हैं। उनके वनाने में व्यय वहुत कम लगता है। तथा खोदने से पानी जल्दी निकल आता है। परन्तु सदैव पानी रहना, अधिक शीघ्र वहने वाले स्रोते का कारण है।

अखारा—एक दूसरी तरह का कुआं है। वह वहुत गहरा खोदा जाता है। इससे इन कुओं के खोदने में व्यय (खर्च) अधिक पड़ता है और पानी भी सेजे वाले कुओं की तुलना में कम निकलता है। देश में इस प्रकार के कुएं वहुत हैं। "सेजा" केवल नदियों के किनारे पर है। सेजा की औसत गहराई 25-30 फीट तक और अखारे की 45 से 50 तक होती है। पहले

प्रकार में 200 से 300 रुपये तक और दूसरे में 400 से एक हजार रुपया तक खर्च होता है। पूर्वोत्तरी और मध्य के परगनों के कुओं में एक से अधिक चरस चलते हैं। अर्थात् इसका कुछ निश्चित नियम नहीं है, परन्तु सुदूर दक्षिणी जिलों में अधिकतर एक कुएं पर दो-दो रहते हैं और रहंट का अधिक प्रचार है।

मेवाड़ के पूर्वी तथा उत्तरी हिस्सों में चरस और दक्षिणी तथा पश्चिमी हिस्सों में रहंट चलते हैं। यह भी याद रखने की बात है कि, करीब 200 वर्ष पहले "आबरेजी" याने खेती को पानी पिलाने की रीति बिलकुल नहीं थी। इसीलिए पानी पीने और बाग-बगीचे सींचने वाली बावड़ी कुओं के अतिरिक्त खेती को सींचने का एक भी पुराना कुआं नहीं मिलता। तालावों से पानी निकालने की नहरें भी नहीं थीं। केवल वर्षा के पानी पर दोनों फसलें निर्भर करती थीं। इसलिए अकाल के समय हजारों आदमी भूख के मारे मर जाते थे। लेकिन अब तालाब और कुओं के सहारे से लाखों मन अनाज पैदा कर लेते हैं।

राजपूताना गजेटिअर में 5 वर्षों के परीक्षण से, जो उदयपुर में किया गया, सर्दी व गर्मी का नक्शा बनाया गया है। उसकी नकल हम पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे प्रस्तुत करते हैं—

माह	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्तूबर	नवम्बर	दिसम्बर	औसत
गर्मी व सर्दी का प्रतिदिन का औसत	59°	65°	75°	82°	89°	88°	82°	79°	79°	73°	69°	62°	76°
प्रतिदिन परिवर्तन का औसत	32°	32°	33°	32°	24°	20°	17°	13°	13°	26°	33°	29°	25°
वर्षा	0	0	0	0	0	1.61	10.85	6."86	8."90	0	0	0	28."42

यहां मुख्यतया "विक्रम सम्वत्" जाना जाता है। ऐसा मालूम होता है कि प्रारम्भिक समय में चान्द्र महीना और चान्द्र वर्ष माना गया होगा। क्योंकि चन्द्रोदय से तिथि का ज्ञान गणित से सहायता लिये बिना ही हो सकता है। फिर गणित विद्या का प्रचार होने पर "सौर मास' और "सौर वर्ष" का प्रचार करना चाहा। परन्तु चान्द्र मास की तिथियों पर बहुत से धर्म सम्बन्धी कार्य निश्चित हो जाने से चान्द्र मास का बदलना कठिन हो गया। तब गणितकारों ने सौर मास बनाकर उसको 12 लग्न, अर्थात् 12 संक्रांति के नाम से जारी किया। परन्तु उसका प्रचार गणितकारों तक ही सीमित रहा। तब लाचारी में चान्द्र मास को पूरा स्वीकार कर के अनुमानित 32[1] महीनों के बाद "अधिक मास" बनाकर चान्द्र वर्ष को सौर वर्ष में शामिल कर लिया। हिन्दुस्तान में सम्वत् का प्रारम्भ आपाढ़ादि, कार्तिकादि, चैत्रादि कई प्रकार से मानते है। मेवाड़ में प्रमुखतया चैत्रादि सम्वत् ही माना जाता है, जो गणितकारों, व्यापारियों और सामान्य प्रजा में प्रचलित है, किन्तु राज्य में श्रावणादि सम्वत् माना जाता है। पहला चैत्र शुक्ल 1, और दूसरा श्रावण कृष्ण 1[2] से प्रारम्भ होता है। अधिक मास से कारण मौसम महीनों पर आ मिलता है।

चैत्र से गर्मी, श्रावण से वर्षा और मार्गशीर्ष से शीत ऋतु मानी गई है। परन्तु शास्त्रकारों ने एक वर्ष में 6 ऋतुऐं मानी हैं। अर्थात् चैत्र,, वैशाख में वसन्त, जैष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म, श्रावण–भादपद में वर्षा, आश्विन-कार्तिक में शरद, मार्गशीष-पौष में हेमन्त, और माघ-फाल्गुन में शिषिर। परन्तु चान्द्र मास होने के कारण कभी-कभी मौसम में अन्तर आ जाता है। इसलिये विद्वान लोग संक्रांति के हिसाब से ऋतु मानते हैं जैसे मीन-मेष वसन्त, वृप-मिथुन ग्रीष्म, कर्क-सिंह वर्षा, कन्या-तुला शरद, वृश्चिक-धन हेमन्त, मकर-कुम्भ शिषिर। परन्तु इनमें भी अनेक मत हैं। कितने एक अर्द्ध मास और कितने एक अर्द्ध संक्रांति से ऋतु का पलता (बदलना) मानते

---

1. यह नियम सदा के लिये ऐसा नहीं रहता। कभी-कभी न्यूनाधिक होता रहता है।
2. उन्नीसवें विक्रम शतक से पहले इसको आषाढ़ादिक मानते थे, जो आपाढ़ शुक्ल 1 को प्रारम्भ होता था, परन्तु अब इसका प्रारम्भ श्रावण कृष्ण 1 से मानते हैं।

हैं। पर हमारे अनुमान से तो यहां तीन ही ऋतु मुख्य हैं, ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त अर्थात् गर्मी, वर्षा और जाड़ा।

इन्हीं के अनुसार **आरोग्यता व अनारोग्यता** माननी चाहिए। क्योंकि ग्रीष्म में विसूचिका (हैजे) का भय, वर्षा में स्नायु (वाला) का भय और हेमन्त के प्रारम्भ में ज्वर का प्रकोप होता है। हिन्दुस्तान के दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा इस देश में विसूचिका रोग कम आता है। परन्तु वाला (नारू) की बीमारी बहुत होती है। ज्वर के प्रकोप में "गुजराती" अर्थात् फेफड़े का रोग, जिसको अंग्रेजी में "निमोनिया" बोलते हैं, लोगों को अक्सर हो जाता है। यदि इलाज जल्दी न किया जाय तो यह रोग मनुष्य को एकदम दबाकर मार डालता है। एक ज्वर 21 या 28 दिन का होता है, उसको मोतीभरा या पानीभरा कहते हैं। यह ज्वर भी मनुष्य का प्राणान्त करने वाला है।

(5) **मेले व त्योहार**—

इस देश में धार्मिक **मेले व त्योहार** भी समय के अनुसार ही होते हैं। इसलिये राजधानी में जो जलसे और उत्सव होते हैं, उनका वर्णन यहां पर किया जाता है—

विक्रमी **चैत्र शुक्ल 1** को नवीन वर्ष का आरम्भ मानकर, जितने ज्योतिषी लोग हैं, वे उत्तम वस्त्र और आभूषणों से सज्जित होकर महाराणा की सेवा में उपस्थित हो, उन्हें धन्यवाद के आशीर्वादात्मक श्लोकों सहित नवीन पंचांग भेंट करते हैं। इस दिन साधारण उत्सव होता है। **चैत्र शुक्ल 2** के दिन गणगौर का सिंझारा[1] मानकर शहर की स्त्रियां अच्छे, रंग-रंग के कपड़े और गहने पहनकर-बाग वाड़ियों में जाती हैं और राज्य में भी उत्सव होता है। परन्तु राज्य का उत्सव महाराणा की इच्छा के अनुसार होता है। **चैत्र शुक्ल 3** को प्रथम गणगौर का उत्सव होता है। इसलिये राज्य और शहर में बड़ी धूमधाम होती है। तीसरे पहर के समय पहला नक्कारा और उसके बाद दूसरा नक्कारा होता है। तीसरा नक्कारा बजने पर महाराणा सवार होते हैं, और एकलिंगगढ़ से 19 या 21 तोप सलामी की चलती हैं। बड़ी पोल से त्रिपोलिया घाट तक दोनों तरफ लकड़ी के खंभे गाड़े जाकर उनमें लाल रस्सियां बांध दी जाती हैं। फिर खम्भों के

1. इसको "दातण हेला" भी कहते हैं।

पास जगह-जगह पुलिस के जवान खड़े रहते हैं। उस सीमा के भीतर राजकीय मनुष्य के अतिरिक्त कोई तमाशाई मनुष्य नहीं फिरने पाता। जब महाराणा सवार हो जाते हैं और सवारी महलों से रवाना होती है, तब सबसे आगे निशान का हाथी रहता है। उसके पीछे दूसरे हाथियों पर सरदार, पासवान और मर्जी के लोग चढ़े रहते हैं। फिर पलटन व सैनिक टुकड़ियां अपने अधिकारियों के साथ और अंग्रेजी बाजा बजता हुआ निकलता है। जिसके पीछे तामजान और सोने चांदी के होदे कसे हुए खासा हाथी निकलते हैं। फिर बड़े-बड़े प्रतिष्ठित राजकीय लोग, उमराव सरदार, चारण और अहलकार अच्छे घोड़ों पर चढ़े हुए आते हैं। उनके पीछे जरी के सामान व सोने चांदी के गहनों से सजे हुए खासा घोड़े और मुख्य घोड़ों के दोनों ओर चंवर व मोरछल होते हुए निकलते हैं। सवारी में चलने के लिए युवराज (वली अहद) की दो जगहें, खासा हाथी-घोड़ों के आगे अथवा महाराणा की पैदल जलेब के आगे रहती है। फिर अर्दली के सिपाही व लवाजिमा के लोग और रणकंकण का मधुर सुरीला बाजा बजाता हुआ चलता है, उसके पीछे श्री महाराणा अच्छी पोशाक अर्थात् अमरशाही, अरसी शाही और स्वरूप शाही पगड़ियों में से, एक तरह की पगड़ी, जामा और कभी डोढ़ी भी, जो उससे छोटी होती है और नाना प्रकार के हीरे मोतियों के आभूषणों को धारण किये हुए कमरबंध व ढाल, तलवार लगाये हुए अश्वारूढ़ (घोड़े चढ़े) रहते हैं। दोनों तरफ चंवर होते हुए छत्र, छहांगीर, किरणिया, अडाणी, छवा आदि लवाजिमा के साथ पधारते हैं। पीछे "खासवाड़ा" में दूसरे सरदार, जागीरदार, पासवान व रसाले के सवार, उनके पीछे सांडनी सवार, जागीरदार सरदारों के सवार और सबके पीछे नक्कारे का हाथी रहता है। सवारी के दोनों तरफ छड़ीदारों की बुलन्द आवाज और आगे-आगे वीरता के दोहों का गायन करने वाले ढोलियों की आवाजें सवारी के आनन्द को बढ़ाती रहती हैं। इसी ठाठ के साथ महाराणा घोड़े को कुदाते हुए धीरे-धीरे त्रिपोलिया घाट पर पहुंचते हैं। वहां घोड़े से उतर कर, नाव पर सवार होते हैं। जहां पर दो बड़ी नावें मजबूती के साथ जुड़ी हुई रहती हैं। इनमें से एक नाव के ऊंचे गोखड़े पर अनुमानित दो फीट ऊंचा सिंहासन रहता है। उस पर चार खम्भीवाली लकड़ी की एक छत्री बनी होती है। छत्री और सिंहासन को पहले से ही कमखाब, जर्दोजी और जरी के वस्त्रों से सुशोभित

कर देते हैं। छत्री के चारों कोनों और गुम्बदों पर मुक्कैश (बादले)[1] के तुर्रे और कलंगी लगा दिये जाते हैं। सिंहासन के चारों तरफ और नीचे के तख्तों पर अच्छी पोशाकें व गहनों से विभूषित सरदार, चारण, अहलकार व पासवान अपनी-अपनी श्रेणी के अनुसार बैठते हैं और कितने ही खड़े रहते हैं। दूसरे नम्बर के सभ्यगण उसी के समीप जुड़ी हुई एक दूसरी नाव में और बाकी नावों में सवार होते हैं। फिर नौका की सवारी धीरे-धीरे दक्षिण की तरफ बड़ी पाल तक जाने के बाद वापस घूमकर त्रिपोलिया घाट पर आती है। इसके बाद महलों से गणगौर माता की सवारी निकती है। जिसके साथ नाना प्रकार की सुन्दर पोशाकें और सोने-चांदी के गहनों से विभूपित दासियों के झुण्ड रहते हैं। एक स्त्री के सिर पर अनुमानित 3 फीट ऊंची गणगौर माता की काष्ठ की बनी हुई मूर्ति सोने तथा मोतियों के आभूषणों से युक्त रहती है, जिसके दोनों तरफ दो दासियां हाथ में चंवर लिये हुए और आगे पीछे सवारी का लवाजिमा, हाथी, घोड़े, जिन पर पंडित व ज्योतिषी और जनानी ड्योढ़ी के मेहता अहलकार आदि लोग चढ़े रहते हैं। सवारी के त्रिपोलिया घाट पहुंचते ही महाराणा अपने सिंहासन से खड़े होकर गणगौर माता को प्रणाम करते हैं, फिर गणगौर माता को फर्श युक्त वेदिका पर रखकर पंडित व ज्योतिषी लोग पूजन करके महाराणा को आशिका देते हैं। इसके बाद दासियां गणगौर माता के दोनों तरफ बराबर खड़ी होकर प्रणाम के तौर पर झुकती हुई लूहरें (एक तरह का गाना) गाती हैं। यह जुलूस देखने योग्य होता है। यहां राज्य में काष्ठ की गणगौर बड़ी मूर्ति के अतिरिक्त मिट्टी की बनी हुई गणगौर और ईश्वर की छोटी मूर्तियां भी निकाली जाती हैं। बाकी शहर और सम्पूर्ण राज्य में ईश्वर और गणगौर की मूर्तियां साथ ही निकाली जाती हैं। राजपूताना के सभी राज्यों में इस त्यौहार पर बड़ा उत्सव मनाया जाता है। इस देश में कहावत है कि, दशहरा राजपूतों के लिये और गणगौर स्त्रियों के लिये बड़ा त्यौहार है। यहां महादेव को ईश्वर और पार्वती को गणगौर कहते हैं। फिर गणगौर माता को जिस तरह जुलूस के साथ लाते है, उसी तरह महलों में पहुंचते हैं। इसके बाद उसी फर्श पर रंडियों की "घूमर" और गाना होता है। रेजिडेण्ट आदि अंग्रेज अधिकारीगण भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ किश्तियों में सवार होकर इस जुलूस को देखने के लिये आते हैं। फिर सबसे पहले

---

1. सोने चांदी के तारों की झालरी।

महाराणा की नाव धीरे-धीरे दक्षिण की तरफ बढ़ती है और कई किश्तियां उसके आगे-पीछे चला करती हैं। थोड़ी दूर जाने के बाद आतिशबाजी चलाने का आदेश होता है। तालावों के दूसरे किनारों तथा नावों पर से तरह-तरह की रंगबिरंगी आतिशबाजियां छूटती हैं। इस समय का आनन्द देखने से मालूम होता है। इस अवसर पर बहुत से लोग दूर-दूर से इस उत्सव को देखने को आते हैं। क्योंकि उदयपुर के "गणगौर जुलूस" की राजपूताना में बड़ी प्रशंसा की जाती है। तालाब के किनारों पर देखने वाले स्त्री-पुरुषों की बड़ी भीड़ रहती है, जिससे उनके भीतर घुसना बहुत कठिन होता है। अन्त में महाराणा रूपघाट पर नौका से उतर कर तामजान में सवार हो महलों में पधार जाते हैं। जहां कीमती गलीचे, मखमल का फर्श बिछा हुआ और सोने-चांदी की चोवों पर जर्दोजी शामियाने तने हुए और जर्दोजी व जरबफ्त के गद्दे तकिये लगे हुए, सोने चांदी के सिंहासन व कुर्सियां बिछी हुई, और झाड़-फानस लगे हुए तैयार रहते हैं। इस स्थान की तैयारी भी देखने के योग्य होती है। परन्तु दूसरे लोग विदा हो जाते हैं और इस स्थान तक केवल वे ही सरदार, पासवान लोग पहुंचते हैं, जो निरन्तर महाराणा के कृपा पात्र होते हैं। फिर इन लोगों को विदा देकर महाराणा रणवास में पधार जाते हैं। इसी तरह 4 दिन तक यह जुलूस इसी तरीके पर होता है। इसको प्रचलित प्रथा से दो या चार दिन अधिक रखा जाना महाराणा की इच्छा पर निर्भर है। इस जुलूस का वर्णन हमने बहुत संक्षिप्त रूप से लिखा है, लेकिन देखने वाले, इस वर्णन से बढ़कर देखेंगे।

चैत्र शुक्ल 8—को शतचण्डी का पाठ, होम और देवी का पूजन होता है। **चैत्र शुक्ल 9** रामचन्द्रजी का जन्मोउत्सव मानकर मध्याह्न के समय राजकीय तोपखाने से तोपें चलाई जाती हैं। सभी मन्दिरों में राग-रंग, नाच-गान आदि उत्सव होते हैं। दूसरे दिन पुजारी लोग राज्य में और सेवकों के घर "पंजेरी" व "पंचामृत" का प्रसाद पहुंचाते हैं।

वैशाख कृष्ण 1—को राज्य में श्री एकलिंगेश्वर का प्रागट्योत्सव[1] होता है। इस दिन यह प्रथा है कि, महाराणा श्री एकलिंगजी के दर्शनार्थ पधारते हैं। परन्तु वहां जाना उनकी इच्छा पर निर्भर है। इस उत्सव में

1. जन्म दिन का उत्सव।

शाम के समय महाराणा दरवार करते हैं और मिष्ठान भोजन की "गोठ" भी होती है। इसके वाद हाथियों की लड़ाई और तोपों की सलामी कराई जाती है।

वैशाख कृष्ण 3—को धींगा गणगौर का त्यौहार माना जाता है। जिसमें चैत्री गणगौर के अनुसार ही उत्सव होता है। यह त्यौहार उदयपुर के अतिरिक्त राजपूताना के किसी दूसरे राज्य में नहीं होता। राजपूताना में धींगाई "जवर्दस्ती" को कहते हैं। उदयपुर के महाराणा राजसिंह प्रथम ने अपनी छोटी महाराणी को प्रसन्न करने के लिये रीति के विरुद्ध जवर्दस्ती यह त्यौहार प्रचलित किया था, जिससे इसका नाम "धींगा गणगौर" प्रसिद्ध हुआ।

वैशाख शुक्ल 3—को "अक्षय तृतीया" का त्यौहार होता है। इस अवसर पर महाराणा जगन्निवास महल में पधार कर "गोठ" अरोगते हैं। इस त्यौहार पर पहले यह प्रथा थी कि, राज्य की तरफ से उपस्थित सभ्य-गणों के जामों और अंगरखियों की चोलियां केसर के रंग से रंगी जाती थी। लेकिन वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह ने उसके वदले केसर और कसुम्भे के छींटों से सभ्यगणों के सव वस्त्र वसंती वना देने का हुक्म दे दिया। दिन की सभा के वाद सायंकाल में महाराणा जुलूसी नौका पर सवार होकर तालाव की सैर करते हैं और राग रंग होता रहता है, फिर महलों में पधार जाते हैं।

वैशाख शुक्ल 14—"नृसिंह जयन्ति" के दिन मन्दिरों में नृसिंह का जन्मोत्सव मनाया जाता है।

ज्येष्ठ शुक्ल 11 – को निर्जला एकादशी मानी जाती है। इस धार्मिक दिन को निर्जल उपवास अत्यन्त भाव के साथ छोटे-वड़े सव हिन्दू लोग करते हैं और मन्दिरों में उत्सव होता है।

आषाढ़ शुक्ल 15—को "गुरु पूर्णिमा" होती है। इस दिन पठन-पाठन करने वाले वालक अपने-अपने गुरु का पूजन करते हैं। एकलिंगेश्वर की "पूरी" तथा "सवीना खेड़ा" में महन्त सन्यासियों का पूजन होता है। यदि अवसर हो तो महाराणा भी सवीना खेड़ा पधारते हैं।

श्रावण कृष्ण 1—को राज्य में नवीन वर्ष का उत्सव होता है। इस दिन यदि महाराणा की इच्छा हो तो किसी स्थान पर बाहर पधारते हैं, अन्यथा महलों ही में रहते हैं। इस दिन प्रधान की तरफ से राग-रंग के साथ गोठ (दावत) आदि ख़ुशी मनाई जाती है और अहलकार लोग 'नज़्रें' करते हैं।

श्रावण कृष्ण 15 (अमावस्या)—को "हरियाली अमावस्या" मानकर प्रजागण उत्सव करते हैं। इस दिन महाराणा अपने सभ्यगणों सहित बड़े पुरोहित के मकान पर पधार कर भोजन करते हैं और शहर की सामान्य प्रजा "नीमच माता" के दर्शनों के लिये देवारी के पहाड़ पर जाती है।

श्रावण शुक्ल 3—को "काजली तीज" का त्यौहार मनाया जाता है। सम्पूर्ण राजपूताना में राजा व प्रजा सब इस त्योहार को मानते हैं। महाराणा जगन्निवास महल में पधार कर गोठ जीमते हैं तथा रंगीन रस्सों के झूलों पर वेश्याएं झूलती और गायन करती हैं। शाम के समय महाराणा जुलूस के साथ नाव पर सवार होकर राग-रंग सहित किनारे पर पहुँचते हैं। यदि इच्छा हो तो वहाँ से हाथी या घोड़े पर सवार होकर बाजार की तरफ घूमते हुए अन्यथा तामजान पर सवार होकर सीधे महलों में पधार जाते हैं। कभी-कभी जगन्निवास में और कभी-कभी "वाड़ी-महल" में वैसी ही तैयारी होती है, जैसी कि गणगौर के उत्सव में वर्णन की कई है।

श्रावण शुक्ल 15—को "रक्षा-बन्धन" का प्रमुख त्यौहार मुहूर्त के अनुसार मनाया जाता है। जब रक्षा-बन्धन होता है, उस समय राज्य के कुल ब्राह्मण, सरदार, चारण व अहलकार महाराणा के दाहिने हाथ में राखी बांधते हैं। फिर आपस में भी एक दूसरे के बांधते हैं। लेकिन यह त्यौहार विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिये है, जो हर एक के यहां जाते हैं और राखी बांधकर दक्षिणा लेते हैं। इस दिन बहन-बेटियां भी अपने पिता व भाइयों के राखी अवश्य ही बांधती हैं और उसके बदले वे लोग "पूहली का दस्तूर" देते हैं। नारियल और खोपरों का इस त्योहार पर बड़ा ही खर्च होता है।

भाद्रपद कृष्ण 3—को "बड़ी तीज" का त्यौहार बनाया जाता है। यह त्यौहार भी अधिकतर उदयपुर ही में होता है। यदि राजपूताना के

कतिपय राज्यों में इसका प्रचलन होता भी हो तो, यहां से प्रचलित हुआ जानना चाहिये। मैंने सुना है कि महाराणा राजसिंह ने अपनी छोटी महाराणी को प्रसन्न करने के लिये श्रावण शुक्ल 3 को छोटी और इसको बड़ी तीज कहकर प्रचलित किया था। इसका उत्सव भी श्रावणी तीज के अनुसार ही होता है।

भाद्रपद कृष्ण 8—को "कृष्ण जन्माष्टमी" का उत्सव होता है। यह धार्मिक त्यौहार राजधानी और अन्य शहरों के मन्दिरों में बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। सामान्य लोग व्रत, उपवास रखते हैं। दूसरे रोज पुजारी लोग राज्य के तथा नगर के प्रतिष्ठित लोगों के यहां प्रसाद भेजते हैं और इसी दिन "दधिकर्दम' का उत्सव भी होता है।

भाद्रपद कृष्ण 12—को वत्सद्वादशी होती है। इस दिन स्त्रीयां बछड़े सहित गाय का पूजन करती हैं। उस समय लड़के-लड़की अपनी अपनी माता की साड़ी (ओढनी) का पल्ला पकड़ते हैं, तब वे अपने बालकों को खोपरा देती हैं। राज्य के जनाना (अन्तःपुर) में भी यही दस्तूर होता है और हम लोगों को प्रथा के अनुसार मोहर[1], रुपया और नारियल का गोला मिलता है।

भाद्रपद कृष्ण 14—को श्री एकलिंगेश्वर तथा बाणनाथ को अर्पण किये हुए "पवित्रे" महाराणा अपने हाथ से सभ्यगणों को देते हैं। प्रथम श्रेणी के लोगों को सुनहरी, दूसरी श्रेणी को रूपहली और तीसरी श्रेणी वालों को रेशमी **पवित्रे** दिये जाते हैं। इस **पवित्रों** का मिलना राज्य के लोग अपनी इज्जत मानते हैं।

भाद्रपद अमावस्या—को "कुशोद" की अमावस्या बोलते हैं। इस दिन ब्राह्मण लोग जंगल से नवीन दर्भ लाकर एक साल तक उसी से अपना धर्म सम्बन्धी कार्य करते हैं।

भाद्रपद शुक्ल 4—को "गणेश चौथ" का उत्सव होता है। इस दिन नगर के बालक डण्डा बजाते हुए शहर में घूमते हैं और दरबार में भी जाते हैं। महाराणा रात्रि के समय महलों के बड़े चौक में रुपये, नारियल और लड्डू फेंकते हैं और समीपवर्ती लोग भी फेंका करते हैं। जिनको सामान्य लोग बड़े उत्साह से लूटते हैं। दिन में महाराणा गणपति के दर्शनार्थ प्रसिद्ध

---

1. स्वर्ण मुद्रा।

स्थानों पर पधारते हैं। इसी प्रकार शहर के धनवान लोग भी अपने पड़ोसियों के घरों पर नारियल अथवा लड्डू फेंकते हैं। लेकिन मूर्ख लोग इसके विपरीत पत्थर फेंक कर अपना मनोरथ पूर्ण करते हैं। इसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि, आज के दिन गालियां खाना अच्छी बात है।

भाद्रपद शुक्ल 7—को "नागणेची" का पूजन होता है। महाराणा दरबार करते हैं। इसका कारण यह है कि, जोधपुर के राव मालदेव के साथ मंगनी की हुई झाला जैतसिंह की कन्या को महाराणा उदयसिंह ब्याह लाये थे। जिनके साथ राठोड़ों की कुलदेवी का "डब्बा" भी चला आया था, जिसका पूरा विवरण महाराणा उदयसिंह के हाल में लिखा जावेगा।

भाद्रपद शुक्ल 11—को "देव झूलनी एकादशी" का उत्सव होता है। इस धार्मिक त्यौहार का "जलसा" (उत्सव) राजा तथा प्रजा सब में बराबर होता है। पुजारी लोग विष्णु की धातुमयी, पाषाणमयी अथवा चित्रमयी मूर्ति को विमान (रेवाड़ी) में बैठा कर किसी जलाशय पर ले जाते हैं, जहां उसको स्नान करवाते हैं। हजारों आदमी गाते-बजाते विमान के साथ जाते हैं। इस दिन महाराणा स्वयं भी पीताम्बरराय की रेवाड़ी के साथ पीछोला तालाब तक जाते हैं। लेकिन कभी-कभी बीच ही से वापस लौट जाते हैं। इस दिन सब लोग उपवास करते हैं।

भाद्रपद शुक्ल 12—को "वामनद्वादशी" होती हैं। इस दिन वामनावतार का जन्मोत्सव माना जाता है।

भाद्रपद शुक्ल 14—को "अनन्त चतुर्दशी का त्यौहार होता है। इस दिन महाराणा व जन सामान्य एक भुक्त (एक बार भोजन) करते हैं और अनन्त का पूजन करके महाराणा अपने हाथ से रेशमी अनन्त[1] अपने सब निकटस्थों को देते हैं। इस अनन्त का मिलना भी यहां इज्जत मानते हैं।

भाद्रपद शुक्ल 15—से आश्विन कृष्ण अमावस्या तक श्राद्ध पक्ष माना जाता है। इसमें हिन्दू लोग अपने-अपने पूर्वजों (दादा-पिता) की मरण

---

1. सूत के 14 धागों में चौदह गांठ देकर एक डोरा बनाया जाता है, उसको "अनन्त" कहते हैं और व्रत करने के बाद लोग उसे दाहिनी भुजा पर बांधते हैं।

तिथि के दिन श्राद्ध तर्पण और ब्राह्मणों को भोजन करवाते हैं। श्राद्ध पक्ष में सब हिन्दू लोग मांस, मद्य का त्याग कर देते हैं और मुसलमान आदि दूसरी जातियों को भी जीव मारने की मनाही हो जाती है।

श्रावण महीने में जितने **सोमवार** आते हैं, उनको "सुखिया सोमवार" कहते हैं। इसलिये प्रत्येक "श्रावणी सोमवार" को शहर के सब स्त्री-पुरुष अच्छे वस्त्र आभूषण पहनकर बाग–बगीचों में जाते हैं। वहां स्त्रीयां आनन्द के साथ गायन करती हैं और सोमवार का व्रत खोलती हैं। इन दिनों में विशेष कर "सज्जन-निवास-बाग" में बड़े भारी मेले होते हैं। सड़कों पर बाजार लग जाते हैं और जगह-जगह डोलर व झूले आदि अनेक प्रकार के खुशी के सामान नजर आते हैं।

भाद्रपद महीने में कभी-कभी "देवझूलनी एकादशी" के दिन मुसलमानों के मुहर्रम के **ताजिये** भी निकलते हैं। वे चान्द्र संवत्सर और मास होने के कारण अनुमानतः 32-33 वर्ष में देवझूलनी के दिन आ मिलते हैं। ताजिये और "रामरेवाड़ी" एक ही दिन निकलने के कारण हिन्दुस्तान के अधिकांश नगरों में बड़े-बड़े झगड़े हो जाते हैं। परन्तु उदयपुर में आज तक कभी झगड़ा नहीं हुआ। खास उदयपुर में बहुत से अच्छे-अच्छे ताजिये निकलते हैं। भीम पलटन का ताजिया सबसे बड़ा होता है।

भाद्रपद कृष्ण 11—से भाद्रपद शुक्ल 4 पर्यन्त श्वेताम्बर जैन मतवालों के पर्यूषण (पजूसन) होते हैं, जिनमें भी प्रजा की संतुष्टी के लिए राज्य से कसाई लोगों को जानवर मारने की मनाही हो जाती है इत्यादि।

आश्विन शुक्ल 1—से नवरात्रि प्रारम्भ होती है। पहले दिन प्रातःकाल के समय जुलूसी लवाजमा, पलटन, रणकंकण का बाजा, हाथी व घोड़ों आदि के साथ सवारी महलों से खड्ग लेकर कृष्णपोल दरवाजे के भीतर सज्जन-निवास बाग के पास "खड्ग स्थापन" स्थान पर पहुँचती है। फिर खड्ग को इज्जतदार सभ्यगण मंदिर के भीतर ले जाते हैं। वहां लादूवास का आयस (नाथ महन्त), पंडित ज्योतिषी व सभ्यगण एक गवाक्ष (गोखड़े) में खड्ग स्थापन करके एक नाथ[1] को उसके सामने बैठा देते हैं. जो अष्टमी तक

1. लादूवास का आयस, जो बड़ा इज्जतदार और मुआफीदार मठधारी

निर्जल और निराहार वहीं बैठा रहता है। इस समयावधि में राज्य के पहरे आदि से उस मन्दिर का अच्छी तरह से प्रबन्ध रखा जाता है। हजारों हिन्दू लोग प्रतिदिन उसके दर्शनों के लिये वहां जाते हैं। लादूवास का आयस कई नाथों सहित इस मन्दिर के चारों तरफ डेरा लगाकर रहता है। महलों के भीतर अमर महल के नीचे की चौपाल में देवी पूजन की स्थापना होती है, जहां देवी की मूर्ति और सर्व प्रकार के शास्त्र कलशादि स्थापन करके, ब्राह्मणों की वरणी (धार्मिक दुर्गापाठ) बैठाई जाती है। फिर महाराणा वहां दर्शनों के बाद बलिदान अर्पण करके किश्ती में सवार हो, अम्बिका भवानी के दर्शनों के लिये पधारते हैं। इस दिन प्रायः भक्त लोग नौ दिन तक "एक भुक्त" या "उपवास" करते हैं। इस व्रत में मद्य-मांस का निषेध नहीं होता। सायंकाल के समय महाराणा सवारी करके खड्गस्थापन के दर्शनों को पधारते हैं।

आश्विन शुक्ल 2—को महाराणा बहुत सवेरे उठते हैं और स्नानादि नित्य नियम से निवृत होने के पश्चात् अमरशाही, अरसीशाही अथवा स्वरूप-शाही पगड़ी, जिस पर बहुमूल्य रत्न जड़ित भूषण और मुकेश का तुर्रा, कलंगी व छोगा रहते हैं, बदन पर जामा, दुपट्टे का कमरबंध और पाजामा आदि सम्पूर्ण पोशाक तथा अनेक प्रकार के सोने व रत्नों के आभूषण और ढाल तलवार आदि शस्त्र धारण करते हैं। तीसरे नक्कारे की आवाज[1] तोपों की सलामी, बैण्ड बाजे का बजना और महाराणा का घोड़े पर सवार होना, एक ही साथ होता है। फिर महाराणा जुलूस की सवारी के

महन्त है, नवरात्रि के पूर्व नाथों (कनफटे सन्यासियों) की एक सभा करता है। जिसमें एक आदमी सुपारी लेकर सबके सामने फिरता है, फिर नौ दिन तक अन्न व जल त्याग कर खड्ग लेकर बैठने की जिस साधु की सामर्थ्य हो, वह उस सुपारी को ग्रहण कर लेता है। फिर उसको जुलाब देकर शुद्ध कर देते हैं और वही नाथ, खड्ग लेकर नवरात्रि तक बराबर बैठता है।

1. पुराने समय से यह नियम है कि जब महाराणा का सवार होने का इरादा होता है, तो 4 घड़ी से लेकर दोपहर बाद तक नक्कारा बजाया जाता है। फिर कुछ समय बाद दूसरा नक्कारा होता है। जिसको सुनकर सभी रियासती लोग बिना बुलाये उपस्थित हो जाते हैं, और सवार होते समय तीसरा नक्कारा होता है।

साथ हाथी पोल दरवाजे के वाहर चौगान में पधारते हैं, जहां पर अच्छे घुड़सवार सरदारों के साथ कुछ समय तक घोड़े दौड़ा कर दरीखाने में पधार जाते हैं, जो दरवार के लिये बनाया गया है। दरीखाने के नीचे एक तरफ हाथियों की लड़ाई, एक तरफ पहलवानों की कुश्ती और सामने चौगान में खरगोश, सियार व लोमड़ियों का छोड़ा जाना और उनके पीछे कुत्तों का दौड़ना आदि कई प्रकार के खेल होते हैं। परिन्दों पर वाज, वहरी आदि छोड़े जाते हैं। पहले प्रतिदिन शराव पिलाया हुआ एक मस्त महिष (भैंसा) छोड़ा जाकर किसी उमराव व सरदार की जमीयत[1] के सवारों को उस पर तलवार व वर्छों के वार करने का आदेश होता था। मगर आजकल सिर्फ "भलका-चौथ" ही के दिन इस प्रकार से चौगानिया आदि छूटता है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन एक महिष दरीखाने के नीचे लाया जाता है और जिस सरदार को हुक्म होता है, वही उसका सिर तलवार से काट डालता है। फिर अठाड़ पर हाथियों की लड़ाई होने के वाद दरवार स्थगित किया जाता है और सवारी महलों पर पहुँचती है। महाराणा के महलों में दाखिल होने के समय साधारण सी तोपों की सलामी दी जाती है। इसी तरह जुलूसी सवारी के साथ तीसरे पहर के समय महाराणा अम्विका भवानी के दर्शनों को पधारते हैं और वहां देवी के सामने दो वकरे और 5 महिषों का वलिदान होता है। यहां स्वयं महाराणा व उमराव भी वलिदान के समय चक्र करते हैं अथवा महाराणा जिस किसी को आदेश देते हैं वही सरदार तलवार से वार करता है। मैंने हमेशा देखा है कि, महिष का सिर और पैर कटकर राजपूतों की तलवार जमीन तक पहुँच जाती है। वलिदान होने के पश्चात् उसी सवारी में वैभव के साथ महाराणा नावों पर सवार होकर महलों में पहुंचते हैं।

आश्विन शुक्ल 3—के प्रातःकाल को जुलूसी सवारी से चौगान मे साधारण-सी रस्में पूरी करके महलों में प्रवेश करते हैं। शाम के समय हर सिद्धि देवी, जिसे लोग हस्त-माता वोलते हैं, के दर्शनों को पधारना होता है। वहां भी दो वकरे और पांच महिषों का वलिदान करवा कर वापस महलों में प्रवेश करते हैं।

आश्विन शुक्ल 4—के प्रातःकाल में चौगान और शाम को खड्ग-दर्शन के लिये जुलूसी सवारी होती है। महाराणा खड्ग दर्शनों के वाद हाथी

1. सैनिक दल (सं०)

पर सवार होकर, जिसको आदेश देते हैं, वही एक महिष का सिर छेदन करता है। महाराणा भीमसिंह तक यह रीति थी कि, महाराणा स्वयं हाथी पर सवार होकर महिष पर तीर चलाते थे, जो उसके वदन को फोड़कर दूसरी तरफ जमीन में जा लगता था। यह मेरे पिता ने अपनी आंखों से देखा था। इसी कारण इस दिन को "भल्का चौथ" कहते हैं। लेकिन महाराणा जवानसिंह ने इस प्रथा को वन्द कर दिया। फिर सवारी उसी लवाजमे से धीरे-धीरे महलों में प्रविष्ट होती है।

आश्विन शुक्ल 5—के प्रातःकाल चौगान तक सवारी जाती है और शाम को अन्नपूर्णा के दर्शनों को पधारते हैं। अन्नपूर्णा देवी के सामने महिष व वकरों का वलिदान नहीं होता।

आश्विन शुक्ल 6—के दिन प्रातःकाल चौगान की सवारी होती है तथा शाम को कहीं पधारने का आवश्यक रिवाज नहीं है।

आश्विन शुक्ल 7—के प्रातःकाल चौगान होकर श्यामलवाग में "करणी माता" के दर्शन करने को पधारते हैं। वहां दो वकरे और एक महिष का वलिदान चढ़ाने के वाद महलों में प्रवेश करते हैं। शाम को इच्छा हो तो कालिका के दर्शन करने को पधारते हैं।

आश्विन शुक्ल 8—के दिन प्रातःकाल मामूली कृत्य कर, भण्डार के चौक में पधार, पूर्णाहुति कर अमर महल की चौपाल में प्रवेश कर, देवी विसर्जन का दर्शन कर, स्थापित किये शस्त्रों में से तलवार[1] हाथ में लेकर वाहर चौक में पधारते हैं और एक वकरे का वलिदान होता है। इसके वाद "जनानी-ड्योढ़ी" के दरवाजे पर आकर एक महिष का वलिदान करते हैं

---

1. यह तलवार शार्दूलगढ़ के राव जशकरण डोडिया को "वेचरा माता" ने दी वतलाते हैं और उसने यह तलवार महाराणा गढ़ लक्ष्मणसिंह को भेंट की। जिसके प्रभाव से महाराणा हमीरसिंह ने चित्तौड़ के किले को मुसलमानों से वापस लिया और इसी तलवार को कमर में लगाकर महाराणा प्रतापसिंह ने वादशाहों से वड़ी-वड़ी लड़ाइयां लड़ी और विजय पाई।

इसके वाद नावों में सवार होकर अम्विका भवानी के दर्शन[1] को पधारते हैं।

आश्विन शुक्ल 9—के दिन यदि महाराणा को अवकाश हो, तो समीनाखेड़ा के मठ में होम की पूर्णाहुति करने को जाते हैं, शाम के समय प्रथम घोड़ों का और वाद में हाथियों का पूजन करने के वाद "नगीनावाड़ी" में गद्दी पर विराज कर दरवार करते हैं। फिर उस खड्गधारी नाथ को (जो लवाजिमा और सवारी के साथ म्याने[2] में सवार होकर आता है) सीढ़ियों के पास से उतार कर दरवार के स्थान पर लाते हैं। उस समय खड्गधारी नाथ का हाथ एक तरफ से लादूवास का आयस और दूसरी तरफ से धर्माध्यक्ष (धर्मखाता का दारोगा) थामे रहता है। उसके साथ में वहुत से नाथ (कनफटे सन्यासी) सींगीनाद वजाते हुए आते हैं। फिर महाराणा गद्दी पर खड़े होकर खड्गधारी नाथ के हाथ से खड्ग और आशिका लेकर नाथों को विदा करते हैं। तदनन्तर यहां से ये लोग रसोड़े (कर्ण महल के चौक) में जाते हैं। वहां धर्माध्यक्ष उस खड्गधारी नाथ का खप्पर रुपये और अशर्फियों से भरता है। सभी नाथ लोगों को भोजन कराया जाता है। इसके वाद सब नाथ सींगीनाद वजाते हुए अपने महन्त के साथ डेरों को वापस जाते हैं।

आश्विन शुक्ल 10—को **दशहरे** का वड़ा त्योहार मनाया जाता है। यह वह दिन है कि, जिस दिन रामचन्द्रजी ने रावण पर चढ़ाई की थी। मेवाड़ में इस दशहरे का वड़ा भारी उत्सव होता है। सभी उमराव, सरदार व दूसरे जागीरदार, जिनको नौकरी के वदले जागीरें मिली हों, उदयपुर में उपस्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे जागीरदार और कम हैसियत वाले व भोमिया लोग इस दिन अपने-अपने जिलों के हाकिमों (अधिकारियों) के पास उपस्थित हो जाते हैं। शाम के $4\frac{1}{2}$ वजे तीसरा नक्कारा होते ही महाराणा जुलूस की सवारी के साथ घोड़े पर सवार होकर खेजड़ी (शमी) का पूजन करने को पधारते हैं। यह खेजड़ी का वृक्ष हाथी पोल दरवाजे के वाहर रेजिडेन्सी के पश्चिम की तरफ एक वड़े चवूतरे के किनारे पर है। इस चवूतरे

1. अम्विका भवानी के दर्शन कभी होम की पूर्णाहुति करने के वाद और कभी पहले करते हैं। इसका कोई नियम नहीं है और अम्विका के सामने 2 वकरे व 1 महिप का वलिदान किया जाता है।
2. पालकी। (सं०)

के चारों तरफ सुर्ख (लाल) रंग की कनात का वाड़ा खींच दिया जाता है, जिसके भीतर एक वड़ा शामियाना, फर्श आदि की अच्छी तैयारी से सज्जित रहता है। वाहर की तरफ ड्योढ़ी के सामने प्राचीन रीति के अनुसार शोभा निमित्त तोरण लगाया जाता है। महाराणा तोरण व द्वारवंदन का दस्तूर कर भीतर जाकर खेजड़ी का पूजन करते हैं। इस समय वेद मंत्रों से अभिषेक किये हुए 4 तीर चारों दिशाओं में शहर के दरवाजों पर प्रस्थान निमित्त[1] भेज दिये जाते हैं। इसके वाद महाराणा गद्दी पर वैठ कर चारण-कवि लोगों के मुंह से अपने पूर्वजों की वीरतामयी कविता सुनते हैं। फिर उपस्थित सभी सरदार, पासवान, चारण[2] अहलकार आदि की क्रम से नजरें ली जाती हैं। ताजीम वालों की नजरें खड़े-खड़े और विना ताजीम वालों की वैठकर लेते हैं। जुलूस (उत्सव) की तोपखाने से, तोपों के 100 या 150 गोले दागे जाते हैं। दरवार का यह दस्तूर है कि, महाराणा के दाहिने हाथ वाली पंक्ति को "वड़ी ओल" (पंक्ति) और वाएँ हाथ वाली को "कुवरों की ओल" कहते हैं। कोई-कोई सरदारों में वैठक का झगड़ा रहता है, लेकिन प्रारम्भ से यह नियम है कि, किसी सरदार को कोई नम्बर की वैठक मिली, तो उस नम्बर पर पूर्व में वैठने वाले सरदार को एक नम्बर नीचे हट कर वैठना पड़ेगा और नई प्रदान की हुई वैठक उसी नम्बर की मानी जायेगी, जिस नम्बर पर कि प्रदान की गई हो। दरीखाने का दारोगा हर एक दरवारी व्यक्ति को अपनी-अपनी वैठक पर वैठा देता है। दरवार स्थगित होने के समय तंवोलखाने का दारोगा और दरवार का दारोगा दोनों मिल कर महाराणा के हाथ से ताजीमी लोगों को वीड़ा दिलाते हैं और जिनको हाथ से देने का दस्तूर नहीं हैं उनको दारोगा देता है। "वीड़ा-वितरण" पूर्ण होने की निवेदन होते ही दरवार वर्खास्त होकर महाराणा हाथी पर सवार होते हैं। सवारी के हाथी के दांई-वांई तरफ खवासी के दो हाथी दूसरे अच्छी झूले व चांदी के होदों से कसे हुए रहते हैं, जिन पर एक-एक सरदार चंवर लेकर वैठता है। महाराणा की खवासी में प्रारम्भिक समय में प्रधान के वैठने का नियम था, लेकिन वर्तमान में पारसोली, आसींद, व सरदारगढ़

---

1. इन तीरों के प्रस्थान स्वरूप रखने का प्रयोजन यह है कि, एक वर्ष पर्यन्त महाराणा को चारों दिशाओं की यात्रा का मुहूर्त हो चुका है। फिर दूसरा मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं।
2. चारण और ब्राह्मण आदि लोगों की नजरें माफ की जाती हैं।

आदि ठिकानों के सरदार बैठते हैं। एक चंवर खवासी वाले के हाथ में और दूसरा महावत के हाथ में रहता है और इधर-उधर के दोनों हाथियों पर से भी चंवर होते चलते हैं। यह सवारी बड़ी रौनक और जुलूस के साथ महलों में दाखिल होती है। फिर "नाहरों के दरीखाने" में बड़ा दरबार होता है। उस समय चारण-कवि लोग अपनी निजकृत कविता सुनाते हैं और हाथी घोड़े नज्र होते हैं। थोड़ी देर के बाद दरबार बर्खास्त होता है, उस समय उमरावों को "रुखसत के बीड़े" देकर विदा करते हैं। फिर महाराणा महलों में तशरीफ ले जाते हैं। सबके विदा होने के बाद आतिशबाजी छोड़ी जाती है। रात्रि में सभी सरकारी तोपों से एक-एक गोला हाजरी के रूप में दागा जाता है।

दशहरा और शरद पूर्णिमा के बीच में एक दिन फौज की हाजरी के लिये "**मुहल्ला**" के नाम से निश्चत् होता है। इस दिन भी सम्पूर्ण सवारी दशहरे के अनुसार ही होती है, लेकिन महाराणा, सभी सरदार, पासवान आदि लोग "फोजी लिबास" में रहते हैं अर्थात् सर पर लोहे का टोप, जिस पर तुर्रा ,कलंगी लगे हुए, बदन पर कवच अथवा हजार मेखी अथवा कड़ीदार बख्तर, हाथों में दास्तानें, पैरों में कड़ीदार पाजामे, हाथों में बर्छे व खाण्डे रखते हैं। घोड़ों की पीठों पर पाखर और मुंह पर बनावटी सूंडें लगी हुई होती हैं। इस सवारी का ठाठ भी देखने योग्य होता है। इस सवारी को देखने के लिये अंग्रेज लोग भी दूर-दूर से आते हैं। महाराणा महलों से सवार होकर दिल्ली दरवाजे के रास्ते से सारणेश्वरगढ़ के पास पहुंचते हैं और वहां दरबार होता है। बाद में तोपखाने और फौज की हाजरी ली जाने के बाद हाथी पर सवार होकर वापस महलों में पधारते हैं। इस दिन का सम्पूर्ण दस्तूर दशहरे के अनुसार जान लेना चाहिये।

आश्विन शुक्ल 15—को "शरद पूर्णिमा" की खुशी मनाई जाती है। इस दिन शाम के समय महाराणा सवारी करके हाथी पोल के बाहर चौगान में पधारते हैं और वहां हाथियों की लड़ाई आदि देखकर वापस आते हैं। रात्रि के समय सबसे ऊपर वाले प्रासाद (महल) पर सुफेद बिछायत बिछाई जाती है। गद्दी, तकिया, पलंग की बिछायत भी सब सफेद ही होती हैं। फर्श पर बिखरे मुक्केश की चमक चांदनी रात में बड़ी शोभा देती है। इस स्थान पर महाराणा और सभी सभ्यगण सफेद अथवा फाख्ता (कबूतरी रंग)

की पोशाकें पहने हुए देखने वालों के दिलों को खुश करते हैं। सभ्यगणों को विदा करने के बाद महाराणा शयन करते हैं। इस दिन देव मन्दिरों में भी बड़े-बड़े जलसे और देव मूर्तियों को चन्द्रमा की चांदनी में बिठाई जाकर पूजन आदि होता है।

कार्तिक कृष्ण 13—को "धन तेरस" होती है। इस दिन यहां सामान्य लोगों में प्रचलन है कि, सायंकाल को अपने घर का समस्त जेवर व नकद एक जगह रखकर उसका पूजन करते हैं, जिसको "लक्ष्मी-पूजन" बोलते हैं तथा तीन दिन तक अखण्ड घृत का दीपक जलता हुआ रखते हैं। इन तीन दिनों के भीतर "रौप्य" मुद्रा अर्थात् रुपया अपने घर से कोई किसी को नहीं देता और दूसरे के यहां से आवे तो उसको शुभ शकुन समझते हैं। महाराणा भी इस रोज लक्ष्मी-देवी के मन्दिर में दर्शनों को पधारते हैं।

कार्तिक कृष्ण 14—को "रूपचतुर्दशी" होती है। यह दिन भी शुभ समझा जाता है। पुराने जमाने में इस दिन जूआ खेलने का दस्तूर था, लेकिन अब नहीं।

कार्तिक अमावस्या—को "दीपमालिका" बोलते हैं। दशहरे से दीपमालिका तक सामान्य लोग अपने-अपने मकानों को लीप-पोत कर स्वच्छ करते हैं। इस त्यौहार को अमीर व गरीब सब मानते हैं। शाम के समय महाराणा "नगीनावाड़ी" में दरबार कर, सभी सरदार, पासवान आदि लोगों को काली गूंद गरी के सांठे प्रदान करते है। बाद में महाराणा के निकट के भाई-बेटों सहित जनाने महलों में "हीड़" सिचवाने को पधारते हैं। रात्रि के समय महलों में बहुत ही अच्छी रोशनी होती है। इसके अतिरिक्त बाजार, गली-कूचे और सामान्य प्रजा के मकान भी रोशनी से खाली नजर नहीं आते। देहातों में भी सब लोग अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार आवश्यक रूप से दीपक जलाते हैं। साहूकार लोग इस त्यौहार को बहुत ही अधिक मानते हैं, क्योंकि कतिपय साहूकारों का वर्ष इसी दिन समाप्त होता है।

कार्तिक शुक्ल 1—को "खेंखरा" बोलते हैं। इस रोज चौगान के पास जलंधर दैत्य की एक बड़ी मूर्ति बांसों व लकड़ियों से बनाई जाती है। जिसमें रंग और आतिशबाजी भर कर ऊपर से कागज मंढ दिया जाता है। यह तमाशा देखने के लिये हजारों दर्शक लोग जमा होते हैं। महाराणा भी

श्याम के समय चौगान में पधार कर हाथियों की लड़ाई और दो-दो घोड़ों की जोड़ियां दौड़ा कर देखते हैं। फिर दैत्य के कलेवर (शरीर) में आग लगाई जाकर उसे उड़ाया जाता है। इसी दिन देव मन्दिरों में प्रसाद के बड़े जलसे होते हैं। लेकिन सबसे बड़ा जलसा नाथद्वारे में होता हैं, जिसको "अन्नकूटोत्सव" कहते हैं।

कार्तिक शुक्ल 2—को "यमद्वितीया" होती है। इस दिन हर एक बहन अपने भाई को अपने घर पर बुलाकर भोजन कराती है। पुराणों में लिखा है कि, यमराज ने आज अपनी बहन जमुना नदी के घर पर भोजन किया था। इसी दिन साहूकार लोग "दवात-पूजा" करते हैं।

कार्तिक शुक्ल 3—को राज्य में "दवात-पूजा" का उत्सव होता है। दीपमालिका से दवात पूजा तक सभी अदालतों में तातीलें (अवकाश) रहती है।

कार्तिक महीने में अधिकतर देव मन्दिरों में नित्यप्रति की तुलना में अधिक दीपक जलाये जाते हें। परन्तु कार्तिक के सब दिनों की तुलना में **कार्तिक शुक्ल 15** को, जिसे "देव दीपावली" बोलते हैं, अधिक रोशनी होती है। इस महीने में पुरुष और स्त्रीयां रात के अन्तिम पहर में तालाब, नदी आदि जलाशयों पर स्नान करने को जाते हैं और एक भुक्त करते हैं अर्थात् दिन में एक बार खाना खाते हैं। रात्री को "कार्तिक-माहात्म्य" की कथा सुनते हैं। इसी पूर्णिमा को अजमेर जिले में पुष्कर का बड़ा मेला होता है, जहां ऊंट, घोड़े और बैलों का व्यापार बहुत होता है।

मार्गशीर्ष कृष्ण 1—को मुहूर्त का शिकार होता है। इस दिन राज्य के सेवकों को अमव्वा रंग (गहरा हरा) के रुमाल दिये जाते हैं। महाराणा सभ्यगणों सहित शिकारी रंग की पोशाक से नक्कारे की जुलूसी सवारी के साथ, जिस दिशा का मुहूर्त होता है, उस दिशा में पधारते हैं तथा सूअर आदि जानवरों का शिकार करते हैं। यदि मुहूर्त अधिक दिन चढ़े का निकले तो महलों में गोठ अरोग कर सवार होते हैं और जल्दी का होता है तो, शिकार करने के बाद किसी रमणीक स्थान पर गोठ अरोगते हैं। सरदारों को फूलों के चौसरे प्रदान किये जाते हैं। शिकार होने के पश्चात्, दरीखाना होकर सरदार, पासवान आदि सभी सेवकों की नज्रें ली जाती हैं। बाद

में चारण-कवि लोग कविता सुनाते हैं। फिर शाम के समय वापस महलों में पधारते हैं। इस दिन से सूअर का शिकार शुरू होता है।

पौष शुक्ल 2—को वर्तमान "महाराणा का जन्मोत्सव" का समारोह होता है। इस दिन श्री पीताम्बरराय के उत्तरी चौक में महाराणा अपने हाथ से होम की पूर्णाहुति देते हैं और नवग्रह का दान-पुण्य आदि करते हैं। सबसे बड़ा दान स्वर्ण का है, जो महाराणा जितने वर्ष के हों, उतना तोला स्वर्ण का दान दिया जाता है तथा गज, अश्व, रथ, गो, महिषी आदि दान स्वरूप दिये जाते हैं। फिर श्री एकलिंगेश्वर व गोस्वामी के दर्शन व भेंट करके सभ्यगणों की नज़्रें लेते हैं। इसके बाद तामजान पर सवार होकर जगदीश के दर्शन करने के पश्चात् "सभा-शिरोमणी" स्थान में दरबार करते हैं। इस अवसर पर मेवाड़ का रेजिडेण्ट मुबारकबाद[1] देने को आता है। इस त्यौहार में कम या अधिक दस्तूर महाराणा की प्रसन्नता के अनुसार हो सकता है। पहिले यह दस्तूर था कि, सभी राजकीय मनुष्यों की पोषाकें अर्थात् जामा, पगड़ी, दुपट्टा आदि सब कसूम्बल होते थे, परन्तु वर्तमान महाराणा ने यह रीति बंद कर आदेश दिया कि जिसको जैसी इच्छा हो, वैसी उत्तम पोशाक पहन कर आवें। "गादी उत्सव"[2] का जलसा भी इसी प्रकार का होता था, परन्तु वर्तमान महाराणा ने इस उत्सव को मनाना छोड़ दिया। इससे वर्तमान समय में यह जलसा बन्द है।

पौष शुक्ल 15—को "फूस गज" का तमाशा होता है। इस दिन बड़े महलों के चौक में फूस का एक हाथी बनाया जाकर काले कपड़े से ढक दिया जाता है और उस पर एक बनावटी महावत भी बैठा दिया जाता है। यह हाथी महावत के साथ ऐसा बनाया जाता है कि, मानो असली हाथी ही हो। इसके बाद लड़ाई का हाथी लाया जाता है, जो उस बनावटी हाथी को देखते ही लपक कर उसे बिखेर डालता है। महाराणा महलों में दरबार करके यह तमाशा देखते हैं।

इन्हीं दिनों में "**मकर संक्रान्ति**" का प्रवेश होता है। उस दिन मकर

---

1. बधाई।
2. गद्दीनशीनी। (सं०)

संक्रान्ति का धार्मिक त्यौहार माना जाता है। महाराणा दान-पुण्य करने के बाद किसी बाग बगीचे में गेंद खेलते हैं। शेष नगर के लोग गेंद खेलने के लिये हाथी पोल के बाहर मैदान में जाते हैं।

माघ शुक्ल 5—"वसन्त पंचमी" के दिन महाराणा सभ्य लोगों सहित वसन्ती पोशाक पहन कर दरबार करते हैं। मंदिरों में भी गुलाल व रंग उछाला जाता है।

माघ शुक्ल 7—को नागणेंची[1] देवी के पूजनका जलसा और दरबार होता है।

फाल्गुन कृष्ण 14—को "शिवरात्रि" कहते हैं। इस दिन सामान्य लोगों में उपवास तथा शिव पूजन होता है।

फाल्गुन शुक्ल 11—को "आंवली एकादशी" कहते हैं। इस दिन उपवास और आंवली का पूजन होता है तथा **गंगोद्भव स्थान** पर, जो शहर से करीब डेड़ मील है, भीलों का मेला होता है।

फाल्गुन शुक्ल 15—को "होली" का त्यौहार होता है, जिसको हुताशनी भी कहते हैं। इस दिन प्रातःकाल में महाराणा साधारण कृत्य करने के बाद में गोठ अरोग कर महलों में सभ्यगणों पर गुलाल डालते हैं। सभ्यगण नज़रें दिखला कर सम्मान पूर्वक महाराणा पर भी गुलाल डालते हैं। बाद में महाराणा और सभ्यगण हाथियों पर सवार होकर महलों के चौक में गुलाल से "फाग" खेलते हैं। इस फाग में गुलाल इतनी उड़ाई जाती है कि, जमीन और महलों की दीवारें तक लाल हो जाती हैं। महाराणा इसी तरह गुलाल उछालते हुए हाथियों की सवारी से बाजार में से होकर सज्जन निवास या सर्वऋतु विलास आदि रमणीक स्थान पर पहुँचते हैं। वहां स्नानादि से निवत्त होने के बाद स्वच्छ वस्त्रालंकार धारण कर, सायंकाल को वापस सवार हो महलों में प्रवेश करते हैं। बाद में नगीनाबाड़ी में दरबार कर राज्य के सेवकों को काष्ठ के खाण्डे और नारियल देते हैं। इसके बाद मुहूर्त के साथ "जनानी-ड्योढ़ी" के चौक में होली का पूजन होकर, होली

---

1. इसका सविस्तार वृतान्त महाराणा उदयसिंह के वर्णन में लिखा जायेगा।

जलाई जाती है। फिर बाहर के चौक में दूसरी होली जलाते हैं। यदि होली का मुहूर्त देर से हो तो महलों में जाकर वापस आना पड़ता है। सभ्यजन नारियल फेंकते हैं। होली के बाद घोड़ों की व नौका की सवारी से तालाब में भी फाग होता है। परन्तु यह बात महाराणा की इच्छानुसार है। इच्छा हो उसी तरह फाग खेला जाता है।

चैत्र कृष्ण 1—को "धूलहरी" (धूलेटी) कहते हैं। इस दिन महाराणा महलों में रहकर निज सेवकों को अपने-अपने घर जाने की आज्ञा देते हैं, जो अपनी-अपनी जाति के समूह में मिलकर फाग खेलते हैं। पहले तो इस दिन कोई भला आदमी शहर में घूम फिर भी नहीं सकता था, क्योंकि बदमाश लोग बेहूदा बोल कर, उसकी दुर्दशा कर देते थे। औरतों का तो कहना ही क्या? बल्कि वेश्याऐं भी अपने-अपने मकानों के दरवाजे बन्द करके चुप बैठी रहती थीं। तब भी उनके किवाड़ों पर सैकड़ों पत्थर गिरते थे। परन्तु कुछ तो महाराणा स्वरूपसिंह ने इस रिवाज को कम किया और फिर महाराणा शम्भुसिंह के समय में यह और भी कमजोर हुआ। लेकिन महाराणा सज्जनसिंह ने तो इसका ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि, अब औरतों का आना-जाना भी अच्छी तरह जारी हो गया है। देहातों में भी इस दिन बड़ी धूम-धाम रहती थी। पर अब कमजोर हो गई है। लोग अपनी जाति में फाग खेलते हैं और सालभर के भीतर पैदा हुए लड़के-लड़कियों को ढूंढते हैं।[1]

चैत्र कृष्ण 2—को "जमराबीज" (यमद्वितीया) कहते हैं। इस दिन शाम के समय औरतें बेहूदा गीत (गालियां) गाती हुई, होली की भस्म लाकर उसके पिण्डोले बनाकर पूजती हैं। इन दिनों में महाराणा शाम के समय स्वरूप विलास महल में हमेशा दरबार करते हैं। तब शहर व देहाती लोगों की गेहरें[2] आती हैं। वे नाचते-गाते हैं और इनाम ले-लेकर अपने-अपने घरों को जाते हैं।

---

1. कुछ आदमी (जिन्हें बोलचाल की भाषा में गेरीया कहते हैं) लकड़ी के डण्डे हाथ में लेकर बालक के ऊपर डण्डे से उन्हें परस्पर बजाते हुए मुख से आशीर्वाद देते हैं। फिर गुड़, पापड़ी लेकर अपने घर जाते हैं।
   ऐसा माना जाता है कि ढूंढा राक्षसी के प्रकोप से बचने के लिए यह ढूंढ होती है। (सं०)
2. गेहरें—नाचने गाने वालों का समूह। (सं०)

चैत्र कृष्ण 5— को महलों के चौक में हाथी, घोड़े,महिष, मींढे, सूअर, सांभर और हरिण आदि जानवरों की लड़ाईयां होती हैं।

चैत्र कृष्ण 8—को "शीतला अष्टमी"[1] कहते हैं। इस दिन महाराणा जुलूस की सवारी से शीतला देवी के दर्शन करने को जाते हैं। दर्शन करने के बाद रंगनिवास महल की छत पर कुछ देर तक विराजते हैं, जहां वेश्याओं का नाच व गाना होता है। फिर राज्य की दासियां (सेविकाएं) व शहर की स्त्रीयां गाती हुई शीतला के पूजन को आती हैं और पूजन करके, इसी प्रकार वापस लौट जाती हैं। महाराणा सभ्यगणों को फूलों के चौसरें प्रदान कर जुलूसी सवारी के साथ प्रधान की हवेली पर पधारते थे। परन्तु जबसे प्रधान का काम"महकमा-खास"में होने लगा, तब से प्रधान के यहां पधारना बन्द हो गया। अब "महकमा-खास" के सेक्रेटरी मेहता पन्नालाल के मकान पर पधार कर प्रातःकाल की गोठ जीमते हैं और दिनभर वहां ठहर कर सायंकाल को जुलूस की सवारी से महलों में पधारते हैं। इस दिन दोनों समय मेला देखने के लिये हजारों आदमी इकट्ठे होते हैं।

इनके बाद गनगौर तक "फूल-छावड़ी" का मेला होता है और महाराणा महलों में दरबार करते हैं।

उपर्युक्त विवरण सम्पूर्ण वर्ष-भर के त्यौहारों का संक्षिप्त रूप से लिखा गया वर्णन है। कोई बात छूट गई हो तो पाठक-गण उसको विस्तार के कारण छोड़ी हुई जान लेवें।

(6) जागीर व्यवस्था—

अब हम **जागीर व मुआफी**[2] आदि के पट्टे अर्थात् जागीर, भोम, चौथबंटिया, चौकीदार और षट्दर्शन देवस्थान, ब्राह्मण, चारण, भाट, सेवड़ा, सन्यासी, नाथ, फकीर आदि का हाल लिखते हैं।

---

1. यह उत्सव हिन्दुओं में सब जगह सप्तमी को होता है। लेकिन इस दिन महाराणा भीमसिंह का जन्म-दिन होने के कारण उन्होंने इस उत्सव को अष्टमी के दिन रखा था और उसी समय से यह हमेशा अष्टमी को होने लगा।
2. कर मुक्त भूमि। (सं०)

पहला पट्टा **जागीर** जिसमें सेवा के बदले परगना, गांव या जमीन दी गई है। इस प्रकार के जागीरदार "काले पट्टे" के सेवक कहलाते हैं। अर्थात् जब तक नौकरी करें, तब तक जागीर का उपयोग करते रहें। लेकिन वे अपनी जागीर को बेचने या गिरवी नहीं रखने पाते। यदि किसी ऋणदाता के यहां गांव या जमीन गिरवी रखें तो "देवगत"[1] का उत्तरदायी कर्ज देने वाला और "राजगत"[2] के लिये जागीरदार उत्तरदायी रहता है। महाराणा अमरसिंह प्रथम के समय से यह नियम बना हुआ था कि, पटायत (पट्टे का मालिक) के रहने का मुख्य गांव तो बदला नहीं जावे, लेकिन पट्टे के अन्य गांव बदल दिये जावें। परन्तु महाराणा अमरसिंह दूसरे ने इस विचार से कि पट्टे के गांव तीसरे वर्ष बदले जाने से प्रजा को हानि होती है, यह प्रबन्ध कर दिया कि जब तक जागीरदार अच्छी तरह से सेवा करे और पूर्णरूप से सरकारी हक (हिस्सा) प्रदान करता रहे, तो पट्टे के गांव भी नहीं बदले जावें। जागीरें सेवा के बदले में हैं। उनको "जब्त" करने या नई प्रदान करने का अधिकार महाराणा को है। जिसका हाल पाठक लोगों को इस इतिहास के दूसरे भाग को देखने से मालूम होगा।

दूसरा पट्टा "**भौम**" है। इस देश में जागीर की तुलना में "भौम" स्थाई समझी जाती है। परन्तु अपराध करने पर यह जब्त हो जाती है। भौमिया लोगों की सेवा मुख्य रूप से गांव की रखवाली और जिले के हाकिम के वहां सेवा करना है। इसके अतिरिक्त राज्य में जब कभी फौज की जरूरत हो, तो भौमिया लोग बेउज्र (बिना किसी वाद के) हाजिर होते हैं। तब उनको पेटिया[3] और घोड़े का दाना राज्य से मिलता है। लेकिन मगरा, भीलवाड़ा जिले के भौमिया लोग सामान्य सेवा नहीं करते हैं। लेकिन जरूरत के समय अपनी हैसियत के अनुसार फौज लेकर उपस्थित होते हैं। इन लोगों को भी राज्य से खुराक मिलती है। कुल भौमिया लोग राज्य में "टांका" व "भोमबराड़" देते हैं।

चौथ बंटिये—अर्थात् किसान लोग तो तीसरा हिस्सा या आधा हिस्सा राज्यमें देते हैं। लेकिन राजपूत व मीना आदि लड़ाई करने वाली जातियां

1. प्रारब्ध भाग्य की गति। (सं०)
2. राज्य या शासन की गतिविधि के कारण होने वाला परिवर्तन। (सं०)
3. खाने की खुराक। (सं०)

अवसर चौथा बांटा (हिस्सा) देती है। ये लोग भी युद्ध काल में खुराक मिलने पर फौज में भरती हो सकते हैं। कहीं-कहीं पर महाजन, सुतार (खाती), लुहार, दर्जी, सिलावट और ओड आदि भी चौथा हिस्सा दिया करते हैं। इन लोगों के साथ यह छूट इस कारण से वरती जाती है कि, फौजकशी के समय "कम्सरियट और मैगजिन[1] में इनसे मदद ली जाती है।

चौकीदार—इन लोगों की नौकरी गांव की चौकीदारी करना और राज्य का अहलकार गांव में आवे उस समय उसके पास उपस्थित रहना है।

षट्दर्शन—जिनको तांवा-पत्र व पत्थर पर मुआफी की सनद खुदवा-कर दी जाती है। इसमें देनेवाले और पालना करने वाले का अभिप्राय यह है कि, कागज तो जल्दी नष्ट हो जाता है तथा इस तरह के गांव या जमीन हमेशा वने रहने के लिये दिये जाते हैं। इसलिये इसकी सनद भी दीर्घकाल तक ठहरने वाली वस्तु पर खुदाई जावे। षट्दर्शन की मुआफी में राजा, पटायत या अहलकार आदि कोई दिल विगाड़ कर हस्तक्षेप करे, तो उसकी वड़ी निन्दा होती है। वड़े अपराध करने की हालत में मुआफी भी जब्त होती है। लेकिन अन्य प्रकार से वापस ले लेने की इच्छा से कोई हाथ नहीं डालते। इस देश में हर एक **देवस्थान** की पूजा आदि के लिये वहुत से वड़े-वड़े पट्टे "मुआफी" में हैं। मेवाड़ में ऐसा कोई गांव नहीं होगा कि, जिसमें मन्दिर के लिए कोई धर्मादा जमीन न हो। चाहे वह मन्दिर विष्णु, शिव, भैरव, जैन, खागलदेव, रामदेव, मामादेव, पावू, झामादेव आदि में से किसी का हो या मुसलमानों की मस्जिद आदि हों। लेकिन मंदिरों की "मुआफी" मंदिरों के जीर्णोद्धार व पूजा आदि के लिये भेंट की जाती है पुजारियों के वैभव-विलास अथवा वेच कर खराव कर देने के लिये नहीं। ब्राह्मण, चारण, भाट और सन्यासी आदि सव "षट्दर्शनी" लोगों से जमीन के वदले नौकरी आदि कुछ लगान नहीं लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त वहुत थोड़े लोग इस्तमरारदार[2] भी हैं, लेकिन वे लोग जागीर, भौम या मुआफी में सम्मिलित नहीं किये जाते। वे खालसा की प्रजा के ही "रियायती" समझे जाते हैं।

मेवाड़ में वड़े-वड़े जागीरदार, सरदारों का नक्शा (नामावली) यहां पर दिया जाता है, जिससे पाठक लोगों को उनका हाल मालूम होगा—

---

1. सैना व सैन्य सामग्री। (सं०)
2. स्थायी प्रवन्ध भूमिधारी (स्थायी वन्दोवस्त की भूमि का धारक)।(सं०)

मेवाड़ के प्रथम श्रेणी

नम्बर	नाम ठिकाना	जिस शासक ने ठिकाना दिया उनका राज्याभिषेकादि संवत् सहित नाम			नाम उस सरदार का जिसको ठिकाना मिला
		महाराणा का नाम	गद्दी पर बैठने का सम्वत्	देहान्त का संवत्	
1	2	3	4	5	6
1.	सादड़ी	महाराणा संग्रामसिंह प्रथम	विक्रमी 1565	विक्रमी 1584	अज्जा
2.	वेदला	महाराणा अमरसिंह प्रथम	1653	1676	वल्लू
3.	कोठारिया	महाराणा जगतसिंह प्रथम	1684	1709	रुक्मांगद
4.	सलूम्बर	महाराणा उदयसिंह	1592	1628	कृष्णदास
5.	वीजोलिया	महाराणा विक्रमादित्य	1588	1592	अशोक
6.	देवगढ़	महाराणा जयसिंह द्वितीय	1737	1755	द्वारिकादास
7.	वेगूं	महाराणा अमरसिंह प्रथम	1653	1676	मेघसिंहप्रथम
8.	देलवाड़ा	महाराणा संग्रामसिंह प्रथम	1565	1584	सज्जा

7	8	9	10
सीसोदिया चुण्डावत	रावत	शिवनाथसिंह	—
सीसोदिया चुण्डावत	रावत	अमरसिंह	—
झाला	राज	अजयसिंह	यह ठिकाना अदल-वदल कम हुआ ।
सीसोदिया सारंगदेवोत	रावत	नाहरसिंह	—
सीसोदिया	महाराज	केसरीसिंह	यह ठिकाना अदल-वदल कम हुआ ।
राठौड़ मेड़तिया	ठाकुर	गोविन्दसिंह	यह ठिकाना दो-तीन वार बादशाह द्वारा इस प्रदेश पर अधिकार कर लेने पर छूट गया और पुनः मेवाड़ में आने पर वापस उन्हीं को मिला ।
सीसोदिया चुण्डावत	रावत	प्रतापसिंह	—
सिसोदिया शक्तावत	रावत	तख्तसिंह	—
सीसोदिया चुण्डावत	रावत	जैतसिंह	—
चौहान	राव	रतनसिंह	—
सीसोदिया चुण्डावत	रावत	अर्जुनसिंह	अजीतसिंह ठाकुर था और दूलहसिंह को रावत की पदवी मिली ।
सीसोदिया राणावत	महाराज	सूरतसिंह	—
सीसोदिया राणावत	महाराज	गजसिंह	वाद में इनकी जागीर में अठाणा का पट्टा था ।

1	2	3	4	5	6
9.	आमेट	महाराणा प्रतापसिंह प्रथम	1628	1653	कर्णसिंह
10.	मेजा	महाराणा शम्भूसिंह	1918	1931	अमरसिंह
11.	गोगून्दा	महाराणा कर्णसिंह	1676	1684	कान्हसिंह
12.	कानोड़	महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय	1767	1790	सारंगदेव
13.	भींडर	महाराणा प्रतापसिंह प्रथम	1628	1653	भाणसिंह
14.	बदनोर	महाराणा उदयसिंह	1592	1628	जयमल्ल
15.	भैंसरोड़	महाराणा जगतसिंह द्वितीय	1790	1808	रघुनाथसिंह
16.	बानसी	महाराणा राजसिंह प्रथम	1709	1737	गंगदास
17.	कुरावड़	महाराणा अरिसिंह तृतीय	1817	1829	अर्जुनसिंह
18.	पारसोली	महाराणा राजसिंह प्रथम	1709	1737	केसरीसिंह
19.	आसीन्द	महाराणा भीमसिंह	1834	1885	अजीतसिंह
20.	करजाली	महाराणा जगतसिंह द्वितीय	1790	1808	बाघसिंह
21.	शिवरती	महाराणा अरिसिंह तृतीय	1817	1829	अर्जुनसिंह

7	8	9	10
सीसोदिया राणावत	राजा	गोविन्दसिंह	आलमगीर ने मेवाड़ से जब्त करके भीमसिंह को यह ठिकाना दिया, फिर मुहम्मदशाह ने महाराणा संग्रामसिंह को लौटा कर मेवाड़ में मिला दिया।
सीसोदिया राणावत	राजाधि-राज	नाहरसिंह	विक्रमी 1685 में महाराणा जगत-सिंह से शाहजहां बादशाह ने जब्त करके फूलिया का परगना सुजानसिंह को दिया था। बाद में महाराणा राजसिंह ने इसे मेवाड़ में मिला लिया। फिर आलमगीर ने थोड़े वर्षों तक इसे मेवाड़ से अलग कर दिया। लेकिन आलमगीर के बाद वापस मेवाड़ में मिलाया गया। जो मराठों के अंतिम समय में अलग हुआ और अरिसिंह तृतीय ने राजा उम्मेदसिंह को विक्रमी 1823 में जागीर कर दिया जो अब तक मेवाड़ के अधीन है।
डोडिया	ठाकुर	मनोहरसिंह	विक्रमी 1840 में शक्तावत संग्राम-सिंह ने छीन लिया था। बाद में विक्रमी 1904 में महाराणा स्वरूप-सिंह ने शक्तावतों से छीन कर वापस ठाकुर जोरावरसिंह को दे दिया।

1	2	3	4	5	6
22.	बनेड़ा	महाराणा जयसिंह प्रथम	1737	1755	भीमसिंह
23.	शाहपुरा	महाराणा जगतसिंह प्रथम	1684	1709	सुजानसिंह
24.	सरदारगढ़	महाराणा जगतसिंह द्वितीय	1790	1808	सरदारसिंह

(7) धर्म—

अब हम संक्षेप में थोड़ा-सा **धर्मों** का विवरण लिखते हैं—

संसार में सबसे बड़े दो धर्म हैं, अर्थात् एक पूर्वी और दूसरा पश्चिमी। पूर्वी धर्म की तीन शाखायें वैदाम्नायी, बौद्ध और जैन हैं। इसी तरह पश्चिमी धर्म की भी तीन शाखाए अर्थात् यहूदी, ईसाई और मुहम्मदी हैं। इन छः हो शाखाओं की शाखा-प्रशाखा इतनी बढ़ गई हैं कि उनका हाल इस भौगोलिक विवरण में प्रगट करना कठिन है। मेवाड़ देश में केवल बौद्ध और यहूदियों को छोड़कर और सब धर्मों के लोग थोड़े बहुत विद्यमान हैं। प्राचीन मत छः ही शास्त्रों का वेद से निकला हुआ षट्दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु उनमें से केवल वेदान्त के अन्य पांचों शास्त्रों का प्रचार बहुत कम है बल्कि वेदान्त का प्रचार भी किंचित्-किंचित् दिखाई देता है। वेदाम्नायी पांच हिस्सों में अर्थात् शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य और सौर में विभक्त किये गये हैं। इन पांचों में से शैव, वैष्णव, शाक्त ये तीन आजकल अधिक उन्नति पर हैं। शैवों में सन्यासी, नाथ और बहुत से ब्राह्मण भी आचार्य हैं। लेकिन उन आचार्यों में कई तरह के भेद हो गये हैं। वैष्णवों में रामावत, नीमावत, माधवाचार्य और विष्णुस्वामी, इन चारों नामों से चार संप्रदाय प्रसिद्ध हैं। इनमें से भी फिर रामस्नेही, दादूपंथी, कबीरपंथी, नारायणपंथी आदि कई शाखा-प्रशाखा फैल गई हैं। जिनके आचार-विचार में भी कुछ-कुछ भिन्नता पाई जाती है। कितने एक अद्वैत सिद्धांत और कितने एक उपासना पक्ष का आश्रय लेते हैं। मेवाड़ के राजा प्राचीन काल से शैव हैं लेकिन दूसरे धर्मों को भी मानते हैं। शाक्तों की दो शाखा, अर्थात् एक दक्षिण और दूसरी वाम है। दक्षिण आम्नाय वाले वेदानुकूल पूजा, प्रतिष्ठा, जप होमादि करते हैं तथा वामी वेदाम्नायी के विरुद्ध तंत्रशास्त्र के अनुसार पशु हिंसा और मद्यमांसाचरण करते हैं। ये लोग चर्मकारी, रजकी और चाण्डाली को काशीसेवी, प्रागसेवी, मांस को शुद्धि, मद्य को तीर्थ, कांदा (प्याज) को व्यास और लहसुन को शुकदेव बोलते हैं। रजस्वला व चाण्डाली की योनि पूजा करते हैं और मुख्य सिद्धान्त उनका इस श्लोक के अनुसार हैं।

अन्तः शाक्ता बहि शैवाः सभा मध्येश्च वैष्णवाः।
नाना रूप धराः कौला विचरन्ति मही तले ॥1॥

जिस प्रकार प्रथम सरदार दूसरे देवस्थानों के पुजारी और तीसरे मुआफीदार हैं, उसी क्रम से इन तीनों समूहों में हर एक समूह के लिये इज्जत भी प्रथम, दूसरी और तीसरी श्रेणी की होती है। सरदारों में प्रथम श्रेणी के जुहार[1] ताजीम, बांहपसाव, पैर में सोने का जेवर, नक्कारा, निशान और चांदी की छड़ी, ये सामान्य सम्मान कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई तरह के सम्मान होते हैं। लेकिन वे विशेष कारणों से दिये जाते हैं। दूसरी श्रेणी वालों के लिये जुहार, ताजीम, छड़ी तथा पैर में सोना, और तीसरी श्रेणी वालों के लिये खाली वड़ी ओल (दाहिनी पंक्ति) में वैठक और दरवार में पान का वीड़ा दिया जाता है।

इसी तरह देवस्थानों के पुजारियों का भी हाल है। इनमें कितने एक पुजारी गद्दी पर बैठते हैं और उनके सामने महाराणा दोवटी (एक तरह का आसन) पर बैठ कर उनको दण्डवत (साष्टांग प्रणाम) कर भेंट करते हैं। इन पुजारियों पर चंवर भी होते हैं। कतिपय समूहों (जमातों) के महन्तों को भी यही इज्जत मिली हुई है। दूसरी श्रेणी के पुजारियों को बैठने के लिये वानात का आसन मिलता है और महाराणा उन्हें "ताजीम" देते हैं। तीसरी श्रेणी वाले आशीर्वाद देकर फर्श पर बैठ जाते हैं। इसी तरह मुआफीदारों में प्रथम श्रेणी वालों को जुहार, आशीर्वाद, ताजीम, छड़ी, बांहपसाव, पैर में सब तरह के सुवर्ण आभूषण, दूसरी श्रेणी वालों को खाली ताजीम और छड़ी, और तीसरी श्रेणी वालों को खाली दरवार में वैठक और महाराणा के हाथ से वीड़ा मिलता है। हम यह नहीं कहते कि तीनों समूहों में इतनी ही इज्जत मानी जाती है, लेकिन मुख्य-मुख्य वातें लिखी जाकर वाकी हाल विस्तार के भय से छोड़ दिया जाता है और इन बातों का विशेष विवरण राज्य के दफ्तरों में रहता है।

---

1. जुहार-शब्द का अर्थ यह है कि आर्य लोग प्राचीन रीत्यानुसार नित्य प्रथम अग्नि का कुशल पूछते थे अर्थात् "जुहु" होम की अग्नि और "आर" अर्थात् मंगल। इसी रीति से जव कोई इस श्रेणी का सरदार महाराणा से सलाम करता है, उस समय छड़ीदार लोग ऊंची आवाज से पुकारते हैं कि, "करे जुहार अमुक राजा, ठाकुर, राव या रावत" आदि।

नहीं है, शायद कलकत्ता, वम्बई या नेपाल में कोई हों। इसकी कम जानकारी के कारण हमने उनका हाल छोड़ दिया है।

तीसरी शाखा जैन है। जिसके सितम्वरी[1] और दिगम्वरी[2] दो भेद हैं। सितम्वरी का मुख्य शास्त्र 32 सूत्र हैं। जिस तरह वेदाम्नायी "गायत्री-मंत्र" को मानते हैं, उसी तरह जैन लोग "नौकार मंत्र" को मानते हैं। समाई के समय उसी का जप करते हैं। इनमें भी दो भेद हैं, मूर्ति पूजक और अमूर्ति पूजक। मूर्ति पूजकों में जती, समेगी व महात्मा आदि हैं और अमूर्ति पूजकों में ढूंढिया साधू होते हैं। लेकिन 24 तीर्थंकर और 32 सूत्रों को सब मानते हैं। केवल उनका अर्थ अपने-अपने सिद्धान्तानुसार करने में उनमें परस्पर विरोध है। जैन आचार्यों को मानने वाले प्रायः महाजन लोग हैं। जिनमें सितम्वरी को मानने वाले राजपुताना में मुख्य ओसवाल महाजन हैं। भारतवर्ष के दूसरे भागों में अलग-अलग जातियों के महाजन भी वहुत हैं। विक्रमी सम्वत् के सौलहवें शतक के प्रारम्भ में जती लोगों में से वैराग्य न्यून हो गया था। तव गुजरात में लूंका मेहता ने अपने सूत्र ग्रंथों के अनुसार एक नया मत चलाया जिसका नाम "लूंका गच्छ" प्रसिद्ध हुआ। उसी में से ढूंढिया साधु निकले, जिनके 22 गिरोह व 22 टोले माने जाते हैं। इन टोलों में से प्रत्येक में एक-एक मुखिया अर्थात् आचार्य होता है। जव इन वाईस गिरोहों का भी चाल-चलन शिथिल होने लगा, तव रघुनाथ ढूंढिया के टोले में से उसी के शिष्य भीखम ने 1815 विक्रमी (हि० 1172 = ई० 1758) में एक नई शाखा निकाली। उसके तेरह शिष्य होने के कारण "तेरह पंथियों" की नींव पड़ी। भीखम आचार्य विक्रमी 1785 (हि० 1141 = ई० 1728) में पैदा हुआ और उसने विक्रमी 1808 (हि० 1164 = ई० 1751) में साधु का भेष लिया। विक्रमी 1815 (1172 हि० = 1758 ई०) में तेरह पंथियों का नया पंथ चलाया और 1860 विक्रमी (हि० 1218 = ई० 1803) में वह मर गया। उसके वाद उसका शिष्य भालमल गद्दी पर वैठा और विक्रमी 1878 (हि० 1236 = ई० 1821) में वह भी मर गया। उसके वाद रायचन्द गद्दी पर वैठा, जो विक्रमी 1908 (हि० 1267 = ई० 1851) में परलोकवासी हुआ। उसके वाद जीतमल आचार्य

---

1. सितम्वरी = श्वेताम्वर शाखा। (सं०)
2. दिगम्वरी = दिगम्वर शाखा। (सं०)

यह मत बौद्धों का भेद मालूम हुआ है। ऐसा जाना जाता है कि जाति भेद अधिक फैलने लगा, तब बौद्ध लोगों ने उसको रोकने के लिये तन्त्र शास्त्र प्रचलित किये थे। इस मत के आचार्य अपने मत को प्रगट तौर पर प्रचलित रखना उचित नहीं समझते। अन्यथा देखा जाय तो भारतवर्ष की आधी प्रजा के लगभग लोग इस मत को मानने वाले होंगे।

गणपति और सूर्य को मानने वाले इस वक्त बहुत ही कम नजर आते हैं और हैं भी तो, दक्षिण नहीं; बल्कि वामी लोग हैं। जो अपना ऊपर का ढोंग दिखलाते हैं। इस वाम-मत के आचार्य भी कहीं प्रसिद्ध नहीं होते।

मेवाड़ में शैव मत का बड़ा स्थान कैलाशपुरी अर्थात् एकलिंगेश्वर की पुरी है। इस देश के राजा श्री एकलिंगेश्वर और महाराणा उनके दीवान (मंत्री) माने जाते हैं। बाकी शैवमत के प्रचारक नाथ, गुसाईंयों के और भी बड़े-बड़े मठधारी महन्त हैं। परन्तु केवल नाम के लिये हैं। क्योंकि वे लोग निरक्षर और आचार-विचार में विपरीत मालूम होते हैं। नाथद्वारा, कांकड़ोली, चारभुजा और रूपनारायण ये चार वैष्णवों के मुख्य स्थान हैं। जिनमें चारभुजा के पुजारी गूजर और रूपनारायण के ब्राह्मण हैं। ये लोग खाली भेंट पूजा लेने वाले बुभुक्षित और निरक्षर हैं। वे अपने-अपने औसरे पर पूजन करते रहते हैं। उनको आचार्यत्व का अभिमान बिलकुल नहीं हैं। लेकिन नाथद्वारा और कांकड़ोली के गुसाई, जो विष्णु-सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य हैं, उनको भारतवर्ष के सम्पूर्ण वैष्णव लोग उसी तरह मानते हैं, जैसा कि ईसाईयों में रोमन कैथलिक लोग इटली के पोप को। इस मत को विक्रम की 15 वीं सदी में वल्लभाचार्य ने प्रचलित किया था, जिनके सात पुत्र हुए। उन सातों की गद्दियां और पूजन की सातों मूर्तियां अलग-अलग हैं, जिनको लोग बड़े आदर के साथ मानते हैं। इन सबमें बड़ी आठवीं मूर्ति नाथद्वारा के गोवर्धननाथ की है। इन सातों भाइयों में नाथद्वारा के गोस्वामी[1] ही टीकायत गोस्वामी कहलाते हैं। कांकड़ोली वाले उनके छोटे भाइयों में से हैं।

बौद्ध धर्म को मानने वाला यहां पर कोई आदमी या कोई मंदिर

1. वर्तमान समय में टीकायत गोस्वामी गोवर्धनलाल नाथद्वारा की गद्दी पर विद्यमान हैं।

5— श्वेताम्बरी तीर्थंकर को गुरु द्वारा दीक्षा प्राप्त हुई मानते हैं और दिगम्बरी नहीं मानते हैं।

6— श्वेताम्बरी कहते हैं कि, तीर्थंकर को दीक्षा के समय इन्द्र ने आकर कपड़ा ओढाया। परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय इस बात को स्वीकार नहीं करता।

7— श्वेताम्बरी गणधर के बिना महावीर की कुछ वाणी व्यर्थ गई कहते हैं, किन्तु दिगम्बरी ऐसा नहीं बतलाते हैं।

8— श्वेताम्बरी कहते हैं कि, महावीर ब्राह्मणी के गर्भ में से खींचकर तृषा राणी के गर्भ में लाये गये थे, किन्तु दिगम्बरी कहते हैं कि वह प्रारम्भ ही से राणी के गर्भ में थे।

9— श्वेताम्बरी आदिनाथ को "जुगलिया" कहते हैं और दिगम्बरी नहीं कहते।

10— श्वेताम्बरी आदिनाथ के लिये विधवा को घर में रखना मानते हैं परन्तु दिगम्बरी इसको झूठ बतलाते हैं।

11— श्वेताम्बरी दो तीर्थंकरों का अविवाहित रहना मानते हैं और दिगम्बरी 5 का।

12— श्वेताम्बरी केवल ज्ञानी को सामान्य ज्ञानी का प्रणाम करना मानते हैं, दिगम्बरी नहीं मानते।

13— श्वेताम्बरी केवल ज्ञानी को छींक होना मानते हैं मगर दिगम्बरी नहीं मानते।

14— श्वेताम्बरी गौतम का त्रिडण्डी तापसी के पास जाना कहते हैं लेकिन दिगम्बरी नहीं कहते।

15— श्वेताम्बरी स्त्री का मोक्ष होना मानते हैं, दिगम्बरी नहीं मानते।

16— श्वेताम्बरी 19 वें तीर्थंकर को मल्लिकुंवरी कह कर स्त्री स्वरूप मानते हैं और दिगम्बरी मल्लिनाथ कह कर पुरुष मानते हैं।

हुआ, जिसके विक्रमी 1936 (ई० 1879=हि० 1296) में उसके मर जाने पर उसका क्रमानुयायी मेघराज हुआ, जो अब विद्यमान है ।

जैनों की दूसरी शाखा "दिगम्बरो" है। जिसका आचार्य भट्टारक कहलाता है। वह निर्वस्त्र अर्थात् नग्न रहता है और दोनों हाथों की अंजली में भोजन करता है। यदि वह खाते समय बिल्ली आदि का शब्द सुन ले, तो उस दिन उपवास करता है। ऐसे भट्टारक कर्णाटक देश में रहते हैं।[1] जो कभी-कभी पर्यटन करते हुए इधर भी चले आते हैं। इनको श्रावक लोग "मुनिराज" भी कहते हैं। श्वेताम्बर और दिगम्बर, दोनों शाखाओं में कुछ कुछ अन्तर है। श्वेताम्बरी लोग 12 अंग और बाकी उपांग मिलाकर 32 सूत्र बतलाते हैं। इसी तरह दिगम्बरी भी 12 अंग कहते हैं और उनके नामों में भी अधिक अंतर नहीं बतलाते। लेकिन वे कहते हैं कि, महावीर स्वामी से कई सौ वर्ष बाद बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। जिसमें हमारे प्राचीन ग्रंथ नष्ट हो गये और उन्हीं का आशय लेकर जो दूसरे ग्रंथ बने उनके अनुसार हम-अपना धर्म ध्यान करते हैं। श्वेताम्बरी भी 12 वर्ष के दुष्काल को मानते हैं, किन्तु प्राचीन ग्रंथों के नष्ट होने में 45 सूत्रों में से 32 का बचा रहना और शेष 13 जो खण्डित हुए, उनका बाद में बनाया जाना प्रकट करते हैं। इन लोगों का दिगम्बरी लोगों से जो भेद है, वह "84 बोल" अर्थात् 84 बातों में है। जिनमें से कुछ बोल (वाक्य) नीचे लिखे जाते हैं—

1— श्वेताम्बर केवल ज्ञानी को आहार-निहार करना मानते हैं और दिगम्बरी नहीं मानते ।

2— श्वेताम्बरी केवल ज्ञानी को रोग होना मानते हैं और दिगम्बरी नहीं मानते ।

3— श्वेताम्बरी केवल ज्ञानी को उपसर्ग अर्थात् शुभाशुभ सूचक महाभूत विकार मानते हैं, किन्तु दिगम्बरी इसको स्वीकार नहीं करते ।

4— श्वेताम्बरी केवल ज्ञानी का पाठशाला में जाकर पढ़ना प्रसिद्ध करते हैं, पर दिगम्बरी नहीं मानते ।

---

1. दूसरे भट्टारक केवल नाम मात्र के हैं। ये वस्त्र, सामान और वाहन आदि सब कुछ रखते हैं। ऐसे लोग वास्तव में ढोंगी होते हैं।

17— श्वेताम्बरी जुगलिया को देव हर ले गया कहते हैं परन्तु दिगम्बरियों का इस पर विश्वास नहीं।

इत्यादि 84 बातों का अन्तर है। हमने इसके विषय में बहुतसी बातें विस्तार के भय से छोड़ दी हैं।

मेवाड़ में जैनियों का बड़ा तीर्थ स्थान उदयपुर से 16 कोस दक्षिण में खैरवाड़ा की सड़क पर धूलेव गांव में "ऋषभदेव का मंदिर" है जिसको वेदाम्नायी और जैन दोनों मानते हैं। इस मूर्ति को वेदाम्नायी लोग विष्णु के दशावतारों में समझ कर अपने धर्म के अनुसार और जैन लोग तीर्थंकर समझ कर अपने धर्म के अनुसार पूजते हैं। यहां पर कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कर्णाटक, पंजाब और उत्तराखण्ड के हजारों यात्री आते हैं और बड़ी भावना के साथ केसर चढ़ाते हैं। केसर चढ़ाने की यह रीति है कि, यदि किसी यात्री ने मन भर केसर चढ़ाई हो और उसी समय दूसरा यात्री एक रुपये भर केसर लेकर आवे तो मन भर को उतार कर वह अपनी रुपये भर केसर चढ़ा देगा। केसर को शिला पर पत्थर से घिस कर यात्री लोग अपने हाथ से चढ़ाते हैं। इस उतरी हुई केसर के बट्टे पुजारी लोग यात्रियों को बेचते हैं। यहां केसर अत्यधिक मात्रा में चढ़ती है, जिससे इनका दूसरा नाम "केसरिया-नाथ" प्रसिद्ध हो गया है और मूर्ति का काला रंग होने से कालाजी भी बोलते हैं।

इस मंदिर के चारों तरफ कोसों तक भीलों की आबादी है। भील लोग केसरियानाथ पर बड़ा विश्वास रखते हैं। वे लोग सौगन्द अर्थात् शपथ करने के समय केसरियानाथ की केसर चबा कर जिस बात का प्रण करते हैं उससे फिर कभी नहीं बदलते।

इस मंदिर के निर्माण सम्बन्धी मुख्य विवरण कहानियों के रूप में है। लेकिन मंदिर की प्रशस्तियों से इस मंदिर का जीर्णोद्धार विक्रम की 15 वीं सदी के प्रारम्भ तक होना पाया जाता है। पहले जो हजारों रुपया और जेवर भेंट होता था, उसे पुजारी लोग अपना बना लेते थे। लेकिन वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह के समय से वहां का प्रबंध एक कमेटी के अधिकार में कर दिया गया है। जिसके सदस्य जैन मतावलम्बी लोग हैं और उस कमेटी का

सारा कार्य स्वतन्त्रता से करते थे। यदि कोई वड़ा काम होता तो ही, महाराणा से पूछ लिया करते थे। परन्तु महकमाखास स्वयं ऐसा नहीं कर सकता। सभी कामों के लिये महाराणा स्वयं आदेश देते हैं, महकमाखास उन आदेशों का पालन करता है।

इस महकमे के अधिकार में अन्य जिले गैर व कुछ हिस्सा जागीरदारों का है और राजस्व सम्वन्धित काम भी इसी महकमे से सम्वन्धित है। लेकिन न्याय का काम अलग है, जिसका विवरण आगे लिखा जावेगा। इस विभाग के अधीन जिलों के हाकिम और नायव हाकिम होते हैं जो, हर समय और सालाना जमाखर्च का प्रतिवेदन इस विभाग में भेजते हैं। खास महाराणा के कारखाने (विभाग) अर्थात् कपड़ों का भण्डार, कपड़ द्वार रोकड़ का भंडार, हुक्म खर्च ओवरी, पांडे की ओवरी, सेज की ओवरी, अंगोल्या की ओवरी, रसोड़ा, पाणेरा, सिलहखाना, वन्दूकों का कारखाना, छुरी कटारी की ओवरी, धर्म सभा, देवस्थान की कचहरी, शिल्पसभा, खास खजाना, शम्भु निवास, जनानी ड्योडी, फीलखाना, अस्तवल, फर्राशखाना, छापाखाना, पुस्तकालय, सांडियों का कारखाना, विक्टोरिया हाल, पुलिस, सायर, वाकियात की कचहरी, रावली दूकान, टकसाल, जंगीफौज का महकमा और देशी फौज का विभागादि सभी अपना-अपना जमाखर्च महकमाखास में भेजते हैं। महकमाखास की तरफ से एक कचहरी "हिसाव-दफ्तर" के नाम की है, जो कुल जमा खर्च की जाँच पड़ताल कर महकमाखास में रिपोर्ट करती है। लेकिन ऐसे कामों की स्वीकृति जव तक महकमाखास से न हो तव तक ठीक नहीं समझी जाती है। विक्रमी 1927 (हि० 1287 = ई० 1870) में यह विभाग स्थापित हुआ था।

(9) मेवाड़ राज्य के परगने व उनका भूगोल—

मेवाड़ के मुख्य परगने निम्न हैं:—गिरवा, मगरा, छोटी सादड़ी, चित्तौड़गढ़, राशमी, सहाड़ा, भीलवाड़ा, मांडलगढ़, जहाजपुर और कुंभलगढ़। वैकुण्ठवासी महाराणा ने ऊपर लिखे हुए परगने वनाकर अपने पास रहने वालों में से हरएक को परगने का हाकम नियुक्त कर दिया तथा उनका वेतन वढ़ा दिया। इन्हीं दिनों में "मुल्की काम" सुदृढ़ करने के लिये "पैमाइश" और टेके का प्रवन्ध करने के लिये ब्रिटिश सरकार से एक आदमी

बड़ी शाखाएँ। 1- सुन्नी और 2- शीया है। सुन्नी कहते हैं कि, हजरत पैगम्बर के बाद उनके चारों दोस्त अर्थात् अबूबक्र, उमर उस्मान और अली खलीफा कहलाये और कहते हैं कि 30 वर्ष तक धार्मिक बादशाहत का शासन रहा, जिसको खुलफाय राशिदीन (सन्मार्गी खलीफा) कहते हैं। उनके बाद 90 वर्ष तक खुलाफाय बनी, उमयाह ने शासन किया। उसके बाद लगभग 500 वर्ष तक "खुलफाय बनी", अब्बास रहे। जिनके बाद चंगेजखानियों[1] ने खिलाफत को नष्ट किया। शीया लोग हजरत पैगम्बर के बाद हजरत अली को खलीफा व इमाम मानते हैं और अबूबक्र, उमर उस्मान को जालिमों (अत्याचारियों) में गिनते हैं। हजरत अली पैगम्बर के दामाद थे। जिनकी औलाद को "सैयद" कह कर उनकी बड़ी इज्जत करते हैं। इस समय सुन्नियों में सैयद अहमद ने कुर्आन की आयतों का नये ढंग से अर्थ कर उसे जमाने के रिवाजों से मिला दिया है। पश्चिमी धर्मों से हमें अधिक जानकारी नहीं है, यदि कोई गलती हो तो पाठक लोग क्षमा करें।

(8) राजकीय ढंग और प्रशासनिक विभाग—

अब हम मेवाड़ का "**राजकीय ढंग**" और कारखानों[2] का हाल लिखते हैं। अनुमानित 500 वर्ष पूर्व तक इस राज्य का हाल मालूम करने से यही पाया गया कि, यहां मुल्की हुकूमत[3] दो कोमों अर्थात् कायस्थों और महाजनों के हाथ में रही। अर्थात् महाराणाओं को युद्ध सम्बन्धी कार्यों से अवकाश नहीं था, जिससे वे माली (राजस्व) और "मुल्की बन्दोबस्त" करते। इसलिये ऊपर लिखी हुई दोनों जाति वालों में से किसी एक योग्य पुरुप को अपना प्रधान अर्थात् "नायब" नियुक्त कर उसको माली और मुल्की काम का अधिकार देते रहे। लेकिन नियम यह था कि महाराणा की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करें तब तक ही वह पद पर बना रहता अन्यथा दूसरी स्थिति में पद से हटा दिया जाता।

प्रधान के पद पर महाजन जाति का अन्तिम व्यक्ति कोठारी केसरीसिंह था। उसके स्थान पर अब "महकमाखास" स्थापित हो गया है। प्रधान और "महकमाखास" के अधिकार में केवल इतना ही अन्तर है कि, प्रधान

1. मंगोलों ने।
2. प्रशासनिक विभागों। (सं०)
3. राज्य का प्रशासन। (सं०)

है, जो महाराणा अमरसिंह द्वितीय ने बनवाया था। शमशेरगढ़ से पश्चिम में एक छोटी पहाड़ी पर अंबायगढ़ का मरहला है। ईशान कोण में दिल्ली दरवाजा और उसके सामने सारणेश्वर गढ़ का मरहला है। पूर्व की तरफ सूरजपोल दरवाजा और उसके सामने सूरजगढ़ नाम का मरहला है। दक्षिण की तरफ उदयपोल[1] है, जिसके सामने कृष्णगढ़ नाम का मरहला था, जिसकी पुरानी इमारत खण्डहर हो जाने के कारण अब उस जगह वर्तमान महाराणा ने कैदियों के लिये एक नया जेलखाना बनवाया है। अग्निकोण के बुर्ज पर महाराणा जगतसिंह द्वितीय द्वारा बनवाई हुई जगत्शोभा नामक एक बड़ी तोप रखी हुई है। उसके सामने इन्द्रगढ़ का मरहला है। दक्षिण की तरफ कृष्णपोल दरवाजा है। यहां से शहरपनाह मांछला-मगरा को पार करती हुई पश्चिम की ओर पीछोला तालाब के किनारे तक पहुंच गई है। पहाड़ की चोटी पर एकलिंगगढ़ नामक एक छोटा-सा किला है। जिसके दक्षिण की तरफ पहाड़ के अन्तिम हिस्से पर ताराबुर्ज नामक मोर्चा और इसी पहाड़ के पश्चिम में "दूध-तलाई" के सामने रमणापोल दरवाजा और उसके पश्चिम में पीछोला के किनारे पर, जहां शहरपनाह समाप्त होती है, "जलबुर्ज" की खिड़की है।

इसके आगे पीछोला तालाब है जो विक्रम सम्वत् के 15वें शतक में महाराणा लाखा के समय किसी बनजारे ने बनवाया था। इस तालाब के दक्षिण की तरफ पानी के बीच में "जगमंदिर" नामक महल और बगीचा है। इन महलों में विक्रमी 1671 (हि० 1023=ई० 1614) में शाहजादा खुर्रम[2] ने एक बड़े गुम्बज की नींव डाली थी, जबकि वह जहांगीर का भेजा हुआ, फौज लेकर उदयपुर में आया था। महाराणा कर्णसिंह ने इस महल को तैयार करवाया। फिर वही शाहजादा खुर्रम अपने बाप जहांगीर से बागी होकर भागते समय महाराणा का शरणागत होकर इसी महल में रहा था। इस महल के पूर्व में बना हौज फुहारों का खजाना है। महल के पश्चिम में

---

1. पहले इस दरवाजे का नाम "कमलिया पोल" था, जो मराठों के उपद्रव काल में बन्द किया गया था। परन्तु वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह के जब पुत्र उत्पन्न हुआ, उस समय यह दरवाजा खोला गया और उदयपोल के नाम से प्रसिद्ध किया गया।
2. कालान्तर में शाहजहां नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। (सं०)

मांगा। अतः सरकार ने मिस्टर विगेट को भेजा। जिसने खालसा की "पैमाइश और बन्दोबस्त" का काम बहुत अच्छी तरह से चलाया। पहले इस प्रदेश में "लाटा" और "कून्ता" से जमा वसूल की जाती थी। लाटा अर्थात् खालसा जमीन में किसानों के यहां जितनी पैदावार हो, उसमें से नियम के अनुसार राज्य का हिस्सा बांट लेने को "लाटा" कहते हैं। कून्ता, वह कहलाता है कि गांवों के मुखिया लोगों को सम्मिलित कर राज्य का कर्मचारी पकी हुई खड़ी "फसल का तखमीना[1] करके हिस्सा वसूल कर लेता है। अफीम, ईख और कपास आदि बोई जाने वाली जमीन पर पहले प्रति बीघा एक रुपये से दस रुपये तक का हासिल वसूल किया जाता था। लेकिन अब खालसा में बिल्कुल पक्का प्रबन्ध हो गया है, जिससे राज्य और प्रजा के मध्य से स्वार्थी लोगों का हस्तक्षेप हट गया। ऊपर वर्णन किए हुए परगनों में भी बन्दोबस्त के साथ कुछ परिवर्तन हुए हैं।

अब हम प्रत्येक **परगने का भूगोल** सम्बन्धी विवरणात्मक ढंग से अलग-अलग वृतान्त लिखते हैं—

1. **गिरवा**—जिसका मुख्यालय राजधानी उदयपुर माना जाता है, इसके दो हिस्से हैं—एक भीतरी गिरवा और दूसरा बाहरी गिरवा। भीतरी गिरवा पहाड़ों के अन्दर उदयपुर के आस-पास वाला हिस्सा है तथा बाहरी गिरवा पहाड़ों के बाहर खुले मैदान में स्थित है। खास शहर उदयपुर, जिसमें 46,658 आदमियों की आबादी है, पक्की शहरपनाह के भीतर बसा हुआ है। इसके तीन ओर अर्थात् उत्तर, पूर्व और दक्षिण में पक्की दीवार और पश्चिम की तरफ पीछोला तालाब है। इस शहरपनाह की प्रारम्भिक नींव महाराणा अमरसिंह प्रथम ने डाली थी, लेकिन उस समय में अपूर्ण रही। फिर महाराणा अमरसिंह द्वितीय ने इसका काम प्रारम्भ किया और उनके पुत्र महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने विक्रमी 1790 (हि० 1146 = ई० 1733) में उसे पूरा करवाया। इसके पश्चिम की तरफ "अमर कुण्ड" पर "शितावपोल" और उसके उत्तर की तरफ चांदपोल दरवाजा है। इन दो दरवाजों के बाहर शहर के पश्चिमी हिस्से में ब्रह्मपुरी के दो दरवाजे और हैं, जो "अंबापोल" और "ब्रह्मपोल" के नाम से प्रसिद्ध हैं। उत्तर की तरफ हाथीपोल दरवाजा है। जिसके सामने शमशेरगढ़ का मरहला (जेलखाना)

1. अनुमानित पैदावार। (सं०)

हुए "अखाड़ा के महल" हैं। जिनमें एक तरफ सेवा के "ठाकुर पीताम्बरराय का देवालय" और दूसरा "गुलावस्वरूप विहारी" का मन्दिर है, जो महाराणा स्वरूपसिंह की महाराणी राठौड़ जी ने वनवाया था। उसके आगे नया महल और "पार्वती-विलास" नामक महल है, जो महाराणा भीमसिंह ने वनवाये थे। उसके आगे रसोड़े का महल है, जिसकी नींव विक्रमी 1671 (हि० 1023=ई० 1614) में शाहजादा खुर्रम ने डाली थी और जिसको महाराणा कर्णसिंह ने पूरा करवाया। इसी कारण इसका दूसरा नाम "कर्ण–विलास" भी रखा गया। इसके ऊपर के कोठे पर महाराणा संग्रामसिंह ने ग्रह-नक्षत्र देखने का यंत्र वनवाया था, जो अव तक विद्यमान है। इसके पास ही किनारे पर महाराणा जवानसिंह का वनवाया हुआ "जल-निवास-महल" है, जिसमें नहर व फुहारे बने हुए हैं। इसके नजदीक "रूपघाट" है, जो महाराणा अरिसिंह के धाय-भाइयों में से रूपा धायभाई ने वनवाया था। उसके आगे "नावघाट" है, जहां नाव और किस्तियां वंधी रहती हैं। उसके पास ही नाव चलाने वालों के घर हैं। इसके आगे "महियारिया चारण श्यामलदास, जसकर्ण की हवेली है, जिसके पास ही "राणावत उदयसिंह की हवेली", "लालघाट" और "सनवाड़ की हवेली" है। आगे चलने पर "वागौर की हवेली" और त्रिपोलिया-घाट" है, जिसे "गनगौर-घाट" भी कहते हैं। यह त्रिपोलिया महाराणा अरिसिंह के समय में सनावड़ ब्राह्मण "वड़वा अमरचन्द" ने वनवाया था, जिसके ऊपर वागौर के महाराज शक्तिसिंह ने एक अच्छा महल वनवा दिया है। इसके आगे "वीरूघाट", शितावपोल, चांदपोल, फतहखां महावत (फीलवान) की हवेली और "मोती कुण्ड" आदि मकान हैं।

पश्चिमी किनारे पर जगन्निवास के सामने मांजी का अंतरीपनुमा मंदिर महाराणा सरदारसिंह की महाराणी वीकानेरी का वनवाया हुआ है। जिसके आगे "आमेट की हवेली" है, जो सरदारगढ़ के डोडिया ठाकुर सरदारसिंह ने वनवाई थी। उसके आगे "उदयश्याम का मंदिर" है, जो महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर की नींव रखने के समय वनवाया था। इसके आगे "पीपलिया की हवेली" "पंच देवली घाट" "थांदला की हवेली", वावा हनुमानदास का वनवाया हुआ "हनुमान घाट" और "भीमपद्मेश्वर का मंदिर", जो महाराणा भीमसिंह की महाराणी वीकानेरी ने वनवाया था,

जनाना मकान और महल के उत्तर की तरफ वड़े चौक का हौज आदि महा-राणा जगतसिंह प्रथम द्वारा वनवाये हुए हैं। 12 पत्थर का महल और नहर के महल और स्तम्भों वाले खुले हुए दोनों दरीखाने, कुंवरपदा के महल और 4 हौज महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय द्वारा वनवाये हुए हैं। इन महलों में कपूरवावा की एक छत्री प्रसिद्ध है। सुना जाता है कि, शाहजादा खुर्रम इस नाम के फकीर पर वड़ा विश्वास रखता था और उसी के नाम से शाहजादा ने यह स्थान वनवाया था।

इस तालाव के अन्दर उत्तर की तरफ महलों के सामने जगन्निवास नामक दूसरा वहुत अच्छा महल वना हुआ है। जिसमें वगीचा, हौज और फुहारे आदि कई चीजें देखने के योग्य हैं। आम के पेड़ों पर मयूर वैठ कर वोलते हैं। उस वक्त देखने वालों की टकटकी लग जाती है। इस तालाव के दोनों मकानों को देखने के लिये हजारों कोसों से सैकड़ों यात्री दौड़े आते हैं, जो देखकर अपनी मेहनत का वदला भर पाते हैं दक्षिण और पश्चिम में दोनों ओर से तालाव को पहाड़ों से घिरा हुआ, जहां सरसब्ज पेड़ नजर आते हों, देखकर यात्री लोग यही चाहते हैं कि, इस यात्रा में अधिक समय व्यतीत हो। तालाव के अन्दर दो छोटे-छोटे महल और भी हैं। पहला "अरसी-विलास", महाराणा अरिसिंह का वलवाया हुआ और दूसरा "मोहन मंदिर" जो महाराणा जगतसिंह प्रथम की पासवान के पुत्र मोहन-दास ने वनवाया था।

तालाव का उत्तरी भाग शहर से घिरा हुआ है। यहां यह तालाव जल पूरित नदी के आकार में दिखाई देता है। तालाव के पूर्वी किनारे पर राजधानी के महलों से दक्षिण की ओर इस तालाव का वड़ा वांध है, जिनको "वड़ी-पाल" कहते हैं। इस वांध की मरम्मत महाराणा जगतसिंह प्रथम, संग्रामसिंह और भीमसिंह के समय में होती रही। लेकिन महाराणा जवान-सिंह ने इस वांध को ऐसा मजवूत वनवा दिया कि, अव इसके टूटने का भय नहीं रहा। विक्रमी 1852 (हि० 1210=ई० 1795) में जव यह वांध टूट गया था तो, उससे शहर को वहुत नुकसान पहुंचा।

पूर्वी किनारे पर महाराणा के महल हैं, जिनका वर्णन आगे लिखा जावेगा। लेकिन किनारे के एकदम ऊपर महाराणा स्वरूपसिंह द्वारा वनवाये

या तालाव वन रहा है, जो पीछोले से मिला दिया जावेगा[1]। ब्रह्मपुरी के उत्तर में पीछोला तालाव के किनारे पर "अम्बिका भवानी" का प्रसिद्ध मंदिर है जो, महाराणा राजसिंह प्रथम ने वनवाया था तथा देवाली ग्राम के समीप "फतह सरोवर" के उत्तरी किनारे वाले, एक खड़े पहाड़ की चोटी पर कायस्थों का वनवाया हुआ "नीमच-माता" का एक पुराना मंदिर है। जहां श्रावण की अमावस्या को मेला होता है और पूरे शहर के लोग दर्शनार्थ वहां जाते हैं। "पुरोहित जी का तालाव" उदयपुर से 7 मील दूर ईशान कोण में सुन्दर स' द पत्थर से वनवाया गया है।

अब हम इसी जगह से दक्षिण को चलकर शहर के वाहर व भीतर का हाल लिखते हैं। फतह सरोवर के पीछे महाराणा संग्रामसिंह द्वारा वनवाया हुआ वाग है, जिसको "सहेलियों की वाड़ी" कहते हैं। इसमें महल और एक वड़ा हौज बना हुआ है। फतह सरोवर की पाल की दक्षिणी पहाड़ी पर "मोती महल" नाम का पुराना खण्डहर है, जहां विक्रमी 1616 (हि० 966 = ई० 1559) में महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर शहर और महल की नींव रखी थी। लेकिन वाद में एक फकीर की अनुमति से पीछोला तालाव के किनारे पर वनवाये गये "सहेलियों की वाड़ी" के पूर्व में, शिवरती के महाराज गजसिंह आदि कई सरदारों और पासवानों की वाड़ियां हैं तथा एकलिंगेश्वर की सड़क पर रूपा धायभाई द्वारा वनवाया हुआ विष्णु का एक मंदिर है।

पीछोला के निकासी नाले (गुमानिया खाल) के दक्षिणी किनारे से आवादी शुरू होती है। "रेजिडेंसी की कोठी", जो महाराणा भीमसिंह के समय में कॉव ने वनवाई थी और जिसको महाराणा जवानसिंह ने 10,000 रुपया देकर खरीद ली थी, उस कोठी के पास पुराने गुम्वद वाले महल हैं। जो पहले वेगूं के रावत की हवेली थी और अव उसमें अंग्रेज रेजिडेण्ट रहते हैं। इस कोठी के अग्निकोण की तरफ रेजिडेंसी-सर्जन का वंगला है। कोठी के दक्षिण में रेजिडेंसी का वगीचा और सेठ जोरावरमल की वाड़ी है। उसके

---

1. महाराणा फतहसिंह ने देवाली तालाव को ही अधिक सुदृढ़ और ऊंचा उठाकर, यह फतेहसागर तालाव वनवाया था। यह तालाव डेढ़ मील लम्बा, अधिकतम चौड़ाई एक मील और 2800 फीट ऊंचा है। (सं०)

क्रम से एक दूसरे के वाद स्थित हैं। भीमपद्मेश्वर और शितावपोल दरवाजे के वीच वाला तालाव का हिस्सा "अमर कुण्ड" कहलाता है। क्योंकि बड़वा अमरचन्द ने इसके पूर्वी और पश्चिमी घाट वनवाकर इसको फुहारों से सुसज्जित किया था।

इसके उत्तर में चांदपोल दरवाजे से ब्रह्मपुरी में जाने के लिये एक पुल वना हुआ है। इस पुल के आगे तालाव का हिस्सा "स्वरूप सागर" कहलाता है। इसके दो हिस्से हो गये हैं और उन दोनों के वीच में "अमर-ओटा" नाम से एक दीवार, पानी की सतह के वरावर वनी हुई है। इसके आगे पानी का निकास है, जिसको वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जन-सिंह ने वहुत सुन्दर और मजबूत वनवाया है। वर्षा के दिनों में जव तालाव भरने पर चद्दर गिरने लगती है, उस समय यहां की शोभा देखने योग्य होती है। तालाव के दक्षिणी किनारे वाली एक टेकरी पर "खास-ओदी" नामक एक शिकारगाह है, जिसको महाराणा संग्रामसिंह ने वनवाया था। वर्तमान महाराणा ने वहां पर महल आदि वनवाकर उसकी शोभा और भी वढ़ा दी है। उसी तरफ खुशहाल ओदी और धर्म ओदी आदि छोटी-छोटी कई शिकारगाहें और भी हैं। शेष पहाड़ के मध्य में महाराणा जवानसिंह द्वारा वनवाया हुआ महाकाली का एक मंदिर है।

नैऋत्य कोंण में सीता माता का छोटा-सा पुराना मंदिर है, जहां पौष महीने में रविवार को मेला होता है। तालाव के पश्चिमी किनारे पर सीसारमा गांव में महाराणा संग्रामसिंह द्वारा वनवाया हुआ वैद्यनाथ महादेव का एक प्रसिद्ध मंदिर है। उसके पश्चिमोत्तर में वांसदरा पहाड़ पर, जो शहर से 1100 फीट और समुद्र की सतह से 3100 फीट ऊंचा है, वैकुण्ठ-वासी महाराणा सज्जनसिंह ने वहुत अच्छे महल वनवा कर उसका नाम "सज्जनगढ़" रखा है। उसमें जो भी काम शेष रह गया था, वह वर्तमान महाराणा ने पूर्ण करवाया। यह स्थान भी देखने के लिए, आदमी दो मील की चढ़ाई चढ़ कर ऊपर जाने पर अपने परिश्रम को उसी वक्त भूल जाता है। "वड़ी का तालाव" जो सज्जनगढ़ के समीप उत्तर की तरफ है, उसका हाल महाराणा राजसिंह प्रथम के इतिहास के साथ लिखा जावेगा।

पीछोला तालाव के उत्तर की तरफ "फतह-सरोवर" के नाम से एक

आगे महाराणा स्वरूपसिंह की महाराणी अभयकुंवर द्वारा बनवाया हुआ "अभय स्वरूप विहारी का मंदिर" और एक बावड़ी है। इसके आगे महाराणा जगतसिंह प्रथम की धाय, "नोजू" द्वारा बनवाया हुआ "विष्णु का मंदिर" है, जो विक्रमी 1704 (हि० 1057=ई० 1647) में तैयार हुआ था। उसके पास "जगन्नाथराय का बड़ा मंदिर" है, जो इन्हीं महाराणा[1] ने 1708 विक्रमी (हि० 1061=ई० 1651) में बनवाया था। उसके आगे पूर्वी पंक्ति में आसींद के रावत की हवेली और पश्चिमी पंक्ति में "गोकुल-चन्द्रमा का विष्णु मंदिर" है, जिसको बागोर के कुंवर शार्दुलसिंह की पत्नी अर्थात् महाराणा शंभुसिंह की माता नन्दकुंवर ने विक्रमी 1931 (हि० 1291=ई० 1874) में बनवाया है। इसके आगे "जगत् शिरोमणि का मंदिर" है, जिसको महाराणा जवानसिंह की महाराणी बाघेजी की आज्ञानुसार महाराणा स्वरूपसिंह ने बनवा कर विक्रमी 1905 (हि० 1264=ई० 1848) में प्रतिष्ठा करवायी। उसके सामने "जवान-स्वरूपेश्वर का मंदिर" है जो महाराणा जवानसिंह की आज्ञानुसार महाराणा स्वरूपसिंह ने विक्रमी 1899 (हि० 1258=ई० 1842) में पूरा करवाया। इस जगह दोनों तरफ महाराणा स्वरूपसिंह द्वारा बनवाई हुई दुकानों की पंक्तियां हैं।

इन दुकानों के आगे महलों में प्रवेश करने का पहला दरवाजा "बड़ी पोल" है, जिसको महाराणा अमरसिंह प्रथम ने विक्रमी 1676 (हि० 1028=ई० 1619) में बनवाया था। इसके दोनों तरफ वाले दो दालान महाराणा अमरसिंह द्वितीय ने विक्रमी 1757 (हि० 1112=ई० 1700) में बनवाये थे। उनके दोनों तरफ घड़ियाल व नक्कारखाने की मीनारनुमा छतरियां हैं, जो इन्हीं महाराणा ने बनवाई हैं। इसके आगे बढ़कर त्रिपोलिया अर्थात् बराबर कतार में सफेद पत्थर के तीन दरवाजे हैं। ये महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय द्वारा बनवाये हुए हैं। इनके ऊपर महाराणा स्वरूपसिंह द्वारा बनवाया हुआ "हवामहल" नामक एक महल है। इसके आगे महलों का "बड़ा चौक" है, जिसके नीचे महाराणा कर्णसिंह द्वारा बनवाये हुए लदाव के बड़े दालान और सूरजपोल दरवाजा है। इस लदाव पर महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय द्वारा बनवाई हुई "हस्तिशाला" है। सभा शिरोमणि दरीखाना, तोरणपोल, रावला,(जनाना) महल और सूरज चौपाड़ तो महाराणा

---

1. महाराणा जगतसिंह प्रथम। (सं०)

दक्षिण में "हजारेश्वर महादेव" का मंदिर और महाराणा जगतसिंह द्वितीय के समय में एक दादूपंथी साधु द्वारा अपने आश्रम के लिये बनवाये हुये हजारेश्वर के महल हैं। इसके पास "स्कॉच मिशन का गिरजा" है, जो पादरी डाक्टर जेम्स शेफर्ड ने हाल में ही बनवाया है। गिरजे के पश्चिम में मेरा[1] "श्यामल बाग" और इसके उत्तर में "सरदफ्तर का बंगला" है, इसके आगे मिस्टर लोनार्गिन, गार्डन सुपरिटेण्ट मिस्टर स्टोरी, पीरोजशाह पिश्तनजी सौदागर और मिस्टर जर्मनी के बंगले पास-पास स्थित हैं मिस्टर जर्मनी के बंगले के पास मेहता तख्तसिंह और मेहता गोविन्दसिंह की बाड़ियां हैं।

इनके पास कचहरी बन्दोबस्त के बंगले और दक्षिण में चौगान और दरीखाने बने हुए हैं। अधिकांशतः महाराणा नवरात्रि के त्यौहारों पर जुलूसी सवारी से इसी जगह पर आते हैं। चौगान के पश्चिम में "तोपखाना" और उसके बाद में महाराणा अरिसिंह द्वितीय के समय में बने हुए "जैन मंदिर" हैं, जिनमें बड़े-बड़े कद की जैन मूर्तियां हैं। यहां से पश्चिम में पीछोला के निकासी नाले पर पादरी जेम्स शेफर्ड का बंगला, नाले के पश्चिम में विलियम टॉमस का बंगला और उसके पास की पहाड़ी पर एग्जिक्युटिव इंजिनियर मिस्टर टॉमसन का और उसके उत्तर की टेकरी पर मिस्टर विंगेट का बंगला है। पादरी शेफर्ड के अतिरिक्त ये सभी बंगले राज्य की तरफ से बनवाये गये हैं, किसी अधिकारी की संपति नहीं हैं। "श्यामल बाग" के पश्चिम में भीम और स्वरूप पल्टन की लाइनें[2] और उसके दक्षिण में हाथीपोल की सराय और वायव्य कोण में हाथीपोल का मरहला है। उसके आगे महाजनों की "पंचायती थोभ की बाड़ी" है, जिसमें एक जैन का मंदिर और मकान बना हुआ है।

अब हम हाथीपोल दरवाजे के भीतर चलते हैं। "मोती-चौहट्टा" की पश्चिमी पंक्ति की तरफ करजाली के महाराज सूरतसिंह और शिवरती के महाराज गजसिंह की हवेलियां हैं। उसी पंक्ति में बनेड़ा के राजा गोविन्दसिंह की हवेली है। जिसके आगे घण्टाघर की मीनार और कोतवाली का मकान है। इसके आगे पश्चिमी पंक्ति में "शीतलनाथ का जैन मंदिर" है। उसके

---

1. कविराज श्यामलदास का। (सं०)
2. सैनिकों के निवास। (सं०)

चलने से हौज के चारों तरफ वर्षा का सा रूप दिखाई देना, कहीं जालीदार गुम्बदी हौज में जल-जन्तुओं का क्रीड़ा करते नजर आना, कहीं शेर, चीते, तेंदुए और रीछ आदि जंगली जानवरों का बोलना, कहीं लोहे की जालियों की दीवारों के भीतर सांभर, रोज, हिरण, चौसींगे आदि तृणचर जंगली जानवरों का फिरना, कहीं तोता, मैना व चंडूल आदि अनेक प्रकार के पक्षियों का किलोल करना, कहीं विस्तृत हरे मैदानों में अंग्रेज, हिन्दुस्तानी और मेवाड़ियों का गेंद खेलना, कहीं गुलाबी व किरमिची फूलों वाली हरी बेलों का वृक्षों को ढकना, कहीं मेवा और फलदार वृक्षावली की शोभा का दिखाई देना और जगह-जगह वृक्षों की सघन छाया में बेंच और कुर्सियों का रखा जाना इत्यादि। इस सुहावनी छटा और शोभा को देखकर सैर करने वालों का दिल यह नहीं चाहता कि वहां से उठ कर चला जाये।

इस बाग के भीतर महाराणा जवानसिंह द्वारा बनवाये हुए महल और उनसे अग्निकोण की तरह एक ऊंचे स्थान पर "विक्टोरिया-हाल" नामक बहुत ही सुन्दर नमूने का महल वर्तमान महाराणा ने बनवाया है, जिसके सामने जुबली की यादगार में श्रीमती महाराणी विक्टोरिया की पाषाणमयी मूर्ति है। महल के भीतर अद्भुत वस्तु संग्रहालय (म्यूजियम), प्राचीन वस्तु संग्रहालय और पुस्तकालय बने हुए हैं, जहां जन साधारण को सैर करने की अनुमति है। इस बाग के उत्तरी फाटक की पूर्वी पंक्ति में मेहता राय पन्नालाल की बाड़ी और पश्चिमी पंक्ति में कवि लोगों का मदरसा (चारण-पाठशाला) है, जिसको मैंने (कविराजा श्यामलदास) उमराव सरदारों के चन्दे और त्याग के रुपयों से वैकुण्ठवासी सज्जनसिंह की आज्ञानुसार बनवाया है। इसमें चारणों के लड़के पठन-पाठन करते हैं। वर्तमान महाराणा ने इस पाठशाला में पढ़ने वालों का प्रबन्ध राज्य की तरफ से कर दिया है। यहां से थोड़ी दूर आगे बढ़ कर वायव्य-कोण में राज मुद्रण-यंत्रालय (छापाखाना) है। शहर के दक्षिण में दो मील की दूरी पर "गोवर्द्धन-विलास" नामक स्थान है, जहां महाराणा स्वरूपसिंह द्वारा बनवाये हुए महल, तालाब व आखेट-स्थल है। यहां धायभाई माना द्वारा बनवाया हुआ एक पुराना कुण्ड है, जिसको उसने विक्रमी 1799 (हि० 1155=ई० 1742) में तैयार करवाया था। "गोवर्द्धन-विलास" से पूर्व दिशा की तरफ शमीना-खेड़ा ग्राम के मध्य में गुसाईयों का एक प्रतिष्ठित मठ है। यह मठ महाराणा

कर्णसिंह ने और "अमर-महल" महाराणा अमरसिंह प्रथम ने तैयार करवाये। "प्रीतम-निवास" में चीनी का काम व "सूरज-चौपाड़" में नक्काशी का काम महाराणा जगतसिंह द्वितीय द्वारा, "स्वरूप-विलास" महाराणा स्वरूपसिंह द्वारा, "माणक-महल", "भीम-विलास" और "मोती-महल" ये तीनों महाराणा कर्णसिंह द्वारा बनवाये हुए हैं। लेकिन "माणक-महल" में स्वरूपसिंह ने, "भीम-विलास" में भीमसिंह ने और "मोती-महल" में जवानसिंह ने काच आदि का नया काम करवाया। सिलहखाना, राय आंगन, "नोका की चौपाड़" पांडे की ओवरी और "पाणेरा की नौ चौकियां, ये सभी भवन महाराणा उदयसिंह ने बनवाये थे। पाणेरा के ऊपर का "चन्द्र-महल" और "दिल-कुशाल" (दिलखुश हाल) की चौपाड़, महाराणा कर्णसिंह द्वारा, बड़ी चित्रशाली दिलकुशाल का परछना, महाराणा संग्रामसिंह द्वारा, "शिव-प्रसन्न" व "अमर-विलास" (बाड़ी महल) महाराणा अमरसिंह द्वितीय द्वारा और "खुश-महल" महाराणा स्वरूपसिंह द्वारा तैयार करवाया हुआ है। महलों के प्रारम्भिक समय में कोठार का मकान महाराणा उदयसिंह द्वारा बनवाया हुआ है।

दक्षिण की तरफ़ "शम्भु निवास" नामक अंग्रेजी-तर्ज[1] का एक महल महाराणा शम्भुसिंह का बनवाया हुआ है। पहले इस जगह महाराणा जगतसिंह प्रथम द्वारा बनवाये हुए "कुंवरपदा" के महल थे, जिसका एक पुराना हिस्सा शम्भु निवास के सामने अब तक विद्यमान है। इन महलों का विस्तार वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह के समय में भी होता रहा। लेकिन वर्तमान महाराणा ने "शम्भु निवास" के दक्षिण की तरफ एक बड़ा वैभवशाली अर्धवृत्ताकार महल तैयार करवाया है, जिसका काम अभी तक जारी है। इस महल को सभी महलों का दक्षिणी रक्षक स्थान (दुर्ग या किला) कहना चाहिये। इसके दक्षिण में बड़ी पाल का बांध और उसके पीछे महाराणा सज्जनसिंह द्वारा बनवाया हुआ देखने योग्य "सज्जन-निवास" नामक एक बड़ा बाग है। जिसमें नीलकंठ महादेव का प्राचीन स्थान, "पाला गणेश का मंदिर" तथा अनेक घुमावदार पट्टियां अर्थात् सड़कें, जिनके दोनों तरफ से अनेक प्रकार के फूलों की सुगंध आती हुई और कहीं हौजों के बीच में बनी धातुमयी मूर्तियों के हाथ से चलते हुए फुहारे, कहीं फुहारों के

---

1. अंग्रेजी स्थापत्य कला। (सं०)

हैं। कुण्ड के बीच में एक ऊंचा चबूतरा है, जिसको लोग गंधर्वसेन की छत्री कहते हैं। इसके विषय में यह भी कहावत प्रसिद्ध है कि, गुहिलोत राजा की भक्ति के कारण इस कुण्ड में गंगानदी का एक स्रोता आया है। इस कारण लोग इस कुण्ड में स्नान करने का बड़ा महात्म्य समझते हैं। कुण्ड के समीप महाराणा अमरसिंह प्रथम की बड़ी छत्री है, जिसकी नींव विक्रमी 1677 (हि० 1029=ई० 1620) में डाली गई थी और इस श्मशान क्षेत्र में यही पहली छत्री है। इसके बाद अग्निकोंण की ऊंची कुर्सी पर महाराणा कर्णसिंह और महाराणा जगतसिंह की दो छोटी छत्रियां हैं, जिनके दक्षिण में महाराणा अमरसिंह द्वितीय की बड़ी छत्री है। जिसके सामने संग्रामसिंह द्वितीय की बड़ी छत्री है, जिसके गुम्बद का काम अधूरा ही रह गया है। उस के निकट महाराणा भीमसिंह, महाराणा जवानसिंह, महाराणा सरदारसिंह, महाराणा स्वरूपसिंह, महाराणा शम्भुसिंह और महाराणा सज्जनसिंह की श्वेत पाषाण की बनी हुई छत्रियां हैं। इस महासती-श्मशान-क्षेत्र के चारों ओर दीवार खिची हुई है। बाहर की तरफ उत्तर और वायव्य कोंण में रियासती लोगों की छोटी-छोटी कई छत्रियां हैं।

महासती के स्थान से पूर्व में महाराणा राजसिंह प्रथम के समय लाली ब्राह्मणी द्वारा बनवाये हुए सराय, मंदिर और बावड़ी हैं। उससे आगे उसी समय की "सुन्दरबाव" नामक बावड़ी है, उसके आगे पुरानी सड़क पर बैड़वास ग्राम में कायस्थ फतहचन्द द्वारा बनवाई हुई सराय, बावड़ी और एक पहाड़ी पर "खेमज-माता का मंदिर" है। इसके उत्तर में नई सड़क पर महाराणा शम्भुसिंह के धायभाई बदनमल द्वारा बनवाई हुई बावड़ी है, जिसके आगे नई सड़क के दक्षिण में महाराणा राजसिंह प्रथम की महाराणी रंगरसदे द्वारा बनाई हुई त्रिमुखी बावड़ी और पास में ही झरणा की सराय है। इसके आगे देवारी का दरवाजा और अग्निकोंण में उदयसागर नामक बड़ा तालाब है, जिसकी नींव महाराणा उदयसिंह ने विक्रमी 1616 (हि० 966=ई० 1559) में डाली थी। इससे आगे अग्निकोंण में "चेजा का घाटा" और बाहर गिरवे में "घासा का तालाब" है, जो विक्रम सम्वत् के 10वें शतक से पहले का बनवाया हुआ मालूम होता है तथा ऊंटाला ग्राम[1] में शीतला माता का प्रसिद्ध मंदिर है। उदयपुर से करीब 16 मील दूर ईशान कोंण में

---

1. वर्तमान वल्लभनगर। (सं०)

अमरसिंह द्वितीय के समय में गुसाईं हरनाथगिरि और उसके शिष्य नीलकण्ठ-गिरि ने बनवाया था। इस स्थान को प्रदान किये हुए मुआफी के ग्राम[1] व प्रतिष्ठा आदि अभी तक बहाल है। इसके समीप शहर की तरफ "नागों का अखाड़ा" है, जहां नागा संन्यासी लोग चातुर्मास में ठहरते हैं।

कृष्णपोल और उदयपोल दरवाजे के बीच में शहर के बाहर अग्नि-कोण में "जंगी-फौज" की "बारकें" (रहने के स्थान) हैं। शहर से ईशान-कोण की तरफ "शारणेश्वर महादेव" का मंदिर है, जिसकी चौखट में रावल अल्लट के समय का उत्कीर्ण एक पाषाण लेख विक्रमी 1010 (हि० 342= ई० 953) का लगा हुआ है। यह पाषाण लेख पहले विष्णु-मंदिर में लगा हुआ था। इस मंदिर के समीप सम्पूर्ण शहर का "श्मशान क्षेत्र" है। शहर के पूर्व में एक मील की दूरी पर नदी के किनारे "चम्पा बाग" नामक एक अच्छा बाग महाराणा कर्णसिंह द्वारा बनवाया हुआ है और किनारे पर "हरसिद्धि-देवी का मंदिर" उसी समय का बना हुआ है। इस मंदिर की सीढियों पर रावल शक्तिकुमार के समय का एक पाषाण लेख लगा हुआ है। "चम्पा बाग" के अग्निकोण की तरफ सड़क के दक्षिणी किनारे पर महाराणा जगतसिंह की राजकुमारी रूपकंवर द्वारा बनवाई हुई सराय और पुष्टि-मार्ग का मंदिर है। शहर से पूर्व में आहाड़ ग्राम की पुरानी सड़क पर महा-राणा जगतसिंह द्वितीय की महाराणी भटियाणी द्वारा बनवाई हुई सराय, बावड़ी और पुष्टि-मार्ग का मंदिर है।

शहर से पूर्व की तरफ 2 मील दूर आहाड़ नामक ग्राम है जो चित्तौड़ से पहले गुहिलोतवंश के राजाओं की पुरानी राजधानी था। वहां बड़ी-बड़ी ईंटें और प्राचीन इमारतों के पाषाण अभी तक मिलते हैं। अब यह एक छोटासा ग्राम रह गया है, जिसमें विक्रम संवत् की 15 वीं सदी के अन्तिम समय में बने हुए जैन मन्दिर हैं। दो मंदिरों में विक्रम के 10 वें शतक के पाषाण लेख भी लगा दिये हैं जो नरवाहन और शक्तिकुमार के समय के मालूम होते हैं। इस ग्राम के लगभग पूर्व में "गंगोद्भव" का तीर्थ महा-राणाओं का श्मशान क्षेत्र है, जिसको "महासती" कहते हैं। यह गंगोद्भव का कुण्ड चित्तौड़ से पहले गुहिलोतों की राजधानी के समय का बनाहुआ बतलाते

---

1. सांसण गांव (कर मुक्त दिये गये ग्राम)। (सं०)

की चोटी पर राष्ट्रसेना देवी का मंदिर है। नवरात्रि में इस देवी को 1 महिष और 2 बकरे महाराणा की तरफ से और 9 महिष व 18 बकरे देवलाड़ा के राज की तरफ से बलिदान चढ़ाये जाते हैं। एकलिंगेश्वर के मंदिर से एक मील से कुछ दूर, बाप्पा रावल का समाधि स्थान है। इसी तरह एकलिंगेश्वर के चारों तरफ कई पुराने मंदिर मिले हैं और उनमें प्रशस्तियां भी प्राप्त हुई हैं, जिनका वर्णन प्रसंग-स्थल पर लिखा जायेगा।

2. **जिला मगरा**—यह जिला उदयपुर के दक्षिण-पश्चिम में पहाड़ों से घिरा हुआ महादुर्गम स्थल वाला है। वर्तमान में "सराड़ा" इसका मुख्यालय है, जहां एक छोटी-सी गढ़ी है, जिसके अन्दर जिला अधिकारी रहता है। उदयपुर से दक्षिण में लगभग तीस मील दूर चावण्ड ग्राम में, महाराणा प्रतापसिंह प्रथम ने अपने निवास के लिये महल बनवाये थे, जो अब खण्डहरों के रूप में पड़े हुए हैं। डूंगरपुर की सीमा पर वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह द्वारा बनवाया हुआ भोराई का किला है। पश्चिमी भोमट में राघवगढ़ का किला है। जिसको देलवाड़ा के राज्य राघवदेव ने करीब 125 वर्ष पहले बनवाना चाहा था, लेकिन वह पूरा नहीं हो पाया और राघवदेव उदयपुर में मारा गया। सिरोही, पालनपुर और ईडर के इलाकों तक भोमट का जिला कहलाता है। इसमें भोमिया लोगों के छोटे-बड़े कई ठिकाने हैं। ये लोग राजपूत और भीलों में हुए अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धों से पैदा हुए माने जाते हैं। बाकी भीलों की अनेक पालें नाहर, भांडेर, ऊपरेट, छप्पन, मेवल और डांगल नाम के जिलों में आबाद हैं। इस जिले में जयसमुद्र नामक एक बड़ा भारी और अनुपम तालाब महाराणा जयसिंह द्वितीय का बनवाया हुआ है। जिसको ढेबर भी कहते हैं। इसका वृतान्त महाराणा जयसिंह के विवरण में लिखा जायेगा। इसी जिले में धूलेव ग्राम के अन्दर ऋषभदेव का एक बड़ा प्रसिद्ध मंदिर है, जो जैन और वैष्णवों का बड़ा तीर्थ स्थल है। जिसका वर्णन किया जा चुका है।

3. **जिला छोटी सादड़ी**—यह जिला मेवाड़, मालवा और पहाड़ी जिले की सीमा पर सिंधिया, प्रतापगढ़ और नीम्बाहेड़ा के इलाकों से मिला हुआ है। हाकम के रहने का मुख्यालय छोटी सादड़ी, शहरपनाह के भीतर बसा हुआ है। इसके दक्षिण की तरफ पहाड़, तीनों ओर मैदान और खाली जमीन है। इस जिले में कोई स्थान वर्णन करने योग्य नहीं है।

महाराणा का आखेट स्थान "नाहर-मगरा" है, जहां महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय द्वारा वनवाये हुए महल थे। लेकिन महाराणा शम्भुसिंह और महाराणा सज्जनसिंह ने वहां कई नये महल और आखेट स्थान बनवा कर इसको अति रमणीक बना दिया है।

उदयपुर से करीव 6 कोस उत्तर में एकलिंगेश्वर की पुरी है। यह स्थान वहुत पुराना है। पहले जव चित्तौड़ में राजधानी नहीं थी, उससे भी पहले गुहिल कुल के राजा इसी नागदा गाँव में राज्य करते थे। इन राजाओं में से वाप्पा रावल ने एकलिंगेश्वर की स्थापना करके चित्तौड़ का राज्य लिया। तव से यह मंदिर प्रसिद्ध हुआ। लेकिन मालवा और गुजरात के मुसलमानों के आक्रमणों से मंदिर को दो तीन वार क्षति पहुँची। तव महाराणा मोकल, महाराणा कुम्भकर्ण और महाराणा रायमल ने समय-समय पर जीर्णोद्धार करवाया। मंदिर के चारों ओर सुदृढ़ दीवार महाराणा मोकल ने वनवाई तथा मंदिर और मूर्ति का जीर्णोद्धार महाराणा रायमल ने करवाया। वड़े मंदिर के दक्षिण की तरफ नाथ लोगों की पुरानी समाधि और मदिर आदि भी हैं। गोस्वामी के निवास का मठ भी पुराना है, परन्तु वाद में उसका जीर्णोद्धरा होता रहा है। वड़े मंदिर से उत्तर की तरफ ऊंचे चवूतरे पर विध्ववासिनी देवी और हारीत ऋषि[1] के मंदिर हैं। मंदिर से पूर्व में इन्द्र-सरोवर तालाव जिसको भो ेला भी कहते हैं, विद्यमान हैं। यह तालाव इसी मंदिर के साथ वनवाया गया था। जिसका महाराणा मोकल और महाराणा राजसिंह प्रथम ने जिर्णोद्धार करवाया। मंदिर से नैऋ्ऱत कोण में "वाघेलाव-तालाव" है, जो महाराणा मोकल ने अपने भाई वाघसिंह के नाम पर वन-वाया था। इस तालाव के पश्चिमी किनारे पर नागदा ग्राम के पुराने खण्डहर अव तक विद्यमान हैं। खुमाण रावल की समाधि पर वना हुआ दो सभा मण्डप का मन्दिर अव तक विद्यमान है। ग्राम के नैऋ्ऱत कोण में विक्रम की 15 वीं सदी के दो जैन मंदिर हैं, जिनमें वड़ी-वड़ी मूर्तियां हैं। तालाव के नैऋ्ऱत किनारे पर दो वहुत अच्छे पुराने मंदिर हैं, जिनको लोग "सास वहू के मंदिर" कहते हैं। इन मंदिरों में नक्काशी का काम दर्शनीय है। इन भवनों की शैली से पता चलता है कि, ये विक्रम की 11 वीं सदी में वनाये गये होंगे। एकलिंगेश्वर के मंदिर से पूर्व की तरफ एक खड़े पहाड़

1. प्रशस्तियों में इस नाम को हारीत राशि लिखा है।

कुकड़ेश्वर महादेव का मंदिर है। मंदिर से दक्षिण में भीमगोड़ी नामक एक बड़ा गहरा पुष्कर (जलाशय) और कुम्भसागर तालाव तथा तुलजा भवानी का मंदिर और कुण्ड है। यहां से आगे आला-कावा के स्थान का खण्डहर और "नौ कोठा मकान" की दीवार के निशान हैं, जो भीतरी दुर्ग बनवाने के इरादे से बनवीर ने बनवाया था। इस दीवार के पश्चिमी बुर्ज और दालान के बीच में "शृंगार चंवरी" नामक जैन मंदिर है। इसके दक्षिण में महाराणा के पुराने महल त्रिपोलिया और "बड़ी पोल" नामक दरवाजा है। बड़ी पोल दरवाजे से पूर्व में "सात बीश देवरी" के नाम का एक पुराना जैन मंदिर है। महलों के दक्षिणी फाटक के पूर्वी कोने पर महाराणा कुम्भकर्ण द्वारा बनवाया हुआ एक कीर्ति स्तम्भ और महलों की पूर्वी सीमा के निकट "कुम्भश्यामी का मंदिर" है, जिसको महाराणा कुम्भकर्ण ने विक्रमी 1505 (हि० 852=ई० 1428) में बनवाया था। महलों के दक्षिणी फाटक के बाहर "महासती" स्थान है, जो पहले चित्तौड़ के राजाओं का "दाध-स्थल" था। इस में समाधिश्वर महादेव का एक मंदिर है, जिसको 1485 विक्रमी (हि० 831=ई० 1428) में महाराणा मोकल ने बनवाया था। इसके पास जैन मंदिर के आधार स्थल पर गुसाईंयों का मठ है। उसके दक्षिण में गोमुख नामक झरना और हौज है। इसकी सीढ़ियां उतरते समय दाहिने हाथ की तरफ गुफा के रूप में एक छोटी-सी मढी है, जो महाराणा रायमल के समय में जैनियों ने बनवाई थी। इसके दक्षिण में राव पत्ता का तालाव और पत्ता व जयमल की हवेलियां हैं। इस तालाव के पूर्व से भीमलत नामक पानी का एक बड़ा पुष्कर (चारों ओर पत्थरों से बंधा हुआ जलाशय) है। पत्ता की हवेली से दक्षिण में कालिका-देवी का प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर है। इस मंदिर के दक्षिण में "पद्मिनी का तालाव" और महल है, जिनका जीर्णोद्धार वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह ने करवाया था। इसके पश्चिम में ऊंचाई पर सलूम्बर, रामपुरा और बूंदी वालों की हवेलियों के खण्डहर हैं तथा दक्षिण में "बादशाह की भाखी" (कैदखाना)[1] और उसके पूर्व में घोड़ा दौड़ाने का चौगान और गोरा बादल के गुम्बद हैं। इसके दक्षिण में चित्रंग मोरी का तालाब है। यहां से आगे चलने पर कोई प्रसिद्ध स्थान नहीं है।

---

1. यहां पर बादशाह कैद किया गया था।
–महाराणा सांगा ने मालवा के सुलतान महमूद खिलजी को यहां कैद किया था। (सं०)

4. **जिला चित्तौड़गढ़**—इसका पूर्वी भाग पहाड़ी और शेष मैदानी है। हाकम (जिला अधिकारी)के रहने का मुख्यालय चित्तौड़गढ़ में है। इस किले की नींव का वर्णन विस्तार सहित नहीं मिल सकता। लेकिन इतना माना जाता है कि, मौर्य (मोरी) जाती के राजा चित्रंग ने यह किला बनवा कर अपने नाम पर इसका नाम चित्रकोट रखा था। चित्तौड़ उसी का अपभ्रंश है। मोरी वंश के अंतिम राजा मान मोरी से विक्रमी 791(हि०116=ई०734)में यह किला गुहिलोत राजाओं के अधिकार में आया, जो आज तक उन्हीं के अधिकार में है।

इस किले में पहुँचने के दो बड़े मार्ग और दो खिड़कियां हैं। पश्चिमी मार्ग आसानी से चढ़ने के योग्य है। इस मार्ग से चढ़ते समय बीच में 7 दरवाजे पड़ते हैं— 1–पाडलपोल, 2–भैरवपोल, 3–हनुमानपोल, 4–गणेशपोल, 5–लछमनपोल, 6–जोड़लापोल और 7–रामपोल। इन दरवाजों में से भैरवपोल को 1938 विक्रमी (हि० 1298=ई० 1881) में वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह ने सड़क की मरम्मत करवाने के समय गिरवा दिया था। क्योंकि वह पहले से ही गिरा हुआ था, केवल दोनों तरफ की शाखाओं के निशान शेष रह गये थे, जो रास्ते को चौड़ा करने के लिये गिरा दिये गये। शेष 6 दरवाजे विद्यमान हैं। पहले इस मार्ग पर ऊपर का एक ही दरवाजा था, जिसका नाम "मानपोल" है। लेकिन महाराणा कुम्भकर्ण ने रामपोल, जोड़लापोल, गणेशपोल और हनुमानपोल ये चार दरवाजे नये बनवाये और शेष दरवाजे बाद में बनवाये गये हैं। भैरवपोल और हनुमानपोल के बीच में राठौड़ कला और ठाकुर जयमल की छत्रियां हैं, जिनको बदनौर के ठाकुर प्रतापसिंह ने बनवाया है। ये दोनों सरदार यहां पर विक्रमी 1624 (हि० 975= ई० 1567) में अकबर से लड़कर मारे गये थे। पाडलपोल के बाहर देवलिया वालों के बड़े रावत बाघसिंह का चबूतरा है, जो अकबर से बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर काम आया था। ऊपर की तरफ रामपोल के भीतर आमेट के रावत पत्ता का चबूतरा है, जो अकबर से लड़कर बहादुरी के साथ मारा गया था।

किले के उत्तरी हिस्से में "रत्नेश्वर तालाब" है और उसके ऊपर हींगोला आहाड़ा के महल हैं। इसके पीछे "राठौड़िया तालाब" है और उसके आगे अन्नपूर्णादेवी का मंदिर और कुण्ड है। इनके पास पश्चिम में

(कीर्ति स्तम्भ) आदि का वर्णन एशियाटिक सोसाइटी वंगाल के सन् 1887ई
के जर्नल में विस्तार सहित लिखा है। इस में विक्रमादित्य के सम्वत् से श
अनुमानित 200 वर्ष पहले की दो प्रशस्तियां मिली हैं। जिनमें एक छोट
टुकड़ा तो नगरी में और दूसरी वड़ी प्रशस्ती वहां से डेढ़ कोस की दूरी प
"घोसूंडी" ग्राम की वावड़ी में मिली है। इससे पता चलता है कि, य
वहुत पुराने समय में वसा हुआ था।

5--रासमी, 6–सहाड़ा और 7–भीलवाड़ा मैदानी प्रदेश है। यहां
भूगोल में लिखने योग्य कोई वड़े या प्राचीन स्थान भी नहीं हैं। केवल रास
जिले में वनास नदी के किनारे "मातृकुंडियां" नामक तीर्थ स्थान है। व
एक महादेव का मन्दिर है। जहां वैशाखी पूर्णिमा को मेला लगता है। इस
अतिरिक्त करेड़ा गांव में एक वहुत वड़ा और पुराना जैन मंदिर है।

8. जिला मांडलगढ़—यहां का किला अजमेर के चौहानों के समय
वना हुआ वहुत पुराना है। इसके विषय में किंवदन्तियां तो कई तरह
प्रसिद्ध हैं। जैसे कितने ही लोगों का मत है कि, मांडिया नामक एक भी
को वकरियां चराते समय पारस[1] मिला था। उस पर उसने अपना त
घिसा और वह तीर स्वर्ण का हो गया। यह देखकर वह उस पारस
चांनणा नामक गूजर के पास ले गया, जो अपनी मवेशी चरा रहा था। व
जाकर कहा कि, इस पत्थर पर घिसने से मेरा तीर खराव हो गया है। गूज
समझदार था। उसने भील से पत्थर ले लिया और यह किला वनवा
उसी भील (मांडिया) के नाम पर इसका नाम मांडलगढ़ रखा तथा व
सारा दान-पुण्य करके अपना नाम भी प्रसिद्ध किया। उससे वहां पर सा
और सागरी नामक पानी के दो निवाण वनवाये। जिसमें से सागर
सीढ़ियों पर (चांनणा गूजर) की देवली विद्यमान है। यद्यपि सागर पहले
ही गहरा था, लेकिन सुना है कि, मेहता अमरचन्द ने उसमें दो कुएं खुदवा
उसे अटूट पानी वाला वना दिया। अव इसका पानी कभी नहीं टूटता
सागरी का पानी अकाल में टूट जाता है। ये दोनों निवाण पहाड़ के एक
दर्रे के वीच में दीवार डालकर वनवाये गये हैं। किले के अग्निकोण अ
उत्तर में जालेसर और देवसागर नामक तालाव तथा पूर्व में तलहटी में व

1. पारस एक तरह का काल्पनिक पत्थर है, जिसके छूने से लोहे
स्वर्ण हो जाना मानते हैं।

किले की पूर्वी दीवार में सूरजपोल नामक दरवाजा है। इस रास्ते पर अवशेष तो तीन दरवाजों के हैं, लेकिन दो विद्यमान हैं। दरवाजे के भीतर नीलकण्ठ महादेव का प्राचीन मन्दिर और उसके उत्तर में एक पुराना "कीर्ति-स्तम्भ" है, जो विक्रम की 10 वीं सदी में जैनियों ने बनवाया था। किले की दक्षिण की खिड़की बंद है। उत्तर की तरफ वाली "लाखोटा" नामक खिड़की खुली है। पश्चिम की तरफ पहाड़ से मिला हुआ कस्बा बसा हुआ है, जिसको तलहटी बोलते हैं। किले की पाडलपोल दरवाजे के बाहर इस कस्बे में महाराणा उदयसिंह की महाराणी झाली द्वारा बनवाई हुई एक बावड़ी है, जिसको "झालीबाव" कहते हैं। इसके अतिरिक्त दो पुराने कुण्ड भी हैं। जो जमीन में दब गये थे। लेकिन मेहता शेरसिंह के पुत्र सवाईसिंह ने उन्हें ठीक करवाया। पता नहीं प्रारम्भ में ये कुण्ड किसने और कब बनवाये थे? कस्बे में एक पाठशाला और दूसरा अस्पताल, ये दोनों मकान नये बनवाये गये हैं। यह कस्बा एक छोटी शहरपनाह (परकोटा) से रक्षित है। पश्चिम की तरफ गंभीरी नदी पर अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र खिज्रखां द्वारा बनाया हुआ पुल अब तक विद्यमान है। इस नदी में बारहों महीना पानी बहता है। चित्तौड़ कस्बे के पश्चिम में रेल की सड़क बनी हुई है, जो विक्रमी 1938 (हि० 1298=ई० 1881) में खोली गई थी। चित्तौड़ का दुर्ग हिन्दुस्तान में बहुत पुराना और लड़ाई के लिये अधिक प्रसिद्ध है। इसमें पानी के 84 निवाण बतलाते हैं। परन्तु 12 तो हमेशा भरे रहते हैं। इनमें से कितने एक तो ऐसे है, कि उनका पेंदा आज तक किसी ने नहीं देखा।

किले के उत्तर में 3 कोस की दूरी पर "नगरी" नामक गांव है, जहां पहले बहुत पुराना शहर था। ऐसा सुना गया है कि, मोरी गोत्र के राजाओं ने इस शहर को छोड़ कर चित्तौड़ का किला बनवाया था। यहां पुराने मकानों के कई अवशेष और प्राचीन सिक्के भी मिलते हैं। इसके पश्चिम की तरफ भग्न शहरपनाह के चिन्ह हैं। इस चार दीवारों के भीतर बड़े-बड़े पत्थरों से बना हुआ एक स्थान है, जिसको वहां वाले "हाथियों का वाड़ा" कहते हैं। लेकिन यह बौद्ध लोगों का स्तूप मालूम होता है। इसी तरह एक मीनार भी है, जिसको लोग "ऊभ-दीवट" बोलते हैं और कहते हैं कि, अकबर बादशाह ने अपनी सेना में प्रकाश रखने के लिए इसको बनवाया था। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। क्योंकि यह बौद्धों द्वारा बनवाया हुआ बहुत पुराना मीनार (स्तम्भ) मालूम होता है। हमने इस शहर, स्तूप और मीनार

लेकिन मन्दिरों के ढंग से इनकी प्राचीनता का आभास होता है। आबादी के दक्षिण में शहरपनाह से मिला हुआ पहाड़ की चोटी पर एक छोटा किला है, जिसमें किलेदार रहता है। किले में पानी के दो हौज हैं, जिसमें बारहों महीना पानी रहता है। शहर में एक अस्पताल और एक स्कूल (पाठशाला) भी है। जहाजपुर के उत्तर, पूर्व और दक्षिण की तरफ अधिकतर मीना लोगों की आबादी है, जिनका सविस्तार वर्णन हमने, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के सन् 1886 ई० के जर्नल में लिखा है। जहाजपुर परगने के दो उप-भाग हैं। पहला भाग बनास नदी के पश्चिम की तरफ किसान लोगों की आबादी का है। वहां की जमीन बिलकुल हमवार अर्थात् समतल है। पहाड़ का कहीं निशान तक दिखाई नहीं देता। दूसरा भाग बनास नदी के पूर्व की तरफ वाला है। जिसमें लोहारी, गाडोली, टीकड़, इटोंदा, शूकरगढ़ और सरसिया आदि मीनों की आबादी वाले बड़े-बड़े गांव है। इनमें सरकारी आदमियों के रहने के लिये छोटी-छोटी गढ़ियां बनाई गई हैं। यह जिला जयपुर और बूंदी की सीमा से लेकर कोटा, झालावाड़, सिंधिया और होल्कर की सीमा तक 'खैराड़" के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु इसके अन्तर्गत छोटे-छोटे ऊपरमाल, आंतरी, पठार, कुण्डाल और पचेल आदि कई जिले हैं। खैराड़ के उत्तरी हिस्से में अधिकांशतः मीनों की आबादी और दक्षिणी हिस्से में मीनों के साथ दूसरी जातियों के लोग भी बहुत निवास करते हैं। खैराड़ की जमीन की यह विशेपता है कि, इस प्रान्त में रहने वाले ब्राह्मण, बनिये और किसान भी बहादुर होते हैं, लेकिन वे निर्दयी और दुष्टता से भरे हुए होते हैं। इस जिले में कई जगह राजा सोमेश्वरदेव और उसके बेटे पृथ्वीराज चौहान के समय की प्रशस्तियां मिली हैं। हमको इस जिले की जानकारी प्राप्त करने में मेहता लक्ष्मीलाल ने अच्छी मदद दी, जो खोजबीन करने के समय, वहां का हाकम था।

10. जिला कुम्भलगढ़—इस जिले में विशेपकर पहाड़ी भाग है, कितनी एक जगह तो इसमें चौगान का नामो-निशान भी नहीं मिलता। किसान लोग पहाड़ को काट-काट कर बड़ी कठिनाई के साथ एक-एक, दो-दो बिस्वे का खेत निकालते हैं। यहां दो-चार बीघे का खेत तो बहुत ही कम नजर आता है। लेकिन मक्का, गेहूं, जौ, चना, शाल, माल और शमलाई आदि अनाज की बहुतायत के साथ पैदावार होती है। यहां गन्ने की खेती बहुत होती है। इस जिले में गाड़ी का नामो-निशान नहीं है। क्योंकि

कस्वा है। किले का पहाड़ पूर्व की तरफ ऊंचा और पश्चिम की तरफ नीचा झुक गया है। इस किले में एक रास्ता और दो खिड़कियां हैं। उत्तर की तरफ "नकटिया का चौड़"(चढ़ाव),[1] वीजासण का पहाड़ है। लड़ाई के समय इन पहाड़ों पर भी मोर्चा बन्दी की जाती है। इस किले पर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी ने दो-तीन बार आक्रमण किया तथा दिल्ली के मुगल बादशाह अकबर ने विक्रमी 1624 (हि० 975 = ई० 1567) में इस किले पर अधिकार कर लिया था। यह किला खैराड़ जिले की शरण का मुकाम समझा जाता है। मांडलगढ़ से पूर्व और दक्षिण तथा ईशान कोण के क्षेत्रों में पुराने खण्डहर हैं और कई जगह पुरानी प्रशस्तियां मिली हैं। मैनाल, भैंसरोड़ और बीजोलिया आदि क्षेत्रों में कई पुराने खण्डहर विद्यमान हैं।

9. जिला जहाजपुर—इस जिले का मुख्यालय जहाजपुर, एक पहाड़ की तलहटी में चार दीवारी के भीतर वसा हुआ है। यह बहुत पुराने समय में बसाया गया था। राजा जन्मेजय ने इस स्थान पर सर्पों को होमने के लिये यज्ञ किया था। इसी कारण से इसका नाम यज्ञपुर रखा गया। जहाजपुर इसी का अपभ्रंश है। कस्बे के अग्निकोण की तरफ $1\frac{1}{2}$ मील की दूरी पर "नागेला-तालाव" है, जिसकी पाल पर नाग होमे गये थे। उसी तालाव से एक छोटी नदी निकली है; जिसका नाम "नागद्रही" है। जहाजपुर का कस्वा इसी नदी के किनारे पर वसा हुआ है। हाकम के रहने की जगह में "नौ चौकियां" नामक बड़ा ऊंचा और सुदृढ़ एक मकान बना हुआ है[2]। जिसका वैकुण्ठवासी महाराणा ने जीर्णोद्धार करवा कर बहुत अच्छा बनवा दिया है। नौ चौकियों के बाद में नागद्रही के किनारे पर एक बहुत अच्छा बगीचा बना हुआ है। इसी नदी के पूर्वी किनारे, एक स्थान पर "12 देवरा" अर्थात् "बारह मंदिर" बने हुए हैं। इन मंदिरों के विषय में कहा जाता है कि, ये बहुत पुराने हैं। इनके सम्बन्ध में यह भी वर्णन मिलता है कि, यहां पर राजा जन्मेजय ने अपने हाथ से सोमनाथ महादेव की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी, जो अब तक विद्यमान है। यद्यपि हमको यहां कोई प्रशस्ति नहीं मिली,

---

1. यह पहाड़ मांडलगढ़ से आधा मील की दूरी पर स्थित है। इसकी घाटी के चढ़ाव पर किसी अज्ञात शत्रु की नाक काटी गई थी, इस कारण यह नकटिया का चौड़ कहा गया।
2. प्रसिद्ध है कि, यह मकान अलाउद्दीन खिलजी ने बनवाया था।

र्जों सहित खड़ी है। इस दीवार के भीतर शहर के टूटे-फूटे मन्दिर और
कानों के खण्डहर नजर आते हैं। नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर और वेदी
। मंडप, ये दोनों पुराने ढंग के हैं। कहते हैं कि, किले की प्रतिष्ठा के समय
र मण्डप में विधि पूर्वक हवन किया गया था।

इसी जगह से कटारगढ़ नामक छोटे से किले का चढ़ाव शुरू होता है।
ह छोटा किला बड़े किले के अन्दर, एक पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है।
सका पहला दरवाजा भैंवरपोल, दूसरा नींबूपोल, तीसरा चौगानपोल, चौथा
ागड़ापोल, पांचवा गणेश पोल और उसके आगे गुम्बद युक्त महाराणा के
हल हैं। यहां देवी का भी एक स्थान है। उक्त स्थान से कुछ सीढ़ियां
ढ़ कर पहाड़ की चोटी पर महाराणा उदयसिंह की महाराणी झाली का
हालिया अर्थात् महल है, जिसका वर्णन महाराणा उदयसिंह के विवरण में
नखा जायेगा। इसी भीतरी किले "कटारगढ़" के उत्तर में झालीबाव
बावड़ी) और "मामादेव" का कुण्ड है। इस कुण्ड के ऊपर एक हौजनुमा
ार दीवारी के अन्दर महाराणा कुम्भकर्ण द्वारा स्थापित की हुई देवताओं
ी मूर्तियां हैं और चारों तरफ की ताकों में श्यामवर्ण के पाषाणों पर खुदी
ई प्रशस्तियां हैं, जिनमें से कुछ तो नष्ट हो गईं और कुछ शेष हैं। इनमें से
क पाषाण उदयपुर में विक्टोरिया हाल के बरामदे में हमने रखा है। किले
 पश्चिम की तरफ का रास्ता "टीडाबारी" है, जिससे कुछ दूरी पर महा-
ाणा रायमल के पुत्र कुंवर पृथ्वीराज की छत्री है। जहां उसका देहान्त हुआ
ा। किले के भीतर भी मामादेव के समीप जहां इनका दाह-कर्म हुआ था,
क छत्री बनी हुई है। किले के उत्तर की तरफ पैदलों का रास्ता "टूट्या का
ोड़ा" और पूर्व की तरफ "हाथियागुढा की नाल" में उतरने का एक रास्ता
, जो "दाणीवटा" कहलाता है। इस किले में पहले शहर बसा हुआ था, जो
अब बिलकुल वीरान हो गया है, केवल खंडहर पड़े हैं। विक्रमी 1505 से
1515 (हि० 852 से 862=ई० 1448 से 1458) तक इस किले का
निर्माण हुआ था। इसका सविस्तार विवरण महाराणा कुम्भकर्ण के वर्णन में
लिखा जायेगा।

केलवाड़ा के उत्तर में, मारवाड़ में जाने का मार्ग "हाथियागुढ़ा की
नाल" है। उसमें कोठरवड़ के समीप एक दरवाजा है, जहां के प्रबंध के लिये
कुछ चौकीदार और सिपाही रहते हैं। केलवाड़ा से लगभग 5 कोस की दूरी

वहां गाड़ी चल ही नहीं सकती। माल असबाव पहुँचाने व लाने के लिये केवल बैलों व गधों से काम लिया जाता है। लेकिन एक परम्परा यहां ऐसी है कि, हर एक गांव में भील लोगों (जिनको वेठिया कहते हैं) के दो-चार से लेकर पचास-साठ तक घर जरूर होते हैं और प्रत्येक गांव में उनके वेठ (वेगार) के वदले "मुआफी" की थोड़ी-सी जमीन भी होती है। गांव के किसान व जागीरदार और खालसा का हर एक कर्मचारी इन वेठियों के घर में जितने आदमी व औरतें हों, उनके सिर पर गठड़ियां देकर उन्हें यदि सौ कोस तक ले जावे तो भी वे इन्कार नहीं करते। परन्तु उनको रोटी खिला दी जावे या रोजाना आधा सेर के हिसाव से जौ अथवा मक्की भत्ते के रूप में दे दी जावे। गांव में रहने की स्थिति में भी उनसे खेती, इमारत, मवेशी चराने अथवा घास कटवाने का काम लिया जाता है। इस बात में ये लोग अपने मालिक तथा अधिकारी की कभी शिकायत नहीं ररते। वल्कि ऐसी सेवायें करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

इस जिले की प्रजा केन्द्र में अथवा जिले के हाकम के पास फरियाद (दुहाई) करने से डरती है। जमाने के परिवर्तनों से अब कुछ-कुछ इसका क्रम प्रारम्भ होने लगा है। इनकी बोलचाल के शब्दों में भी मेवाड़ी वोली से कुछ भिन्नता है। अर्थात् इस प्रान्त के लोग बैल को "टाला", भैंस को "डोवा", वकरी को "टेटू या टेटा" चलने को "हींडना", बुलाने को "सादना" या हादना" आदि शब्दों का उच्चारण करते हैं।

किला कुम्भलगढ़ जिसको कुम्भलमेर भी कहते हैं, चित्तौड़गढ़ के वाद दूसरी श्रेणी का है। इसकी चोटी समुद्र की सतह से 3568 फीट और नीचे की नाल से 700 फीट ऊंची है। केलवाड़ा गांव में जिले के हाकम का मुख्यालय है। जहां जैनियों के पुराने मंदिर और वाणमाता का एक प्रसिद्ध मंदिर है। यहां से एक मार्ग पश्चिम की तरफ पहाड़ी नाल में से होकर घाटी के मुंहाने पर पहुंचता है। जहां किले का "आरोट पोल" नामक पहला दरवाजा है। राज्य की तरफ से प्रवन्ध के लिए यहां सिपाही व जागीरदार लोग रहते हैं। यहां से लगभग एक मील की दूरी पर "हल्लापोल" नामक दरवाजा आता है। फिर थोड़ी दूर आगे चलकर "हनुमान पोल" दरवाजा है। इस दरवाजे पर हनुमान की एक मूर्ति है, जिसे नागौर के मुसलमानों से जीतकर महाराणा कुम्भकर्ण लाये थे। वहां से आगे "विजयपोल" दरवाजा है, जिसके पास ही किले की मजवूत और ऊंची दीवार नये ढंग के

राजपूताना में पञ्चद्राविड़ थोड़े और पञ्चगौड़ अधिक रहते हैं।

क्षत्रीय (राजपूत)–पूर्वकाल अर्थात् विक्रम के 12वें शतक से लेकर इस समय तक ब्राह्मणों की तरह क्षत्रियों में भी बहुत-सी पृथक-पृथक जातियां हो गई हैं। जिनकी गणना करना कठिन है। अलग-अलग जातियां बनने के क्रम में क्षत्रियों के कुल 36 वंश नियुक्त हुए; जिनमें 16 सूर्यवंशी, 16 चंद्रवंशी और 4 अग्निवंशी थे। इन छत्तीस वंशों में से बहुत से तो नष्ट हो गये और कई वंशों की उप-शाखाओं को लोगों ने अलग वंश समझ लिया। इस गड़बड़ से 36 वंश की गणना का क्रम भंग हो गया। कुमारपाल चरित्र नामक काव्य में 36 वंश की गणना लिखी है। परन्तु उसमें भी कई शाखाओं को अलग वंश मान लिया है। कर्नल टॉड ने कई ग्रन्थों से चुन-चुन कर सूचियां बनवाई और उसके बाद अपने विचारों के अनुसार एक नई सूची तैयार की। उसमें भी हमारे विचार से गड़बड़ है। इसलिये हमने ऐसे सन्देह में पड़ना ठीक नहीं जानकर, उक्त 36 वंशों का क्रम ढूंढना छोड़ दिया। तथा वर्तमान समय में लोग क्षत्रियों के जिन प्रचलित वंशों की शाखा और प्रतिशाखाओं को मानते हैं, उन्हीं का लिखना उचित समझा, जो इस प्रकार हैं[1]—

सीसोदियों की 25 शाखा— 1. गुहिलोत, 2. सीसोदिया[2], 3. पीपाड़ा, 4. मांगलिया, 5. मगरोपा, 6. अजबरचा, 7. केलवा,

---

1. यह नहीं समझना चाहिये कि हमारी लिखी हुई शाखा और प्रतिशाखा बहुत ही ठीक है। क्योंकि इनमें से भी बहुत-सी प्रतिशाखाएं नष्ट हो गई हैं। कई नवीन कल्पना की हुई का भी भ्रम है, इस विषय में कुछ न कुछ लिखना आवश्यक समझ कर लिख दी गई हैं।

2. यहां पर सीसोदिया वंश की 25 शाखाओं में उक्त वंश के नाम की, जो एक शाखा लिखी गई है, उसका यह अर्थ है कि कुछ राजपूत इस वंश में ऐसे हैं, जो केवल सीसोदिया नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इसी तरह चौहान, पंवार, झाला आदि वंशों में भी जहां-जहां वंश के नाम की शाखा आवें, ऐसा ही समझना चाहिये।

पर चारभुजा के समीप मारवाड़ में जाने का एक बड़ा रास्ता "देसूरी की नाल" है। इस रास्ते से गाड़ी भी आ जा सकती है। पहाड़ की यह श्रेणी अजमेर की तरफ चली गई है। इसके पश्चिम में मारवाड़ और पूर्व में मेवाड़ है। पहले इस श्रेणी के पश्चिम में गोडवाड़ का परगना पुराने समय से मेवाड़ में शामिल था, लेकिन 100 वर्ष पूर्व मारवाड़ में चला गया है[1]।

इस श्रेणी में मेवाड़ का पश्चिमोत्तर विभाग अर्थात् मेरवाड़ा नामक जिला अंग्रेजी सरकार को कुछ समय के लिये प्रबन्ध हेतु सौंपा हुआ है, जिसका मुख्यालय "छावनी ब्यावर" अर्थात् "नया शहर" है।

हमने जिन जिलों का वर्णन लिखा है, वे वैकुण्ठवासी महाराणा द्वारा बनाये हुए हैं। इस समय सेटलमेण्ट अर्थात् "माल-गुजारी का स्थायी प्रबन्ध" करते समय इन्हीं परगनों में से भौगोलिक स्थिति के कारण काट-छांट कर कुछ अतिरिक्त परगने बना दिये गये हैं, जैसे कपासन, हुरड़ा, राजनगर, खमणोर, रींछेड़, सायरा आदि। तथा लहसाड़िया का पहाड़ी जिला मगरे से अलग करके गिरवे में, कणेरा का क्षेत्र सादड़ी से अलग कर चित्तौड़ में मिला दिया गया है। इसी तरह से कई गांव एक परगने से दूसरे परगने में मिला कर, उसे ठीक कर दिया गया है। इनके अतिरिक्त कुम्भलगढ़, भीतरी गिरवा, लहसाड़िया और मगरा जिलों में मालगुजारी का पक्का बन्दोवस्त अभी तक नहीं हुआ है।

(10) **कौमी हालात** (जातियों का वर्णन)

अब हम मेवाड़ में निवास करने वाली जातियों का संक्षिप्त में विवरण लिखते हैं। पहले मैं, अपनी जाति का हाल लिखूंगा, क्योंकि ग्रंथ के प्रारम्भ में ग्रंथकर्ता के इतिहास की आवश्यकता होती है।

मैं, (कविराजा श्यामलदास) चारण जाती में पैदा हुआ हूं। पाठक लोग सर्वप्रथम यह आवश्यक समझते होंगे कि, चारण कौन, कैसे और कहां से हैं? तो यह जान लेना चाहिये कि यह जाति सृष्टि सृजन काल से ही पाई

---

1. महाराणा अरिसिंह (1760-1772 ई०) के समय सन् 1770 ई० में जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने गोडवाड़ का परगना अपने राज्य में मिला लिया था। (सं०)

20 हराहर, 21. कांधल, 22. वलहट, 23. चूड़ामणा, 24. माहेड़ा।

वड़गूजरों की 2 शाखा—वड़गूजरों की दो शाखाओं में पहली वड़गूजर और दूसरी शकरवाल है।

ईंदों की 2 शाखा—वड़गूजरों के समान ईंदा राजपूतों की भी दो शाखाएं हैं, ईंदा और दूसरे पड़िहार।

भाटियों की 7 शाखा—1. भाटी, 2. जादव, 3. माहेड़ा, 4. जाड़ेचा, 5. वोधा, 6. लहुवा, 7. भाड़ेचा।

गौड़ों की 6 शाखा—1. गौड़, 2. ऊंठेड़, 3. शालियाना, 4. तंवर; 5. दुहाणा, 6. वाडोणा।

जिन वंशों की दूसरी शाखा नहीं जानी गई, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

डोडिया, डावी, टॉक, कछवाहा, पंडीर, वांलो, गोरवाल, जोइया, गोयोल, गरवय्या, टामेर, आदेण, कुनणिचा, दायमा, मोरी, गोहिल, चूह, धेगा, वल्ला, गोरवा, वगड्या, नकूप और खरवड़ आदि।

राजपूतों की स्त्रियां पर्दे में रहती हैं। प्राचीन समय में इनके यहां यह प्रथा नहीं थी, परन्तु जव हिन्दुस्तान में मुसलमानों का शासन स्थापित हुआ, तव से क्षत्रियों ने भी पर्दे की प्रथा प्रारम्भ कर दी। इसके पीछे निम्न कारण थे—प्रथम तो उनकी स्त्रियों के वरावर अपनी स्त्रियों की इज्जत दिखलाना, क्योंकि मुसलमान लोग वाहर फिरने वाली स्त्रियों को हीनदृष्टि से देखते थे। दूसरा मुसलमानों के दुराचरण से औरतों को वचाना, जो उनके घरों में रूपवती स्त्रियों को देखकर उनकी इज्जत पर हमला करने को तैयार होते थे, जिनमें हजारों राजपूत लड़कर मारे जाते और उनकी स्त्रियां भी अपना धर्म वचाने के लिये आग में जल मरतीं। इस समय पर्दे की प्रथा ऐसी दृढ़ हो गयी है कि, यह नवीन मालूम नहीं होती। राजपूत लोग प्राचीन काल से भारतवर्ष के राजा, ईमानदार सत्यवक्ता, वीर और उपकार को

8. कूंपा, 9. भीमल, 10. धोरण्या, 11. हूल, 12. गोधा, 13. आहाड़ा, 14. नांदोत, 15. सोवा, 16. आसायच, 17. वोढा, 18. कोढा, 19. करा, 20. भटेवरा, 21. मूदोत, 22 घालर्‌या, 23. कुचेला, 24. दुसंध्या, 25. कड़ेचा ।

चौहानों की 24 शाखा— 1. खीची, 2. हाड़ा, 3. बालेछा, 4. सोनगरा, 5. मादड़ेचा, 6. मालवण, 7. बील, 8 वागड़ेचा, 9. सांचोरा, 10. वागट, 11. बागड़िया, 12. चालशखा, 13. वयबघण, 14. जोजा, 15. भमरेचा, 16. वालोत, 17. वरड़, 18. देवड़ा, 19. चन्दाणा, 20. सेपट्या, 21. पामेचा, 22. चीबा, 23. गहरवा, 24. चौहान ।

परमारों की 35 शाखा— 1. परमार, 2. सोढा, 3. सांखला, 4. चावड़ा, 5. खेह, 6. खेजड़, 7. सागर, 8. पड़कोड़ा, 9. भायल, 10. भीमल, 11. काला, 12. परमार, 13. कावा, 14 कालमुहा, 15. डोडा, 16. ऊमट, 17. धांधू. 18. सूमरा, 19. रेवर, 20. कालेज, 21. काहर्‌या, 22. वाढेल, 23. ढीढा. 24. ढेबा, 25. वेहका, 26. बोढ, 27. गहला, 28. जीपा, 29. शायर्‌या, 30. रांकमुहा, 31 ढींक, 32. सूढा, 33. फटक, 34. वरड़, 35. हूमड़ ।

झालों की 9 शाखा— 1. झाला, 2. मकवाणा, 3 रेणवा, 4. लूणगा, 5. खरलायत, 6. वालायत, 7. बूहा, 8. पीठड़, 9. वापड़ ।

राठौड़ों की 13 शाखा—1. दानेसुरा, 2. अभयपुरा, 3. कपालिया, 4. करहा, 5. जलखेड़िया, 6. वुगलाना, 7. अरह, 8. पारकेश, 9. चंदेल. 10. वीर, 11. वर्‌यावर. 12. खैरवंदा, 13. जैवन्त ।

सोलंखियों की 24 शाखा—1. सोलंखी, 2. वालणोत, 3. वाघेला, 4. टहल, 5. कुटवहाड़ा, 6. आलमोच, 7. शेप, 8. खेड़ा, 9. तवड़क्या, 10. महलगोता, 11. वोघेला, 12. भाशूण्डा, 13. वड़शूढा, 14. राणक्या, 15. दलावड़ा, 16. भाड़ग्या, 17. वीरपरा, 18. नाथावत, 19. खटड़,

कृषि और गो-रक्षा आदि कर्म करते हैं और कितने एक अपना कर्म छोड़ कर नौकरी में लग गये हैं। बहुत-सी अन्य जातियों ने बौद्ध और जैन मतावलम्बी होने के कारण अहिंसा धर्म स्वीकार कर कृषि, वाणिज्य को ही अपना मुख्य धर्म समझ लिया। इनके दो घट बन गये अर्थात् एक वह जिन्होंने कायस्थों से अहलकारी पेशा[1] छीन कर उसे अपना पेशा बना लिया। दूसरे वे जिन्होंने वाणिज्य ही को अपना पेशा समझा। ये ही लोग महाजन तथा बनिया कहलाते हैं। इन लोगों की 84 शाखाऐं हैं, जिनमें से राजपूताना में बारह प्रसिद्ध हैं। प्रथम श्रीश्रीमाल, दूसरी श्रीमाल और तीसरी ओसवाल, जिनके आपस में शादी सम्बन्ध होता है और इन तीनों की 1444 उप-शाखाऐं हैं। चौथी पोरवाल, जिसकी अनन्त उप-शाखाऐं हैं। पांचवीं माहेश्वरी जिनकी 72 उप-शाखाऐं हैं। छठी हूंमड़, जिनकी 18 उप-शाखाऐं, सातवीं अगरवाल, जिनकी साढ़े 17 उप-शाखाऐं, आठवीं नागदा, जिनकी 13 उप-शाखाऐं, नवीं नरसिंहपुरा, जिनकी 27 उप-शाखाऐं, दसवीं चित्तौड़ा, जिनकी 27 उप-शाखाऐं हैं। ग्यारहवीं ब रवाल और बारहवीं बीजावर्गी।

इन जातियों के अतिरिक्त श्रावगी और खण्डेलवाल मिल कर एक शाखा और कहलाती है, जिसकी 84 उप-शाखाऐं हैं। ये सभी शाखाओं वाले खाना-पीना शामिल कर सकते हैं, परन्तु कन्या का लेना-देना अपनी शाखाओं में ही करते हैं। शादी और गमी के रिवाज सर्व-साधारण हैं। केवल किसी-किसी बात में कुछ फर्क होता है, विशेष नहीं। ये लोग खर्च में बचत करने और धन की वृद्धि करने में सर्वश्रेष्ठ गिने जाते हैं। इनमें माहेश्वरी आदि कोई-कोई वेदाम्नायी और बाकी सब जैन मतावलम्बी हैं। इनमें से कितनी एक शाखाओं में एक बीसा और दूसरे दशा नामक दो भेद हैं। उपर्युक्त सभी शाखाओं में पासवान स्त्री से पैदा होने वाले "पांचड़े" कहे जाते हैं।

कायस्थ—ये लोग अधिकांशतः अहलकार पेशा होते हैं। बंगाल में बाबू, पश्चिमोत्तर देश में लाला और राजपूताना में पंचोली और ठाकुर भी कहलाते हैं। इनके यहां शादी और गमी का व्यवहार सब में एक-सा है। प्राचीन काल से इनका परम्परागत (पैतृक) धंधा अहलकारी ही चला आता

1. प्रशासनिक विभागों में कार्यरत कर्मचारी वर्ग का कार्य (सं०)।

मानने वाले होते आये हैं। दगावाजी इन लोगों में बहुत कम थी। क्योंकि पहले समय में दगावाजी से मारने वाले की पूरी निन्दा करते थे। परन्तु मुसलमानों के आने के वाद इन में भी थोड़ी-थोड़ी दगावाजी फैल गई। तो भी इतना तो इन लोगों में पिछले समय तक भी वना रहा कि, शस्त्र डाल कर हाथ जोड़ने वाले को न मारना और धर्म गुरुओं तथा षट्दर्शन आदि को न लूटना इत्यादि।

क्षत्रिय लोग मांस खाते और मद्य पीते हैं। मेवाड़ के राजा और उनके सजातीय सीसोदिया पहले मद्यपान नहीं करते थे। परन्तु महाराणा अमरसिंह द्वितीय से इनमें भी मद्यपान करने का प्रचार हुआ। महाराणा स्वरूपसिंह ने निज पुरातन रीति के अनुसार सभी सीसोदियों से मद्यपान छुड़ा दिया था, लेकिन उनका देहान्त होते ही, इसका पुनः प्रचलन हो गया। उत्तम घराने की स्त्रियां हर रंग के वस्त्र, भूषण और हाथी दांत, नारियल तथा लाख की चूड़ियां दोनों हाथों के पहुँचे और भुजों पर पहिनती हैं। इनके पहिनने का घाघरा (लहंगा) 30 फुट तक घेरदार और ओढ़ने की साड़ी 12 फुट लम्वी होती है। पहले कुछ स्त्रियां तो यथा-विधि अपने पति के मरने पर उसके साथ ही जल जाती थीं। परन्तु सती प्रथा वंद होने के वाद से वे विधवापन में पूर्ण सन्यास का व्रत पालन करती हैं। मद्य, मांस त्याग देने के अतिरिक्त कच्चे रंग को तो वे छूती भी नहीं। साथ ही पक्के रंग में भी आल (हरी) के रंग की या काली साड़ी और साधारण सफेद छींट अथवा पक्के लाल या काले रंग का कम घेर वाला घाघरा पहिनती हैं। खाने-पीने में उत्तम और स्वादिष्ट भोजनों का परित्याग कर देती हैं। किसी प्रकार का आभूषण नहीं पहिनतीं और अपनी शेष आयु धार्मिकवृती से पूरी करती हैं।

क्षत्रियों में अधिकांशतः बड़ा लड़का वाप की समस्त सम्पत्ति का स्वामी होता है और शेष छोटे लड़के जितने हों, उनको पैतृक सम्पति में से गुंजाइश के अनुसार खर्च के लिये थोड़ा-थोड़ा हिस्सा दिया जाता है, लेकिन उनको वड़े भाई की सेवा करनी पड़ती है।

महाजन—इस देश में महाजनों को वैश्य वर्ण में गिनते हैं, जो पुराने समय से वैश्य नहीं है, यहां के अहीर आदि पुराने वैश्य हैं। इनमें से कितने एक तो

ईडर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, और प्रतापगढ़ आदि राज्यों के पहाड़ी प्रदेशों में विशेषकर यही प्रजा बसती है। इनका प्राचीन इतिहास मिलना बहुत कठिन है। इन लोगों के गांव बड़े विस्तार में बसे हुए होते हैं। हर एक भील की झोंपड़ी बांस, लकड़ी और पत्तों की बनी हुई अलग-अलग पहाड़ी टेकरियों पर होती हैं और उस झोंपड़ी की सीमा के भीतर जो खेत, पहाड़ तथा जंगल हों, उसका अधिकारी वही भील होता है। एक झोंपड़ी से कुछ दूरी पर उसी तरह दूसरे भील का भोंपड़ा होता है। इसी तरह कई झोंपड़े मिलकर एक "फला" कहलाता है। ऐसे कई फले मिल कर एक गांव होता है। जिसको वे लोग "पाल" बोलते हैं। यह पाल कई वर्गात्मक भील अर्थात् वर्ग-भीलों में आबाद होती है। हर एक फले में एक या दो भील मुखिया और कुल पाल का एक सरगिरोह (सरदार) भील "गमेती" कहलाता है। उसी गमेती के माध्यम से सम्पूर्ण पाल के मुकदमों और दूसरे वाद-विवादों में कार्यवाही की जाती है। वह गमेती अलग-अलग फलों के मुखियों के माध्यम से इस काम को करता है। फला के मुखिया और पाल के गमेती की शक्ति कम हो जाने पर, जो शक्तिशाली और बहादुर होता है, वह पहले वाले को पदच्युत कर स्वयं मुखिया और गमेती बन जाता है।

ये लोग सूअर आदि सभी जानवरों के साथ गाय तक को खा जाते हैं, परन्तु फिर भी हिन्दू होने का अभिमान रखते हैं। सौगन्ध खाने की प्रथा इनके यहां इस तरह है कि, साफ जमीन पर गोला बना कर, उसमें तलवार रख देते हैं और उस पर अफीम रख कर सौगन्ध करने वाला व्यक्ति उस में से थोड़ी-सी अफीम खा लेता है। इसके अतिरिक्त दूसरा तरीका यह है कि, ऋषभदेव को अर्पण की हुई थोड़ी-सी केसर पानी में घोलकर सौगन्ध करने वाला पी लेता है। फिर वह शपथ के विरुद्ध कभी कार्य नहीं करता। बड़े शहरों के समीपवर्ती स्थानों में रहने वाले भीलों के अतिरिक्त दूसरे भील लोग बहुत कम झूठ बोलते हैं। इन लोगों में भविष्य का विचार बिलकुल नहीं है। ये लोग शराब पीकर पुरानी बात याद कर आपस में लड़ मरते हैं। यदि उसमें किसी पाल का भील मारा जावे तो, उस पाल वाले भील मारने वाले की पाल से बदला मांगते हैं। यदि मवेशी या रोकड़ रुपया देकर मारने वाले पंचायत से फैसला कर लेवें तो ठीक, अन्यथा बदला मांगने वाली पाल के लोग अपने शत्रु की पाल पर आक्रमण कर देते हैं और आपस में लड़ाई

है। इसी कारण इनका मसीश (स्याही के मालिक)[1] नाम रखा गया था। इनकी कई शाखाऐं हैं—भविष्य पुराण में इनकी प्रमुख 8 शाखाऐं—1. श्रीमद्र, 2. नागर, 3. गौड़, 4. श्रीवत्स, 5. माथुर, 6. अहिफण, 7. सौरसेन, 8. शैवसेन लिखी हैं। इसके अतिरिक्त वर्णावर्ण अंवष्ठादि और भी कई भेद हैं। दक्षिण राढीय घटक कारिका में इनकी 8 शाखाऐं इस तरह पर लिखी हैं—1. दत्त, 2. सेन, 3. दास, 4. कर, 5. गुह, 6. पालित, 7. सिंह, 8. देव। फिर इनकी 72 उप-शाखाऐं हैं और प्रमुख रूप से ये गौड़ देश में ही माने गये हैं। वंगजकुलाचार्य-कारिका में अग्निपुराण के संदर्भ में लिखा है कि, इनका मूल पुरुष होम था। जिसका प्रदीप और उसका कायस्थ हुआ उसके 3 पुत्र पैदा हुए—1. चित्रगुप्त, 2. चित्रसेन, 3. विचित्र। इनमें से चित्रगुप्त तो स्वर्ग में, विचित्र पाताल में और चित्रसेन पृथ्वी पर रहा चित्रसेन के 7 पुत्र हुए— 1. वसु, 2. घोष, 3. गुह, 4. मित्र, 5. दत्त 6. करण, 7. मृत्युञ्जय। इनमें से छठे करण के 3 पुत्र—1. नाग 2. नाथ, 3. दास और सातवें मृत्युञ्जय के 4 पुत्र— 1. देव, 2. सेन 3. पालित, 4. सिंह हुए। इस तरह करण और मृत्युञ्जय को छोड़क बारह भेद हुए, जो प्रमुखतया वंग देश में माने गये हैं और इनकी 87 उप शाखाऐं गिनी गई हैं। इसके अतिरिक्त देशाचार के भेद से भी कई शाखाऐं व उप-शाखाऐं हो गई हैं। राजपूताना के कायस्थ मांस मिश्रित भोजन क कम उपयोग करते हैं।

हमने विस्तार के भय से यह वर्णन संक्षिप्त रूप में लिख दिया है क्योंकि यदि हर एक जाति का अलग-अलग वर्णन थोड़ा बहुत भी लिखें, त बहुत कुछ विस्तार होना सम्भव है। इसलिए उदाहरण के रूप में मुख जातियों का थोड़ा-सा वृतान्त लिख कर बाकी को छोड़ देते हैं। लेकिन ज जातियां, जंगली गिनी जाती हैं, जैसे भील, मीना आदि उनका थोड़ा-स वृतान्त नीचे लिखते हैं।

भील—राजपूताना के सभी हिस्सों में कम और अधिक संख्या भील बसे हुए हैं, लेकिन इनका प्रमुख गिरोह आबू के पहाड़ से लेक नर्मदा नदी के किनारे तक फैला हुआ है। उदयपुर, सिरोही, पालनपुर

---

1. लेखनी का धनी। (सं०)

ले लेवे, अथवा भीलनी औरत भी पहुँचाने को साथ हो जावे, तो यात्री को लूटमार का कुछ भय नही रहता।

कोई व्यक्ति देश में विद्रोह करके पाल में आ बैठे तो, उसकी मदद के लिये भी सैकड़ों आदमी तैयार हो जाते हैं। राज्य की सेना या थानेदार अथवा राजपूत लोग जब किसी समय इन लोगों पर धावा करते हैं, तो राजपूत इनको कांडो[1] कह कर पुकारते हैं। जो कोई भील किसी सवार के घोड़े को मार लेता है, वह "पाखर्या" के नाम से अपनी जाति में बड़ा बहादुर कहलाता है। यदि किसी भील को सरकारी व्यक्ति या राजपूत पाडा (भैंसा) कहे तो वह बहुत खुश होता है, मानों उसको सिंह की पदवी दे दी गई है।

इस जाति में एकता बहुत है। यदि कोई एक भील किलकारी करे, तो उसी समय सम्पूर्ण पाल के भील चाहे वे उसके दोस्त हों या शत्रु, दौड़ कर मौके पर आ उपस्थित होते हैं और दूर से एक की किलकारी सुनकर दूसरा भी किलकारी करता है। मदद के लिये इस तरह किलकारी की आवाज कई कोसों तक पहुंच जाती है।

जब इनके लड़के-लड़कियों की मंगनी अर्थात् सगाई होती है, तो बकरा या भैंसा मार कर महमानों को खिलाते हैं और शराब पिलाते हैं। यदि मंगनी की हुई लड़की की शादी दूसरी जगह हो जावे, तो पहला पति उस दूसरे पति से स्त्री के बदले में उसका अथवा उसके किसी सम्बन्धी का जीव लेता है, अथवा पंचायत द्वारा मवेशी या नकद रुपया ठहर कर, आपस में फैसला हो जाता है। मंगनी की हुई लड़की का बाप "दापे" का मामूली रुपया लेता है। लेकिन ऐसी छीना-झपटी में पहला पति, अपनी इच्छानुसार मनमाना रुपया वसूल करता है। यदि ब्याही हुई औरत को कोई दूसरा ले जावे, तो भी ऊपर लिखे अनुसार ही फैसला होता है। विधवा औरत द्वारा किसी के साथ नाता कर लेने पर पहले पति के सम्बन्धी नाता करने वाले

---

1. संस्कृत में बाण नाम कांड है और बाण धारण करने वाले को कांडी कहते हैं। लेकिन अब यह शब्द भीलों को हीनता के साथ पुकारने में बोला जाता है।

होने के समय ऊंची आवाज से "फाइरे-फाइरे" कह कर किलकारी मारते हैं। हजारों आदमियों की ऐसी आवाजों से पहाड़ गूंज उठते हैं। ये लोग ढाल, तलवार और तीर कमछा रखते हैं। किसी-किसी के पास बन्दूक भी रहती है परन्तु बारूद आदि सामान पूरा नहीं मिलता। लड़ाई के समय दोनों ओर की औरतें अपने-अपने गिरोह को पानी, रोटी और लड़ाई के लिये पत्थर पहुँचाती हैं। ये लोग अपनी जाति की औरतों पर हथियार नहीं चलाते, चाहे वे दोस्त की हों या शत्रु की। लड़ाई के समय ढाल वाला सबसे आगे रह कर शत्रु के तीर को अपनी ढाल से रोकता है और उसके पीछे तीर, कमछा वाले पांच-पांच या दस-दस आदमी रह कर तीर चलाते हैं। सेना को रसद पहुंचाने वाले विभाग की इनको आवश्यकता नहीं होती। उनकी स्त्रियां प्रत्येक घर से दो-दो, चार-चार रोटी लाकर खिला जाती हैं। यदि अनाज की कमी हो तो, महुआ पका कर ले आती हैं और यह भी न हो तो भैंसा, बकरा आदि जानवर को मारकर उसके मांस का एक-एक टुकड़ा हर एक भील को दे देती हैं। जिसको वे आग पर सेक कर खा लेते हैं, इसके लिये नमक, मिर्च की भी जरूरत नहीं होती। दोनों तरफ के गिरोहों में चाहे कोई जीते या नहीं, उनके गुरु, जो बाबा कहलाते हैं वे, अथवा तीसरे पाल के भील बीच में आकर लड़ाई को शान्त करा देते हैं। फिर पंचायत के रूप में कुछ दे दिला कर, फैसला कर देते हैं।

रास्ता लूटने अथवा चोरी करने को ये लोग दोष नहीं समझते। कहते हैं कि, ईश्वर ने हमको इसीलिये पैदा किया है। ये लोग यात्रियों का खून निकाले बिना उसका सामान नहीं लेते। यदि यात्री कहता है कि, हमको कष्ट दिये बिना सामान ले लो। तो वे कहेंगे कि, "क्या हमको खैरात (दान) देता है ?" इस तरह वे यात्रियों को पत्थर, तीर या तलवार से थोड़ा बहुत घायल कर सामान छीन लेते हैं। लेकिन यह भी उनका स्वभाव है कि, यदि कोई यात्री कितना ही सामान लेकर किसी भील के घर जा पहुंचे, तो फिर उसको कुछ भी खतरा नहीं रहता। इस स्थिति में उस घर के जितने पुरुष व स्त्रियां होती हैं, वे सब उस यात्री की सुरक्षा के लिए जान देने को तैयार हो जाते हैं। साथ ही यात्री को अपने घर पर भूखा भी नहीं रहने देते। लेकिन उसकी सीमा से बाहर चले जाने के बाद, वे ही भील लुटेरों के साथ मिलकर उस यात्री को लूट लेता है। यदि यात्री उस भील को या किसी दूसरे को कुछ मजदूरी देकर अपने साथ "बोलावा" (पहुँचाने वाला)

डोगेल नेजोत और नीवोत। धनकावाड़ा के डामरों के गोत्र हैं—खैतात, रतनात, अमरात, मतात, जोगात, रंगात और नीक्यात।

पाण्ड़ा वाले कहते हैं कि, पहले हम गूजर थे और यहां आकर रहने के बाद भीलों में शादियां होने से भील हो गये, हमारी जाति बूज है।

महुवाड़ा, खेजड़ और सराड़ा वाले **पारगी** जाति के भील हैं। ये कहते हैं कि, हम चित्तौड़ की श्रेष्ठ जातियों में रहने वालों में से थे। वहां से हम लोग झाड़ोल में आकर रहने लगे। झाड़ोल से पीलाधर और वहां से खेजड़ में आये। जहां पर "रोझ" को मार कर उसका मांस खा लेने तथा भीलों में शादियां हो जाने से भील बन गये। हम लोग सराड़ा के "रखेश्वर महादेव" को मानते हैं।

देवरा के भीलों का कहना है कि, पहले हम सीसोदिया राजपूत थे। पहाड़ों में आकर रहने के समय से भील लोगों में विवाह करने लग गये। लेकिन खराब खाने में हम उनके शामिल नहीं होते। हम **आसिया** भील कहे जाते हैं। पडूणा, खरवड़, मांडवा, जावर, चीणावदा, सरू, लींबोदा, सींगटवाड़ा, अमरपुरा और देरवाम आदि पालों के भील अपने को **रावत पूंजा** के वंश में बतलाते हैं। कहते हैं कि, पहले हम सीसोदिया राजपूत थे। पहाड़ में आकर रहने के बाद सांभर[1] के भ्रम में गाय को मार कर खा जाने से भील हो गये। हम **खराड़ी** जाति के भील हैं और ऋषभदेव, भैरव, हनुमान तथा अम्बा-भवानी को मानते हैं।

बीकल वाले अपने को चौहान राजपूतों की हाड़ा शाखा में से बतलाते हैं। कहते हैं कि, हमारे मूल पुरुष हाड़ोती से आये थे। दुष्काल के कारण भ्रष्ट होकर भील हो गये। अब हम लोग **अहारी** नाम से प्रसिद्ध हैं। इसी तरह कागदर के भील अपने को **राठोड़** बतला कर बाद में भील होना मानते हैं। नठारा और वारापाल के भील **कटार** नाम से प्रसिद्ध हैं। पहले जमाने में ये अपने को चौहान राजपूतों में से होना बतलाते हैं। हमारे विचार से ऐसा अनुमान होता है कि, जब बौद्धों के भय से बहुत से क्षत्रिय अरावली पहाड़ में आकर छुपे, उसी समय राजपूतों का सम्बन्ध इन भीलों के साथ

---

1. जंगली अणचर पशु।

से मामूली "दापा" लेते हैं। इसके अतिरिक्त औरत का बाप भी कुछ हिस्सा लेता है। यदि कुंवारी लड़की को कोई उड़ा ले जावे तो, लड़की का बाप दापे का मामूली रुपया लेकर फैसला कर लेता है।

इन लोगों को खाने के लिये मक्की, ज्वार और जव तो कम मिलता है। कूरी, कोदरा, माल और शमलाई अधिक मिलता है, जो एक प्रकार का जंगली अनाज हैं। इसके अतिरिक्त महुआ को उबाल कर खाने में ये लोग बहुत खुश होते हैं। आम और महुआ इनकी बड़ी जायदाद है। सरकारी सेना की चढ़ाई के समय आम और महुआ काटे जाने पर ये लोग जल्दी ही समझौता कर लेते हैं। गमी के समय एक तरह के जंगली गृहस्थ संन्यासी इनके यहां क्रिया-कर्म करवाते हैं, जिनको ये लोग "बाबा" कहते हैं। द्वादशा (बारहवें दिन) अपनी जाति वालों को, प्रति मनुष्य जव की दो-दो बाटी देते हैं, अथवा एक अञ्जलि भर मक्की की घूघरी देकर शराब पिलाते हैं। कोई भैंसा मारकर मांस भी खिलाते हैं। इस समय हजारों भील-भीलनियों के झुण्ड एकत्रित होकर नाचते और गाते भी हैं।

इन लोगों में नाचने-गाने का बड़ा शौक होता है। यदि किसी भीलनी का पति अच्छा नहीं नाचता हो तो, ऐसा भी होता है कि, वह उसे छोड़ कर अच्छे नाचने वाले के साथ "नाता" कर लेती है। प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल 15 को प्रत्येक खानदान के लोग एकत्रित होते हैं और हर एक के शरीर में पूर्वजों का भाव आता है। ये सब आदमी शराब पीकर खूब उछलते-कूदते हैं। प्रत्येक कहता है कि, मैं अमुक पूर्वज हूँ और मुझे अमुक पाल वाले ने मार डाला था, जिसका बदला नहीं लिया गया। यदि उस हालत में उक्त पाल के भील उपस्थित हों तो, झगड़ा भी हो जाता है।

कल्याणपुर के जिले में ओवरी गांव के भील मसार कहलाते हैं, जो अपने विषय में यह कहानी बताते हैं कि, हम धार के परमार राजा की सन्तान हैं, जिसके दो बेटे—1. मसार और 2. डामर थे। जिनमें से मसार ओवरी में और डामर धनकावाड़ा में आकर रहने लगा। कुटुम्ब अधिक बढ़ जाने के कारण हम लोग खेती करते समय बैल की पूंछ मुंह में लेने से भ्रष्ट हो गये। इसके बाद में भीलों से विवाहादि सम्बन्ध करने से भील हो गये। तथा पिताओं के नाम से अलग-अलग गोत्र हो गये। जिनके ये नाम हैं—

सीसोदियों का ठिकाना मादड़ी है। ये लोग अपना कुर्सीनामा रावत नारंगदेव से मिलाते हैं और अपने को कानोड़ के भाई बतलाते हैं। इनकी जागीर में 23 गांव हैं और वर्तमान रावत का नाम रघुनाथसिंह है।

तीसरे सोलंखी पानवाड़ा और ओगणा वाले दो प्रमुख भोमिया हैं। पानवाड़ा की जागीर के गांवों की संख्या 48 है। ये लोग अपना कुर्सीनामा अनहलवाड़ा पट्टन के राजा सिद्धराज सोलंखी से जा मिलाते हैं। कहते हैं कि, लोहियाना छोड़कर हमारे पूर्वज 7 भाई, अर्थात्—1. अक्षयसिंह, 2. उदयसिंह, 3. अनोपसिंह, 4. जैतसिंह, 5. किसनसिंह, 6. जगतसिंह 7. रूपसिंह, पहाड़ में चले आये थे। इनमें से जैतसिंह की सन्तान तो ग्रासिया भील हैं और अक्षयसिंह आदि दूसरे भाईयों की सन्तान में हम हैं। पानवाड़ा वाला कहता है कि, पहले मेरे पूर्वज रावत कहलाते थे, परन्तु बादशाह के साथ हुई लड़ाईयों के समय अच्छी सेवा करने के कारण महाराणा प्रतापसिंह ने राणा की पदवी प्रदान की। यहां के वर्तमान जागीरदार का नाम अर्जुनसिंह है। ओगणा की जागीर में 45 गांव हैं। इस ठिकाने का वर्तमान जागीरदार अमरसिंह है, जो रावत कहलाता है। पानवाड़ा वाले और यह एक ही खानदान में से हैं। इसके अतिरिक्त पानवाड़ा के भाईयों में ऊमर्या आदीवास और ओड़ा नाम के तीन जागीरदारों के और भी ठिकाने हैं, जिनमें से ऊमर्या के अन्तर्गत 23 गांव, आदिवास के 10 गांव और ओड़ा के 11 गांव हैं, जो इनको पानवाड़ा के पट्टे से मिले हैं। ऊपर लिखे हुए ठिकानों की भायप में से छोटे-छोटे और भी जागीरदार हैं, लेकिन हमने उनके नाम, विषय विस्तार होने के कारण नहीं लिखे हैं।

मेवाड़ राज्य में 1947 विक्रमी (हि० 1308=ई० 1891) की मर्दुमशुमारी के अनुमान से 1,34,429 भील हैं, जिनका विवरण इस तरह से है—

भीलों की संख्या का अनुमान—

1.	उदयपुर	2,883
2.	गिरवा	12,393
3.	मगरा, सराड़ा	24,332
4.	सलूम्बर	8,253

हुआ होगा। लेकिन समय का पूरा पता लगाना कठिन है। अरावली के पश्चिमोत्तर हिस्से में रहने वाले भील गराया (ग्रासिया) कहलाते हैं और जिस जिले में वे रहते हैं, वह नायर के नाम से प्रसिद्ध है। नायर से दक्षिण की तरफ भांडेर का जिला है और उससे पूर्व में सोम नदी के किनारे तक का भाग छप्पन कहलाता है। उदयपुर से केवड़ा की नाल और जयसमुद्र के बीच वाले मनपोल नामक पर्वत से पूर्व का जिला मेवल के नाम से प्रसिद्ध है। केवड़ा की नाल से पश्चिमी जिले में रहने वाले भील और पूर्व में प्रतापगढ़ की सीमा तक रहने वाले मीना कहलाते हैं।

भोमिया—इन भीलों में रहने वाले भोमिया लोग अपने को राजपूत कहते हैं। लेकिन राजपूतों के साथ उनका खाना-पीना या शादी व्यवहार नहीं है। इन लोगों का सविस्तार विवरण बांसवाड़ा व प्रतापगढ़ के असिस्टेण्ट पोलिटिकल एजेण्ट कप्तान सी. ई. येट और कप्तान जे. सी. ब्रुक तथा कर्नल सी. के. एम. वाल्टर ने अपनी-अपनी पुस्तकों में लिखा है। ये लोग महाराणा की दी हुई जागीरें खाते हैं और उदयपुर में टांका भरने के अतिरिक्त फौज का काम पड़ने पर अपने-अपने समूहों के अतिरिक्त अपने अधिनस्थ भीलों को भी सेवा में उपस्थित करते हैं।

मेवाड़ के मगरा जिले में तीन जाति के भोमिया हैं, प्रथम चौहान, दूसरे सीसोदिया और तीसरे सोलंखी।

चौहानों में दो शाखाऐं हैं, एक बागड़िया और दूसरे पूर्विया। जवास, पाड़ा, छाणी और थाणा के भोमिया **बागड़िया** चौहानों से निकले हैं। जवास की जागीर में 70, पाड़ा की जागीर में 39, छाणी की जागीर में 7 और थाणा की जागीर में 7 गांव हैं। छाणी और थाणा जवास के भाई हैं। इनकी जागीरें भी जवास के पट्टे से ही निकली हुई हैं। ये लोग अपना कुर्सीनामा (वंशवृक्ष) माणकराव चौहान से मिलाते है। बागड़ियों में जवास का वर्तमान भोमिया रावत अमरसिंह, पाड़ा का रावत लछमणसिंह, छाणी का भोमिया गुमानसिंह और थाणा का पर्वत सिंह है। पूर्विया चौहानों का दूसरा ठिकाना, जुड़ा है। इस ठिकाने वाले अपने पूर्वजों का मैनपुरी से आना बतलाते हैं। जुड़ा के पट्टे में 135 गांव हैं और यहां का वर्तमान जागीरदार रावत जोरावरसिंह है।

बसा हुआ है। यह प्रदेश कुछ वर्ष हुए मेवाड़ से मारवाड़ में चला गया है। इन सब में जहाजपुर और मांडलगढ़ के मीने बहादुर और प्रसिद्ध लुटेरे हैं। ये लोग तलवार, कटार, तीर, कमच्छा और बन्दूकें भी रखते हैं। लड़ाई के समय जिस तरह भील किलकारी करते हैं उसी तरह खैराड़ के मीने हुडकारी याने हू हू हू हू की ध्वनि निकालते हैं। ढेड़ कह कर पुकारने में ये अपनी हीनता समझते हैं। ये लोग महादेव को अधिक मानते हैं। परिहार मीने सूअर नहीं खाते, बाकी सब प्रकार का मांस खाते हैं। परन्तु मोठीस आदि दूसरी जाति के मीने सूअर को भी खा जाते हैं। मोठीस मीने अपने पूर्वज माला नामक जुझार[1] को बहुत मानते हैं और अधिकांश उसी की सौगन्ध भी खाते हैं। सन् 1891 ई० की मर्दुमशुमारी में मेवाड़ के मीनों की संख्या 20,032 गिनी गई है।

मेरों का हाल—मेर लोग अपनी उत्पत्ति का विवरण कहानी के रूप में कहते हैं, जिस पर हम पूरा-पूरा भरोसा नहीं कर सकते। इस जाति के विवरण के बारे में अच्छी तरह से पता नहीं चल सका है। इसलिये "स्कैच ऑफ मेरवाड़ा" नामक पुस्तक से संक्षिप्त रूप में लिखा हुआ विवरण यहां प्रस्तुत किया जाता है—

मेर लोग अपनी उत्पत्ति अजमेर के राजा, पृथ्वीराज चौहान से बतलाते हैं। उनका कहना है कि, एक बार पृथ्वीराज ने बूंदी पर आक्रमण किया था। उस समय वहां से तीज की पूजा करती हुई आसावरी जाति की मीनी सहदे नामक एक लड़की को पकड़ कर ले गया और उसे हाडा राजपूत की लड़की जान कर अपने बेटे जोधलाखन को सौंप दी। जोधलाखन से उसके अनहल और अनूप नामक दो लड़के पैदा हुए। कई वर्षों बाद में जब जोधलाखन को सहदे की कुलीनता पर सन्देह हुआ और उसने इस विषय में पूछा तो, सहदे ने अपने को आसावरी जाति की मीनी होना बताया। इस पर जोध लाखन ने नाराज होकर सहदे को, उसके दोनों लड़कों सहित निकाल दिया। तब वह अपने दोनों पुत्रों सहित मेरवाड़ा जिले के चांग ग्राम में चंदेला गूजरों के पास आकर रहने लगी। पांच पीढ़ी तक अनहल और अनूप

---

1. युद्ध में वीरता पूर्वक लड़ता हुआ मारे जाने वाला बहादुर व्यक्ति। (सं०)

5.	कानौड़	4,166
6.	वानसी	4,204
7.	भाडोल	6,381
8.	धर्यावद	23,815
9.	खैरवाड़ा, भोमट	34,169
10.	कोटड़ा, भोमट	13,833
		1,34,429

मीनों का हाल—मीना मेवाड़ के जहाजपुर और मांडलगढ़ परगनों में अधिक संख्या में बसे हुए हैं। हमने इनका सविस्तार विवरण, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल (कलकत्ता) के जर्नल सन् 1886 ई० में लिखा है और यहां संक्षिप्त रूप में लिखते हैं—

"मीना" शब्द "मेवना" से बना है, जिसका अर्थ मेव का अथवा मेव के वंश का होता है। मेव (मेद) एक पुरानी जाति है, जो पहले मेवाड़ के "मेवल प्रदेश" में रहती थी। "ना" गुजराती भाषा का प्रत्यय है। जो हिन्दी भाषा के प्रत्यय की जगह पर आता है। मीनों की उत्पत्ति उत्तम वर्ण के पुरुष और नीच वर्ण की स्त्री से है। इन लोगों की 140 शाखाएँ हैं। जिनमें से नीचे लिखी हुई 17 शाखा प्रमुख हैं—

1. ताजी, 2. पवड़ी, 3. मोरजाला, 4. चीता, 5. हुणहाज, 6. वरड़, 7. वेगल, 8. कावरा, 9. डांगल, 10. घरटूद, 11. भूड़वी, 12. कीड़वा, 13. धोधींग, 14. भील, 15. वोपा, 16. मोठीस और 17. परिहार (पड़िहार)। इन 17 में से दो शाखा वाले अर्थात् मोठीस और परिहार मेवाड़ प्रदेश में बहुत फैले हुए हैं। इनके अतिरिक्त केवड़ा की नाल और जयसमुद्र के पूर्व में प्रतापगढ़ की सीमा तक रहने वाले भी मीना ही कहलाते हैं। किन्तु ये लोग भीलों में शादी कर लेते हैं। इसलिये इनको कितने ही लोग भील भी कहते हैं। परन्तु भीलों की और इन (मीनों) की चाल ढाल, रहन-सहन और कुछ-कुछ शरीर की वनावट में भी अन्तर है। मीनों का एक फिरका (गिरोह) उदयपुर से वायव्य कोण में गोडवाड़ के परगने में भी

त्या हो जाने के कारण भाग कर पहाड़ों में जा रहा और उससे मेरों
6 शाखाएँ निकलीं।

मोठीसों की उत्पत्ति के विषय में ऐसा कहते हैं कि, भायलां ग्राम में
ास नामक वैरागी के पास एक बनजारी औरत रहती थी, जिसके दो बेटे
हुए। उस बनजारी ने उनको रुगदास की संतान होना प्रकट किया। इस
रुगदास ने उस औरत को लड़कों सहित अपने यहाँ से निकाल दिया। तब
बनजारी एक ब्राह्मण के घर जाकर रहने लगी। जब लड़के बड़े हो गये
ब्राह्मण ने उन्हें गायें चराने पर नियुक्त किया। परन्तु उन लड़कों ने एक
मार डाली। इस कारण से उस ब्राह्मण ने भी उनको अपने घर से
ाल दिया। इन लड़कों की पांचवीं पीढ़ी में माकूत नामक एक व्यक्ति पैदा
। जिसने भायलां जिले के सभी ब्राह्मणों को मार कर, उस जिले पर
ा अधिकार कर लिया। माकूत को उसके वंश के (मोठीस) लोग अब तक
ा है। पहले ये लोग वर्ष में एक बार उसके मंदिर में गाय का बलिदान
ा करते थे। माकूत के हाथ से बचा हुआ एक ब्राह्मण बरड़ ग्राम के
ड़ मीनों में जा बसा था। वहां पर उसने मीना जाति की स्त्री के साथ
ाह कर लिया, जिससे धाकड़ मेरों की कई शाखाएँ उत्पन्न हुईं।

मेर लोग अपने को हिन्दू बतलाते हैं। परन्तु हिन्दू धर्म के नियमों पर
दृढ़ नहीं हैं। वे देवी, देवजी, आलाजी, शीतलामाता, रामदेवजी और
ा को पूजते हैं और होली, दीपावली तथा दशहरा का त्यौहार मानते हैं।
ा प्रमुख खाना मक्की, जव और भेड़, गाय, बकरा तथा भैंसे का मांस
मेर लोग सूअर, हिरन, मछली और मुर्गे का मांस नहीं खाते। इस जाति
ववाह संबंध आदि हिन्दूओं के अनुसार ही होते हैं। यदि कोई इनके यहाँ
जावे तो ये उसका कर्यावर[1] करते हैं, जिसमें अपनी सम्पूर्ण जाति को
ते हैं। ये लोग भूत, डाकिन आदि को भी मानते है। पहले समय में मेर
ा अपने लड़के-लड़कियों और विशेषरूप से औरतों को गाय, भैंस की तरह
दिया करते थे। बल्कि यह भी प्रथा थी कि, बाप के मरने के बाद बेटा
ी माता को बेच देता। इसके अतिरिक्त अपनी लड़कियों को भी मार डाला
ो थे। परन्तु इस समय लड़कियों का मरना आदि बहुत-सी बुरी बातें बंद

. मृत्यु भोज। (सं०)

के वंश वाले उसी ग्राम में निवास करते रहे। अन्त में गूजरों को मार कर वह (चांग) ग्राम छीन लिया। अनहल की पांचवी पीढ़ी में कान्हा और काला नामक दो लड़के पैदा हुए। जिनमें कान्हा से चेता और काला से वड़ नामक दो शाखाऐं निकलीं। इसके बाद जोधलाखण के वंश वालों ने कान्हा और काला को उनके साथियों सहित मार डालने के लिए चांग पर सेना भेजी। उस समय कान्हा और काला वहां से भाग कर टाटगढ़ जिले के चेटण ग्राम में जाकर बस गये। वहां जाने के बाद इन दोनों (कान्हा और काला) के वंश वाले आपस में विवाह सम्बन्ध करने लग गये। कुछ दिनों बाद काला तो मेवाड़ के कैलवाड़ा ग्राम में जा बसा और कान्हा वापस चांग में चला आया। बाद में इसके वंश वालों में मीना, भील और धाकड़ मीना आदि जातियों की लड़कियों से विवाह करना शुरू कर दिया। इस तरह से 24 शाखाऐं कान्हा के वंश वालों (चेतों) की और 24 काला (बड़ों) की मिला कर, मेरों की 48 शाखाऐं हुईं।

चेता वंश में हीरा नामक एक मेर बादशाह आलमगीर के समय में दिल्ली जाकर बादशाह की सेवा करने लगा, वहां पर अच्छी सेवा करने के कारण उसको "कट्टा" (मजबूत) पदवी मिली। इसके बाद बादशाह को प्रसन्न करने के लिये वह मुसलमान हो गया। फिर उसने चांग में वापस आकर अपनी सन्तान को भी मुसलमान बना दिया। इसी तरह अजमेर प्रदेश के करील गांव में रहने वाला एक दूसरा खानदान भी मुसलमान हो गया। जिसने अजमेर जिले में कई गांव अलाउद्दीन से जागीर में पाये। इस रीति से ये लोग मेर जाति से मुसलमान हुए।

इस जाति के विषय में ऐसा भी कहते हैं कि, जोधलाखन और सहदे की सन्तान के अतिरिक्त मेरों की कई शाखाऐं उत्तम वर्ण के लोगों से बनी हैं, जो किसी कारण से पहाड़ों में आ बसने और मेरों के साथ रहने से इन लोगों में मिल गये। जिसका विवरण इस प्रकार बताया जाता है कि, अलाउद्दीन खिलजी ने जब चित्तौड़ पर आक्रमण किया और मेवाड़ को लूटा, उस समय गुहिलोत वंश के दो राजपूत भाग कर मेरवाड़ा जिले में सारोठ के पास बूरवा ग्राम में जा बसे। उनमें से एक ने वहां पर मीना जाति की स्त्री से शादी कर ली और उसके बारह पुत्र हुए, जिन से बारह शाखाऐं उत्पन्न हुई और दूसरा भाई अजमेर जिले में जा बसा। उसके हाथ से

व गुलाम आपस में भाई-बहन के समान माने जाते हैं, उनका आपस में विवाह नहीं होता।

मेर लोग मरने-मारने में बड़े बहादुर होते हैं, वे अपनी और दूसरे की जान की कुछ भी परवाह नहीं करते। औरत की इज्जत बिगाड़ने वाले को ये लोग जान से मार डालते हैं। शस्त्रों में तलवार और ढाल रखते हैं। पीढ़ियों तक वैर नहीं भूलते। ये लोग बड़े मेहनती, मजबूत, चालाक और शरीर में लम्बे-चौड़े तथा हृष्ट-पुष्ट होते हैं। किसी बात से नहीं डरते, यहां तक कि, शेर पर तलवार से वार करते हैं, परन्तु बहादुरी का घमण्ड नहीं करते।

ऊपर लिखी हुई जंगली ज़ातियों का विवरण हमने संक्षिप्त रूप से लिखा है, जिनसे चारों तरफ मेवाड़ का इलाका घिरा हुआ है। इन जातियों के अतिरिक्त जंगल में रहने वाले बनजारा, कालवेलिया, सांसी, साटिया, कंजर, बागरिया और लुहार आदि और भी लोग हैं, जो सदैव एक स्थान पर जम कर नहीं रहते, बल्कि प्रदेशों में घूमते-फिरते हैं।

बनजारों में कई भेद हैं। जिनमें तीन प्रमुख जाने जाते हैं, हैवासी, गवारिया और भाट। **हैवासी** मुसलमान और गवारिया नीच जाति में से है। ये लोग बैलों पर नमक और अनांज आदि लाद कर दूर-दूर प्रदेशों में पहुंचाते हैं और जंगलों में तम्बू तानकर रहते हैं।

कापालिक मत के नाथ **कालवेलिया जोगी** कहलाते हैं। ये केवल नाम के जोगी हैं। वास्तव में इनको नीच जाति में समझना चाहिये। ये लोग सांपों को पकड़ कर बांस के पिटारों में लिये फिरते हैं, जिनको लोगों के सामने पूंगी बजा कर खिलाते हैं। तथा खास इसी जरिए से रोटी-टुकड़ा या पैसा आदि मांग कर अपना गुजारा करते हैं। ये लोग भैंसा आदि हर एक जानवर का मांस खाते हैं और शराब पीते हैं। कोई-कोई इन में अच्छे बन्दूक लगाने वाले शिकारी भी होते हैं। इनके रहने की कोई खास जगह नहीं हैं। बस्ती से दूर जंगल में, जहां कहीं जी चाहता है, रहते हैं।

सांसी और साटिया, ये दोनों जातियां चाल-चलन और रीति-व्यवहार में एक-सी हैं, जो कंजरों, नटों की तरह जंगल में रहती हैं और बस्तियों में

कर दी गई हैं। इन लोगों में बड़ा भाई, छोटे भाई की विधवा स्त्री को घर में नहीं डाल सकता। परन्तु छोटा भाई बड़े भाई की औरत से नाता कर लेता है। विवाह लग्न के समय ये लोग गुरु को 7रु., ढोली को 40रु और बेटी के बाप को 106 रुपये देते हैं। पति के मर जाने पर उसका बारहवां होने के बाद औरत के सामने लाल और सफेद रंग की दो ओढ़नियां डाल दी जाती हैं। अगर वह लाल चूंदड़ी पसन्द करे तो, समझ लिया जाता है कि, नाता करने की इच्छा रखती है। तथा उसका देवर उसको अपने घर में डाल लेता है। अगर वह औरत अपने देवर के घर में रहना न चाहे, तो दूसरे से नाता कर सकती है। परन्तु इस स्थिति में नाता करने वाला उसके हकदार उत्तराधिकारी को 200 से 500 रुपये तक देता है। यदि स्त्री की इच्छा नाता करने की नहीं होती, तो वह सफेद ओढ़नी पसन्द कर लेती है।

मेर जाति में यह नियम है कि, अधिकतर दुःख अथवा आपत्ति के समय ये लोग सरदारों के यहाँ जाकर उनके गुलाम हो जाते हैं, जो तीन प्रकार के होते हैं। एक चोटीकट, दूसरे बसी अथवा बसीवान और तीसरे अंगुलीकट। जो व्यक्ति **चोटीकट** गुलाम बनना चाहता है, वह अपनी चोटी काट कर सरदार को दे देता है, और वह सरदार उसको अपनी रक्षा में रख लेता है। चोटीकट गुलाम की अनुपस्थिति में उसकी सम्पूर्ण जायदाद और माल असबाब का वह सरदार ही स्वामी होता है। इतना ही नहीं चोटीकट अपनी कमाई का चौथा हिस्सा अपने स्वामी को देता रहता है। **बसीवान** और चोटी कट मे केवल इतना भेद है कि, बसीवान के सम्बन्ध में लिखा पढ़ी होती है और चोटीकट को केवल चोटी ही काट दी जाती है। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि, सब जातियों की तरह बसीवान तो मुसलमान व्यक्ति भी हो सकता है, परन्तु वह (चोटी न रखने के कारण) चोटीकट नहीं हो सकता। **अंगुलीकट गुलाम** वह कहलाता है, जो गुलाम बनने के समय अपने हाथ की अंगुली काट कर अपने स्वामी के हाथ में थोड़ा-सा खून टपका देता है। इसके बाद मालिक और गुलाम के बीच में बाप-बेटे का रिस्ता माना जाता है। परन्तु अंगुलीकट के माल, जीविका पर मालिक का अधिकार नहीं हो सकता।

मेरों में यह नियम है कि, गुलाम अपने मालिक की सम्पत्ति समझा जाता है और यह भी दस्तूर है कि, एक ही मालिक के लौंडी (स्त्री सेविका)

गाड़ियों में अपना डेरा-डांडा लाद कर ऊपर लिखी हुई जातियों की तरह जगह-जगह घूमते रहते हैं। ये लोहे की घड़ाई से गुजर करते हैं। ये कहते हैं कि, हम पूर्वकाल में चित्तौड़गढ़ पर रहते थे। लेकिन जब मुसलमानों के हमलों से चित्तौड़ वीरान हो गया, तो हम भी वहां से निकल भागे। अब जब भी मेवाड़ के महाराणा चित्तौड़ को पुनः राजधानी बना कर राज्य करेंगे, उस समय हम भी वहां घर बना कर रहेंगे।

अब हम यहां पर हिन्दुस्तान की जातियों के विषय में थोड़ा-सा वर्णन यूनान के राजदूत मेगस्थनीज का लिखा हुआ उद्धृत करते हैं, जो उसने हिन्दुस्तान आगमन के समय लिखा था।

वह लिखता है कि, इस समय हिन्दुस्तान में 7 जाति विभाग हैं, जिनमें पहला वर्ग फिलॉस्फर लोगों (तत्ववेताओं) का है। ये श्रेणी में सब से प्रथम हैं, परन्तु संख्या में कम हैं। इनके द्वारा सब लोग यज्ञ या धर्म सम्बन्धी कार्य करते हैं। राजा लोग नये वर्ष के प्रारम्भ में सभा करके इनको बुलाते हैं, जहां ये अपने किये हुए उत्तम कामों को प्रकट करते हैं।

दूसरा वर्ग **कृषिकारों** (खेती करने वालों) का है, जो जमीन को जोतते और बोते हैं तथा शहरों में नहीं रहते। इनका रक्षण लड़ने वाली जातियां करती हैं।

तीसरा वर्ग **ग्वाला और शिकारियों** का है। ये लोग चौपाये रखते हैं, शिकार करते हैं और बोये हुए बीज खाने वाले जानवारों को भगाते हैं। इसके बदले में उनको राज्य की तरफ से अनाज मिलता है।

चौथा वर्ग उन लोगों का है, जो **व्यापार** करते हैं, बर्तन बनाते हैं और शारीरिक मेहनत करते हैं। इनमें से कितने एक लोग अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा राज्य को देते हैं। तथा निर्धारित नौकरी भी करते हैं। शस्त्र और जहाज बनाने वालों को राज्य की तरफ से वेतन मिलता है। सेनापति सिपाहियों को शस्त्र देता है और नौका-सेनापति यात्रियों तथा व्यापार की वस्तुओं को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने के लिये जहाज किराये पर देता है।

पांचवां वर्ग लड़ने वालों का है। जब लड़ाई नहीं होती है, उस

से रोटी-टुकड़ा मांग कर या भंगियों के यहां की जूठन (उच्छिष्ट भोजन) से अपना पेट भरती हैं। यद्यपि सांटियों में कई लोग मालदार होते हैं, तो भी वे अपने दूसरे जाति वालों की तरह वस्ती के टुकड़े खाकर और केवल एक लंगोटी पहन कर गुजर करते हैं। इन में यह एक विचित्र नियम है कि, गाय, भैंस और बैल आदि जानवरों के बदले आपस में एक-दूसरे की औरत लेते-देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ रुपया लेकर बूढ़ी औरत के बदले जवान औरत बदल देने का भी रिवाज है। ये लोग चोरी और डकैती भी करते हैं।

कंजर (नट) मूलरूप से गूजर और मीनों के भाट हैं, जो उन लोगों की वंशावली मौखिक रूप से याद रखते हैं। इनकी स्त्रियां नट विद्या के तमाशे करती हैं। इन लोगों में बहती हुई नदी का पानी नहीं पीते। इनका विश्वास है कि नदी का पानी पीने से वंशावली याद नहीं रहती। इनकी लड़कियां जो "खिलावड़ी" कहलाती हैं, तीस-तीस वर्ष की होने पर व्याही जाती है। जब तक वे बाप के घर रहती हैं। अपनी सारी कमाई अर्थात् नाच-गाकर वस्ती में से जो कुछ रोटी-टुकड़ा, अनाज और पैसे आदि मांगकर लाती हैं, मां-बाप को ही देती हैं। इनका पहनावा सूथन अर्थात् पायजामा और दुपट्टा (ओढ़नी) है। जब ये लड़कियां नाचती हैं, तो आदमी इनके साथ ढोलकी बजाते हैं। कालबेलियों और सांसियों की तरह ये भी सिरकियों[1] को तानकर जंगल में रहते हैं और अवसर मिलने पर चोरी भी कर बैठते हैं।

बागरिया—इन लोगों का चाल-चलन अधिकतर सांसी और साटिया लोगों के अनुसार ही है। लेकिन सुना जाता है कि, इनकी औरतें व्यभिचार नहीं करती। जब किसी अवसर पर ये लोग एकत्रित होते हैं, तो लोहे की कढ़ाई में तेल औटाकर गरम करके उसमें एक छल्ला डाल देते हैं, जिसको हर एक औरत उस औटते हुए तेल में से निकालती हैं। इन लोगों का विश्वास है कि, जिस औरत ने व्यभिचार किया होगा, उसका हाथ जलेगा। यों जिसका हाथ जल जाता है, उसको जाति वाले दण्ड देते हैं। ये लोग भी जंगलों में रहते हैं और टुकड़े मांग कर खाते हैं।

गाड़ोलिया-लुहार जो घर बना कर एक जगह नहीं रहते, किन्तु

---

1. पतली सींकों से बनाया गया पर्दा। (सं०)

लिये पहरा चौकी नहीं रखना पड़ता। वे शरीर को मुगदर आदि फिरा कर श्रम देते हैं। जेवर पहिनना और शरीर की शोभा दिखलाना अधिक पसन्द करते हैं। उनके सुनहरी काम युक्त रत्नजड़ित अंगरखे होते हैं। सेवा करने वाले सेवकगण छत्री लेकर इनके पीछे-पीछे चला करते हैं। ये हर तरह से अपने चहरे को सुन्दर रखने का प्रयत्न करते हैं। सत्य और सदगुण की बराबर इज्जत करते हैं। तथा बहुत-सी औरतों से शादियां करते हैं। यज्ञ के समय कोई सिर पर मुकट नहीं रखता और यज्ञ-पशु को सांस रोक कर मारते है।[1] झूठी साक्षी देने वालों को कठोर सजा होती है। यदि कोई किसी का अंग-भंग कर डाले तो, इस अपराध के बदले उसका वही अवयव तोड़ दिये जाने के अतिरिक्त सजा के बदले में एक हाथ भी काट डाला जाता है। कारीगर का हाथ काटने और आंख फोड़ने पर अपराधी को मौत की सजा होती है। इनके यहां बहुधा गुलाम नहीं रखे जाते हैं।[2]

राजा के शरीर की रक्षा का उत्तरदायित्व औरतों पर रखा गया है। राजा दिन में नहीं सोते और रात में कई जगह बदलते हैं। लड़ाई के अतिरिक्त न्याय, यज्ञ और शिकार के लिये भी राजा महलों से बाहर निकलते हैं। शिकार के समय बहुत-सी औरतें राजा के पास रहती हैं और

---

1. इसके मुंह में जव और तिल भर कर दर्भ से मुंह बांधने के बाद अण्डकोश पर मुट्ठी का प्रहार कर मार डालते हैं।

2. हमारे धर्मशास्त्र के ग्रंथों में दास लिखे हैं। परन्तु वे गुलामों की तरह पराधीन नहीं थे, किन्तु नौकर की सी स्वतन्त्रता रखते थे। शास्त्र में पन्द्रह तरह के दासों का वर्णन है—

   1. गृहजात (दासीपुत्र), 2. क्रीत (खरीदा हुआ), 3. लब्ध (मिला हुआ), 4. दायप्राप्त (हिस्से में आया हुआ), 5. अन्नाकाल भृत्य (दुष्काल में पाला हुआ), 6. आहित (गिरवी रखा हुआ), 7. मोक्षित (कर्ज से छुड़ाया हुआ), 8. युद्ध प्राप्त (लड़ाई में पकड़ा हुआ), 9. पणेजित (जूए में जीता हुआ), 10. स्वयंदास (दिल से दास बनने वाला), 11. कृतक (किसी निमित्त अवधि के साथ दास किया हुआ), 12. भक्तदास (प्रीति से दास हुआ), 13. वडवाहृत (दासी के लोभ से दास हुआ) और 14. आत्म विक्रयी (खुद बिका हुआ)।

स्थिति में ये लोग अपना समय नशे और सुस्ती में व्यतीत करते हैं। इनको सम्पूर्ण खर्च राजा की तरफ से मिलता है। इस कारण जिस समय लड़ाई हो, उस समय जाने को तैयार रहते हैं।

छठा वर्ग **निगरानी** रखने वालों का है। ये लोग सब जगह की निगरानी रख कर राजा को गुप्त-रीति से खबर देते हैं। इन में से कितने एक शहर की और कितने एक सेना की निगरानी रखते हैं। सब से योग्य और भरोसे वाले आदमी निगरानी के पदों पर नियुक्त किये जाते हैं।

सातवें वर्ग में **राजा के सलाहकार या सभासद** होते हैं, जो न्याय आदि बड़े-बड़े कामों पर नियुक्त किये जाते हैं।

इन वर्गों (जातियों) में से न कोई अपनी जाति बाहर शादी कर सकता और न ही अपना पेशा (वृत्ति) छोड़ कर दूसरों का पेशा ग्रहण कर सकता है और न ही एक से अधिक धंधा कर सकता है। परन्तु तत्ववेता लोगों के लिये यह नियम नहीं है, क्योंकि उनको अपने सद्गुणों के कारण इतनी स्वतन्त्रता है।

अब हम जातियों का वर्णन पूरा करने के बाद सर्व साधारण रूप से हिन्दुस्तान के **रीति-रिवाजों** के विषय में लिखते हैं। जिससे पाठकों को मालूम होगा कि, पुराने समय और वर्तमान समय के रीति-रिवाजों में कितना अन्तर पड़ गया है। सिकन्दर के साथी, जहाज के सेनापति नियार्कस और पंजाब के गवर्नर शैल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज के लेख का संक्षिप्त विवरण जो ओरियन ने लिखा है, उसका सारांश हम नीचे लिखते हैं—

हिन्दुस्तान के लोग अनपढ़ आदमियों को अधिक पसन्द नहीं करते। उनके यहां चोरी बहुत कम होती है। चन्द्रगुप्त की छावनी में 4,00,000 आदमी रहते थे, परन्तु वहाँ एक बार केवल 200 द्रम्म[1] की चोरी हुई थी। लेन-देन में हिसाब-किताब, गवाही, जमानत या मुहर लगाने की कुछ आवश्यकता नहीं रहती और ना ही उनको अदालत में जाना पड़ता है। लेन-देन का काम विश्वास पर चलता है। उनके घर और जीविका की सुरक्षा के

1. यह साढ़े तीन माशा वजन का, एक चांदी का सिक्का है।

चीन देश के यात्री जो हिन्दुस्तान में आये, उन्होंने भी अपनी-अपनी पुस्तकों में हिन्दुस्तान के रीति-रिवाजों का कुछ वर्णन किया है। ईसा की चौथी सदी के विषय में **फाहियान** लिखता है कि, मध्यदेश के लोग सुखी हैं और उन पर कोई कर नहीं है। जो लोग राज्य की जमीन वोते हैं, वे अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा राजा को देते हैं। राजा लोग अपराधियों को मौत की सजा नहीं देते, उनके गुनाहों के अनुसार दण्ड देते हैं। बार-बार उपद्रव करने पर अपराधी का दाहिना हाथ काट डालते हैं। राजा के शरीर की रक्षा करने वालों को निर्धारित वेतन मिलता है। चांडालों के अतिरिक्त कोई आदमी जीते हुए जानवरों को नहीं मारते, न शराब पीते और न प्याज लहसुन खाते हैं। चांडाल लोग बस्ती से अलग रहते हैं। जब वे शहर या बजार में जाते हैं, तो बांस की लकड़ी खटकाते हुए चलते हैं कि, जिससे उनको कोई स्पर्श न कर ले। केवल चांडाल लोग ही शिकार करते और मांस बेचते हैं।

दूसरा चीनी यात्री **हुएनसांग** जो ईसा की 7 वीं सदी में हिन्दुस्तान आया था, लिखता है कि, यहाँ के लोगों के वस्त्र काट-छांट कर नहीं बनाये जाते। मर्द अपने पहिनने के कपड़ों को कमर से लपेट कर कन्धों पर डाल लेते हैं। औरतों की पोशाक जमीन तक लटकती रहती है और वे अपने कंधों को ढक लेती है। ये लोग केशों का थोड़ा-सा हिस्सा बांध कर बाकी को लटकते रखते हैं। कितने एक आदमी मूंछ कटवा डालते हैं। सिर पर टोपा गले में फूलों तथा रत्नों की माला पहनते हैं। इनके पहनने के वस्त्र रुई, रेशम, सण और ऊन के बने हुए होते हैं। उत्तर हिन्दुस्तान में जहां ठण्ड अधिक पड़ती है, वहां के लोग तंग कपड़े पहनते है। कई आदमी मोर पंख धारण करते हैं। कई खोपड़ियों की माला पहिनते हैं। कितने एक नंगे रहते हैं। कई एक ऐसे हैं जो वृक्षों के पत्ते और छाल से अपना शरीर ढक लेते हैं। कुछ लोग अपने केश उखेड़ डालते हैं और मूंछें कटवा डालते हैं। श्रमण लोग (बौद्ध भिक्षु) के पहिनने के वस्त्र उनके मतों के अनुसार अलग-अलग तीन तरह के होते हैं। राजा और बड़े-बड़े मंत्री लोग भी अलग-अलग तरह के आभूषण और पोशाकें पहिनते हैं। धनाढ्य व्यापारी लोग सुवर्ण के कड़े आदि आभूषण पहिनते है। बहुधा वे लोग नंगे पैर चलते हैं, माथे पर चंदन लगाते हैं, दांतों को लाल और काले रंगते हैं और केशों को बांधते और कानों को बींधते हैं।

उनके पीछे भाले वाले आदमी रहते हैं। रास्तों पर रस्सियां बांधी जाती हैं। ढोल नक्कारे वाले लोग आगे चलते हैं। ऊंचे बने हुए स्थान से जब राजा शिकार पर तीर चलाता है तो, दो-तीन शस्त्र-बंध औरतें उसके पास खड़ी रहती हैं। चौड़े मैदान में हो तो हाथी पर सवार होकर शिकार खेलता है। शिकार के समय स्त्रियां हाथी, घोड़े और रथों पर सवार होकर साथ रहती हैं और सब प्रकार के शस्त्र रखती हैं।

इन लोगों में यज्ञ के अवसर के अतिरिक्त सुरा नहीं पीते।[1] रुई के वस्त्र पहनते हैं। नीचे की पोशाक (धोती) घुटने और पिंडली के बीच तक होती है। एक दुपट्टा सिर पर बांध कर उसका कुछ हिस्सा कांधे पर डाल लेते हैं। धनाढ्य लोग कानों में हाथी दांत के कुण्डल पहिनते हैं। डाढ़ी को अपनी इच्छा के अनुसार सफेद, आसमानी, लाल, बैंगनी अथवा हरी आदि रंग लेते हैं और सफेद चमड़े के मोटे तले वाले जूते पहिनते हैं। लड़ाई के समय आदमी की ऊंचाई के बराबर बड़ा धनुष और करीब तीन गज लंबा तीर पैदल आदमी काम में लाते हैं। तीर छोड़ते समय धनुष को जमीन पर टेक कर बाएं पैर से दबाते हैं। हिन्दुस्तानियों के तीर को ढाल, कवच आदि कोई चीज नहीं रोक सकती। चौड़ेफल की तलवार जो तीन हाथ से अधिक नहीं होती, हर एक आदमी के पास रहती है और कोई भाला भी रखते हैं। निकट के युद्ध में तलवार को दोनों हाथों से पकड़ कर मारते हैं। सवारों के पास दो-दो भाले रहते हैं। हिन्दुस्तानी आदमी कद में ऊंचे, पतले और कम वजन के होते हैं। हाथी की सवारी इन में सर्वश्रेष्ठ गिनी जाती है। दूसरी श्रेणी पर रथ, तीसरे पर ऊंट और इसके बाद घोड़े की सवारी है। जब लड़की शादी के योग्य होती है तो, उसका पिता उसे आम लोगों के सामने ले आता है। तथा दौड़ने, कुश्ती आदि की परीक्षाओं में जो व्यक्ति तेज निकलता है, उसी के साथ अपनी लड़की को व्याह देता है।[2] यहाँ के लोग मांस नहीं खाते, अनाज से गुजर करते हैं।

---

1. सौत्रामणि यज्ञ में सुरा-पान करते थे।
2. यह स्वयंवर की रीति है जो कि, रामचन्द्र ने सीता को और अर्जुन ने द्रौपदी को व्याहने के समय की थी। प्राचीन समय में यह प्रथा अधिकांशतः क्षत्रियों में प्रचलित थी, जो आठ प्रकार के विवाहों में से एक है।

6 हाथ लम्बी साड़ी (ओढ़नी) ओढ़ती हैं। दोनों हाथों के भुजों तथा पहुंचों पर हाथी दांत की अथवा लाख की चूड़ियां और उनके बीच-बीच में जड़ाऊ सोने व चांदी का आभूषण भी पहिनती हैं। माथे का बोर, नाक की नथ, गले का तिमणियां और हाथ की चूड़िया सुहागिन (सधवा) स्त्री के चिन्ह गिने जाते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई तरह के आभूषण स्त्रियां पहनती हैं। विधवा स्त्री आंख में काजल आंजना, सर्व प्रकार के आभूषण और कच्चे रंग का वस्त्र पहिनना त्यागने के अतिरक्त मद्य व मांस का भी परित्याग कर देती हैं। ब्राह्मण और महाजन मद्य-मांस नहीं खाते, परन्तु क्षत्रियों में इसका रिवाज है। उत्तराखण्ड और पूर्वी प्रदेश के राजपूत मद्य नहीं पीते। इसी तरह वे लोग प्याज और लहसुन भी नहीं खाते। राजपूत लोग अपनी स्त्रियों को पर्दे में रखते हैं, यहां तक कि, गरीब से गरीब राजपूत भी चाहे वह अपने कंधे पर रख कर पानी का घड़ा भर लावे, परन्तु औरत को पर्दे से बाहर नहीं निकालता। यद्यपि यह प्रथा हिन्दुस्तान की प्राचीन प्रथाओं में से नहीं है, लेकिन मुसलमानों के दुर्व्यवहारों से बचने के लिये, उन्हीं का अनुकरण कर लिया गया है।

धर्म-शास्त्र में जो षोडश संस्कार लिखे हैं, उनमें से राजपूताना में बहुत थोड़े प्रचलित हैं और जो हैं भी, तो उनका यथाविधि पालन नहीं होता है। जब बालक पैदा होता है तो, उस समय नामकरण कर देते हैं। यज्ञोपवीत का कोई समय निश्चित् नहीं है, कई लोग पहले और कुछ विवाह के समय कर देते हैं और क्षत्रिय तथा वैश्यों में नहीं भी करते हैं। शादी का रिवाज इस तरह का है कि, निश्चित् समय पर दूल्हा बारात के साथ आकर दुल्हिन के बाप के द्वार पर तोरण वंदना करता है। घर के भीतर जाने के समय बेटी की माता, दामाद की आरती करके भीतर ले जाती है। फिर गणेश चित्र के आगे दूल्हा और दुलहिन को बैठा कर दुलहिन के दाये हाथ में मेंहदी और एक रुपया रखते हैं और दूल्हे के दायें हाथ से मिला देते हैं। इसको "हथलेवा जोड़ना" (पाणिग्रहण) कहते हैं। तथा दुलहिन की ओढनी और दूल्हे के दुपट्टे को गांठ देकर, एक रुपया उसमें बांध देते हैं जो "गठजोड़ा" कहलाता है। इसके बाद दोनों को मंडप के नीचे लाकर ब्राह्मण लोग वेद मंत्रों सहित हवन करते हैं, कन्या के माता-पिता साथ-साथ बैठ कर यह कृत्य करवाते हैं। फिर वर कन्या को हवन की अग्नि के चारों तरफ चार परिक्रमा (फेरा) करवाते हैं। इसके बाद कन्या का पिता हाथ में

इस समय कहीं-कहीं पर मनुष्य बलि भी होती थी। हुएनसांग के जीवन-चरित्र में लिखा है कि, जब वह अयोध्या से रवाना होकर अस्सी यात्रियों के साथ जहाज में बैठकर गंगा के रास्ते से हयमुख की तरफ जा रहा था तो, करीब 100 ली[1] दूर जाने पर अशोक वन की एक छाया में डाकुओं की 10 नौकाऐं छुपी हुई मिलीं। जिन्होंने आकर उनके जहाज को घेर लिया और माल असबाब लूटने लगे। ये डाकू दुर्गा के भक्त होने से मनुष्य बलि दिया करते थे। उन्होंने हुएनसांग को शरीर से पुष्ट देख कर इस काम के लिए पकड़ लिया और वृक्षों के एक कुंज में तैयार की हुई वेदी पर ले गये। जहां डाकुओं के सरदार ने उसको मारने के लिये दो आदमियों को छुरी निकालने का आदेश दिया। जब वे मारने को तैयार हुए तो, हुएनसांग उनकी आज्ञा से बोधिसत्व मैत्रेय का स्मरण करने लगा। इतने में एकदम ऐसा तूफान आया कि, वृक्ष गिरने लगे, चारों तरफ से धूल उड़ने लगी और नदी के पानी में नौकाऐं टकराने लगीं। इससे डाकू लोगों ने डर कर उसे छोड़ दिया और उससे क्षमा मांगी।

मनुष्य बलि का ऐसा ही हाल गोडवध काव्य में विनध्यवासिनी के वर्णन में लिखा है। तथा कुछ (बंगाल और आसाम आदि) प्रदेशों में अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ तक यह प्रथा प्रचलित थी।

11. रीति-रिवाज

वर्तमान समय में राजपूताना में नीचे लिखे अनुसार रीति-रिवाज प्रचलित हैं—राजपूताना के पुरुषों का मुख्य पहिनावा पगड़ी, कुर्ता, अंगरखी, धोती और कमरबन्धा है। कोई-कोई पायजामा भी पहनते हैं। दरबारी पहनावे में, जो महाराणा के दरबार में जाने के समय पहिनना पड़ता है, उसमें अमरशाही और अरसीशाही पगड़ी[2], कुर्ता, झग्गा (जामा) और पायजामा पहिनकर कमर बांधनी पड़ती है। औरतें बड़े घेर का लहंगा पहिनकर अनुमानित

1. छः ली का एक मील होता है।
2. इससे पुरानी एक छोगादार पगड़ी थी, उसका रिवाज तो समाप्त हो गया। आजकल अमरशाही और अरसीशाही के अतिरिक्त महाराणा की आज्ञा से कोई-कोई सरदार स्वरूपशाही पगड़ी बांधते हैं। अमरशाही महाराणा अमरसिंह द्वितीय ने, अरसीशाही महाराणा अरिसिंह ने और स्वरूपशाही महाराणा स्वरूपसिंह ने चलाई थी।

लोग उस पर लकड़ी डालते हैं। बाद में रीति-पूर्वक बारहवें (द्वादशा) तक पिण्ड श्राद्ध होने के बाद भोजन दिया जाता है। मरने वाले के रिश्तेदार और उसके आश्रित लोग दाढ़ी-मूंछ मुंडवा कर "भद्र" होते हैं। हमने सामान्य रूप से इन रिवाजों का उल्लेख किया है। अन्यथा राजा महाराजाओं के यहां शास्त्रों के अनुसार षोडश संस्कार होते हैं और ग्रामीण लोगों में बिलकुल कम है।

हिन्दुस्तान की स्त्रियों के पतिव्रत्य की प्रशंसा प्राचीनकाल से चली आ रही है। जिसकी मेगस्थनीज आदि विदेशी लोगों ने भी तारीफ़ लिखी है। इस देश की ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य आदि कई जातियों में पुनर्विवाह की प्रथा नहीं है। लेकिन कुछ दिनों से भारतवर्ष के कई जिलों में पुनर्विवाह करने की चेष्टा हो रही है, परन्तु वर्तमान समय में सामान्य लोगों में इस प्रथा का प्रचलन असम्भव मालूम होता है।

राजपूताना के राजपूतों में पहले अफीम खाने का प्रचलन अधिक था, यहां तक कि, मेहमान की मेहमानदारी भी अफीम खिला कर ही करते थे। लेकिन अब यह प्रचलन धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। तम्बाकू पीने की रीति भी यहां के लोगों में बहुत है। थोड़े ही आदमी ऐसे निकलेंगे जो नहीं पीते हैं। भांग पीने का रिवाज नगर निवासी ब्राह्मणों में अधिक है।

12. सिक्का, माप व तोल

सिक्का—इस प्रदेश से प्राचीनकाल से गुहिलोत राजाओं के नाम का सिक्का प्रचलित रहा है। ईसा की छठी सदी में गुहिल के नाम का सिक्का चलता था, जिसके दो हजार सिक्के आगरा में मिले थे। इन सिक्कों के विवरण के अन्तर्गत जनरल कनिंघम ने "आर्कियॉलोजिकल सर्वे" के खण्ड 4, में लिखा है कि, आगरा में दो हजार से अधिक सिक्के जमीन के अन्दर गढ़े हुए निकले थे, जिन पर "श्री गुहिल" या "गुहिल श्री"[1] का लेख था। यह (गुहिल)

---

1. "गुहिलपति" नाम का एक दूसरा सिक्का मिलने पर, जनरल कनिंघम ने उसको तोरमाण वंश का बतलाया है, लेकिन हमारी राय में गुहिलपति का सिक्का भी मेवाड़ के पहले राजा गुहिल का ही होना चाहिये, अथवा गुहिल के वंश में से किसी ऐसे राजा का, जिसका

जल लेकर वर कन्या का हथलेवा छुड़ाये जाने के बाद, वर के हाथ में कन्यादान का संकल्प छोड़ता है। वाद में कन्या को जनवासे[1] ले जाते हैं, जहां वर का मामा कन्या की गोद में सूखा मेवा, पताशे और कुछ नकद रुपया देता है। इस रस्म के बाद कन्या को उसके सम्बन्धी जनवासे से वापस अपने घर ले आते हैं। पहले दिन जो भोजन, बारात को दिया जाता है, उसको "कुंवारी भात", दूसरे दिन के भोजन को "घोरण" और तीसरे दिन दिया जावे, उसको "जीमणवार" कहते हैं। चौथे दिन बारात विदा कर दी जाती है। हमने यह वर्णन प्रचलित रीति के अनुसार लिखा है। अन्यथा भोजन देने और बारात को रखने में अधिक न्यून भी होता है। यह रीति विशेषरूप से राजपूतों की है और चारणों की भी इसी के अनुसार ही है। शेष जातियों में कुछ-कुछ रीति-रिवाजों में थोड़ा बहुत अन्तर भी होता है। कन्या का पिता दहेज में हाथी, घोड़ा, कपड़ा, जेवर और जुहारी[2] देता है।

जब कोई मर जाता है, तब ऐसी प्रथा है कि, मरने वाले को गीता या भागवत का पाठ सुनाते हैं और हाथी, घोड़ा, कपड़ा, जेवर तथा गाय आदि का उससे दान करवाते हैं। फिर गाय के गोबर और शुद्ध मृत्तिका से लीपी हुई जमीन पर दर्भ (डाव) और जव, तिल, बिछाकर मरने वाले को खाट से उतार कर उस पर सुला देते हैं। उसके मुख में गंगाजल, गंगामाटी और थोड़ा-सा स्वर्ण दे देते हैं। जब श्वास निकल जाता है तो, स्नान और हजामत करवाने के बाद उस पर गंगाजल व गंगामाटी आदि डालकर उसे वस्त्र पहिनाते हैं। फिर त्रिकटी शव बांधने की काठी पर दर्भ, दर्भ पर रुई और रुई पर कपड़ा बिछा कर लाश को उस पर रखते हैं और ऊपर कपड़ा ढक कर यदि मिले तो उस पर दुशाला आदि भी डाल देते हैं। फिर रीति के अनुसार पिण्ड आदि करके शव को श्मशान में ले जाते हैं और वहां चिता पर सुला कर सिर की तरफ आग लगा देते हैं। मुर्दा जल जाने के बाद सब

---

1. जहां पर बारात को ठहराया जाता है, उस जगह को जनवासा कहते हैं।

2. दूल्हे के सम्बन्धियों अथवा सम्पूर्ण जाति को बेटी का बाप, जो सरोपाव या रुपया और नारियल अथवा खाली नारियल देता है उसको "जुहारी" कहते हैं।

जिसके एक तरफ "कुम्भकर्ण" और दूसरी तरफ "एकलिंग" स्पष्ट रूप से पढ़ा जाता है। इस सिक्के के विषय में प्रिन्सेप ने अपनी पुस्तक के प्रथम खण्ड पृ० 298 पर लिखा है कि, सिक्कों में उन्होंने गलती से एकलिंग को एकलिस और कुम्भकर्ण को कभकंस्सी पढ़ लिया है। परन्तु सिक्के की छाप को देखने से कुम्भकर्ण और एकलिंग साफ-साफ पढ़ा जाता है।[1]

चौथा सिक्का महाराणा संग्रामसिंह प्रथम का है, जिसके संदर्भ में प्रिन्सेप अपनी पुस्तक के प्रथम खण्ड में लिखते हैं कि, नम्वर 24 व 25 के सिक्के पुराने समय के और ताम्बे के हैं, जो स्टेची के संग्रह में से इसी तरह के कितने एक सिक्कों में से पसन्द किये गये हैं। 24 नम्वर के सिक्के पर एक तरफ "श्री रण (सं) ग्रम सं (घ)" और दूसरी तरफ त्रिशूल और कुछ चिन्ह हैं। तथा नम्वर 25 में एक तरफ "श्री रा (णा सं) ग्राम सं (घ) 1580" और दूसरी तरफ केवल त्रिशूल और स्वस्तिक (साखिये) का चिन्ह है। किसी-किसी सिक्के पर "संग्रम" और किसी पर "संगम" भी पाया जाता है। जो सिक्के के अक्षरों की खरावी के कारण ही है। ऊपर लिखे हुए सिक्कों के लिये अनुमान किया जाता है कि, वे उस प्रसिद्ध संग्रामसिंह के सिक्के हैं, जिसका नाम मुगल इतिहासकारों ने सिंह लिखा है और जिसने वावर से वयाना में लड़ाई की थी। कर्नल टॉड ने सं० 1565 विक्रमी (हि० 914=ई० 1508) में इस महाराणा का गद्दी पर वैठना और वावर से सं० 1584 विक्रमी कार्तिक कृष्ण 5 (19 मुहर्रम हि० 934= अक्तूवर 16, 1527 ई०) को खानवा में लड़ाई होना[2] आदि लिखा है।

1624 विक्रमी (975 हि० = 1567 ई०) में अकवर वादशाह ने चित्तौड़ को विजय कर लिया। उस समय से महाराणा उदयसिंह, प्रतापसिंह और अमरसिंह इन तीनों महाराणाओं ने पहाड़ों में रह कर, वादशाह अकवर और जहांगीर से लड़ाईयां लड़ीं। इस आपत्तिकाल में टकशाल भी वन्द रही। लेकिन 1671 विक्रमी (1023 हि० = 1614 ई०) में जव महाराणा अमरसिंह प्रथम से जहांगीर की सन्धि हो गई, तव यह निश्चय

---

1. प्रिन्सेप की किताव जिल्द पहिली, प्लेट 24 में सिक्का नम्वर 26।
2. यह लड़ाई चैत्र शुक्ल 15, विक्रमी 1584 (तारीख 13 जमादियुस्सानी हि० 933 = मार्च 7, 1527 ई०) को हुई थी।

मेवाड़ के गुहिल राजवंश का पहला पुरुष 750 ईसवी (वि० 807 = हि० 132) में विद्यमान था। परन्तु अक्षरों की लिपि इस समय से अधिक पुरानी है। इसलिये वे शिलादित्य के पुत्र गुहा अथवा गुहिल के होंगे, जिसके राज्य का समय ठीक-ठीक मालूम नहीं है। परन्तु अनुमान से पता चला है कि, वह ईसा की छठी सदी में हुआ होगा। सौराष्ट्र के राजाओं का अधिकार लगभग आगरा तक था। जिससे यह भी अनुमान हो सकता है कि, ये दो हजार सिक्के कोई यात्री सौराष्ट्र से आगरा में लाया होगा। परन्तु अधिकांशत: यह सम्भव है कि, ये सिक्के गुहिल के समय आगरा में भी चलते थे, क्योंकि समय-समय पर इसी राजा के कई सिक्के आगरा में और भी मिले हैं, जो मैंने नहीं देखे।

प्रिन्सेप को दूसरा सिक्का महाराणा हमीरसिंह का मिला। जिसके सम्बन्ध में वह अपनी पुस्तक की पहली जिल्द में लिखता है कि "हमीर" नाम नई सिक्कों में मिलता है और यह हमीर मेवाड़ का होगा। इन सिक्कों पर एक तरफ "श्री हमीर"[1] और दूसरी तरफ किसी में "गयासुद्दीन" किसी में "महमद साम" तथा "सुरिताण[2] शमसुद्दीन", "अलाउद्दोन" "नासिरुद्दीन" और "फतहुद्दीन" नाम लिखे हुए हैं।[3]

तीसरा ताम्बे का एक चौकोर सिक्का महाराणा कुम्भा का है,

विशेपण गुहिलपति हो। शिलादित्य का पुत्र गुहिल छठी सदी, ईसवी (पांचवी सदी के अन्त) में हुआ है, क्योंकि गुहिल से छठा राजा अपराजित विक्रमी 718 में मेवाड़ के पहाड़ी जिले में राज्य करता था।

1. इन सिक्कों पर एक तरफ "श्री हमीर" और दूसरी तरफ वादशाहों के नाम लिखे हैं, जिसका कारण यह है कि, महाराणा हमीरसिंह के पूर्वजों ने ऊपर लिखे हुए वादशाहों से वड़ी-वड़ी लड़ाईयां लड़ीं थी, इसलिये दूसरी तरफ उनके नाम लिखे गये होंगे।
2. यहां पर सिक्कों में पढ़े गये मूल शब्द ही लिखे गये हैं।
3. यही प्रिन्सेप अपनी पुस्तक की पहलो जिल्द के पृष्ठ 331 पर हमीर शब्द को वादशाही पदवी मानकर इस सिक्के को वादशाही वतलाते हैं।

मेवाड़ में दवाईयों के वजन का अलग ही ढंग है। 8 चावल का एक जव, 2 जव की एक रत्ती, 5 रत्ती का एक माशा, 4 माशे का एक टंक, 4 टंक का एक कर्ष, 4 कर्ष का एक पल, 4 पल का एक कुड़, 4 कुड़ का एक प्रस्थ और 4 प्रस्थ का एक आढक कहलाता है।

मेवाड़ में नाप भी कई तरह के हैं, लेकिन अधिकांशतः हाथ का नाप काम में आता है, जो लगभग दो फीट के बराबर है। खास शहर उदयपुर में दो तरह के गज प्रचलित हैं, एक–दो फीट लम्बा सिलावटी, दूसरा बज्जाजी, जो तीन गज मिला कर चार हाथ के बराबर होता है।

13. राज्य के विभाग और न्यायालय—

अब हम यहां पर महाराणा के कारखानों (सरकारी विभागों) का कुछ विवरण लिखते हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन पहले लिखा जा चुका है—

कपड़े का भण्डार—सम्पूर्ण सरकार में जितना कपड़ा खर्च होता है, वह सब खरीदा जाकर, इस विभाग में जमा होता है। बाद में जिस सीगे में खर्च हो, यहां से जाता है। मामूली खर्च के अतिरिक्त विशेष खर्च हो तो, वह महकमा खास के आदेश से होता है।

कपड़द्वार—इस विभाग में महाराणा स्वयं के उपयोग में आने वाले वस्त्र रहते हैं।

रोकड़ का भण्डार—यह राज्य का मामूली खजाना है, सम्पूर्ण राज्य में रोकड़ का खर्च यहां से ही होता है।

हुक्म खर्च—यह विभाग महाराणा स्वयं के जेब खर्च का है। प्रतिदिन महाराणा के मौखिक आदेशों से जो खर्च होता है, उसके हिसाब पर दूसरे दिन महाराणा स्वयं अपनी मुहर कर देते हैं।

पांडे की ओवरी—इस विभाग में पहले तो बहुत-सी परचूनी चीजें रहती थीं, लेकिन उसके हिसाब-किताब और जमा खर्च में गड़बड़ देख कर महाराणा शम्भूसिंह ने सम्पूर्ण विभाग में विद्यमान वस्तुओं को देखने के बाद अन्य विभागों से सम्बन्धित व उपयोगी वस्तुएं सम्बन्धित विभाग में पहुंचा दी। तथा शेष रद्दी वस्तुएं जो नीलाम व दान के योग्य थीं, वे दान में

किया गया कि, खुतबा और सिक्का तो बादशाही सिक्कों के अनुसार ही रहना चाहिये। अर्थात् रुपये में शाही सिक्के के अनुसार ही लेख लिखा जाना चाहिये और वजन तथा नाम मेवाड़ के पुराने सिक्कों के अनुसार रहें। फलतः इस समझौते के अनुसार "चित्तौड़ी सिक्का" जारी हुआ। इसके बाद 1770 विक्रमी (1125 हि० = 1713 ई०) में "उदयपुरी सिक्का" बनवाने की शर्त फर्रुखसियर बादशाह से तय हुई।

ताम्बे के सिक्के मेवाड़ में कई तरह के चलते हैं, जो भीलवाड़ी, उदयपुरी, त्रिशूलिया, भीडरिया, सलूम्बरिया, नाथद्वारिया आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इनमें मूल अक्षर तो बिगड़ गये हैं, लेकिन फारसी अक्षरों की सूरत के चिन्ह बना दिये जाते हैं, जो अच्छी तरह नहीं पढ़े जाते।

एक चांदी का सिक्का महाराणा स्वरूपसिंह ने 1906 विक्रमी (1265 हि० = 1849 ई०) में "स्वरूपशाही" के नाम से जारी किया था। जिसके एक तरफ नागरी-लिपि में "चित्रकूट उदयपुर" और दूसरी तरफ "दोस्ती लंदन" लिखा है। दूसरा सिक्का (चांदोड़ी) महाराणा भीमसिंह की बहिन चन्द्रकुंवरबाई ने जारी किया था, जिसमें फारसी अक्षर थे। परन्तु महाराणा स्वरूपसिंह ने उन अक्षरों को निकाल कर केवल बेल-बूटे के चिन्ह बनवा दिये।

तौल व नाप—मेवाड़ में कई प्रकार के तौल हैं। देहात में कहीं-कहीं 42 रुपये भर का सेर, कहीं 44 भर का, कहीं 46 भर का, कहीं 48 भर और कहीं 56 रुपये भर का है। इसी तरह माशे और तोले का भी हिसाब है। अर्थात् कहीं 6, कहीं 7, कहीं 8 रत्ती का माशा माना जाता है, लेकिन खास राजधानी उदयपुर में 8 रत्ती का माशा और 12 माशे का तोला प्रचलित है। इसी से सोना-चांदी का जेवर आदि तोला जाता है। यहां 10 (दस) माशे भर का रुपया है, जिससे 104 रुपये भर वजन का एक सेर और चालीस सेर का एक मन है। बारह मन वजन को एक माणी और बारहसौ मन को एक मणासा कहते हैं।

मेवाड़ के पहाड़ी जिलों में अनाज आदि का वजन लकड़ी के बने हुए पात्रों अर्थात् पैमाने से किया जाता है, जो पाई, माणा और सेई आदि के नाम से प्रसिद्ध है।

सिलहखाना—इस विभाग में तलवार, बर्छी और तीर-कमान आदि कई प्रकार के शस्त्र रहते हैं; जिनमें वह खड्ग भी है, जो वहरी जोगिन (देवी) ने राव मालदेव सोनगरा को दिया था और वहां से महाराणा हमीरसिंह के हाथ आया। यह खड्ग नवरात्रि के दिनों में एक मुख्य स्थान (खड्ग स्थापना) में स्थापित किया जाता है। जिसका उल्लेख नवरात्रि के विवरण में लिखा जा चुका है। दूसरी वह तलवार भी इस विभाग में है, जो बेचरा माता ने शार्दूलगढ़ के राव जशकरण डोडिया को और उसने महाराणा लक्ष्मणसिंह को दी थी। इस तलवार को बांधकर महाराणा हमीरसिंह ने चित्तौड़गढ़ का दुर्ग मुसलमानों से वापस लिया और महाराणा प्रतापसिंह ने अकबर बादशाह के साथ कई लड़ाइयां लड़ीं। उपर्युक्त शस्त्रों के अतिरिक्त कई प्रकार की ढालें और तरह-तरह के टोप, बख्तर, कवच, करत्राण आदि भी हैं।

बन्दूकों का कारखाना—इस विभाग में कई प्रकार की तोड़ादार बन्दूकें और जुजावलें रहती हैं। इनके अतिरिक्त वर्तमान महाराणा ने कई किस्म की टोपीदार व कारतूमी बन्दूकें और पिस्तोलें इकट्ठी की हैं। पहले यह विभाग बाबा चन्दासिंह की देखरेख में था और अब प्रतापसिंह की निगरानी में है।

छुरी, कटारी की ओवरी—इस विभाग में कई तरह की छुरी और कटारियां रहती हैं।

धर्मसभा – इस विभाग के अन्तर्गत मामूली दान-पुण्य आदि का काम और महाराणा की खास सेवा के श्री वाणनाथ महादेव और पूजन की सामग्री आदि रहती है।

देवस्थान की कचहरी—इस विभाग के क्षेत्राधिकार में कई छोटे-मोटे देवस्थानों[1] के जमा-खर्च का प्रबन्ध है। उन मन्दिरों के पुजारियों के

---

1. श्री एकलिंगेश्वर, श्री ऋषभदेव, श्री चतुर्भुजनाथ, श्री जगत् शिरोमणि, श्री नवनीतप्रिय, श्री गोकुलचन्द्रमा, श्री जवान स्वरूप बिहारी, श्री बांकड़ा बिहारी, श्री गुलाब स्वरूप बिहारी, श्री एजन स्वरूप बिहारी, श्री अभय स्वरूप बिहारी, श्री जगदीश्वर,

दे दी। अब जो कोई वस्तु नज्र आदि हो तो, इस विभाग में लिखी जाकर जिस विभाग के लिये उपयोगी हो, वहीं भेज दी जाती हैं। केवल महाराणा के पहिनने का जेवर और तस्वीरें इस विभाग में रहती हैं।

सेज की ओवरी—इस विभाग में महाराणा के खास आराम करने के पलंग आदि की तैयारी रहती है।

अंगोलिया की ओवरी—इस विभाग में महाराणा के स्नान सम्बन्धी वस्तुएँ रहती हैं।

रसोड़ा—इस विभाग में महाराणा स्वयं और उनके सन्मुख पंक्ति में भोजन करने वाले सभ्य जनों के लिए भोजन तैयार होता है। पुराने समय में वहीं पर भोजन किया जाता था। जिसका रिवाज निम्न प्रकार था कि, महाराणा अपने चौके[1] में बैठक पर बैठकर और सभ्यजन अपने चौके में पांतिये पर बैठ कर भोजन करते थे। यह प्रथा महाराणा अरिसिंह तृतीय तक तो बनी रही, लेकिन उसके बाद किसी कारण से उक्त विभाग में भोजन करना बन्द हो गया। क्रम-क्रम से भोजन करने वालों में भी न्यूनाधिक होता रहा। वर्तमान समय में किसी उत्तम स्थान पर महाराणा अपनी इच्छानुसार जिन सरदारों, पासवानों को अपने सन्मुख पांतिये पर बैठ कर भोजन करने की आज्ञा देते हैं, वे नित्यप्रति वहां पर भोजन करते हैं। यात्रा में सरदार, पासवान तथा विभाग के नौकर सब ही खाना खाते हैं।

पानेरा—इस विभाग में महाराणा के पीने का जल, खुश्क और तर मेवा, नाथद्वारा व एकलिंगेश्वर आदि देवस्थानों का महाप्रसाद और नशीली वस्तुओं तथा दवाईखाना[2] आदि रहता है।

---

1. प्रत्येक मनुष्य के बैठ कर जीमने के लिये सीमा निश्चित् की हुई जमीन को "चौका" कहते हैं. जो अब तक इस विभाग में बने हुए हैं।

2. पहले वैद्य अथवा हकीम आदि लोगों से जो औषधि बनवाते वह इसी विभाग में बनाई जाती और वहीं रखी जाती थी। लेकिन अब डॉक्टरों का इलाज प्रारम्भ हो जाने के कारण इस विभाग की निगरानी डॉक्टर अकबर अली के अधिकार क्षेत्र में है।

फीलखाना—पहले यह विभाग बाबा चन्दासिंह की देख-रेख में था। जिसको महाराणा स्वरूपसिंह ने उससे अलग करके, ढींकड़िया राधाकृष्ण को सौंपा। अब उसके बेटे श्रीकृष्ण की निगरानी में बहुत ठीक ढंग से चला आ रहा है। इस विभाग में पैंतीस से लेकर पचास तक हाथी और हथनियां रहती हैं।

अस्तबल (घुड़शाला)—इस विभाग में महाराणा की सवारी के और सभ्यजनों के चढ़ने के घोड़े और खासा तथा बारगीर बग्घियों के घोड़े और घोड़ियां रहती हैं। पुराने समय में पायगाह का दारोगा भण्डारी गोत्र का एक कायस्थ था, जो महासाणी कहलाता था। लेकिन बाद में नगीनाबाड़ी का दारोगा भी इस विभाग की देख-रेख पर नियुक्त किया गया। उसके बाद महासाणी का सम्बन्ध बिलकुल उठा दिया गया व दारोगा नगीनाबाड़ी[1] ही को यह काम सौंप दिया गया। उसके बाद भण्डारी गोत्र के कायस्थ का वंश तो बिलकुल नष्ट हो गया, जो घराना कि पुराने पासवानों में से था और अब इस विभाग का दारोगा कायस्थ जालिमचन्द है।

फर्राशखाना—इस विभाग में राज्य के डेरे, सरायचे, कनातें, पर्दे और फर्श आदि यात्रा सम्बन्धी सामान तथा महलों का सामान रहता है।

छापाखाना—इस विभाग को बैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह ने स्थापित किया था, जिसमें "सज्जन कीर्ति सुधारक" नामक एक अखबार, अदालतों के इश्तिहार और सम्मन आदि सामान्य कागज-पत्र छपते हैं। यह इतिहास भी इसी विभाग में छपा है।

पुस्तकालय—इस राज्य में दो पुस्तकालय हैं, एक नवीन पुस्तकालय जिसका नाम "श्री सज्जनवाणी विलास" है। जिसका महाराणा सज्जनसिंह ने निर्माण किया है। दूसरा पुराना "सरस्वती भण्डार" के नाम से प्रसिद्ध

---

1. स्वरूपविलास के नीचे जहां अब खुला हुआ दरीखाना है, पहले एक बगीची थी, जिसका नाम "नगीनाबाड़ी" था। उसकी निगरानी जालिमचन्द के पूर्वजों को दी गई थी। जिससे यह दारोगा नगीना बाड़ी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस दारोगा की सुपुर्दगी में महाराणा का रोजनामचा लिखे जाने का काम भी है।

लिये जो कुछ "बन्धान" निश्चित् कर दिया गया है, उनको वह इस कचहरी के द्वारा मिलता रहता है। बाकी जो कुछ बचत जिस मन्दिर की आमदनी में से रहती है, वह उसी मन्दिर की समझी जाती है। केवल निगरानी मात्र राज्य की ओर से स्वामित्व के रूप में रहती है। यह विभाग महाराणा स्वरूपसिंह के समय से प्रारम्भ हुआ है।

शिल्पसभा—इस विभाग के अन्तर्गत सम्पूर्ण निर्माण कार्यो (कमठाणे) का काम है। पहले यह काम पचूंनी विभाग से सम्बन्धित अलग-अलग आदमियों की निगरानी में था, लेकिन महाराणा शम्भुसिंह के समय से मि० टेलर को सौंपा गया। उसके बाद दो भागों में बट गया। तब से इस काम का बड़ा भाग, साह अम्बाव मुरड्या की निगरानी में और थोड़ा-सा इंजिनिअर टॉमस विलियम की देख-रेख में रहा। लेकिन वर्तमान महाराणा की गद्दी-नशीनी के समय से, कुछ कालावधि के लिये एग्‌जिक्युटिव इन्जिनिअर, केम्बल टॉमसन के अधिकार में हो गया है।

खास खजाना—यह वैकुण्ठवासी महाराणा ने अपना खास खजाना निश्चित् किया था।

शम्भु निवास—महाराणा शम्भुसिंह ने शम्भु निवास नामक अंग्रेजी स्थापत्य शैली का एक महल बनवा कर उसकी सजावट और रोशनी आदि का सामान तथा बहुत प्रकार की पचूंनी दर्शनीय वस्तुएँ, इसी महल के दारोगा महासागी रतनलाल के सुपुर्द कर दी थीं, जिससे यह एक बहुत बड़ा विभाग बन गया।

जनानी ड्योढी—यह कोई विभाग नहीं है, बल्कि एक अलग सरकार है। सैकड़ों औरत व मर्द ड्योढी पर जीवन-यापन करते हैं। ड्योढी सीगे का कुल काम मेहता लालचन्द व प्यारचन्द की निगरानी से होता है। इनके अन्तर्गत महाराणियों के कामदार, मौसल और दास, दासियों आदि सैकड़ों मनुष्य हैं।

श्री भीमपद्मेश्वर, श्री सरदार बिहारी, माजी का मन्दिर, अम्बिका भवानी, ऊटाला में शीतलादेवी, चित्तौड़गढ़ में श्री अन्नपूर्णा (बरवड़ी देवी) आदि के अतिरिक्त राजधानी उदयपुर और मेवाड़ राज्य में और भी बहुत से देवस्थान हैं।

जंगी फौज—यह "कवायदी फौज" है, जिसका प्रारम्भ महाराणा शम्भुसिंह के समय में हुआ, लेकिन वैकुण्ठवासी महाराणा (सज्जनसिंह) ने इस विभाग को व्यवस्थित कर इसका विस्तार किया। इस में कवायदी पलटनें, रसाला, तोपखाना, बोडीगार्ड (अंग रक्षक) और बैण्ड बाजा आदि सम्मिलित हैं। यह सेना मामा अमानसिंह के अधीन है।

मुल्की फौज—(देशी-सैनिक-बल) यह सेना मेहता माधवसिंह के पुत्र चन्दनसिंह की देख रेख में है। राज्य में पुलिस व्यवस्था और अन्य इसी तरह के छोटे-मोटे कार्य इस सेना से लिये जाते थे। इस सेना की भीम पल्टन और कुछ सवार तो मगरा के हाकम के अधीन और अर्दली के 200 सवार, भील कम्पनी और दो रसाले महासाणी रतनलाल के अधीन हैं।

महकमा खास—(कार्यपालिका) सम्बन्धी इन विभागों का वर्णन तो हम ऊपर लिख चुके हैं, अब दूसरा सीगा अदालत (न्यायालय) का है, जिसमें राज्य का सर्वोच्च न्यायालय "महद्राज सभा" है। इसका विस्तृत विवरण महाराणा सज्जनसिंह के वर्णन के साथ लिखा जावेगा। यहां पर उसका संक्षिप्त रूप से विवरण लिखते हैं ·

महद्राज सभा—इसको मेवाड़ की "रायल कौंउन्सिल समझना चाहिये। इसके दो उप-विभाग हैं, प्रथम इज्लास कामिल, और दूसरा साधारण अदालत। इन दोनों न्यायालयों की रूबकारें[1] बना कर महाराणा के सामने प्रस्तुत की जाती हैं और उनकी स्वीकृति के बाद ही फैसले घोषित किये जाते हैं। इस सभा के नीचे "सद्र फौजदारी" और "सद्र-दीवानी" नामक दो न्यायालय हैं, जिनकी "अपील" इसी सभा में सुनी जाती है।

स्टाम्प व रजिस्ट्री विभाग—इस विभाग से राज्य के स्टाम्प छप कर जारी होते हैं और मकान, जमीन व जायदाद की खरीद-बेचान आदि विषयों में रजिस्ट्री (पंजीकरण) आदि कार्यवाही की जाती है।

जिले के हाकिमों के अधीन दीवानी और फौजदारी के अलग-अलग विभाग होते हैं। नायब हाकम के फैसलों की अपील जिले के हाकिम सुनते

---

1. रूबकारे=आदेश, निर्णय। (सं०)

है। इन दोनों के अतिरिक्त पाठशालाओं और विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय अलग हैं।

सांडियों का कारखाना—राज्य में सांडियों के दो विभाग हैं। एक ढींकड़िया नाथूलाल के अधीनस्थ हैं, जिसमें बारबरदारी के नौकर, ऊंट और लगभग हजार-बारह सौ सरकारी सांडनियां (ऊंटनी) हैं। दूसरा विभाग मेरे (कविराजा श्यामलदास) के अधीन है, जिसमें 40 सांडिये और 10 घोड़ियां हैं। ये चौकी के उन पचास सरदारों की सवारी के लिये हैं, जो मेरे अधीन हैं। इन सरदारों की नौकरी खास महाराणा के हुक्म से ली जाती है।

विक्टोरिया हॉल—वर्तमान महाराणा ने अपने सम्मान और महाराणी विक्टोरिया की यादगार जुबली के निमित्त सज्जन निवास बाग में, एक बहुत अच्छा महल बनवा कर, इस विभाग को स्थापित किया है। जिसमें दो उप-विभाग हैं—एक म्यूजिअम (अद्भुत वस्तु संग्रहालय) और दूसरा लाइब्रेरी (पुस्तकालय)। ये दोनों विभाग दिनों दिन उन्नति करते जा रहे हैं।

पुलिस—यह विभाग वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह ने स्थापित किया है, जिसका सविस्तार विवरण उक्त महाराणा के वृत्तान्त में लिखा जावेगा।

सायर—इस विभाग का वृत्तान्त भी वैकुण्ठवासी महाराणा के वृत्तान्त में लिखा जायेगा।

वाकियात की कचहरी—सम्पूर्ण राज्य की नकद, बकाया इस कचहरी के माध्यम से वसूल होती है।

रावली दुकान—यह व्यापारी सीगे का एक महकमा है, जिसको महाराणा स्वरूपसिंह ने प्रारम्भ किया था।

टकशाल—इस विभाग में सिक्का ढलता है, जिसका विस्तृत विवरण हम ऊपर लिख चुके हैं। पहिले इस राज्य में दो टकशालें थीं; एक चित्तौड़ में और दूसरी उदयपुर में। लेकिन इन दिनों उदयपुर की टकशाल ही जारी है। जिसमें स्वरूपशाही अशर्फी और स्वरूपशाही, उदयपुरी और चांदोड़ी रुपया बनता है।

अध्याय दो

मेवाड़ का गौरव और प्राचीन इतिहास

1. मेवाड़ के शासकों का गौरव—(विदेशी इतिहासवेत्ताओं के मत)

जिस तरह सारे हिन्दुस्तान का प्राचीन इतिहास अन्धेरे में छिपा हुआ है, उसी तरह मेवाड़ का प्राचीन इतिहास भी अन्धकारमय ही है। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि, इस वंश का गौरव प्राचीनकाल से वर्तमान समय तक प्रकाशमान रहा है। क्योंकि यह घराना हिन्दुस्तान के सब राजाओं में शिरोमणि और बड़ा माना जाता है। हिन्दुस्तान के लोगों में क्या छोटा और क्या बड़ा ? जिसको पूछिये, यही जवाब देगा कि, उदयपुर के महाराणा "हिन्दुवा सूरज" हैं। कदाचित् मेरा[1] यह कहना खुशामद मालूम हो, क्योंकि मैं उनका खास नौकर हूँ। इसलिये मैं यहां पर सबसे पहले दूसरे देशों व धर्मों के लोगों द्वारा लिखित उन सफरनामों[2] और तवारीखों[3] के उद्धरणों को उद्धृत करता हूँ, जिनमें मेवाड़ के राजाओं के विषय में निष्पक्ष रूप से लिखा है। उस में चीनी यात्री हुएनसांग जो सन् 629 ईसवीं (हि० 8 = स० 686 वि०) में हिन्दुस्तान की यात्रा पर आया था, ने अपनी पुस्तक[4] की दूसरी जिल्द के पृष्ठ 266-67 पर वल्लभी, जो उदयपुर के राजाओं के पूर्वजों की राजधानी मानी जाती है, के विषय में लिखता है कि—

1. ग्रन्थ लेखक कविराजा श्यामलदास। (सं०)
2. सफरनामों = यात्रा—विवरणों। (सं०)
3. तवारीखों = इतिहास—ग्रन्थों। (सं०)
4. बुद्धिस्ट रेकार्डस् ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड ऑफ हुएनसांग, अनुवादक बील, जिल्द 1-2, (लंदन, 1884)। (सं०)

हैं और जिला हाकिम (जिलाधिकारियों) की अपीलें, सद्र फौजदारी और सद्र दीवानी न्यायालय में होती हैं।

वर्तमान महाराणा के समय में एक नया विभाग "गिराई का विभाग" की स्थापना हुई है। इस विभाग का अधिकारी सारे प्रदेश में "दौरा" करता रहता है।

किया है । उस पुस्तक के पृष्ठ 14-15 पर लिखे वर्णन का अनुवाद नीचे लिखा जाता है —

हिन्दुस्तान और चीन के लोग मानते है कि विश्व में चार बादशाह हैं। उन में अरब का बादशाह प्रथम, चीन का दूसरा, यूनान का तीसरा और चौथा बलहारा[1] माना जाता है, जो मुर्मियुल उजुन[2] अर्थात् उन लोगों का राजा, जिनके कान बिधे हुए हैं।

हिन्दुस्तान में यह बलहारा बहुत ही प्रसिद्ध राजा है। यद्यपि अन्य राजा अपने अपने राज्य में स्वाधीन हैं, तो भी उसको बड़ा मनाते हैं। जब वह उनके पास दूत भेजता है तो, वे उसको बड़ा और प्रतिष्ठित मान कर बड़ी इज्जत के साथ उसका आदर सम्मान करते हैं। वह अरब लोगों की तरह बड़ा दानवीर है। उसके पास अनेक घोड़े, हाथी और बहुत-सा खजाना है। उसके सिक्के चलते हैं, जो तातारी द्रम कहलाते हैं। उन सिक्कों का वजन अरबी द्रम से आधा द्रम अधिक होता है। वे इस राज्य के ठप्पे से बनते हैं जिनमें राजा के राज्याभिषेक का सम्वत् (सन् जुलूस) लिखा है। वे अपना सन् अरब लोगों की तरह मुहम्मद के समय से नहीं गिनते। बल्कि अपने राजाओं के समय से गिनते हैं । इन राजाओं में से कई एक तो दीर्घायु हैं और किसी-किसी ने पचास वर्ष से अधिक समय तक राज्य किया है।

"बलहारा इस खानदान के सभी राजाओं का विरुद है, न कि किसी व्यक्ति विशेष का नाम। इस राजा का आधिपत्य क्षेत्र काम-

---

1. बलहारा से "वल्लभीवाला" तात्पर्य है। इन यात्रियों के हिन्दुस्तान में आने के समय चित्तौड़ पर महारावल खुमाण राज्य करते थे जिनको लोग बलहारा अर्थात् "वल्लभी वाला" नाम से पुकारते होंगे। क्योंकि वल्लभी राज्य का पतन होने के बाद मेवाड़ का राज्य स्थापित हुआ । यह सर्वमान्य प्रथा है कि एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने वाले लोग उसके पूर्व निवास स्थान के नाम से पुकारे जाते थे। जैसे हिन्दुस्तान के पठान बादशाह अफगान और तुर्किस्तान के मुगल तुर्क कहलाते थे।
2. मुर्मियुल उजुन = कनफटा समुदाय।

यह प्रदेश घेरे में 6,000 ली है ।[1] राजधानी का घेरा लगभग 30 ली है। जमीन, जलवायु और लोगों का चाल-चलन मालवा के समान है। लगभग 100 निवासी करोड़पति हैं। दूर-दूर के देशों की कीमती चीजें यहां पर बहुतायत से मिलती हैं। यहां कई सौ देवताओं के मन्दिर हैं।

विद्यमान राजा क्षत्रिय जाति का है। वह मालवा के राजा शिलादित्य का भानजा और कान्यकुब्ज[2] के राजा शिलादित्य के पुत्र का दामाद है[3] और उसका नाम ध्रुवपट है। वह बड़ा चंचल और तेज स्वभाव वाला है। उसमें बुद्धि और शासन संचालन की योग्यता कम है। थोड़े दिनों से उसने त्रिरत्न का मजहब[4] सच्चे मन से स्वीकार कर लिया है। प्रतिवर्ष वह विशाल सभा का आयोजन करता है और सात दिन तक मूल्यवान जवाहरात और अच्छा भोजन बटवाया करता है। पुजारियों को तीनों प्रकार के वस्त्र और औषधियां अथवा उनका मूल्य और जवाहरात के बने हुए सातों प्रकार के गहने देता है। वह नेकी को अच्छा समझता है। वे लोग, जो बुद्धिमत्ता के लिये प्रसिद्ध हैं, उनकी इज्जत करता है और बड़े-बड़े धर्मगुरु, जो दूर-दूर के प्रदेशों से आते हैं, उनकी भी बहुत इज्जत करता है।

इस लेख से उन राजाओं के बड़प्पन का पता चलता है और पता चलता है कि, वे हिन्दुस्तान में बड़े राजाओं में से थे।

इसी तरह हिन्दुस्तान में आने वाले अरब के दो मुसलमान यात्रियों ने इस राजवंश का विवरण लिखा है। पहला यात्री सुलैमान सन् 851 ई० में और दूसरा अबूजैदुल्हसन सन् 867 ई० में हिन्दुस्तान की यात्रा पर आया था। इन दोनों को अरबी पुस्तकों का रेनाडाट ने अंग्रेजी भाषा[5] में अनुवाद

1. लगभग 6 ली का एक मील होता है।
2. कन्नौज (सं०)।
3. "मालवा के राजा शिलादित्य का भतीजा और कान्यकुब्ज के वर्तमान राजा शिलादित्य का दामाद है"—हुएनसांग का भारत भ्रमण, हिन्दी अनुवाद, ठाकुर प्रसाद शर्मा कृत, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, 1929 ई० पृ० 629। (सं०)
4. त्रिरत्न का महजब का बौद्ध धर्म से अभिप्राय' है।
5. अंग्रेजी के स्थान पर 'फ्रेंच' होना चाहिये। (सं०)

के अंग्रेजी के अनुवाद से यही प्रकट होता है जैसा कि, हेरिस के सफरनामा[1] की पहली जिल्द के पृष्ठ 758 पर लिखा है कि "अहमदाबाद शहर से कुछ दूरी पर मरवा[2] के बड़े पहाड़ दिखाई देते हैं, जो आगरा की तरफ लम्बाई में 210 मील से अधिक फैले हुए हैं और 300 मील से अधिक औयौ[3] की तरफ। जहां विकट चट्टानों के बीच चित्तौड़ में, शासक राणा का निवास स्थान था। जिसको मुगल और पाटन के बादशाह[4] की सम्मिलित सेनायें भी कठिनाई से जीत सकीं। मूर्ति पूजक हिन्दुस्तानी लोग अभी तक उस राजा की बड़ी इज्जत करते हैं। जो उनके कहने के अनुसार, युद्ध क्षेत्र में एक लाख बीस हजार सैनिक लाने के योग्य था।"

बर्नियर के सफरनामा[5] की पहली जिल्द के पृष्ठ 232-233 पर इस प्रकार लिखा है—

खिराज न देने वाले एक सौ से भी अधिक राजा हैं, जो बहुत शक्तिशाली हैं और सम्पूर्ण साम्राज्य में फैले हुए हैं। जिनमें कोई आगरा, दिल्ली के पास और कोई दूर है। इन राजाओं में 15 या 16 शासक तो धनाढ्य और बहुत शक्तिशाली हैं। विशेषरूप से राणा,[6] जो पूर्व में राजाओं का शहशाह समझा जाता था और पौरस के खानदान में माना जाता था, जयसिंह[7] और जसवन्तसिंह।[8] यदि ये तीनों ही मिल कर मुगलों से

1. जान हेरिस, कंप्लीट कलेक्शन ऑफ व्हायेजेस एण्ड ट्रेवेल्स, खण्ड 1-2, लन्दन, 1705, 1714। (सं०)
2. मारवाड़ या मेवाड़ होगा।
3. सम्भवतः उज्जैन होगा।
4. गुजराती बादशाह (गुजरात के सुलतान), क्योंकि पहले पट्टन नगर गुजरात की राजधानी था।
5. ट्रेवल्स इन मोगल एम्पायर, फ्रेंसिस बर्नियर कृत, अ० अ० इविंग ब्रोक कृत, आर० सी० लेपेग एण्ड कम्पनी कलकत्ता, जिल्दें 1-2; वर्तमान में सुलभ-ट्रेवल्स इन द मोगल एम्पायर फ्रेंसिस बर्नियर, (अं० अ०) आर्चिवाल्ड कांस्टेबल, द्वितीय संस्करण, सं० विन्सेंट स्मिथ (1914) पृष्ठ 208। (सं०)
6. महाराणा राजसिंह (1652-1680 ई०)। (सं०)
7. मिर्जा राजा जयसिंह, आम्बेर का शासक (1621-167 ई०)। (सं०
8. महाराजा जसवन्तसिंह, मारवाड़ का शासक (1638-1678 ई०)। (सं०)

काम[1] के सूबे से शुरू होता है और चीन की सीमा तक फैला हुआ है। उसका राज्य बहुत से राजाओं के प्रदेशों से घिरा हुआ है, जो उसके साथ शत्रुता रखते हैं लेकिन वह उन पर कभी चढ़ाई नहीं करता।"

सन् 1615 ई० में सर टामसरो ने अपने सफरनामे[2] के 19 वें पृष्ठ पर चित्तौड़ का वर्णन इस तरह किया है—

"यह शहर राणा[3] के राज्य क्षेत्र में है, जिसको इस बादशाह[4] ने थोड़े दिन पहले अपने अधीन किया है[5], बल्कि कुछ रुपया पैसा लेकर अपनी आधीनता स्वीकार करवायी थी। बादशाह अकबर ने इस शहर पर अधिकार किया था, जो इस बादशाह का पिता था। राणा उस पोरस के वंश में से है, जिस बहादुर हिन्दुस्तानी राजा को सिकन्दर ने विजित किया था।"

इस तरह सर टॉमसरो के पादरी एडवर्ड ने अपने सफरनामें[6] के पृष्ठ 77-78 पर चित्तौड़ का विवरण निम्नलिखित रूप से लिखा है—

"चित्तौड़ एक बहुत प्राचीन राज्य का प्रमुख नगर एक ऊंचे पहाड़ पर स्थित है। इसकी शहरपनाह (चार दीवारी) का घेरा कम से कम 10 मील में होगा। आज तक यहां पर 200 से[7] अधिक मन्दिर और पत्थरों के बने बहुत ही अच्छे एक लाख मकानों के खण्डर दिखाई देते हैं। अकबर बादशाह ने इसको राणा से जीत लिया था, जो राणा प्राचीन हिन्दुस्तानी रईस है।"

जान एल्बर्ट डी मेंडलस्लो[8] जर्मन की फ्रांसीसी भाषा में लिखी पुस्तक

---

1. इसका शुद्ध शब्द "कोंकण" मालूम होता है।
2. दी एम्बेसी ऑफ सर टामसरो टू इण्डिया (1615-17), सम्पादक सर विलियम फॉस्टर पृ० 82। (सं०)
3. महाराणा अमरसिंह प्रथम (1597-1620 ई०)। (सं०)
4. बादशाह जहांगीर (1605-1627 ई०)। (सं०)
5. अन्य शासक की तरह मातहत नहीं बनाया था।
6 एडवर्ड टेरी, व्हायेज टू ईस्ट इण्डिया, लन्दन (1777 ई०)। (सं०)
7. टामसरो०, पृ० 469 पर 100 मदिर ही लिखे हैं। (सं०)
8. जीन एल्बर्ट मेंडलस्लो, व्हायेजेस सलब्रे एट रिमार्केबल्स ' ट्स डी परसे आक्सइण्डेस ओरियेण्टेलेस, नया संस्करण, एम्स्टेरडम, 1727। (सं०)

उसका आगरे तक पहुंच जाना सम्भव है। लेकिन यह सम्भव नहीं है कि, ये गुहिलश्री के दो हजार सिक्के कोई यात्री लाया हो, जो कि उस राजा के समय में मेवाड़ या सौराष्ट्र से आया था। यह केवल अनुमान मात्र है और अधिक सम्भव यही जान पड़ता है कि, ये सिक्के गुहिल के शासनकाल में आगरा में भी चलते थे। क्योंकि यह भी सम्भव है कि, ऐसे ही सिक्के इसी राजा या राजवंश के और भी किसी समय में आगरा में मिले हों, जिनको मैंने नहीं देखा।"

लुई रासेलेट[1] ने अपने मध्य हिन्दुस्तान के यात्रा विवरण के पृष्ठ 200[2] पर लिखा है कि, चित्तौड़ की प्रसिद्ध मोर्चाबन्द वस्ती, जो एक अकेले पहाड़ की चोटी पर वसी हुई है, मेवाड़ की पुरानी राजधानी थी। यह सदियों तक मुसलमानों के आक्रमणों के विरुद्ध बचाव की अन्तिम सुदृढ़ जगह थी।"

एचिसन की अहदनामों की किताव[3] जिल्द तीसरी के पृष्ठ 3 पर लिखा है कि "उदयपुर का राजवंश हिन्दुस्तान के राजपूत रईसों में सर्वाधिक गौरवशाली और उच्चश्रेणी का है। यहां के राजा को हिन्दू लोग अयोध्या के प्राचीनकाल के राजा राम का प्रतिनिधि समझते हैं। जिनके वंश में से राजा कनकसेन ने लगभग सन् 144 ई० में इस राजवंश की नींव डाली थी। डूंगरपुर, सिरोही[4] और प्रतापगढ़ के राज्य भी यहीं से निकले हैं। मराठा लोगों की सत्ता की नींव डालने वाला शिवाजी और घोंसला (भोंसला) राजवंश उदयपुर के घराने से ही निकले थे। हिन्दुस्तान में किसी राज्य ने यहां से बढ़ कर अधिक वीरता के साथ मुसलमानों का सामना नहीं किया। इस घराने का अभिमान है कि, उन्होंने कभी किसी मुसलमान बादशाह को लड़की नहीं दी।

---

1. यह फ्रान्सीसी यात्री, सन् 1857 के महान विद्रोह के आठ वर्ष बाद भारत आया था। (सं०)
2. इण्डिया एण्ड इट्स नेटिव प्रिन्सेज, ट्रेवल्स इन सैण्ट्रल इन्डिया, सम्पादक लेफ्टिनेट कर्नल वकल, (लंदन, 1882) पृ० 200। (सं०)
3. ट्रीटीज, एंगेजमेण्ट्स एण्ड सनदस, भाग 3, पृष्ठ 3 (1876)। (सं०)
4. सिरोही के रईस देवड़ा (चौहान) खानदान से हैं, जो मेवाड़ के राजवंश में से नहीं है। एचिसन ने यहां गलती से ही लिख दिया है।

शत्रुता करना चाहें, तो मुगलों के लिये भयानक वैरी सिद्ध होंगे। क्योंकि वे हर समय लड़ाई में बीस हजार सैनिक ले जाने की सामर्थ्य रखते हैं। उनका सामना करने वाले दूसरे लोग इनके बराबर शक्तिशाली नहीं हैं इन लोगों के सैनिक राजपूत कहलाते हैं। युद्ध इनका वंश परम्परागत व्यवसाय है, तथा प्रत्येक व्यक्ति को इस शर्त पर जागीर दी जाती है कि जहां भी राजा का आदेश हो वह घोड़े पर सवार होकर जाने के लिये तैयार रहें। ये लोग बहुत थकान को सहन करते हैं और अच्छे सैनिक होने के लिये केवल सैनिक परेड ही आवश्यक है।

मेजर जनरल कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट[1] के चौथे खण्ड के पृष्ठ 95-96 पर लिखा है कि, "पिछले (प्राचीन) अथवा बीच के (मध्यकालीन) हिन्दू जमाने में बारे में अनुमान है कि, गुहिल या गुहिलोत नामक मेवाड़ का राजवंश किसी समय में आगरा पर राज्य करता था। सन् 1867 ई० में दो हजार से भी अधिक छोटे-छोटे चांदी के सिक्के आगरा में हुई खुदाई में निकले थे। उन सभी पर प्राचीन संस्कृत अक्षरों में लिखा लेख स्पष्टरूप से "श्री गुहिल" या "गुहिल श्री" पढ़ने में आया। ये सिक्के सम्भवत: श्री गोहा-दित्य का गुहिल के होंगे, जो मेवाड़ के गुहिलोत राजवंश की नींव डालने वाला था। लेकिन गुहिल का शासनकाल[2] तो सन् 750 ई० में था और वह लिपि उस समय से पहले की मालूम होती है। कदाचित् ये सिक्के बाद के गोहा या ग्रहादित्य के हों, जो इसी खानदान के राजा शिलादित्य का पुत्र और गुहिलोत या सीसोदिया राजवंश का प्रथम राजा था। यह खानदान बलहारा, वल्लभी अथवा सौराष्ट्र के खानदान से निकला था, जो उस देश के पतन के पश्चात् वहां से निकल गये, परन्तु उस राजा का ठीक से समय मालूम नहीं। अनुमान है कि, छठी सदी ईसवी के लगभग रहा होगा। सौराष्ट्र के राजाओं का राज्य किसी समय में इतना बड़ा था, जिससे निस्संदेह

---

1. आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट सन् 1871-72 ई०। (सं०)
2. गुहिल नाम का एक ही राजा हुआ था, जो ईसा की पांचवीं सदी के अन्त या छठी सदी के प्रारम्भ में हुआ होगा। क्योंकि हमको (कवि-राजा श्यामलदास को), सं० 718 विक्रमी (हि० 41 = 661 ई०) की एक प्रशस्ति मिली है, जो गुहिल के बाद छठे राजा अपराजित के शासनकाल की है।

"उदयपुर के राणा अपनी उत्पत्ति राम के पुत्र लव से वतलाते हैं। इसलिये वे सूर्यवंशी समझे जाते हैं और राजपूतों में गुहिलोत वंश की सीसोदिया शाखा में हैं। सव राजपूत राजाओं में वड़े माने जाते हैं तथा दूसरे राजा लोग गद्दी पर वैठने के समय उनके हाथ से तिलक स्वीकार करते हैं। इसका अर्थ यह है कि, उनकी गद्दीनशीनी राणा को स्वीकार है।"

इलियट की तवारीख[1], की प्रथम जिल्द के पृष्ठ 354-360 पर वलहारा सौराष्ट्र और वल्लभी के नाम से इस वंश का वर्णन कई इतिहास लेखकों का हवाला देकर लिखा है।

थार्नटन[2] ने अपने गजेटियर के पृष्ठ 723 पर लिखा है कि, "उदयपुर का राजवंश राजपूतों में अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। दिल्ली के शाही खानदान के साथ वहां के राजाओं ने कभी रिश्तेदारी नहीं की।"

रेनाल्ड ने लिखा है कि, "उदयपुर के राणा हमेशा राजपूत राज्यों के सरदार समझें गये हैं। जो लोग अन्य किसी तरह से उनको वड़ा नहीं मानते, वे भी पुरानी परम्परा के अनुसार उनकी इज्जत करते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि, राणा के पूर्वजों के हाथ में पहले पूरे अधिकार रहे थे और सम्भवतः सारा राजपूताना उनके अधीन एक ही राज्य था।"

विलियम रावर्टसन की तवारीख हिन्दुस्तान के पृष्ठ 302 में लिखा है कि, "चित्तौड़ के राजा जो हिन्दू राजाओं में सवसे प्राचीन समझे जाते हैं और राजपूत जातियों में सव से श्रेष्ठ हैं, अपनी उत्पत्ति पौरस के खानदान से वतलाते हैं। अर्म[3] भी रावर्टसन के अनुसार ही लिखता है।

मार्शमेन की तवारीख,[4] की पहली जिल्द के पृष्ठ 23 पर लिखा है कि "उदयपुर का खानदान राम के वड़े पुत्र लव से पैदा हुआ है इसलिये हिन्दुस्तान के हिन्दू राजाओं में वड़ा माना जाता है। पूर्व में यह राजवंश

---

1. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड वाई इट्स ओन हिस्टोरियन, सम्पादक इलियट व डावसन, भाग 1, पृ० 354-360 (सं०)
2. थार्नटन (एडवर्ड), गजेटियर ऑफ दी टेरीटरीज अण्डर दी ईस्ट इण्डिया कम्पनी, 1857। (सं०)
3. ओर्म रावर्ट, हिस्टारिकल फ्रेगमेण्टस, लन्दन, 1782, पृ० 51 (सं०)
4. मार्शमन, जान सी, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्दें 1-3, 1867। (सं०)

कई वर्ष तक उन राजपूतों के साथ शादी व्यवहार छोड़ दिया, जिन्होंने बादशाहों को लड़की दी थीं। डॉक्टर हंटर[1] ने भी अपने गजेटियर में एचिसन के अनुसार ही लिखा है।

हेरिस के यात्रा विवरण की जिल्द 1, के पृष्ठ 632 की पाद टिप्पणी में लिखा है कि—"राजा राणा, जिसको तैमूरलंग[2] ने परास्त किया, वह सब इतिहासवेत्ताओं के अनुसार महाराजा पोरस के खानदान से था।"

यद्यपि बादशाह अकबर आगरा शहर बसाने में व्यस्त था, फिर भी राज्य विस्तार की तृष्णा, जो उसके सिंहासनारूढ होने के प्रारम्भिक वर्षो में नजर आई थी, वह नहीं बुझी। हिन्दुस्तान के एक राजा का वर्णन सुन कर, जो बुद्धिमानी और वीरता के लिए प्रसिद्ध था और पोरस के खानदान में पैदा होने के कारण प्रसिद्ध था और जिसका प्रदेश बादशाह की राजधानी से केवल 12 मंजिल की दूरी पर था, उसको बादशाह ने शीघ्र ही विजित करने का विचार किया। विशेष रूप से इस कारण कि, यह पदेश उसके मौरूमी (पैतृक) राज्य और नये विजित किये हुए प्रदेश के बीच में था। इस राजा की "राणा" पदवी थी, जो विरुद उसके खानदान के सभी राजाओं को हिन्दुस्तान के प्राचीन विधान (परम्परा) के अनुसार दिया जाता था। वह राजा[3] पोरस के राजवंश के योग्य था। यदि उसकी अच्छी मदद करने वाला कोई दूसरा राजा भी होता तो, वह अपने प्रदेश की आजादी फिर से प्राप्त कर लेता। फिर भी उसने विशेष प्रयत्न किये, जो इस प्रदेश के इतिहास में हमेशा याद रहेंगे, तथा आगे पृ० 640 पर भी राणा का वर्णन, एक शक्तिशाली हिन्दुस्तानी सरदार के रूप में लिखा है।

मिल[4] कृत-हिन्दुस्तान के इतिहास की, सातवीं जिल्द के पृष्ठ 57 पर इस प्रकार लिखा है—

---

1. विलियम हण्टर, इंडियन एम्पायर, लंदन, 1882। (सं०)
2. तैमूर की किसी लड़ाई का वर्णन किसी भी फारसी में लिखे गये इतिहास ग्रन्थ में नहीं मिलता। सम्भवतः बाबर के बदले तैमूरलंग लिख दिया होगा। जिसकी लड़ाई महाराणा सांगा से हुई।
3. महाराणा प्रताप। (सं०)
4. जेम्स मिल, हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, लंदन, 1826। (सं०)

वह लड़का चित्तौड़ के राणाओं के राजवंश की नींव डालने वाला हुआ।

चित्तौड़ के राणाओं से ही उदयपुर के राणा निकले, जिनका राजवंश हिन्दुस्तान में सबसे पुराना माना जाता है। ऐसा भी वर्णन है कि, मराठा जाति की नींव डालने वाला व्यक्ति इसी उदयपुर के राजवंश से पैदा हुआ था।

एलफिंस्टन कृत, हिन्दुस्तान के इतिहास[1], पृष्ठ 431 पर इस प्रकार लिखा है—

"राजपूत राजा हमीरसिंह, जिसने अलाउद्दीन खिलजी के समय में चित्तौड़ को वापस ले लिया था (1316 ई०)। उसने सम्पूर्ण मेवाड़ पर दूसरी बार अधिकार किया। उसके पुत्र ने अजमेर को भी इस में मिला लिया। जब मालवा का प्रदेश दिल्ली से अलग हो गया, उस समय मालवा के शासकों और मेवाड़ के राजाओं के मध्य कई बार लड़ाईयां हुईं। तथा बाबर के समय से थोड़े समय पहले ही मालवा का बादशाह (महमूद) पराजित होकर राजपूत राजा, राणा सांगा का कैदी बना था (1519 ई०)। हमीर से छठी पीढ़ी में राणा सांगा हुआ, जिसने मेवाड़ का अधिकार पाने के अतिरिक्त भेलसा[2] और चंदेरी तक मालवा के पूर्वी क्षेत्रों पर सत्ता स्थापित की। उसको मारवाड़ और जयपुर के राजा तथा दूसरे सभी राजपूत राजा भी अपना सरगिरोह (नायक) मानते थे।"

इसी किताब के पृष्ठ 480[3] पर लिखा है कि, उदयपुर के राणा का राजवंश और जाति, जो पहले गुहिलोत और बाद में सीसोदिया कहलाये, राम से निकले हैं। इसलिये वे मौलिक रूप से अवध से सम्बद्ध है। बाद में वे गुजरात में स्थापित हुए, जहां से ईडर गये। तथा अन्त में टॉड की राय के अनुसार आठवीं सदी ईसवी के शुरू में चित्तौड़ पर स्थापित हुए। सन् 1303 ई० तक, जबकि चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के अधिकार और कुछ समय बाद राणा हमीर द्वारा पुनः अधिकार कर लेने तक, उनका (राणाओं का

---

1. एलफिंस्टन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, (लंदन, 1916) पृ० 422। (सं०)
2. भेलसा=वर्तमान विदिशा। (सं०)
3. एलफिंस्टन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, (लंदन1916)पृ० 469। (सं०)

सूरत के प्रदेश में गया और उसने खम्भात की खाड़ी में वल्लभीपुर को अपनी राजधानी बनाया।"

मालकम की तवारीख-सेण्ट्रल इण्डिया (मेमाअर्स ऑफ सैण्ट्रल इण्डिया) की पहली जिल्द के पृष्ठ 27-28 पर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी के वर्णन में लिखा है कि—"उसको चित्तौड के राणा कुम्भा ने कैद कर लिया और फिर मेहरबानी, दया करके छोड़ दिया और उसका प्रदेश वापस दे दिया। उस समय के वर्णन में सभी इतिहास ग्रन्थ लिखते हैं कि, कुछ राजपूत राजाओं ने, जिनमें विशेष रूप से चित्तौड़ के राणाओं ने अपने आसपास के मुसलमानों से बड़ी कठोर लड़ाइयां कर, उन पर विजयें प्राप्त की।" इसी इतिहास के 36 वें पृष्ठ पर पाद टिप्पणी लिखी है कि, "उदयपुर के राणा, जो राजपूतों में सबसे ऊंचे राज वंश के हैं, हमेशा यह गर्व करते हैं कि, उन्होंने मुगल बादशाहों के साथ कभी विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं किया।"

मुसलमान मुवर्रिखों (इतिहासवेत्ताओं) ने लिखा हैं कि, मालवा के बादशाहों की कठिनाइयों, उनकी धोखाधड़ी और आपसी घरेलू फूट के कारण से उत्पन्न हुई। जिसका मुख्य आधार चित्तौड़ के राणा सांगा की बहादुरी और योग्यता थी। वह अपने समय में राजपूतों का सरगिरोह (प्रमुख सेनापति) माना जाता था। बादशाह बाबर ने "तुजुक-इ-बाबरी"[1] में लिखा है कि, "इस प्रसिद्ध हिन्दू राजा ने शाह महमूह के ऊपर कई बार विजय प्राप्त की। उससे बहुत से सूबे छीन लिये—जैसे रामगढ़, सारंगपुर और चंदेरी।

ग्रांट डफने मराठों का इतिहास[2], की प्रथम जिल्द के पृष्ठ 19-20 लिखा है कि, "शालिवाहन ने आसेर के राजा का प्रदेश ले लिया, यह राजा सूर्यवंशी राजपूत शासक सीसोदिया राजवंश का था। उसका मूल पुरुष कौशल देश से, जिसको आजकाल अवध कहते हैं, निकल कर नर्मदा की तरफ आया और अपना राज्य स्थापित किया, जो शालिवाहन की विजय के समय तक सोलहसौ अस्सी वर्ष तक बना रहा था। शालिवाहन ने केवल एक स्त्री को छोड़कर, उस वंश के सभी लोगों को कत्ल कर दिया। यह स्त्री अपने कम उम्र के पुत्र के साथ सतपुड़ा के पहाड़ों में जाकर छुप गई।

1. बैवरिज, बाबरनामा, (अं० अ०), भाग 2, पृ० 483। (सं०)
2. ग्रांड डफ, ए हिस्ट्री ऑफ मराठाज, लन्दन, 1826। (सं०)

बादशाह बाबर ने अपनी पुस्तक "तुजुक-इ-बाबरी"[1] (हस्तलिखित) के पृष्ठ 243 पर लिखता है कि, "राणा सांगा की शक्ति इस देश हिन्दुस्तान में इस दरजे की थी कि, अधिकांश राजा और रईस उसके वर्चस्व को मानते थे और उसका अधिकार क्षेत्र दस करोड़ की आमदनी का था। जिसमें हिन्दुस्तान के कायदे के अनुसार एक लाख सैनिकों की गुंजाइस हो सकती है।

इसी तरह प्रकाशित पुस्तक अकबर नामा की दूसरी जिल्द के पृष्ठ 380 पर लिखा है कि, "बादशाही जुलूस[2] के बाद अधिकांश ऐसे राजाओं ने भी जो कभी दूसरे बादशाहों के आधीन नहीं रहे थे, अब आधीनता स्वीकार कर ली। लेकिन राणा उदयसिंह ने, जो इस प्रदेश में अपने प्राचीन गौरव का ध्यान रखने वाला था और अपने पूर्वजों के अनुरूप विकट पहाड़ों और सुदृढ़ किलों के कारण गर्वीला था, बहादुरी से बादशाह की आधीनता स्वीकार नहीं की। इसलिये बादशाह को चित्तौड़ का दुर्ग लेना पड़ा।

अकबरनामा की तीसरी जिल्द के पृष्ठ 151[3] में लिखा है कि, "जब कुंवर मानसिंह मेवाड़ पर बादशाही फौज लेकर मांडलगढ़ में पहुंचा तो, राणा ने उस वक्त अभिमान के साथ बादशाह की फौज का विचार न करके मानसिंह को अपना अधिनस्थ जमींदार समझ कर यह इरादा किया कि, उससे वहीं जाकर लड़ें। लेकिन उसके शुभचिन्तकों ने उसको इस इरादे से रोका।"

इसी तरह तबकात-इ-अकबरी[4] के पृष्ठ 282 पर लिखा है कि, "हिन्दुस्तान के अधिकांश राजाओं आदि ने बादशाह की आधीनता स्वीकार करली थी, लेकिन मेवाड़ का राजा राणा उदयसिंह सुदृढ़ दुर्गों और सशक्त सेना के कारण गर्व करता हुआ उपद्रव करता था।"

इसी पुस्तक के पृष्ठ 333[5] पर पुनः लिखा है कि, "राणा कीका[6] जो

1. बेवरिज. बाबरनामा (अं० अ०) भाग 2, पृ० 561-62। (सं०)
2. बादशाह का राज्यारोहण उत्सव। (सं)
3. अकबरनामा (अं० अ०), भाग 3, पृ० 244। (सं०)
4. तबकात० (अं० अ०), भाग 2, पृ० 341। (सं०)
5. तबकात० (अं० अ०), भाग 2, पृ० 487। (सं०)
6. अकबरनामा व तबकात-इ-अकबरी में महाराणा प्रताप को "कीका" लिखा है, जो उसका कुंवरपदे व बचपन का नाम था।

नाम इतिहास में प्रसिद्ध नहीं हुआ। हमीर, जिसने कि यह कार्य किया था, के बाद कई योग्य शासक हुए और उनके माध्यम से मेवाड़ देश राजपूतों में उस गौरव तक पहुँचा, जिससे सांगा (संग्रामसिंह) बाबर के विरुद्ध युद्ध में उन सभी राजपूतों को ले जाने में सफल हुआ।"

टॉड नामा राजस्थान[1] की पहली जिल्द के पृष्ठ 211 पर इस तरह से लिखा है—

मेवाड़ के शासक (महाराजा) राणा कहलाते हैं और सूर्यवंशी अथवा सूर्यवंश की बड़ी शाखा है। "रघुवंशी" इनका दूसरा वंशानुगत विरुद है। यह पदवी राम के बाप-दादाओं में से किसी के नाम पर बनी है। सूर्यवंशी राजवंश की प्रत्येक शाखा राम से निकली है। सूर्यवंशी वंश की शाखाओं का वंशवृक्ष लिखने वाले इसको लंका को जीतने वाले से प्रारम्भ होना लिखते हैं। अधिकांशत: तथ्यों के वादों के कारण विवाद है। लेकिन हिन्दुओं की सभी जातियां जो इस बात पर एक मत हैं कि, मेवाड़ के महाराणा वास्तव में राम की राजगद्दी के उत्तराधिकारी हैं और उनको "हिन्दुवा सूरज" कहते हैं। 36 राजसी (राज करने वाली) जातियों में से सभी उनको प्रथम समझते हैं और उनके कुलीन होने में कभी सन्देह उत्पन्न नहीं हुआ है।"

जार्ज टॉमस ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 196 पर लिखा है कि, "उदयपुर का राजा वैसी ही स्थिति में है, जैसा कि दिल्ली का बादशाह।" इसके अतिरिक्त उक्त लेखक ने अपनी पुस्तक में महाराणा के खानदान का बड़प्पन (गौरव) और भी कई स्थानों पर प्रकट किया है।

इस वंश के बड़प्पन के सम्बन्ध में यूरोपियन इतिहासकारों की पुस्तकों से ऊपर लिखे प्रमाणों को लिखने के बाद अब कुछ फारसी इतिहास ग्रन्थों के उल्लेख भी चुन कर लिखे जाते हैं, जिनके रचनाकार हमेशा उदयपुर के बल्कि कुल हिन्दुओं के विरोधी रहे हैं और जिन्होंने धार्मिक व खानदानी वैमनस्य से विधर्मी लोगों के लिये हमेशा निन्दनीय शब्दों का प्रयोग किया है—

---

2. एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान, भाग 1 (1983), पृ० 173। (सं०)

पीढ़ियां होती हैं, जिन्होंने चारसौ इकसठ वर्ष राज्य किया है। इस समय में उन्होंने हिन्दुस्तान के किसी भी बादशाह की आधीनता स्वीकार नहीं की है। बाबर बादशाह से राणा सांगा की लड़ाई प्रसिद्ध है और अकबर बादशाह द्वारा सुदृढ़ चित्तौड़ दुर्ग को हस्तगत करना सभी जानते हैं। राणा को आधीन करना ही शेष रह गया था और यह महत्त्वपूर्ण कार्य मेरे पिता ने मुझे सौंपा था। इसलिये मैंने अपने शासनकाल के समय इसको पूरा करना चाहा।"

तवारीख फरिश्ता के पृष्ठ 54 पर मुहम्मद कासिम लिखता है कि, राजा वीर विक्रमादित्य के समय के बाद के राजाओं में से बादशाह जहांगीर के इस समय तक ऐसा कोई भी राजा नहीं रहा, जिसका नाम लिया जा सके। निश्चित् रूप से एक राजपूत शासक राणा है, जिसके राजवंश में मुसलमानों के समय के पहले से ही राज्य चला आ रहा है।

मुन्तखब-उल्-लुबाब की पहली जिल्द के पृष्ठ 172-73 पर खफीखां लिखता है कि, "जब से अकबर बादशाह ने चित्तौड़ दुर्ग को जीत करके वीरान कर दिया है, राणा[1] और उसके आदमियों ने पहाड़ों के मध्य उदयपुर नामक एक नई आबादी बसा ली है। यह पुस्तक लेखक (खफी खां) जिन दिनों में ईरान के एक शाहजादा खलीफा सुल्तान के साथ यात्री और मेहमान के रूप में उस प्रदेश में गया तो, राणा की इच्छा से उसकी दावत स्वीकार करने के लिये उसे कई रोज तक ठहरने का अवसर मिला। राणा की सायर राहदारी और फौजदारी आदि सीगों (विभागों) की आमदनी के अतिरिक्त माल की आमदनी (भू-राजस्व की आय) एक करोड़ से अधिक है।" वह आगे लिखता है कि, "हिन्दुस्तान भर में उस से बढ़ कर कोई रईस नहीं है और वह बादशाह को अपनी लड़की नहीं ब्याहता है।

छापने वाले ने भूल से "रावल" लिख दिया होगा। क्योंकि महाराणा अमरसिंह प्रथम से छब्बीस पीढ़ी पूर्व राणा राहप हुआ है जिसने सर्वप्रथम राणा का विरुद धारण किया। इसी तरह 26 रावल और 26 राणाओं के शासनकाल के वर्षों की संख्या 1471 में भी बहुत कुछ फर्क है। मेवाड़ के इतिहास की कम जानकारी के कारण ही बादशाह जहांगीर ने जैसा सुना वैसा ही लिख दिया।

1. महाराणा उदयसिंह। (सं०)

हिन्दुस्तान के राजाओं का सरदफ्तर (प्रमुख) है, चित्तौड़ विजित होने के बाद पहाड़ों में गोगूंदा नामक एक शहर बसा कर जिसमें कि उसने श्रेष्ठ भवनों और बागों को तैयार कराया था, अपनी जिन्दगी सर्कशी (उपद्रवों) के साथ व्यतीत करता था।"

मुन्तखब-उत्-तवारीख के पृष्ठ[1] 213-14 में मौलवी अब्दुल कादिर बदायूनी लिखता है कि, हल्दीघाटी की लड़ाई में राणा का रामप्रसाद हाथी बादशाह की सेना वालों के हाथ लगा। उसको मैं आंबेर के रास्ते से आगरा को ले जाने लगा। लेकिन मार्ग के लोग राणा की लड़ाई और मानसिंह की विजय का हाल सुनकर विश्वास नहीं करते थे।

छपी हुई पुस्तक तुजुक-इ-जहांगीरी[2] के पृष्ठ 122 पर बादशाह जहांगीर लिखता है कि, "मैं आगरा से अजमेर की तरफ दो कारणों से रवाना हुआ। एक ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की जियारत (दर्शन), जिसने हमारे खानदान को बहुत लाभ पहुंचाया है और तख्त नशीनी के बाद मैं, वहां नहीं गया था। दूसरे राणा अमरसिंह को पराजित करना, जो कि हिन्दुस्तान के प्रमुख राजाओं में से है। इसकी व उसके बाप-दादों के बड़प्पन और सरदारी को इस प्रदेश के राजा और रईस मानते हैं। बहुत लम्बे समय से हुकूमत और रियासत इस घराने में है। एक समय तक पूर्वी इलाकों में इनकी हुकूमत थी और उस वक्त ये लोग राजा के विरुद से प्रसिद्ध थे। इसके बाद दक्षिण में जाकर रहने लगे। तथा वहां का अधिकांश प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। तब राजा के स्थान पर रावल का विरुद अपने नामों के साथ अपना लिया। इसके बाद मेवाड़ के पहाड़ों में आये और धीरे-धीरे चित्तौड़ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उस समय से अब तक कि, यह मेरे जुलूस का आठवां वर्ष है, चौदह सौ इकहत्तर वर्ष हुए, 26 ऐसे राजा हुए हैं, जो रावल विरुद रखते थे। जिनके शासन का समय एक हजार दस साल होता है। तथा सबसे पहले रावल[3] से लेकर राणा अमरसिंह तक 26

---

1. मुन्तखब-उत्-तवारीख (अं० अ०), भाग 2, पृ० 241-42। (सं०)
2. जहांगीर का आत्म चरित्र (हिन्दी), पृ० 317-319। (सं०)
3. "तुजुक-इ-जहांगीरी" में पहला रावल लिखा है, परन्तु मूल में यह "पहला राणा" मालूम होता है, जिसको बादशाह ने अथवा पुस्तक

नाथद्वारा व कांकड़ोली के वैष्णव मतावलम्बियों को बादशाह आलमगीर के भय से बचाया और शाक्तमत वालों के इस राज्य में बड़े-बड़े प्रतिष्ठित मंदिर हैं, उनको भी कभी नहीं सताया। इस राज्य में सभी धर्मों के पेशवाओं का आदर सम्मान होता है। उपरोक्त कारणों तथा इसी तरह की अन्य बातों से मेवाड़ के महाराणाओं का बड़प्पन आज तक विद्यमान है।

2. मेवाड़ में शासकों की वंशावली—

अब हम मेवाड़ के राजाओं की प्राचीन वंशावली लिखना प्रारम्भ करते हैं। इनमें प्रथम तो वह वंशावली लिखेंगे जो संस्कृत के ग्रन्थों में मिलती है और जिसको हिन्दुस्तान के सभी लोग स्वीकार करते हैं। यद्यपि महाभारत के हरिवंश तथा कालीदास के रघुवंश और श्रीमद्भागवत के नवम् स्कन्ध की पीढ़ियों में कुछ-कुछ अन्तर है, परंतु हमको भागवत के अनुसार पीढ़िया लिखनी चाहिये, जो ग्रन्थ हिन्दुस्तान के अधिक हिस्सों में प्रचलित हैं। वे निम्नलिखित हैं—

1. आदि नारायण।
2. ब्रह्मा।
3. मरीचि।
4. कश्यप।
5. विवस्वान् (सूर्य)।
6. मनु (वैवस्वत)।
7. इक्ष्वाकु।
8. विकुक्षि।
9. पुरंजय (कुकुत्स्थ)।
10. अनेना (वेन) सुयोधन।
11. पृथु।
12. विश्वरंधि (विश्वगश्व)।
13. चंद्र (आद्र)।
14. युवनाश्व—1।
15. शावस्त (श्रावस्त)।
16. बृहदश्व।
17. कुवलयाश्व (धुन्धुमार)।
18. दृढ़ाश्व।
19. हर्यश्व—1।
20. निकुम्भ।
21. बर्हणाश्व (संहताश्व)।
22. कृशाश्व।
23. सेनजित।
24. युवनाश्व – 2।
25. मांधाता।
26. पुरुकुत्स।
27. त्रसदस्यु।[1]
28. अनरण्य।

---

1. इसके बाद में "सभूत" नाम अधिक है। (सं०)

तारीख सियरूल मुतग्राखरीन के पृष्ठ 38-39 पर सैय्यद गुलाम हुसैन राजपूताना के विषय में लिखता है कि, "इसका दक्षिणी पहाड़ी प्रदेश अधिकांश रूप से राणा के अधिकार में है। जिसके इलाके में चित्तौड़गढ़, मांडलगढ़, कुम्भलगढ़ आदि प्रसिद्ध दुर्ग हैं। इन लोगों की सुलतान अलाउद्दीन से लेकर अकबर बादशाह और उसकी औलाद के समय में बड़ी लड़ाईयां हुई; जिनमें से अधिकांश प्रसिद्ध हैं।

इसी तरह प्राचीन और नवीन अरबी, फारसी, उर्दू व हिन्दी की पुस्तकों में से बहुत थोड़ी ऐसी होंगी, जिनमें हिन्दुस्तान का इतिहास हो और उदयपुर के महाराणाओं के गौरव का वर्णन न हो। यदि इन सब ही किताबों का आशय यहां लिखा जावे तो एक छोटी-सी पुस्तक बन सकती है।

इस घराने के वर्चस्व के कई कारण हैं। प्रथम तो यह है कि, हिन्दुस्तान में सूर्य और चन्द्रवंश के शासक बड़े समझे जाते हैं और उनमें भी ककुत्स्थ के कुल में महाराजा रामचन्द्र का वंश प्रमुख माना गया है। जिसकी शाखाओं में उदयपुर का राजवंश प्रथम है। दूसरा यह राजवंश प्राचीन समय से आज तक प्रभावशाली शासकों वाला रहा है। तीसरे, इस वंश के राजाओं ने हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाहों से बड़ी-बड़ी लड़ाईयां लड़कर अपने गौरव की रक्षा की है। निस्संदेह रूप से जहांगीर बादशाह के समय में अधिक दबाव पड़ने पर महाराणा अमरसिंह प्रथम ने अपने बड़े पुत्र, कर्णसिंह को बादशाह की सेवा में अवश्य भेज दिया तथा उसी समय से यहां उत्तराधिकारी पुत्र की श्रेणी मेवाड़ के उमरावों (सामंतों) से निम्न मानी जाने लगी। यदि मुगल बादशाहों ने युवराज के दरबार में आने को अपने उद्देश्य की पूर्ति हो जाना माना तो महाराणा ने इसे एक सेवक का भेजना विचार कर, अपने दिल को तसल्ली दी। इस तरह दोनों तरफ साम, दाम, दंड और भेद चारों उपाय चलते रहे। लेकिन हिन्दुस्तान के प्रत्येक बादशाह ने उदयपुर के राजवंश को हिन्दुस्तानियों में सर्वोच्च ही माना। इसके अतिरिक्त मुसलमानों के अनुसार किसी धर्म के लोगों से इस राजवंश ने द्वेष-भाव नहीं रखा। जिसका पहला प्रमाण यह है कि, जैन धर्म के मतावलम्बियों ने मेवाड़ को शरण का स्थान मान कर, अपने मत के बड़े-बड़े मंदिर बनवाये और यहां के राजाओं ने उनको बनवाने में पूरी मदद की। इसके अतिरिक्त प्राचीनकाल से ही यहां के शासक शैव हैं, परन्तु उन्होंने

93. प्रसेनजित्—1।
94. तक्षक।
95. वृहद्वल।
96. वृहद्रण।
97. उरुक्रिय।
98. वत्सवृद्ध।
99. प्रतिव्योम।
100. भानु।
101. दीवाक।
102. सहदेव।
103. वृहदश्व।
104. भानुमान।
105. प्रतीकाश्व।
106. सुप्रतीक।
107. मरुदेव।
108. सुनक्षत्र।
109. पुष्कर।
110. अंतरीक्ष।
111. सुतपा।
112. अमित्रजित।
113. वृहद्राज।
114. र्वाहि।
115. कृतंजय।
116. रणंजय।
117. संजय।
118. शाक्य।
119. शुद्धोद।
120. लांगल।
121. प्रसेनजित—2।
122. क्षुद्रक।
123. रणक।
124. सुरथ।
125. सुमित्र।[1]

यहां तक तो भागवत के नवम् स्कन्ध से वंशावली लिखी गई है, जिसमें किसी को कुछ शंका नहीं है। परन्तु इस वात में एक शंका है कि, भागवत में तो सुमित्र से आगे वंश चलना ही नहीं लिखा है। तथा हिन्दुस्तान के जितने सूर्यवंशी राजपूत हैं, वे सब अपना मूल पुरुष सुमित्र को मानते हैं। इसके सम्वन्ध में मेरा (कविराजा श्यामलदास का) विचार है कि, अयोध्या में सूर्यवंशियों का राज्य सुमित्र तक रहा होगा। अथवा राजा सुमित्र के पुत्रों ने वेदमत(वैदिकधर्म)छोड़कर वौद्धधर्म स्वीकारकर लिया होगा। इसलिये ब्राह्मणों ने उनके नाम सूर्यवंश की वंशावली से निकाल दिये होंगे। यह नहीं कि, वंश ही नष्ट हो गया हो। क्योंकि सूर्यवंश के वड़े राजा रामचन्द्र के पुत्रों के वंश में उदयपुर के राजवंश का होना वहुत ठीक मालूम होता है। हां, यह

1. ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 90-91 पर दी गई नामावली में अनेक नामों में भिन्नता है और कतिपय नाम अधिक लिखे हुए हैं। (सं०)

29. हर्यस्व—2 ।
30. अरुण ।
31. त्रिवन्धन ।
32. सत्यव्रत (त्रिशंकु) ।
33. हरिश्चंद्र ।
34. रोहित ।
35. हरित ।
36. चम्प ।
37. सुदेव ।
38. विजय ।
39. भरुक ।
40 वृक ।
41. वाहुक ।
42. सगर ।
43. असमंजस ।
44. अंशुमान ।
45. दिलीप ।
46. भागीरथ ।
47. श्रुत ।
48. नाभ ।
49. सिधु द्वीप ।
50. अयुतायु ।
51. ऋतुपर्ण ।
52. सर्वकाम ।
53. सुदास ।
54. मित्र मह ।
55. (कल्माषपाद)
56. अश्मक ।
57. मूलक (नारी कवच) ।
58. दशरथ—1 ।
59. ऐडविड ।
60. विश्वसह ।
61. खट्वाङ्ग ।
62. दीर्घवाहु (दिलीप) ।
63. रघु ।
64. अज ।
65. दशरथ—2 ।
66. रामचंद्र ।
67. कुश ।
68. अतिथि ।
69. निषध ।
70. नभ ।
71. पुण्डरीक ।
72. क्षेमधन्वा ।
73. देवानीक ।
74. अनीह ।
75. पारियात्र ।
76. वल ।
77. स्थल ।
78. वज्रनाभ ।
79. खगण ।
80. विधृति ।
81. हिरण्यनाभ ।
82. पुष्य ।
83. ध्रुवसन्धि ।
84. सुदर्शन ।
85. अग्निवर्ण ।
86. शीघ्र ।
87. मरु ।
88. प्रसुश्रुत ।
89. संधि ।
90. अमर्षण ।
91. महस्वान ।
92. विश्वासाहू ।

1. वाप्पा रावल।
2. खुमाण ।
3. गोविन्द ।
4. महेन्द्र ।
5. अल्ल ।
6. सिंह ।
7. शक्तिकुमार ।
8. शालिवाहन ।
9. नरवाहन ।
10. अम्बापसाव ।
11. कीर्तिब्रह्म (वर्म) ।
12. नरब्रह्म (वर्म) ।
13. नरवै ।
14. उत्तम ।
15. भैरव ।
16. कर्णादित्य ।
17. भावसिंह ।
18. गात्रसिंह ।
19. हंसराज ।
20. जोगराज ।
21. वैरड ।
22. वैरसिंह ।
23. तेजसिंह ।
24. समरसिंह ।
25. (रतनसिंह) ।
26. करण (सिंह) ।
27. राहप राणा ।
28. नरपति ।
29. दिनकरण ।
30. जसकर (ण) ।
31. नागपाल ।
32. पूर्णपाल ।
33. पृथ्वीमल्ल ।
34. भूणंगसिंह (भूणसिंह) ।
35. भीमसिंह ।
36. जयसिंह ।
37. गढ़ मंडलीक लक्ष्मणसिंह ।
38. अरिसिंह ।
39. अजयसिंह ।

ऊपर लिखे हुए इन नामों में भी वहुत से नाम सही हैं। परंतु उनके पीढ़ीक्रम आदि में कहीं-कहीं पर अंतर पड़ गया है। अर्थात् कहीं पर पहला नाम वाद में और कहीं वाद का नाम पहले कर दिया गया है। इसी तरह कई असली नाम लिखे ही नहीं गये और वहुत से नाम कल्पित ही लिख दिये गये हैं।

अब यहां पर महाराणा हमीरसिंह से वर्तमान समय तक की वंशावली लिखी जाती है, जिसमें किसी तरह का भ्रम अथवा संशय नहीं है—

हमीरसिंह—प्रथम ।
क्षेत्रसिंह (खेता) ।
लक्ष्यसिंह (लाखा) ।
मोकलसिंह ।
कुम्भकर्ण (कुंभा) ।
रायमल्ल ।

वात जरूर है कि सुमित्र के वाद वल्लभी के राजा भट्टारक तक अथवा गुहिल तक की वंशावली में संदेह है। ऐसा प्रतीत होता है कि, उन राजाओं के असली नाम तो लुप्त हो गये और वड़वा भाटों ने अपनी पोथियों को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए मनमाने नाम घड़ कर लिख दिये हैं। लगभग उन्हीं के अनुसार उदयपुर राज्य की वंशावली के जोतदानों में भी नाम लिखे हैं, जो निम्न है—

1. वीर्यनाभ।
2. महारथि।
3. अतिरथि।
4. अचलसेन।
5. कनकसेन।
6. महासेन।
7. दिग्विजयसेन।
8. अजासेन।
9. अभंगसेन।
10. महामदनसेन।
11. सिद्धरथ।
12. विजयभूप।
13. पद्मादित्य।
14. शिवादित्य।
15. हरादित्य।
16. सुयशादित्य।
17. सोभादित्य।
18. शिलादित्य।
19. केशवादित्य।
20. नागादित्य।
21. भोगादित्य।
22. देवादित्य।
23. आशादित्य।
24. भोजादित्य।
25. ग्रहादित्य।

ऊपर लिखे नामों में शायद कुछ नाम सही भी हों, लेकिन कल्पित नामों के साथ मिल जाने से उनको अलग करना कठिन हो गया। हमने ये नाम उदयपुर राज्य की वंशावली के जोतदानों से लिखे हैं। क्योंकि ख्यात की पोथियों में देखा जाय तो, एक के नाम दूसरी के नामों से आपस में नहीं मिलते। किसी में वीस नाम अधिक है और किसी से कम। ऐसी स्थिति में ग्रन्थकार किसी एक पर पूरा-पूरा भरोसा नहीं कर सकता। अब हम वाप्पा रावल से महाराणा हमीरसिंह के मध्य की वंशावली भी उन्हीं जोतदानों से लिखते हैं[1]—

---

1. जैसा कि स्वयं श्यामलदास ने आगे स्वीकार किया है, निम्नलिखित नामों में कतिपय भिन्नता पाई जाती है। जिसको उन नामों के आगे कोष्टक में दर्शाया गया है। (सं०)

1	2	3	4	5
5.	रावल अल्लु	451	70 2 11	
6.	रावल सिंहा	521	41 ५ 1	
7.	रावल शक्ति कुमार	562	25 1 3	
8.	रावल शालिवाहन	587	31 1 5	
9.	रावल नरवाहन	618	28 3 2	
10.	रावल अम्बापसाव	646	45 0 4	
11.	रावल कीर्तिवर्म	691	41 1 1	
12.	रावल नरवर्म	732	21 3 7	
13.	रावल नरवै	753	26 3 8	
14.	रावल उत्तम	779	17 2 5	
15.	रावल भैरव	796	11 3 3	
16.	रावल कर्णादित्य	807	32 3 7	
17.	रावल भावसिंह	839	41 5 1	
18.	रावल गात्रसिंह	880	46 1 9	
19.	रावल हंसराज	926	35 3 18	
20.	रावल योगराज	961	35 3 2	
21.	रावल वैरड़	996	40 5 9	
22	रावल वैरिसिंह	1036	30 9 14	
23.	रावल तेजसिंह	1066	40 5 13	
24.	रावल समरसिंह	1106	52 11 5	
25.	रावल रतनसिंह	1158	1 3 5	
26.	रावल कर्णसिंह	1159	42 1 25	
27.	राणा राहप	1201	61 3 5	
28.	राणा नरपति	1262	33 5, 15	
29.	राणा दिनकरण	1295	6 6 3	
30.	राणा जसकरण	1301	5 2 1	
31.	राणा नागपाल	1306	5 6 9	
32.	राणा पूर्णमल	1311	4 2 28	
33.	राणा पृथ्वीपाल	1315	4 3 9	
34.	राणा भूणसिंह	1319	3 5 9	

संग्रामसिंह ।	जगतसिंह (द्वितीय) ।
रत्नसिंह ।	प्रतापसिंह (द्वितीय) ।
विक्रमादित्य ।	राजसिंह (द्वितीय) ।
उदयसिंह ।	अरिसिंह ।
प्रतापसिंह—(प्रथम) ।	हमीरसिंह (द्वितीय) ।
अमरसिंह—(प्रथम) ।	भीमसिंह ।
कर्णसिंह ।	जवानसिंह ।
जगतसिंह ।	सरदारसिंह ।
राजसिंह ।	स्वरूपसिंह ।
जयसिंह ।	शम्भूसिंह ।
अमरसिंह द्वितीय ।	सज्जनसिंह ।
संग्रामसिंह द्वितीय ।	फतहसिंह ।

हमने इस वंशावली के उपर्युक्त चार हिस्से किये हैं । जिनमें से पहला और चौथा हिस्सा तो सन्देह करने के योग्य नहीं । दूसरा हिस्सा पूर्णतया अंधकार में छिपा हुआ है । तीसरा भाग ऐसा है कि, जिसको हम न तो पूरा-पूरा सही मान सकते हैं, और न ही गलत कह सकते हैं ।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, उसी के अनुसार ही बड़वा, भाटों ने बाप्पा रावल का सम्वत् 191 मान कर क्रम में आज पर्यन्त बहुत से राजाओं के राज्यारोहण तथा राज्यावधि के सम्वत् और कई राजाओं के नाम भी बनावटी लिख दिये हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं—

संख्या	नाम महाराणा	राज्याभिषेक का सम्वत् विक्रमी	राज्याधिकार का समय			कैफियत
			वर्ष	माह	दिन	
1	2	3	4			5
1.	रावल बाप्पा	191	101	1	3	
2.	रावल खुमाण	292	60	1	5	
3.	रावल गोविन्द	352	29	3	9	
4.	रावल महेन्द्र	381	70	0	9	

1	2	3	4			5
62.	राणा अरिसिंह	1817	12	11	18	
63.	राणा हमीरसिंह	1829	5	8	9	
64.	राणा भीमसिंह	1834	50	3	7	
65.	राणा जवानसिंह	1884	10	4	20	
66.	राणा सरदारसिंह	1895	3	9	23	
67.	राणा स्वरूपसिंह	1898	19	4	6	
68.	राणा शम्भुसिंह	1918	12	10	12	ये दोनों नाम यहां वंशावली क्रम में हमने अपने तौर पर लिखे है।
69.	राणा सज्जनसिंह	1931	10	3	9	

संस्कृत ग्रंथों और ख्यात की पोथियों अथवा वड़वा भाटों के लेखों से लिखी हुई उपर्युक्त वंशावली पाठकों को इसलिये दिखाई गई हैं कि, वे इस सम्बन्ध में अपनी राय देने में दृढ़ता के साथ कलम उठावें।

3. प्राचीन इतिहास और वल्लभी राजवंश—

अब हम अपने निजी खोज कार्यों और राय के अनुसार मेवाड़ का इतिहास प्रारम्भ करते हैं—

मेवाड़ के राजाओं का राजवंश प्रथम सूर्यवंशी, फिर "गुहिलपुत्र" व "गुहिलोत" और उसके वाद "सीसोदिया" नाम से प्रसिद्ध है। हम ऊपर लिख आये हैं कि, अयोध्या के राजा सुमित्र से पहले की वंशावली में सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है। केवल अर्थ करने के समय यदि कोई विद्वान एक

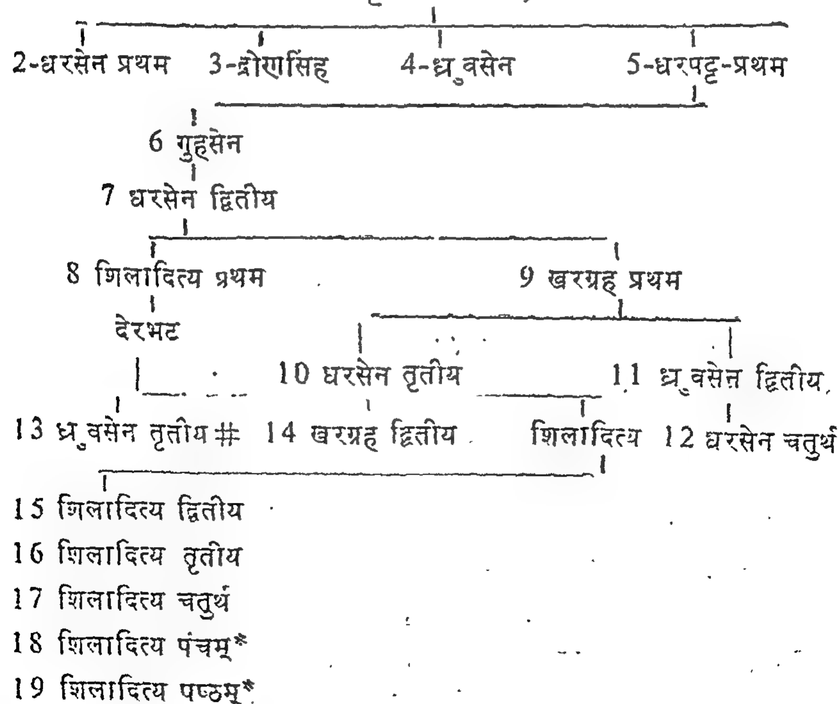
पर वैठने तक सम्वत् हिसाव से लिखा गया है और कहीं केवल वर्षो का ही हिसाव रखा गया है, महीने नहीं जोड़े गये हैं। परन्तु यह वंशावली वड़वा भाटों की पोथियों से ली गई है, इसलिये विश्वसनीय नहीं है।

1	2	3	4			5
35.	राणा भीमसिंह	1322	4	5	9	
36.	राणा जयसिंह	1326	5	3	5	
37.	राणा गढ़ लक्ष्मणसिंह	1331	15	3	4	
38	राणा अरिसिंह	1346	0	1	0	
39.	राणा अजयसिंह	1346	11	4	3	
40.	राणा हमीरसिंह	1357	64	7	4	
41.	राणा क्षेत्रसिंह	1421	18	4	10	
42.	राणा लक्षसिंह (लाखा)	1439	15	4	1	
43.	राणा मोकल	1454	21	1	3	
44.	राणा कुम्भा	1475	50	3	4	
45.	राणा ऊदा	1525	5	5	5	
46.	राणा रायमल्ल	1530	35	1	2	
47.	राणासंग्रामसिंह (सांगा)	1565	21	5	9	
48.	राणा रत्नसिंह	1586	4	4	5	
49.	राणा विक्रमादित्य	1590	2	7	3	
50.	राणा उदयसिंह	1592	36	2	1	
51.	राणा प्रतापसिंह	1628	24	10	26	
52.	राणा अमरसिंह	1652	24	0	0	
53.	राणा करणसिंह	1676	8	0	10	
54.	राणा जगतसिंह	1684	25	1	16	
55.	राणा राजसिंह	1709	28	2	6	
56.	राणा जयसिंह	1737	18	6	28	
57.	राणा अमरसिंह	1755	12	3	5	
58.	राणा संग्रामसिंह	1767	23	8	9	
59.	राणा जगतसिंह	1790	17	10	11	
60.	राणा प्रतापसिंह	1807	2	7	10	
61.	राणा राजसिंह[1]	1810	7	2	12	

1. इस वंशावली में कहीं-कहीं तो एक राजा के गद्दी पर बैठने के सम्वत् में उसके राज्यकाल के वर्ष और महीने जोड़ कर दूसरे राजा के गद्दी

मुस्लिम जाति के थे, जैसा कि वाद की खोजों से पता चला है) वल्लभीपुर को घेर कर ले लिया।

सन् 1835 ईसवी (सं० 1892 वि०=1251 हि०) में डब्ल्यू०एच० वाथन ने कुछ वर्ष पहले गुजरात प्रदेश से प्राप्त दो ताम्रपत्रों को प्रकाशित करवाया था। इन ताम्रपत्रों से वह उक्त राजवंश के सोलह राजाओं के क्रमानुसार नाम ज्ञात करने में सफल हुआ। तीन वर्ष वाद सन् 1838 ई० (सं० 1895 वि०=हि० 1254) में डॉक्टर ए० वर्न्स को खेड़ा ग्राम से मिले तीसरे ताम्रपत्र के आधार पर मिस्टर जे० प्रिन्सेप ने एक नाम और बढ़ाया। सन् 1877 और 1878 ई० (सं० 1934-35 वि०=हि० 1294-95) में दो और नये नाम डॉक्टर जी० वुलर ने प्रकट किये, जोकि अब वल्लभी के राजाओं की सूची को पूरा करते हैं और उनकी संख्या 19 तक हो जाती है। उक्त सूची निम्नानुसार है; जो राजा राजगद्दी पर बैठे हैं, उनके नामों के क्रमांक लगा दिये गये हैं और जिनके नामों पर गिनती का निशान नहीं है, उन्होंने राज्य नहीं किया। जिन नामों पर # और* निशान अंकित हैं, उनको मिस्टर प्रिन्सेप और डॉक्टर वुलर ने वढ़ाया है।



दो नामों में कुछ अन्तर वतलावें तो उसका यह कारण मानना चाहिये कि, वह किसी विशेषण को नाम और नाम को विशेषण वतलावेगा।

महाराणा सुमित्र के वाद वीर्यनाभ से ग्रहादित्य तक की वंशावली को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिये कोई प्रमाण नहीं मिलता है। निस्सन्देह इस में कुछ नाम सही होंगे। जैसे विजयभूप और कनकसेन आदि। जिनको कर्नल टॉड ने भी वल्लभी के पूर्वजों में होना लिखा है। ख्यात की पोथियों में अयोध्या का राज्य छूटने के वाद इनका राज्य दक्षिण में विजयपुर (विराटगढ़) नामक स्थान पर स्थापित होना लिखा है। परन्तु कर्नल टॉड ने सौराष्ट्र देश में वल्लभी के राजाओं को मेवाड़ का पूर्वज वतलाया है।[1]

वल्लभी राजवंशः—एशियाटिक सोसाइटी ऑफ वंगाल, की सौ वर्षो की रिपोर्ट के पृष्ठ 114-118 पर लिखा है कि, सन् 1829 ई० (सं०1886 वि० = 1241 हि०) में कर्नल टॉड के माध्यम से पता चला है कि, वल्लभी के शासकों का एक राजवंश है। उन्होंने अपने राजस्थान के इतिहास में कई एक जैन लेखों से खोजवीन करके यह लिखा था कि, गुहिलोत राजपूतों ने दूसरी शताब्दी के मध्य के कुछ दिनों वाद या तो वल्लभीपुर की नींव डाली अथवा उस पर अधिकार किया। परन्तु वहां के राजाओं के नाम, जिनके वारे में विशेष वर्णन किया, वे निम्न थे —

कनकसेन, जिसने इस खानदान की नींव डाली। विजय, जिसने कई पीढ़ियों वाद अनेक नगर वसाये। शिलादित्य, जो इस राजवंश का अन्तिम शासक था और जिसके समय में जंगली लोगों ने (जो कदाचित् किसी

---

1. कर्नल टॉड ने "शत्रुंजयमहात्म्य" आदि जैन ग्रंथों के आधार पर मेवाड़ के शासकों को वल्लभी के राजाओं का वंशज माना है। परन्तु वल्लभी के अंतिम शासक शिलादित्य छठे का अलिना दान-पत्र और मेवाड़ के शासक शिलादित्य के सं० 703 वि० के सामोली लेख से टॉड के मत की पुष्टि नहीं होती। ओझा ने आइन-इ-अकवरी और मुहणोत नैणसी की ख्यात के आधार पर मेवाड़ के शासकों का दक्षिण की तरफ से आना प्रतिपादित किया है। ओझा, उदयपुर; भाग 1, पृ० 81-82, 85। (सं०)

समझना चाहिये। फिर उन ताम्रपत्रों को दूसरी वार पढ़ने से यह पता चला कि, वे तीसरी और चौथी सदी के थे। अत: प्रिन्सेप ने विचार किया कि, यदि उन ताम्रपत्रों का सम्वत् वल्लभी सम्वत् के अनुसार गिना जावे तो वल्लभी के राजाओं का समय, दूसरे प्रमाणों की अपेक्षा, वहुत वाद का सिद्ध होगा।

दस वर्ष उपरान्त इस विषय पर पुन: विचार किया गया। तब सन् 1848 ईसवी (सं० 1905 वि०=1264 हि०) में टामस ने मत प्रकट किया कि; वल्लभी के ताम्रपत्रों के सम्वतों को "शक सम्वत्" मानना चाहिये। यही राय सन् 1868 ईसवी (सं० 1925 वि०=1285 हि०) में डॉक्टर भाउदाजी ने और सन् 1872 ई० (सं० 1929 वि०=1289 हि०) में प्रोफेसर रामकृष्णगोपाल भण्डारकर ने प्रकट की। इसके मुख्य कारण निम्न थे—वल्लभी के ताम्रपत्रों के समय में दूसरे लेखों में शक सम्वत् का प्रचलन था और वही सम्वत् सौराष्ट्र के क्षत्रप वंश वाले चलाते थे। इससे अधिकांश रूप में यही अनुमान लगाया गया कि, वल्लभी राजवंश ने क्षत्रपों के राजवंश को अपदस्थ कर सत्ता प्राप्त की। तव उन्होंने अपने राज्य में पहले वाले क्षत्रप राजाओं के समय में प्रचलित सम्वत् को ही जारी रखा। लेकिन तीन वर्ष वाद अर्थात् सन् 1875 ईसवी (सं० 1932 वि०=1292 हि०) में डॉक्टर जी. बुलर ने एक नये ताम्रपत्र के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि, वल्लभी के दानपत्रों का सम्वत् शक सम्वत् माना गया था, यह अनुमान स्वीकार करने योग्य नहीं। सन् 1878 ईसवी (सं० 1935 वि०=1295 हि.) में पुन: प्रयास किया गया। उस समय डॉक्टर जी. बुलर ने एक नये दान-पत्र से पता लगाया कि, शिलादित्य छठा, जो वर्तमान सूची में अन्तिम है, ध्रुवभट कहलाता था। जैसा कि 40 वर्ष पूर्व सन् 1836 ईसवी (सं० 1893 वि=हि० 1252) में एम. युजेनी जैकेट ने विचार प्रकट किया था कि, चीनी यात्री हुएनसांग भी उस राजा को इसी नाम से जानता था, जवकि उसने सन् 639 ईसवी (सं० 696 वि=हि० 18) के थोड़े ही समय वाद उक्त राजा से मुलाकात की थी। तथा यह वात ठीक थी, क्योंकि छठे शिलादित्य का यह दानपत्र सम्वत् 447 का लिखा हुआ था। इसलिए उन पत्रों के सम्वत् का प्रथम वर्ष सन् 200 ईसवी के कुछ दिनों पहले अथवा कुछ दिनों वाद का होना चाहिये। इसी समयावधि में गुप्त राजवंश के सम्वन्ध में ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त करने से पता चला कि, गुप्तवंश का प्रारम्भिक वर्ष सन्

मिस्टर वाथन ने लिखा है कि, वल्लभी के दो राजाओं के भूमिदान की शर्तों से पता चलता है कि, इस राजवंश के प्रथम दो व्यक्ति, एक प्रमुख राजा के यहाँ, जिसने गुजरात का प्रदेश उनको सौंप दिया था, सेनापति अर्थात् प्रधान सैनिक अधिकारी के पद पर नियुक्त थे। जबकि ऊपर लिखी हुई वंशावली में तीसरे नम्बर वाले व्यक्ति (द्रोणसिंह) को उसके राजा ने, जो एक बड़ा बादशाह अर्थात् हिन्दुस्तान का चक्रवर्ती शासक था, राजा बनाया। बाद के खोज कार्यों से प्रकट होता है कि, वह बड़ा राजा हर हालत में गुप्त नामक राजवंश का "चन्द्रगुप्त द्वितीय" ही था। यद्यपि वल्लभी के सभी शासकों को स्वतन्त्रता का सर्वोच्च पद प्राप्त नहीं था, तथापि बहुत से राजाओं को नाम-मात्र के लिये यह अधिकार प्राप्त था।

वल्लभी सम्वत्—वल्लभी के ताम्रपत्रों से एक दूसरा बहुत उपयोगी विवरण मिला है कि, लगभग उन सभी पर तारीख उत्कीर्ण है। वाथन और प्रिन्सेप दोनों ने उन दानपत्रों को पढ़ कर अर्थ निकालने की कोशिश की थी। परन्तु पूरा-पूरा अर्थ निकालने में उन्हें सफलता नहीं मिली। बाद में वे अच्छी तरह से पढ़ लिये गये। लेकिन उन सभी ताम्रपत्रों के सम्वतों के बारे में यह निश्चय करना कठिन हो गया कि, उनमें उत्कीर्ण सम्वत् कौनसा है? कर्नल टॉड ने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि, वल्लभी के राजाओं ने अपने ही नाम का एक सम्वत् चलाया था, जो "वल्लभी सम्वत्" कहलाता था। जिसका प्रथम वर्ष सन् 319 ईसवी (सं० 376 वि०) से माना गया था। इस लेख के अनुसार वाथन ने मत प्रकट किया कि, इन ताम्रपत्रों के सम्वत् को इसी प्रस्तावित "वल्लभी सम्वत्" के अनुसार ही मानना चाहिये। ऐसा मत स्वीकार करने पर "वल्लभी राजवंश" का अस्तित्व ईसा की चौथी से आठवीं सदी ईसवी तक अर्थात् सन् 319 ईसवी से सन् 766 ईसवी (सं० 376 से 823 वि० = 149 हिजरी) तक सिद्ध होता है। क्योंकि ताम्रपत्रों में अन्तिम सम्वत् 447 लिखा है।

सन् 1838 ईसवी (सं० 1895 वि० = 1254 हि०) में प्रिन्सेप ने इस बात पर पुनः विचार कर यह निश्चय किया कि, वल्लभी दान-पत्रों के सम्वत् विक्रमी सम्वत् के अनुसार होना चाहिये, जिसका प्रारम्भ का वर्ष ईसवी सन् से 56 वर्ष पूर्व था। उनका तर्क था कि, ताम्रमत्र में "वल्लभी सम्वत्" नहीं लिखा है। इसलिये केवल "सम्वत्" मात्र शब्द से विक्रमादित्य का सम्वत् ही

शक्तिशाली थे और उनके नाम का सम्वत् उनके नष्ट होने का सम्वत् है। प्रकट में वल्लभी सम्वत् गुप्त सम्वत् के बाद बहुत ही जल्दी प्रारम्भ हुआ। क्योंकि गुप्त सम्वत् भी शक सम्वत् के 241 वर्ष बाद प्रारम्भ होता है। श्री हर्ष के सम्वत् का 1488 वां साल, विक्रमादित्य के सम्वत् का 1088 वां वर्ष, शक सम्वत् का 953 वां साल और वल्लभी व गुप्त सम्वत् का 712वां वर्ष, ये सब एक ही समय में आते हैं।" ऊपर लिखे विवरण के अनुसार अल्बेरूनी का यह आशय प्रकट होता है कि, गुप्त वल्लभी सम्वत् उस समय प्रारम्भ हुआ, जबकि शक सम्वत् के 216+25=241 (सन् 319-20 ई०) व्यतीत हो चुके थे। उसने इस सम्वत् के 712 वें वर्ष को शक सम्वत् के 953 वें वर्ष से मिलाया। इससे भी पता चलता है कि, इन दोनों गणनाओं के मध्य ठीक 241 वर्ष का अन्तर है। वह अपने अगले विवरण में इस सम्वत् का शक सम्वत् के 241 वें वर्ष में शुरू होना साफ-साफ लिखता है। अर्थात् वह (वल्लभी सम्वत्) उस समय प्रारम्भ हुआ, जबकि उसके (शक सम्वत्) 240 वर्ष गुजर गये थे। वह अपने तीसरे बयान में आगे बढ़ कर लिखता है कि, महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ पट्टन लेने की तारीख (जनवरी, 1026 ई०) को हिन्दू लोगों ने किस प्रकार मालूम किया? उसका कथन है कि, शक सम्वत् 947 (सन् 1025-26 ई०) को इस प्रकार निकला कि, पहले उन्होंने 242 लिखा, फिर 606 और बाद में 99 लिखा। यद्यपि यहां पर वह स्पष्ट रूप से गुप्त वल्लभी सम्वत् का वर्णन नहीं करता, लेकिन इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि, पहले के अंकों से उसका तात्पर्य वल्लभी सम्वत् से ही है। उनसे यह अर्थ निकलता है कि, इस गणना के अनुसार गुप्त वल्लभी सम्वत् का प्रथम वर्ष उस समय आता है, जबकि शक सम्वत् के 242 वर्ष गुजर चुके थे।

अनहिलवाड़ा के अर्जुनदेव की वेरावल की प्रशस्ति से, जिसमें विक्रमी सम्वत् 1320 और वल्लभी सम्वत् 945 लिखा है, यह प्रमाणित होता है कि, यह "सम्वत्" वल्लभी नाम के साथ लिखा जाता था।[1]

कतिपय लोगों की यह राय हुई कि, यह बात असम्भव है कि गुप्त लोगों का सम्वत् उनके पतन के समय से शुरू हुआ हो। इस तरह दो भिन्न

1. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, जिल्द 11, पृ० 241.

166 ईसवी में होना चाहिये अथवा उस तारीख और सन् 200 ईसवी के वर्ष बीच कोई में। अन्त में यह राय विश्वास करने योग्य है कि, जो सम्वत् वल्लभी के दानपत्रों में लिखा है, वह "गुप्त सम्वत्" है। जिस राजवंश के वे कुछ वर्षो तक आधीन रहे और उस गुप्त राजवंश के पतन के पश्चात् भी वल्लभी राजवंश में भी वही सम्वत् निरन्तर जारी रहा। यह बात ठीक है कि, वल्लभी का राज्य 11 पीढ़ियों में कम से कम 240 वर्ष तक अवश्य रहा। क्योंकि ध्रुवसेन का सबसे पुराना दानपत्र 207 का और शिलादित्य छठे का सबसे बाद का दानपत्र सम्वत् 447 का लिखा हुआ है। इससे यह प्रमाणित होता है कि, यह राजवंश दूसरी सदी ई०[1] के अन्त से लेकर सातवीं सदी के मध्य तक रहा।

गुप्त सम्वत् के विषय में जे. एफ. फ्लीट ने इण्डियन ऐंटिक्वेरी की जिल्द 15, पृष्ठ 189 पर इस प्रकार लिखा है कि, "मन्दसौर के कुमारगुप्त और बन्धुवर्मन की प्रशस्ति प्रकाश में आने के समय तक गुप्त सम्वत् के बारे में केवल अल्बेरूनी का मत ही काम में आता था। जिसने ग्यारहवीं सदी ईसवी के पूर्वार्द्ध में निम्नलिखित बातें लिखी हैं। उसका अनुवाद[2] (अल्बेरूनी कृत उसी नाम की अरबी पुस्तक के पृष्ठ 205-206 से) यहां पर उद्धृत करते हैं—

"लोग सामान्यतया श्रीहर्ष, विक्रमादित्य, शक वल्लभ और गुप्त सम्वत् काम में लाते हैं। "वल्लभ" जिनके नाम का भी एक सम्वत् है, वल्लभ अर्थात् वल्लभी शहर का राजा था, जो दक्षिण में अनहिलवाड़ा से लगभग 30 योजन की दूरी पर स्थित है। वल्लभ का सम्वत्, शक सम्वत् के 241 वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ है। उसकी गणना करने के लिये शक सम्वत् में से 36 का घन (216) और 5 का वर्ग (25) कम कर देने से वल्लभी सम्वत् शेष रहता है। गुप्त सम्वत् के विषय में हम गुप्त शब्द से उन थोड़े से लोगों को समझते हैं, जिनके विषय में कहा जाता है कि, वे दुष्ट और

1. मूल पुस्तक के पृष्ठ 118 में दूसरी सदी लिखा है, परन्तु उसकी जगह चौथी सदी होना चाहिये।

2. अल्बेरूनी का भारत (सन्तराम कृत, हिन्दी अनुवाद) भाग 3, पृ० 8-9। (सं०)

राजाओं को अपना ही सम्वत् चलाने का न तो अधिकार था और न ही शक्ति। इस वंश के पहले बड़े राजा धरसेन चतुर्थ ने कोई सम्वत् प्रारम्भ किया होता तो वह कन्नौज के हर्षवर्धन के समान ही अपने राज्याभिषेक से सम्वत् प्रारम्भ करता न कि अपने वंश की नींव पड़ने के समय से"।

सन् 1887 ई० की इण्डियन ऐन्टीक्वेरी के पृष्ठ 141 पर फ्लीट का जो लेख प्रकाशित है, उसमें गुप्त वल्लभी सम्वत् पर उन्होंने यह टिप्पणी की है, "गुप्त वल्लभी सम्वत् का नाम प्राचीन समय में गुप्त सम्वत् कभी नहीं था। लेकिन प्राय: 50 वर्ष से बराबर लोग इसको गुप्त सम्वत् कहते चले आये हैं और इसलिये जब तक यह निश्चय नहीं हो जाता कि, इसका प्रारम्भ किसने किया ? तब तक उसका यही नाम रखना ठीक है। पहले के समय में काठियावाड़ देश में इसका नाम वल्लभी पड़ा और अल्बेरूनी ने भी लिखा है कि गुप्त और वल्लभी दोनों एक ही सम्वत् है। तथा उनका समय भी एक ही है। केवल सन्देह इस बात में है कि, कुछ लोगों की राय के अनुसार प्रारम्भिक गुप्त लोगों में, एक गुप्त सम्वत् प्रचलित था, जो यह गुप्त सम्वत् नहीं था।"

पुन: उसी जिल्द के पृष्ठ 142 पर लिखा है कि, यदि गुप्त वल्लभी सम्वत् किसी अवसर पर दक्षिणी विक्रम सम्वत्[1] के अनुसार चलता रहा हो

---

1. हिन्दुस्तान में मुख्य दो सम्वत् चलते हैं। एक शक सम्वत् व दूसरा विक्रम सम्वत्। शक सम्वत् का प्रारम्भ हिन्दुस्तान भर में चैत्र शुक्ल 1 को माना जाता है। विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ और महिनों के पक्षों में उत्तर व दक्षिणी हिन्दुस्तान में मतभेद है। अर्थात् उत्तरी हिन्दुस्तान में विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ शक सम्वत् के अनुसार चैत्र शुक्ल 1 को और अन्त चैत्र कृष्ण अमावस्या को माना जाता है। तथा महीने का प्रारम्भ कृष्ण 1 को और अन्त शुक्ल पूर्णिमा को होता है। इसलिये उत्तरी विक्रम सम्वत् के महीने पूर्णिमान्त कहे जाते हैं। दक्षिणी हिन्दुस्तान में विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ कार्तिक शुक्ल 1 को और अन्त आश्विन अमान्त) कृष्ण अमावस्या को होता है। इसलिये दक्षिणी विक्रम सम्वत् के महीने अमान्त कहे जाते हैं। उत्तरी विक्रम सम्वत दक्षिणी सम्वत् से 7 महीने पहले प्रारम्भ होता है।

मत हो गये। फर्ग्युसन का मत है कि, इस सम्वत् के बारे में जो विवरण अल्बेरूनी ने लिखा, वह ठीक है। लेकिन उनका यह मत नहीं था कि, यह सम्वत् गुप्तों के पतन से शुरू हुआ। बल्कि उन्होंने सन् 318-19 ई० में उस राजवंश (गुप्तवंश) का दूसरी बार उत्थान होना और सम्वत् का प्रारम्भ होने का वर्ष माना है।

दूसरे लोगों की राय थी कि सन् 318-19 ईसवी गुप्तों के पतन का समय है और वल्लभी सम्वत् जो ठीक उसी सन् से प्रारम्भ हुआ, गुप्त सम्वत् से बिलकुल भिन्न है। इसके अतिरिक्त यह प्रकट किया कि, गुप्त सम्वत् गुप्त लोगों के नष्ट होने की स्मृति में प्रारम्भ किया गया और गुप्त वंश की नींव पड़ने के समय को उन्होंने इससे भी पहले मान लिया। उनकी राय यह भी हुई कि, उन लोगों का सम्वत् उनकी प्रशस्तियों में लिखा जाता है। टॉमस का मत था कि, गुप्त सम्वत् शक सम्वत् के अनुरूप ही था, और सन् 78 ई० में ही वह प्रारम्भ हुआ। जनरल कनिंघम ने उसको सन् 167 ईसवी में और सर एडवर्ड क्लाइव बैली ने सन् 190 ईसवी में शुरू होना माना। सब लोगों की राय थी कि, गुप्त लोगों के कुछ समय के बाद ही वल्लभी के राजा हुए और उन्होंने यह भी माना कि, 318-19 ईसवी में इन लोगों ने वल्लभी शहर की नींव डाली और उसी समय से वल्लभी सम्वत् प्रारम्भ हुआ। कुछ लोगों का मत है कि, वल्लभी नगर की स्थापना की यादगार और कुछ गुप्त राज्य की समाप्ति पर राज्य उनके (वल्लभी के शासकों के) हाथ में आने की स्मृति के रूप में भी उन्होंने अपना सम्वत् चला कर भी गुप्त सम्वत् को मिटाना नहीं चाहा। इससे यह बात सिद्ध होती है कि, भट्टार्क उनके वंश की नींव डालने वाला सम्वत्(गुप्त वल्लभी)206 से केवल एक पीढ़ी पहले आया, जोसम्वत् कि उनके दानपत्रों में प्रथम है लेकिन शिलादित्य छठे के अलीना के पत्रों,[1] जिनमें सम्वत् (गुप्त) 447 उत्कीर्ण है, से पता चलता है कि उन लोगों ने अपना सम्वत् प्रारम्भ करने के बाद भी गुप्त सम्वत् की गणना को ही जारी रखा। जिसका प्रारम्भ कम से कम 206, 284 और 318 ई० में अनुमान किया गया है। लेकिन यह बात बहुत ही असम्भव है। अब इससे अधिक मैं यही कहूंगा कि पहली 6 पीढ़ियों तक जिनमें भट्टार्क शामिल है और जब वे लोग अधिनस्थ सेनापती और महाराज थे, उस समय वल्लभी

1. इण्डियन ऐटिक्वेरी, जिल्द 7, पृ० 79।

गुजरातियों ने दूसरे तरीके से अर्थात् 680 के अनुसार 304 को प्रारम्भ किया और इस गणना से मार्गशीर्ष का महीना गुप्त वल्लभी सम्वत् 330 में आ सकता है। परन्तु इस सम्वत् के महीने पूर्णिमान्त हैं। महाराज संक्षोभ के दानपत्र से गुप्त वल्लभी सम्वत् 209 चैत्र शुक्ल 13 पहले लिखा है और अन्त में दूसरी बार दी गई तिथि में चैत्र दि० (दिन) 27 लिखा है। जिससे पता चलता है कि यह महीना पूर्णिमान्त है। इससे सिद्ध होता है कि, गुप्त वल्लभी सम्वत् की गणना उत्तरी पूर्णिमान्त से है और यही होना ठीक था। क्योंकि अगले गुप्त लोग उत्तरी हिन्दुस्तान के खानदान से थे।

वैरावल की प्रशस्ति में हिजरी सन् 662, विक्रमी 1320, वल्लभी सम्वत् 945, तिथि आपाढ़ कृष्ण 13 रविवार,[1] लिखा है। तथा अलबरूनीके लिखने के अनुसार गुप्त वल्लभी सम्वत् 0=318-19 या 319-20 अथवा 320-21 अर्थात् शकसम्वत् 240,241 और 242 में से कोई एक होगा। अब विचार करना चाहिए कि, इन तीनों में से कौनसा सन् या सम्वत् शून्य के अनुसार होता है? इसलिये हमको गुप्त वल्लभी सम्वत् 945 के अनुरूप ईसवी सन् निकालने के लिये शक सम्वत् 1185, 1186(गुप्त वल्लभ सम्वत्, 945+सन् 319-20 ईसवी=1264-65 ईसवी) और 1187 पर विचार करना चाहिए।

वैरावल की प्रशस्ति काठियावाड़ की है। इसलिये यही प्रतीत होता है कि, जो विक्रमी सम्वत् इसमें लिखा है, वह दक्षिणी विक्रम सम्वत् है और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को शुरू होता है। इस बात से और भी निश्चय होता है कि, इसमें हिजरी 662 का भी उल्लेख है, जो रविवार, नवम्बर 4, 1263 ईसवी को शुरू होकर शनिवार 23 अक्टूबर सन् 1264 ईसवी को समाप्त हुआ था। लेकिन आपाढ़ का महीना अंग्रेजी जून या जुलाई के अनुरूप होता है। इसलिये अंग्रेजी तारीख जून या जुलाई 1264 ईसवी के निकट होगी। इससे उत्तरी विक्रम सम्वत् का कुछ सरोकार नहीं रहा। क्योंकि उत्तरी विक्रम सम्वत् 1320 का आपाढ़ तो सन् 1263 ई० का जून या जुलाई होता है और सन् 1264 जून या जुलाई, शक सम्वत् 1186 में पड़ा अर्थात् वल्लभी सम्वत् 945 ठीक शक सम्वत्

---

1. रविवार, मई 25, 1264 ई०। (सं०)

तो उसका विचार करना बहुत जरूरी है। क्योंकि इस सम्वत् की तारीखें बाद में वल्लभी सम्वत् के नाम से काठियावाड़ में मिलती हैं। जहां गुजरात के समीपवर्ती जिलों और उत्तरी कोंकण की तरह दक्षिणी विक्रम सम्वत् प्रचलित है। उन सम्भागों में पहले या बाद में गुप्त वल्लभी सम्वत् की असली गणना वहां के लोगों ने अपने स्थानीय जातियों के सम्वतों की गणना के अनुसार करना चाहा होगा। वल्लभी राजा धरसेन चौथे के खेड़ा ग्राम से प्राप्त दानपत्र से गुजरात में उपर्युक्त बात का प्रचलन होने का प्रमाण मिलता है। इस दान पत्र को डॉक्टर बुलर ने इण्डियन एन्टीक्वेरी, की 15 वीं जिल्द के पृष्ठ 335 पर छापा है। उसमें सम्वत् 330 द्वितीय मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया लिखा है।

अब आगे मैं, यह सिद्ध करूंगा कि गुप्त वल्लभी सम्वत् की गणना उत्तरी शक सम्वत् के अनुरूप ही है और इन दोनों में 241 वर्ष का अन्तर है। इस दानपत्र में जो मार्गशीर्ष महीना लिखा है, वह शक सम्वत् 571 अर्थात् सन् 649 ईसवी में होगा। परन्तु कनिंघम ने उस सम्वत् में अधिक मास का उल्लेख नहीं किया है। लेकिन एक वर्ष पहले अर्थात् शक सम्वत् 570 व सन् 648 ई० में कार्तिक अधिक है। सूर्य की ठीक स्थिति के ऊपर विचार किया जावे तो यह बहुत ठीक मालूम होता है। अधिक गहराई तक विचार करने से पता चला है कि, डॉक्टर श्राम की गणना के अनुसार सन् 648 ई० में निश्चित् ही अधिक मास पाया जाता है जो कि, प्रचलित रीति के अनुसार कार्तिक होता है। परन्तु औसत गिनती के हिसाब से मार्गशीर्ष होगा। उदाहरण के रूप पर मान लो कि गुप्त वल्लभी सम्वत् 303 के लगभग गुजरातियों ने उसको अपने यहां के कार्तिकादि गणना में मिला दिया। यदि गुप्त वल्लभी सम्वत् 304 को उन्होंने दक्षिणी विक्रम सम्वत् 679 के साथ कार्तिक शुक्ल 1 (अक्तूबर 12, 622 ई०) को प्रारम्भ किया तो, गुप्त वल्लभी सम्वत् 303 केवल 7 महीने (चैत्र शुक्ल 1 से आश्विन कृष्ण अमावस्या) तक ही रहा होगा। तथा यदि उन्होंने गुप्त सम्वत् 304 को उनके वहां के सम्वत् 680 के साथ प्रारम्भ किया हो, तो गुप्त सम्वत् 303 को 19 महीनों तक चलाया होगा। इस तरह वहां वाले गुजरात में गुप्त वल्लभी सम्वत् का प्रारम्भ भी कार्तिक शुक्ल 1 से मानते रहे होंगे। लेकिन वेरावल के लेख से पता चलता है कि, काठियावाड़ में यह परिवर्तन गुप्त वल्लभी सम्वत् 945 तक नहीं हुआ। खेड़ा के दानपत्र से पाया जाता है कि,

के समय की)[1], सम्वत् 1034 विक्रमी (हि० 367=सन् 977 ई०) की और उदयपुर में दिल्ली दरवाजे के वाहर शारणेश्वर महादेव के मंदिर की प्रशस्ति (अल्लट के समय की) सं० 1010 वि० (हि० 342= सन् 953 ई०) की और कुण्डा ग्राम की प्रशस्ति 718 विक्रमी (हि० 41= 661 ई०) की प्राप्त है। यदि कुण्डा की प्रशस्ति के सम्वत् 718 और शारणेश्वर की प्रशस्ति के सम्वत् 1010 के मध्य का समय निकालें तो 292 वर्ष आता है, जिसमें अपराजित से अल्लट तक हुए 7 राजाओं के शासनकाल का औसत निकालने से प्रत्येक राजा का शासनकाल 41 वर्ष से कुछ अधिक औसत हुआ। लेकिन यह औसत अधिक है। क्योंकि इस गणना से इन राजाओं की आयुष्य अधिक ठहरती है। इसके वाद सम्वत् 1034 की ऐतपुर की प्रशस्ति तक अल्लट के वाद 24 वर्ष में तीन राजा हुए। इन राजाओं के राज्य का औसत आठ वर्ष आया। इसलिये अव हम सम्वत् 718 से सम्वत् 1034 तक अर्थात् 316 वर्ष में अपराजित से शक्तिकुमार तक 10 राजाओं के शासनकाल का औसत निकालते हैं। जिससे प्रत्येक राजा के लिये 31 वर्ष से कुछ अधिक समय आता है और इस गणना के अनुसार अपराजित से पहले गुहिल तक पांच राजाओं का औसत गिना जावे तो विक्रमी 718 से 155 वर्ष पूर्व अर्थात् छठी सदी विक्रमी के उत्तरार्द्ध में गुहिल का होना प्रमाणित होता है। यदि यह औसत अधिक माना जावे तो सामान्यतया इतिहास वाले 100 वर्ष में 4 पीढ़ी का औसत मान लेते हैं। इससे भी विक्रम 718 से 125 वर्ष पहले गुहिल का होना सिद्ध होता है, जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं। इसके अतिरिक्त कर्नल टॉड ने जो अपने प्रमाणों से विक्रमी 580 (ई० 523) में वल्लभी का पतन और गुहिल के मेवाड़ में आने आदि का वर्णन लिखा है। उससे भी लगभग गुहिल का वही समय सिद्ध होता है, जो हमने लिखा है। लेकिन कर्नल टॉड ने वल्लभी के पतन के समय हुए आक्रमण में गुहिल के पिता शिलादित्य का मारा जाना लिखा है, वह गलत है। क्योंकि यदि हम उस समय में छठे शिलादित्य को गुहिल का पिता मानें तो उसका एक दानपत्र वल्लभी

---

1. इस प्रशस्ति को कर्नल टॉड ने अपनी पुस्तक टॉडनामा राजस्थान (एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान की प्रथम जिल्द के शेष संग्रह नं० 5 पर उद्धृत की है।

1186 में अनुरूप ही होता है। इसलिये शक सम्वत् 1185 और 1187 के लिये गणना करने की कोई आवश्यकता नहीं। जनरल कनिंघम ने निश्चय करके लिखा है कि, तारीख मई 25, सन् 1264 ईसवी को रविवार (जो वैरावल के लेख में उत्कीर्ण है) होता है।

ऊपर लिखे वर्णन से स्पष्ट होता है कि शक सम्वत् और गुप्त वल्लभी सम्वत् का अन्तर 241 वर्ष का है और उत्तरी विक्रम सम्वत् तथा शक सम्वत् का अन्तर 135 का। अतः उपर्युक्त अन्वेषण से उत्तरी विक्रम सम्वत् व दक्षिणी विक्रम सम्वत् का अन्तर 376 वर्ष का और दक्षिणी विक्रम सम्वत् और वल्लभी सम्वत् का अन्तर 375-76 समझना चाहिए। अर्थात् दक्षिणी सम्वत् में चैत्र शुक्ल 1 से आश्विन कृष्ण अमावस्या तक 375 वर्ष का और कार्तिक शुक्ल 1 से फाल्गुन कृष्ण अमावस्या तक 376 वर्ष का अन्तर रहता है।

4. बाप्पा रावल के पूर्व का इतिहास—

अब हम अपने खोज कार्यों के अनुसार कुछ पुराना इतिहास लिखना शुरू करते हैं—

यह तो सिद्ध हो ही चुका है कि, वल्लभी शाखा के मुख्य अधिकारी उदयपुर (मेवाड़) के महाराणा हैं। तो अब यह पता लगाना आवश्यक है कि, वल्लभी से मेवाड़ में कौन आया? जिसका उत्तर ऐतपुर की प्रशस्ति से आसानी के साथ मिल सकता है। उसमें लिखा है कि, गुहिल आनन्दपुर से (मेवाड़ के पहाड़ों में) आया। परन्तु अब यह एक दूसरा प्रश्न हुआ कि, वह (गुहिल) किस तरह और किस समय आया? इस विषय में हम अपनी राय इस प्रकार प्रकट करते हैं कि, अपराजित के शासन काल के प्रारम्भिक समय की विक्रम सम्वत् 718 (हि० 41 = सन् 661 ई०) की एक प्रशस्ति कुण्डा ग्राम में हमको मिली। उससे प्रमाणित होता है कि, उक्त सम्वत् में अपराजित राजा राज्य करता था, जो गुहिल की छठी पीढ़ी में है। अतः गुहिल का जमाना लगभग मालूम हो गया कि, छठी सदी विक्रमी के उत्तरार्द्ध (ईसा की छठी सदी के पूर्वार्द्ध) में गुहिल आनन्दपुर से मेवाड़ में आया। इससे जनरल कनिंघम का लिखना भी लगभग सही हो जाता है। हमारा ऊपर लिखा वर्णन भी इस प्रकार सही हो सकता है कि, ऐतपुर की प्रशस्ति (शक्तिकुमार

था, जो वल्लभी से मेवाड़ का राजवंश अलग होने के समय वहां मारा गया हो। किन्तु वह कोई दूसरा राजा ही था। हाँ, यह पाया जाता है कि, वल्लभी पर दो आक्रमण हुए। जिसमें पहला वहुत वड़ा हमला तो गुहिल के मेवाड़ आने के पहले हुआ, जिसका वर्णन जैन ग्रन्थों के आधार पर कर्नल टॉड आदि ने किया है और प्रशस्तियों में भी उल्लेख है। दूसरा आक्रमण शिलादित्य छठे के समय में अथवा उसके वाद इस राजवंश के निर्वल होने के समय में हुआ। परन्तु इसका ठीक-ठीक समय और क्रमानुसार विवरण नहीं मिलता।

सन् 447 का मिला है, जिसके अनुसार विक्रम सम्वत् की गणना करने पर 447 में 376 जोड़ने से (जो विक्रम और वल्लभी सम्वत् का अन्तर है) सम्वत् 823 विक्रमी (सं० 149 हि० = सन् 766 ई०) के बाद ही वल्लभी का पतन होना और गुहिल का मेवाड़ में आना सिद्ध होता है। परन्तु यह बात असम्भव है। क्योंकि सम्वत् 718 विक्रमी (हि० 41 = सन् 661 ई०) की कुण्डा की प्रशस्ति से उक्त सम्वत् में अपराजित का विद्यमान होना पूर्व में लिखा जा चुका है। यह अपराजित गुहिल से छठी पीढ़ी में है। यों सम्वत् 718 विक्रमी से एक अवधि बाद सम्वत् 823 विक्रमी में गुहिल का पिता शिलादित्य छठवां किसी तरह से सिद्ध नहीं हो सकता। यदि पहले शिलादित्य को गुहिल का पिता समझें तो भी यह असम्भव है। क्योंकि उसका समय उसी के दानपत्र से वल्लभी सम्वत् 209 (सं० 666 वि०) लिखा है, जो सम्वत् 580 से बहुत बाद का है। हमारे अनुमान से उस समय वल्लभी में कोई दूसरा राजा होगा, जिसके मारे जाने के बाद उक्त वंश की बड़ी शाखा (जिसमें गुहिल और बाप्पा हुए) मेवाड़ के पहाड़ों अर्थात् अरावली पहाड़ में आकर छुपी। तथा कुछ समय बाद इसी खानदान की छोटी शाखा ने फिर वल्लभी पर अधिकार कर लिया अथवा आक्रमण-कारियों ने वल्लभी के राजाओं को अपना अधिनस्थ बताने के लिए इस शाखा के किसी व्यक्ति को वल्लभी पर बैठा दिया हो। जैसे अकबर और जहांगीर बादशाह ने महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई सगर को महाराणा का विरुद देकर चित्तौड़ पर बैठा दिया था। तथा बड़ी शाखा वालों ने शत्रु की आधीनता से घृणा करके पहाड़ों में कठिनाईयां उठाना स्वीकार किया। उसी वंश में ध्रुवसेन[1] व अन्तिम राजा शिलादित्य छठा हुआ। जिसके समय में इस राजवंश के हाथ से वल्लभी का राज्य पूरी तरह से जाता रहा।

इससे यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया कि सम्वत् 823 विक्रमी में या सन् 766 में वल्लभी के नष्ट होने के बाद उस राजवंश की शाखा मेवाड़ में नहीं आई और न ही उस समय वल्लभी में पहला या छठा शिलादित्य

---

1. चीनी यात्री हुएगसांग ने इस राजा को ध्रुवपट लिखा है। जबकि वह सन् 639 ई० में वल्लभी में आया और उससे मिला था।

लिया, जो हम आगे लिखते हैं। अतः हमारी राय से अपराजित के पुत्र अर्थात् शील के पोते महेन्द्र का विरुद वाप्पा था और यही रावल के पद से प्रसिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त 'एकलिंग-महात्म्य' में वाप्पा का पुत्र भोज और भोज का खुमाण लिखा है। इससे भी महेन्द्र का ही विरुद वाप्पा सिद्ध होता है।[1]

पूर्व में वर्णित कुण्डा की प्रशस्ति से पाया जाता है कि, उक्त प्रशस्ति को उत्कीर्ण किये जाने के समय अपराजित अल्प आयु का रहा होगा और उसने लम्बी आयु पाई। उसी प्रशस्ति में उसके सैनिक अधिकारी को सेनापति महाराज वराहसिंह लिखने से यह भी प्रकट हो जाता है कि, अपराजित एक बड़ा राजा था। क्योंकि किसी छोटी-सी सेना के अधिकारी का महाराज और सेनापति के पद से प्रसिद्ध होना सम्भव नहीं। विश्वास होता है कि, सं. 770 विक्रमी (हि० 94=सन् 713 ई०) के लगभग शत्रुओं ने एकदम आक्रमण करके अपराजित को उसके पहाड़ी राज्य में आ दवाया, जिसमें वह अपने साथियों सहित लड़कर मारा गया और उसका राज्य भी उसके हाथ से जाता रहा। इस विपत्तिकाल में उक्त राजा की रानी अपने बालक पुत्र महेन्द्र (वाप्पा) सहित वचाई जाकर नागदा में पुरोहित वशिष्ठ रावल के यहां लाई गई और वहीं रहने लगी।

अब वाप्पा द्वारा चित्तौड़ का राज्य प्राप्त करने का समय और उसके शासनकाल को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है।

जब महेन्द्र (वाप्पा) अपने पुरोहित के यहां पर रहते-रहते कुछ होशियार हुआ तो वह उस (पुरोहित) की गायें चराने के लिए जंगल में जाने लगा। इसी समय में उसको भोडेला तालाव के पीछे, हारीत नामक एक तपस्वी मिला। वाप्पा हमेशा उसके पास जाता और उसकी सेवा चाकरी

---

1. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने मुहणोत नैणसी री ख्यात (भाग 1 पृ० 12) तथा राजप्रशस्ति महाकाव्य (सर्ग 3, श्लोक 19, 20) के आधार पर खुमाण के पिता कालभोज (भोज) के लिये वाप्पा का विरुद प्रयोग होना माना है! ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 104-105। (सं०)

अध्याय तीन

बाप्पा रावल से अजयसिंह तक

1. बाप्पा रावल—

अब हम बाप्पा का विवरण लिखते हैं, जिनमें इन बातों का निर्णय जरूरी है कि, बाप्पा किसी राजा का नाम था या कोई बिरुद ? यदि बिरुद था, तो किस राजा का था ? तथा उसने किस तरह और कब चित्तौड़ लिया?

यह निश्चय हुआ कि, बाप्पा किसी राजा का नाम नहीं, अपितु बिरुद है। जिसको कर्नल टॉड ने भी बिरुद लिखकर अपराजित के पिता शील को ही बाप्पा ठहराया है। लेकिन कुण्डा की (सम्वत् 718 विक्रमी) प्रशस्ति के प्रकाश में आने के बाद कर्नल टॉड का, शील को बाप्पा मानना गलत सिद्ध हो गया। क्योंकि उक्त सम्वत् में शील का पुत्र अपराजित राज्य करता था और सम्वत् 770 विक्रमी (हि॰ 94=सन् 713 ई॰) में मोरी कुल का मानसिंह चित्तौड़ का राजा था[1]। इसके पश्चात् विक्रमी 791 (हि॰ 116=सन् 734 ईसवी) में बाप्पा ने चित्तौड़ का किला मोरियों से

---

1. मानसरोवर की प्रशस्ति जो कर्नल टॉड को मिली और जिसके प्रत्येक श्लोक का अनुवाद उसने लिखा है। वह प्रशस्ति सं॰ 770 वि॰ (हि॰ 94=ई॰ 713) में उत्कीर्ण की गई थी। जिससे उक्त सम्वत् में मोरी राजवंश के राजा का चित्तौड़ पर राज्य करना स्वतः सिद्ध होता है। (सं॰)

लिखा है, परन्तु हमारे अनुमान से 19 वर्ष राज्य करना ही सिद्ध होता है। क्योंकि एकलिंग महात्म्य के बीसवें अध्याय का इक्कीसवां श्लोक निम्न है—

श्लोक— राज्यं दत्वा स्वपुत्राय आथर्वण मुपागतः।
खचन्द्रदिग्गजाख्ये च वर्षे नागह्रदे मुने॥

अर्थ—अपने पुत्र को राज्य देकर (वाप्पा) संवत् 810 (आठसौ दस) में आथर्वण ऋषि के पास (संन्यास लेने को) नागदा में आया।

सम्वत् 791 विक्रमी (हि० 116=सन् 734 ई०) में महेन्द्र (वाप्पा) ने चित्तौड़ का राज्य लिया और सम्वत् 810 विक्रमी (हि० 135=सं० 753 ईसवी) में संन्यास लिया। यों स्पष्टरूप से सिद्ध होता है कि, उसने 19 वर्ष तक राज्य किया। इसके अतिरिक्त कर्नल टॉड ने अपने अनुमान से वल्लभी के पतन के 190 वर्ष बाद बाप्पा का पैदा होना और वाप्पा का 15 वर्ष की अवस्था में चित्तौड़ लेकर 39 वर्ष की आयु तक राज्य करना लिखा है।[1] लेकिन हमारे अनुमान से 20 वर्ष की अवस्था में चित्तौड़ लेकर 39 वर्ष की अवस्था, उसके संन्यास लेने का समय मानना चाहिये।

सामान्य लोग वाप्पा का देहान्त खुरासान की तरफ होना लिखते हैं। लेकिन यह बात गलत प्रसिद्ध हो गई है। क्योंकि वाप्पा का समाधि स्थान एकलिंगपुरी से उत्तर में एक मील से कुछ दूर अब तक विद्यमान है। जहां एक छोटा-सा मन्दिर है, जिसका बाद में जीर्णोद्धार किया गया है। उस पर बारह सौ से कुछ ऊपर संवत् लिखा है, जो उसके जीर्णोद्धार का सम्वत् है। यह रमणीय स्थान वाप्पा रावल के नाम से प्रसिद्ध है। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि, वाप्पा ने एकलिंगपुरी में परलोकवास किया, खुरासान की तरफ नहीं। निस्सन्देह यह बात सही है कि, वाप्पा रावल ने थोड़े ही समय में बहुत बड़ा नाम प्राप्त किया और अपने राज्य को भी बहुत कुछ बढ़ाया। यदि खुरासान को भी उसने जीत लिया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

---

1. कर्नल टॉड ने सं० 580 वि० (सन् 523 ई०) में वल्लभी के पतन के 190 वर्ष बाद वाप्पा का जन्म और 784 वि० में वाप्पा द्वारा चित्तौड़ लेना लिखा है। टॉड०, एनल्स०, भाग 1, पृ० 269। (सं०)

करता था। ऋषि के माध्यम से उसको एकलिंग महादेव के दर्शन हुए, जो बांस के वृक्षों में एक शिवलिंग था। एकलिंग माहात्म्य में इस कथा को चमत्कारी बातों के साथ बढ़ाकर लिखा है। लेकिन प्रसिद्ध है कि, उसी महात्मा के आशीर्वाद से बाप्पा को "बरकत" हासिल हुई और बहुत-सी दौलत जमीन से मिली। उसने सं० 791 विक्रमी (हि० 116=सन् 734 ई०) में राजा मान मोरी से चित्तौड़ का किला लिया। कर्नल टॉड ने अपनी पुस्तक में जिन प्रमाणों से सं० 784 विक्रमी (हि० 108=सन् 727 ई०) में बाप्पा का चित्तौड़ लेना लिखा है, वे प्रमाण-मात्र अनुमान ही है। यद्यपि हम भी इस विषय में अपने अनुमान से ही काम लेते रहे हैं, परन्तु यह सामान्य बात है कि, प्रत्येक तथ्य के खोज कार्यो में पहले अनुमान की अपेक्षा दूसरा अनुमान प्रबल होता है।

मेवाड़ की ख्यात की पोथियों और बड़वा भाटों की पुस्तकों में बाप्पा रावल का सम्वत् 191 विक्रमी में चित्तौड़ लेना लिखा है। लेकिन हमारे अनुमान से सम्वत् 791 विक्रमी के स्थान पर 191 गलती से प्रसिद्ध हो गया। क्योंकि हिन्दी भाषा में एक और सात के अंक की गांठ एक सी होती है। केवल नीचे की रेखा एक की सीधी और सात के अंक की पुरानी लिपि में बहुत ही कम टेढ़ी होती थी। किसी प्रशस्ति अथवा पुस्तक में सात के अंक का झुकाव नष्ट हो जाने से देखने वालों ने सात को एक समझ कर 191 प्रसिद्ध कर दिया, तब उसी के अनुसार लिखा जाने लगा। कर्नल टॉड ने अपने अनुमान से लिखा है कि, मेवाड़ के बड़वा भाटों ने यह तो नहीं समझा कि, वल्लभी के पतन के 190 वर्ष बाद, बाप्पा पैदा हुआ और गलती से 191 विक्रमी में उसका होना विचार कर वैसा ही अपनी पुस्तकों में लिख दिया। अब यह जानना चाहिये कि यह गलती कब हुई? इसके लिये हम सिद्ध कर सकते हैंकि, महाराणा रायमल्ल के बाद यह भूल प्रचलित हुई। क्योंकि "एकलिंग माहात्म्य" में, जिसको लोग वायु-पुराण का एक भाग कहते हैं और जो मेवाड़ देश में एक पवित्र ग्रन्थ माना जाता है। उसके 20 से 26 अध्यायों तक वायु देवता ने मेवाड़ के भावी राजाओं का वर्णन किया है। उस वंशावली में अन्तिम नाम महाराणा रायमल का है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, उक्त राजा के समय में यह ग्रन्थ बनाया गया।

कर्नल टॉड ने अपने अनुमान से बाप्पा का 26 वर्ष तक राज्य करना

अचलगढ़ आदि प्रशस्तियों में इन आलौकिक बातों का उल्लेख नहीं है। केवल हारीत ऋषि के आशीर्वाद से राज्य का मिलना और हारीत ऋषि द्वारा अपने एक पैर का सोने का कड़ा वाप्पा को देना ही लिखा है। लेकिन ये प्रशस्तियां भी उस समय से बहुत वर्ष बाद उत्कीर्ण हो गई है।

यद्यपि राजाओं के विषय में चमत्कारी बातों और प्रसिद्ध किस्से, कहानियों को उनके वर्णन में न लिखना राजपूताना में एक बड़ा भारी अपराध समझा जाता है। परन्तु मुझ अकिंचन को अपने स्वामी महाराणा श्री शम्भूसिंह, श्री सज्जनसिंह और श्री फतहसिंह की गुणग्राहकता ने इस बात का हौसला और हिम्मत दिलाई कि सही और असली घटनाओं के वर्णन करने के अतिरिक्त किस्से, कहानियों की बातें बहुत ही कमी के साथ लिख कर पाठकों के अमूल्य समय को बचावें। यदि किस्से कहानियों का कुछ भी अंश ठीक न भी हो तो भी इसमें सन्देह नहीं कि, महेन्द्र (वाप्पा) हिन्दुस्तान का बड़ा प्रतापी, पराक्रमी और तेजस्वी महाराजाधिराज हुआ। उसने अपने पूर्वजों के प्रताप, बड़प्पन और पराक्रम जो थोड़े समय तक नष्ट हो गया था, को दूसरी बार प्रकाशित किया। यदि यह महाराजा सारे हिन्दुस्तान का एक छत्रधारी न हुआ हो, तो भी हिन्दुस्तान के दूसरे राजाओं में अग्रगण्य और बड़ा समझा गया था। इस राजा का राज्य बड़ा होने के बहुत से प्रमाण मिल सकते हैं। जैसा कि अरब देश के मुसलमान यात्रियों-सुलेमान और अबूजैल्हसन ने बलहारा का राज्य चीन देश की सीमा तक लिखा है। जो वाप्पा रावल के प्रपोत्र का समय होगा। जिसका अनुवाद ऊपर लिखा गया है। इन प्रसिद्ध किस्से-कहानियों को सुनिये तो वाप्पा और उसके पोते आदि को हिन्दुस्तान का चक्रवर्ती कह सकते हैं।

2. रावल समरसिंह—

महेन्द्र (वाप्पा) और रावल समरसिंह के बीच की पीढ़ियों[1] के ऐतिहासिक वर्णन में किस्से, कहानियों के अतिरिक्त श्रृंखलाबद्ध

राजाओं के अधिकार में आया होगा। तथा जैत्रसिंह (1213-1253 ई०) ही वहां का प्रथम गुहिल वंशीय ज्ञात शासक हुआ। राजस्थान थ्रू द एजेज, पृष्ठ 239-241। (सं०)

1. वाप्पा रावल और रावल समरसिंह तक के शासकों की सर्वसम्मत पीढ़ियां यहां लिखी जा रही हैं—

वाप्पा ने जो अपना विरुद रखा इसका कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। निस्सन्देह जिन पुजारी ब्राह्मणों के यहां उसका पालन-पोषण हुआ, वे रावल कहलाते थे। शायद वाप्पा ने भी अपने शुभ-चिन्तकों की यादगार में यह विरुद धारण कर लिया हो। लोग इस विषय में कई दन्त-कथाओं का उल्लेख करते हैं। जिनमें से एक यह है कि, अम्बिका भवानी ने स्वप्न में वाप्पा की माता को कहा कि, तुम्हारे एक वड़ा प्रतापी और परा-क्रमी पुत्र उत्पन्न होगा। उसको चाहिये कि राजा की पदवी छोड़कर रावल कहलाये। तथा उसी के अनुसार वाप्पा ने अपनी माता के कहने से यह पद धारण किया। चाहे कुछ भी हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, रावल पद का अर्थ ' वहादुर राजपूतों को शोभा देने वाला" है अर्थात् राव शब्द उसके लिये प्रयोग में आता है, जो लड़ाई के समय गर्जना को स्वीकार करे।

वाप्पा का चित्तौड़ लेना लोग कई प्रकार से लिखते हैं। कई एक लोगों का कहना है कि, उसने राजा मान मोरी को जीत कर चित्तौड़ ले लिया। तथा कुछ लोग कहते हैं कि, उसने उक्त राजा के यहां सेवक रह कर राज्य प्राप्त किया। इसी तरह वाप्पा को हारीत ऋषि के द्वारा महादेव का दर्शन होना भी वहुत-सी अलौकिक वातों के साथ प्रसिद्ध है। कुछ लोग कहते हैं कि, वाप्पा का शरीर अर्थात् कद हारीव ऋषि के वरदान से 14 हाथ ऊँचा हो गया। उसके हाथ की तलवार वत्तीस मन वजन की थी और वह एक वक्त में कई वकरे खा सकता था, आदि-आदि। हिन्दी कविता में भी इन वातों का उल्लेख है। लेकिन ऐसी वातों का कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। जैसा जिसके मन में आया, उसी तरह की कथा गढ़ कर कह सुनाई। हां, इसमें सन्देह नहीं कि, उसने राजा मान मोरी से सम्वत् 791 विक्रमी (हि० 116=सन् 734 ई०) में चित्तौड़ का दुर्ग लिया।[1] आवू के

---

1. वाप्पा रावल द्वारा मोरी शासकों को हटा कर चित्तौड़ पर अधिकार करना। कर्नल टॉड के साथ ही, गोरीशंकर हीराचंद ओझा ने भी स्वीकार किया है। किन्तु डॉ० दशरथ शर्मा ने अपने खोजपूर्ण ग्रन्थ में इस विचारधारा का खण्डन करते हुए लिखा है कि, मोरियो के वाद चित्तौड़ पर प्रतिहारों का अधिकार हुआ और देवपाल प्रतिहार की अल्लट के हाथों पराजय के वाद ही चित्तौड़ गुहिलवंशीय

ग्रौर चंद के समय में नहीं, अपितु वाद में वना। इस वात को मैं, कई प्रमाणों से सिद्ध कर सकता हूं। प्रथम वहुत से उदाहरण लिखकर मैं, उनको अशुद्ध ठहरा कर इस काव्य में लिखे गये साल सम्वतों की भूल को उजागर करूंगा। जैसे, पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् उक्त नाम की हस्तलिखित पुस्तक के पत्र 18, पृष्ठ 1 पर लिखा है—

दोहा— एकादस से पंचदह, विक्रम साक अनन्द।
तिहि रिपु पुर जय हरन को, भे पृथिराज नरिन्द॥

अर्थ—शुभ सम्वत् 1115 विक्रमी में राजा पृथ्वीराज, शत्रु के नगर अथवा देश लेने के लिए उत्पन्न हुआ।

फिर उसी पत्र के दूसरे पृष्ठ पर निम्नलिखित पद्धरी छन्द लिखा है—

दरवार वैठि सोमेसराय, लीने हजूर जोतिग वुलाय।
कहो जन्म कर्म वालक विनोद, सुभ लग्न मुहूरत सुनत मोद॥1॥
सम्वत् इक्कदश पंच अग्ग, वैसाख तृतिय पख कृष्ण लग्ग।
गुरु सिद्ध जोग चित्रा नखत्त, गरनाम करन सिसु परम हित्त॥2॥
उषा प्रकास इक धरिय राति, पल तीस अंश त्रय वाल जाति।
गुरु वुध सुक्र परि दसें थान, अष्टमे वार शनि फल विधान॥3॥
पंचमे थान परि सोम भोम, ग्यारमें राहु खल करन होम।
वारमें सूर सो करन रंग, अनमी नमाय तिन करे भंग॥4॥

इस छन्द में पृथ्वीराज के जन्म समय पर ज्योतिषियों द्वारा कही हुई जन्मपत्री की वातें लिखी हैं। छन्द का अर्थ है कि, राजा सोमेश्वरदेव (पृथ्वीराज का पिता) एक दरवार कर विराजमान हुआ और उसने ज्योतिषियों को अपने सामने बुलाकर कहा कि, "वालक के जन्म कर्म और चरित्र के विषय में वतलाओ"। उसका अच्छा लग्न और अच्छा मुहूर्त सुनते ही सव लोग हर्षित हुए।

विक्रमी 1115, गुरुवार[1] वैशाख कृष्ण तृतीया के दिन जन्म हुआ,

---

1. इण्डियन एफीमरीज के अनुसार इस दिन "गुरुवार" नहीं आता है। रविवार, मार्च 15, 1058 ई०। (सं०)

पूरा-पूरा विवरण न मिलने के कारण अब हम यहां पर रावल समरसिंह का विवरण लिखना शुरू करते हैं। क्योंकि उक्त रावल का इतिहास पृथ्वीराज रासो नामक ग्रन्थ में बहुत कुछ गलत लिखा गया है और हर एक व्यक्ति उसको पूरे विश्वास के साथ स्वीकार करता है। वास्तव में पृथ्वीराज के बहुत समय बाद किसी भाट ने, भाषा कविता में यह ग्रन्थ लिखा है। मैं नहीं जानता कि, उसने किस अर्थ से इस ग्रन्थ की रचना कर, राजपूताना के इतिहास को बरबाद किया।

उक्त ग्रन्थ की नवीनता[1] सिद्ध करने के लिये यहां पर कुछ प्रमाण लिखे जाते हैं—

यह बहुत प्रसिद्ध हिन्दी काव्य जिसे बहुधा विद्वान लोग पृथ्वीराज चौहान के कवि चंदबरदाई का बनाया हुआ मानते हैं। तथा जिसमें पृथ्वीराज का जन्म से मृत्युपर्यन्त इतिहास का वर्णन है, मूल ग्रन्थ नहीं है। मेरी बुद्धि के अनुसार चंद के कई सौ वर्ष बाद में यह जाली ग्रन्थ बनाया गया है।[2] इसको बनाने वाला राजपूताना का कोई भाट था, जिसने इस काव्य से अपनी जाति का बड़प्पन दिखलाना चाहा। ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो, पृथ्वीराज

---

1 बाप्पा, 2. खुमाण प्रथम, 3. मत्तट, 4. भर्तृपट्ट प्रथम, 5. सिंह, 6. खुमाण द्वितीय, 7. महायक, 8. खुमाण तृतीय, 9. भर्त्तपट्ट तृतीय, 10. अल्लट (अल्लू), 11. नरवाहन, 12. शालिकुमार, 13. शक्तिकुमार, 14. अम्बाप्रसाद, 10. शुचिवर्मा, 16. नरवर्मा, 17. कीर्तिवर्मा, 18. योगराज, 19. वैरट, 20. हंसपाल, 21. वैरिसिंह, 22. विजयसिंह, 23. अरिसिंह, 24. चोड़सिंह, 25. विक्रमसिंह, 26. रणसिंह (कर्णसिंह, कर्ण) और 27. क्षेमसिंह सामन्तसिंह, तेजसिंह। ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 116-144; राजस्थान थ्रू द एजेज, भाग 1, पृ० 241-249। (सं०)

1. पश्चात् कालीन रचना, आधुनिक रचना। (सं०)

2. द्रष्टव्य डॉ० राजमल बोरा कृत "पृथ्वीराज रासो—इतिहास और काव्य" में डॉ० रघुवीरसिंह की "समहरणात्मक भूमिका"। (सं०)

सिद्ध योग में जो मंगल की चूर्ण है, राजा अनंगपाल ने अपनी पुत्री के पुत्र अर्थात् दौहित्र को प्रसन्नतापूर्वक शुद्ध मन से अपना राज्य सौंप दिया और आप अपने शरीर तथा स्त्रियों का सब सुख त्याग कर बद्रिकाश्रम को गया। अर्थात् उसने श्री बद्रीनाथ के चरण कमलों में आश्रय लिया।

पुन: माधव भाट की कथा के पर्व में (पत्र 84, पृ० 1 पर) यह दोहा लिखा है—

दोहा—1. ग्यारहसै अठतीस भनि भो दिल्ली पृथिराज।
सुन्यौ साह सुरतान बर, वज्जे बज्ज सुवाज ॥1॥

अरिल—2. ग्यारहसै अटतीसा मानं, भे दिल्ली नृपराज चुहानं।
विक्रम विनसक वंधी सूरं, तपै राज पृथीराज करुरं ॥1॥

अर्थ—1. पृथ्वीराज सम्वत् 1138 में दिल्ली का राजा हुआ। इस बात को सुनकर सुलतान शहाबुद्दीन गौरी ने लड़ाई के अच्छे बाजे बजवाये।

2. सम्वत् 1138 में (पृथ्वीराज) चौहान दिल्ली का राजा हुआ। विक्रमादित्य के विना भी यह राजा सम्वत् चलाने के योग्य है। अर्थात् इसका पराक्रम विक्रम के समान है। इसका बड़ा कठोर शासन है अर्थात् इसकी आज्ञा को कोई नहीं मेट सकता।

पृथ्वीराज के सेवकों में से "कैमास" नामक एक बुद्धिमान राजपूत ने, जिसका नाम अभी तक प्रसिद्ध है, शहाबुद्दीन से जो लड़ाई की, उसका वर्णन (पत्र 180 के पहले पृष्ठ) में इस प्रकार लिखा है—

हणूफाल छंद—1. सम्वत् हर चालीस, वदि चैत एकम दिस।
रविवार पुष्य प्रमान, साहाबदिय मैलान ॥1॥

छप्पय—2 ग्यारहसै चालीस चैत, वदि सस्सिय दूजो।
चढ्यो साह साहाब आनि, पंजावह पूज्यो ॥
लक्ख तीन असवार, तीन सैसह मद मत्तह।
चल्यो साह दरकूच, कढ़िय जुग्गिनि धुर वत्तह ॥
सामंत सूर विकसे उअर, कायर कंपे कलह सुनि।
कैमास मंत्रि मंत्रह दियो, ठिग बैठे चामंड पुनि ॥1॥

उस दिन, सिद्ध योग और चित्रा नक्षत्र था। तथा गर नाम का करण बालक के लिये परम हितकारी था। जन्म के समय एक घड़ी 30 पल 3 अंश ऊषाकाल के व्यतीत हुए थे। बृहस्पति, बुध और शुक्र 10वें भवन में थे। आठवें पर शनिश्चर का फल, बालक के लिये बतलाया गया। चंद्र और मंगल पांचवें स्थान में थे और राहू 11 वें स्थान पर था, जो दुष्ट वैरियों को जलाने वाला है। सूर्य बारहवें स्थान पर था, जो बड़ा प्रतापी और कान्ती देने वाला और नहीं झुकने वाले वैरियों को भी झुकाकर नष्ट करने वाला है।

इसी छन्द में आगे ज्योतिषियों ने पृथ्वीराज की अवस्था के विषय में राजा सोमेश्वरदेव से भविष्यवाणी की है—

चालीस तीन तिन वर्ष साज, कलि पुहमि इंद्र उद्धार काज ॥

इसका अर्थ यह है कि, तैंतालीस वर्ष की उसकी अवस्था होगी और कलियुग में वह पृथ्वी का उद्धार करने वाला इन्द्र होगा।

पुनः दिल्ली दान प्रस्ताव के एक छप्पय छन्द में (पत्र 90, पृष्ठ 1 पर) लिखा है, कि, पृथ्वीराज को उसके नाना, दिल्ली के राजा अनंगपाल तंवर ने, जिसके कोई पुत्र न था गोद लिया —

एकादश संवत्तह अट्ठ अग हनि तीस भनि।
प्रथम सु ऋतु तहं हेम सुद्ध मगसिर सुमास गनि ॥
सेत पक्ख पंचमिय सकल वासर गुरु पूरन।
मुदि मगसिर सम इंद, जोग सिद्ध हि सिध चूरन ॥
पहु अनंगपाल अप्पिय पुहमि पुत्तिय पुत्त पवित्त मन।
छड़यो सु मोह मुख तन तरुनि पति वद्री सज्जे सरन ॥1॥

इसका अर्थ यह है कि, सम्वत् 1138 की हेमन्त ऋतु के आरम्भ में, शुभ मार्गशीर्ष महीने के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि और सकल कला करके पूर्ण बृहस्पतिवार को[1] मंगलदायक मृगसिरा नक्षत्र[2] के अखंडित चन्द्रमा और

1. यहां पर भी गुरुवार का उल्लेख ठीक नहीं है। सोमवार, नवम्बर 8, 1081 ई० । (सं०)
2. शुक्ल पंचमी में मृगसिरा नक्षत्र नहीं हो सकता।

दुनिया के लोगों सुनो, कि लड़ाई किस प्रकार की हुई। वीरों के ललाट से क्रोध का जहर (विष) चमकने लगा। लड़ाई में वहादुरों से वहादुर भिड़ने लगे और दोनों दलों के मध्य एक पहर तक लड़ाई हुई।

फिर 6 ऋतु के वर्णन अध्याय में, पत्र 242, पृष्ठ 2 पर यह दोहा लिखा है—

दोहा— ग्यारहसै एक्यावनै, चैत तीज रविवार।
कनवज देखन कारणै, चल्यो तु संभरिवार ॥1॥

अर्थ—सम्वत् 1151 चैत्र कृष्ण 3, रविवार[1] के दिन संभरी अर्थात् चौहान राजा कन्नौज देखने को चला।

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गौरी की अन्तिम लड़ाई का वृतान्त (पत्र 360 के पहले पृष्ठ में) इस प्रकार लिखा है—

दोहा— 1. शाकसु विक्रम सत्त शिव, अठ्ठ अग्र पंचास।
शनिश्चर संक्रांति कर्क, श्रावण अद्धो मास॥
2. श्रावण मावस[2] सुभ दिवस, उभै घटी उदियत्त।
प्रथम रोस दुव दीन दल, मिलन सुभर रन रत्त॥

अर्थ—1. सम्वत् 1158 ("शिव" ज्योतिष में 11 को वोलते हैं) शनिवार के दिन जवकि कर्क संक्रांति थी और श्रावण का आधा महीना व्यतीत हुआ था, लड़ाई हुई।

2. श्रावण की अमावस्या के दिन, जो कि एक शुभ दिन है, सूर्य निकलने के दो घड़ी वाद दोनों धर्मों के दलों में (अर्थात् हिन्दू और मुसलमानों में) पहला क्रोध इसलिये किया गया कि, वीरों को लाल रंग मिले। संक्षेप में दोनों दलों के अंग का रंग क्रोध से रक्त वर्ण हो गया।

पत्र 380, पृष्ठ 1 वड़ी लड़ाई के अध्याय में यह छप्पय लिखा है—

---

1. फरवरी 25, सन् 1095 ई०। (सं०)
2. श्रावण कृष्ण 15,1158 वि० = शुक्रवार, जून 28, सन् 1101 ई०। (सं०)

अर्थ—1. सम्वत् 1140 ("हर" ज्योतिष में 11 को कहते हैं) चैत्र कृष्ण प्रतिपदा रविवार[1] के दिन पुष्य नक्षत्र[2] के समय शहाबुद्दीन गौरी ने अपनी सेना के डेरे दिये।

2. सम्वत् 1140 चैत्र कृष्ण 2[3] चन्द्रमा के दिन शहाबुद्दीन गौरी ने चढ़ाई की और पंजाब में पहुँचा। अथवा वहां के लोगों ने उसको पूजा अर्थात् मान लिया। इसके साथ तीन लाख सवार और तीन सहस्त्र मतवाले हाथी थे। वहां से निकल कर मंजिल-दर-मंजिल जुग्गिनी (दिल्ली) की ओर गर्जता हुआ चला। योद्धा और बहादुरों का मन प्रसन्न हुआ। कायर लोग लड़ाई का नाम सुन कर कांपने लगे। मंत्री कैमास, जिसने पृथ्वीराज को सलाह दी थी और चामडराय, जो उसका वीर योद्धा था, दोनों उसके पास बैठे थे।

इसके बाद पत्र 191 के पृष्ठ 1 में निम्नांकित छप्पय छन्द लिखा है—

छप्पय— ग्यारहसैं चालीस, सोम ग्यारस वदि चैतह।
भये साह चहुवान, लरन ठाडे वनि खेतह॥
पंच फौज मुलतान, पंच चौहान बनाइय।
दानव देव समान, ज्वान लरने रिन धाइय॥
कहि चंद दंद दुनिया सुनो, बीर कहर चच्चर जहर।
जोधान जोध जंगह जुरत, उभय मध्य बित्यो पहर॥1॥

अर्थ—सम्वत् 1140 चैत्र कृष्ण 11 सोमवार[4], के दिन दिल्ली का राजा पृथ्वीराज चौहान सज-धज कर रणांगण में लड़ने को खड़ा हुआ। मुलतान की फौज के 5 व्यूह देख कर चौहान ने भी अपनी फौज के पृथक-पृथक 5 समूह बनाये। दानवों के समान मुसलमान और देवताओं के समान राजपूत योद्धा लड़ने के लिये रण को दौड़े। चंद कवि कहता है कि, हे

---

1. फरवरी 25, सन् 1084 ई०। (सं०)
2. इस दिन पुष्य नक्षत्र नहीं हो सकता।
3. सोमवार, फरवरी 26, सन् 1084 ई०। (सं०)
4. इण्डियन एफिमरीज के अनुसार इस दिन सोमवार नहीं आता। मंगलवार, मार्च 5, सन् 1084 ई०। (सं०)

ठीक नहीं है। क्योंकि सम्वत् 1249 में पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गौरी के साथ पंजाब में लड़ाई की और वह उस समय से पहले दिल्ली में राज्य करता था, जिसके प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं—

तबकात-इ-नासिरी जो हिजरी सन् 602 = सं० 1261 विक्रमी = सन् 1205 ई० में बनाई गई थी) का ग्रन्थकर्ता शहाबुद्दीन के विषय में इस तरह लिखता है कि, "शहाबुद्दीन गौरी ने हिजरी सन् 571 (सं० 1232 वि० = सन् 1175 ई०) में मुलतान लिया और हिजरी सन् 574 (सं० 1235 वि० = सन् 1178 ई०) में ओरछा और मुलतान होकर नेहरवाला की ओर आया। नेहरवाला के राजा भीमदेव या वासुदेव की सेना से सामना हुआ। बादशाह की फौज भाग गई और वह असफल होकर लौट गया। हिजरी सन् 577 (सं० 1238 वि० = सन् 1181 ई०) में वह लाहोर की तरफ आया और सुलतान महमूद की तरफ आया और सुलतान महमूद की सन्तान, खुसरो मलिक ने अपने लड़के को एक हाथी के साथ उसके पास भेजकर समझौता कर लिया। हिजरी सन् 578 (सं० 1239 वि० = सन् 1182 ई०) में बादशाह देवल की ओर आया और समुद्र के किनारे के समस्त शहर जब्त कर लिये, तथा बहुत-सा माल लेकर वापस लौट गया। हिजरी सन् 580[1] (सं० 1241 वि० = सन् 1184 ई०) में वह दूसरी बार लाहोर को तरफ आया और सारा इलाका लूट कर सियालकोट का किला बनवाने के बाद वापस लौट गया। हिजरी सन् 582 (सं० 1243 वि = सन् 1186 ई०) में उसने लाहोर पर फिर चढ़ाई की। मलिक खुसरो को कैद कर लिया और लाहोर लेकर सेनापति अली कर्माख को वहां का हाकम (अधिकारी) नियुक्त किया। तथा इस पुस्तक लिखने वाले के बाप सिराजुद्दीन मिन्हाज को हिन्दुस्तान की सेना का काजी बनाया।[2]

हिजरी सन् 587 (सं० 1248 वि० = सन् 1191 ई०) में उसने सरहिन्द का किला फतह कर काजी जियाउद्दीन को सौंपा, जो इस किताब लिखने वाले के नाना का चचेरा भाई था। काजी ने बादशाह के

---

1. हिजरी सन् 581 का उल्लेख है। रावर्टी०, तबकात-इ-नासिरी, (अं० अ०) भाग 1, पृ० 453। (सं०)
2. रावर्टी०, तबकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 449-456। (सं०)

छप्पय— एकादस सै मत्त, अठ्ठ पंचास अधिकतर ।
सावन सुकल नृपक्ख, वुद्ध एकातिथिवासर ।।
वज्र योग रोहिनी, करन वालव धिक तैतल ।
प्रहर सेप रस घटिय, आदि तिथि एक पच पल ।।
त्रिष्युरिय वत्त जुद्धह सरल, जोगिनिपुर वासर विषम ।
सम्पत्ति थान सुरसतिय जुरि, रहसि रवी कीनो विरम ।।

अर्थ—सम्वत् 1158 श्रावण शुक्ल पक्ष प्रतिपदा वुधवार[1] के दिन वज्र योग रोहिणी नक्षत्र[2] करण वालव ग्रौर उससे अधिक तैतल, जिस समय पिछली रात में 6 घड़ी वाकी थी ग्रौर प्रतिपदा की एक घड़ी ग्रौर 5 पल वीते थे, लड़ाई की वात बड़ी सरलता से (पूर्णरूप से) फैल गई। वह दिन दिल्ली के लिये वड़ा खोटा था। लड़ाई इस प्रकार हुई कि मानों लक्ष्मी के स्थान पर सरस्वती ने उससे युद्ध किया। लड़ाई देखने के लिये सूर्य ने भी ठहर कर विश्राम किया।

ऊपर लिखे हुए उदाहरण "पृथ्वीराज रासो" की राज पुस्तकालय (सरस्वती पुस्तकालय) की प्रतियों से लिखे गये हैं। ये प्रतियां वेदला की पुस्तक के अनुसार की गई है। उदाहरण के लिये यहां पर एक ही जगह का सम्वत् लिखना ही पर्याप्त होता, परन्तु अनेक सम्वत् इस उद्देश्य से लिखे गये हैं कि किसी को यह संदेह न हो कि, कदाचित् लिखने वाले (प्रतिलिपि-कार) ने भूल की है। तथा मैं, आशा रखता हूं कि, पाठकों को इस तरह से संतोष हो जायेगा कि ऐसी गलती नहीं हुई।

अब ऊपर लिखे हुए उदाहरणों के सम्वतों पर विचार करना चाहिये। प्रथम यह देखना चाहिए कि, पृथ्वीराज शहावुद्दीन गौरी के साथ किस सम्वत् में लड़ा ग्रौर दिल्ली में वह किस समय राज्य करता था।

"पृथ्वीराज रासो" में लड़ाई का सम्वत् 1158 लिखा है, परन्तु यह

---

1. इण्डियन एफीमरीज के अनुसार इस तिथि को वुधवार नहीं पड़ता है। शनिवार, जून 29, सन् 1101 ई०। (सं०)
2. श्रावण शुक्ल 1 को रोहणी नक्षत्र नहीं हो सकता।

हिजरी सन् 588 (सं० 1249 वि० = सन् 1192 ई०) में प्राप्त हुई। बादशाह कुतुबुद्दीन ऐवक को कुहराम के किले पर नियुक्त कर, स्वयं गजनी लौट गया। तब कुतुबुद्दीन ऐवक ने मेरठ, दिल्ली आदि ले लिये। हिजरी सन् 589 (सं० 1249 वि० = सन् 1193 ई०) में कुतुबुद्दीन ने कोयल का किला लिया।[1]

हिजरी सन् 590 (सं० 1250 वि० = सन् 1194 ई०) में सुलतान गजनी से कन्नौज और बनारस को आया और चंदावल के पास राय जयचंद को मार भगाया। इस जीत में 300 से अधिक हाथी हाथ लगे। बादशाह की अधीनता में कुतुबुद्दीन ने नेहरवाला, कालवा, बदांयू आदि बहुत से शहर जीत लिये। खुदा ने चाहा तो इन सब लड़ाइयों का वर्णन "फुतूह कुतुबी"[2] में लिखा जायेगा।[3]

अब यह देखना चाहिये कि, हिजरी सन् 587 = सन् 1191 ई० = सं० 1248 वि० और हिजरी सन् 588 = सन् 1192 ई० = सं० 1249 वि० होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि, शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की लड़ाई जिसमें पृथ्वीराज की मृत्यु हुई, सं० 1249 वि० में अर्थात् "पृथ्वीराज रासौ" में लिखे हुए सं० 1158 वि० (हिजरी 494 = सन् 1101 ई०) से प्राय: 90 वर्ष बाद हुई। यद्यपि तबकात-इ-नासिरी का लेखक विदेशी था, परन्तु वह सम्वतों में भूल नहीं कर सकता। शायद नामों में गलती भले ही की हो।

तारीख अबुलफिदा नामक किताब की दूसरी जिल्द में शहाबुद्दीन के हिन्दुस्तान में आने का विवरण लिखा है। उसमें हिजरी सन् 586, 587 और 589 में जो-जो घटनायें घटित हुईं उन सब का संक्षिप्त वर्णन है। परन्तु पृथ्वीराज की लड़ाई का वर्णन नहीं लिखा है। फिर भी शहाबुद्दीन गौरी का उस समय होना अच्छी तरह सिद्ध है। बाद के इतिहासों में भी पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की लड़ाई का वही सम्वत्, सं० 1249 वि० लिखा है। जबकि राजा जयचंद और शहाबुद्दीन गौरी का समय निश्चित् हो गया, तब

---

1. रोवर्टी०, तबकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 468-470। (सं०)
2. यह किताब सुलतान कुतुबुद्दीन ऐवक के हाल की मालूम होती है।
3. रोवर्टी०, तबकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 470-471। (सं०)

आने तक किले की रक्षा के लिये 1200 आदमी किले में रखे। लेकिन राय कोला पिथोरा पास आ गया था, सुलतान भी आ पहुँचा। हिन्दुस्तान के सब राजा[1] पिथोरा के साथ थे। सुलतान ने दिल्ली के राजा गोविन्दराय पर हमला किया, जो हाथी पर सवार था और नेजा अर्थात् भाला मारकर गोविन्दराय के दो दांत तोड़ डाले। राजा ने एक शेल (बर्छा) मारा, जिससे सुलतान की भुजा में बड़ी चोट लगी। उसको घोड़े से गिरते हुए एक खिलजी सिपाही ने सम्भाला। बादशाह की सब फौज भाग निकली।[2]

राजा पिथोरा ने काजी तोलक को सरहिन्द के किले में आ घेरा और 13 माह तक लगातार लड़ाई चलती रही।[3]

बादशाह बदला लेने के लिये पुनः हिन्दुस्तान में आया। इस पुस्तक के लिखने वाले ने एक विश्वसनीय व्यक्ति मुईनुद्दीन से, जो बादशाह के साथ था, यह सुना कि, उस समय मुसलमानों की सेना में 1,20,000 सैनिक थे। सामना होने से पहले सुलतान ने अपनी सेना के चार टुकड़े कर दिये और सिपाहियों को कहा कि, "हर तरह से तीरंदाजी करो। जब नालाइकों के हाथी और आदमी इत्यादि चढ़ाई करें तो हट जाओ।" मुसलमानी सेना ने ऐसी कार्यवाही से काफिरों (हिन्दुओं) को हरा दिया। खुदा ने बादशाह को विजयश्री प्रदान की और काफिरों ने भागना शुरू किया। पिथोरा, हाथी से उतर कर घोड़े पर चढ़ा और एक दम भागा। लेकिन सरस्वती की सीमा पर पकड़ा जाकर मार डाला गया। दिल्ली का गोविन्दराय लड़ाई में मारा गया। जिसकी सूरत बादशाह ने पहचान ली। क्योंकि उसके दो दांत पहली लड़ाई में टूट गये थे। राजधानी अजमेर, सवालक[4] और हांसी व सरस्वती इत्यादि प्रदेश ले लिये गये। यह विजय

---

1. रोवर्टी०, तबकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 459 पर "राना" लिखा है। (सं०)
2. रोवर्टी०, तबकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 457-462। (सं०)
3. रोवर्टी०, तबकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 464। (सं०)
4. सवालक = वर्तमान नागोर जिले के क्षेत्र को प्राचीन समय में सवालक कहा जाता था। आज भी इस क्षेत्र को सवालक के नाम से पुकारा जाता है। (सं०)

जबकि पृथ्वीराज चौहान राज्य करता था, भाव ब्रह्म मुनि ने एक मठ बनवाया।

पहली और दूसरी प्रशस्तियों को मिलाने से अनुमान होता है कि पृथ्वीराज ने सं० 1226 विक्रमी के फाल्गुन कृष्ण 3 और चैत्र अमावस्या के मध्य[1] राज्यगद्दी पाई होगी। परन्तु सम्वत् का आरम्भ यदि चैत्र शुक्ल पक्ष को छोड़कर किसी दूसरे महीने से मानने की परम्परा रही हो, जैसा कि अभी तक कहीं-कहीं प्रचलित है, तो सम्वत् 1226 विक्रमी फाल्गुन कृष्ण 3 और उसके सिंहासनारूढ़ होने के बीच में अधिक समय व्यतीत हुआ होगा। क्योंकि तब दूसरे सम्वत् का प्रारम्भ कई महीनों बाद हुआ होगा।

यह एक साधारण नियम है कि, इतिहास समयानुसार बनते हैं। जिनमें बढ़ावा या झूठ भी होता है। परन्तु विशेषकर सच्चा विवरण लिखा जाता है और सम्वत् मिती में कदापि अन्तर नहीं होता। यदि होता भी है तो "पृथ्वीराज रासौ" के समान ग्रन्थों में, जो कि पूर्व के ग्रन्थकर्ताओं के नाम से जाली बना लिये जाते हैं। जैसा कि इस समय में भी धर्माधिकारी लोग प्राचीन समय का हवाला देने के लिये नई कितावें रच कर पुरानी पुस्तकों के नाम से प्रसिद्ध कर, उन्हें पुराण बना देते हैं। यदि पृथ्वीराज के कवि चंद बरदाई ने पृथ्वीराज रासौ बनाया होता, तो वह इतनी बड़ी, 90 वर्ष की भूल नहीं करता और जान बूझ कर अशुद्ध सम्वत् लिखने से उसको कुछ लाभ नहीं होता।

बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के सन् 1873 ई० के जर्नल के पृष्ठ 317 पर कनौज के राजा जयचंद के ताम्रपत्रों का उल्लेख है। जिनका सम्वत् 1233–1243 वि० (सन् 1176–1186 ई०) है। वहां पर यह लिखा है कि, सम्वत् 1249 (1193 ई०) में मुसलमानों ने इस राजा को लड़ाई में हराया।

जयचंद की बेटी संयोगिता के साथ पृथ्वीराज ने विवाह किया था और शहाबुद्दीन गौरी ने दिल्ली लेने के बाद इसी जयचंद को कन्नौज में हराया था, जैसा कि "तबकात-इ-नासिरी" में लिखा है।

---

1. फरवरी 5 से मार्च 19, 1170 ई०। (सं०)

तो पृथ्वीराज के समय में भी कुछ भी शंका नहीं रही, क्योंकि वह भी उन्हीं का समकालीन था।

किताबों का प्रमाण देने के पश्चात् अब मैं, पाषाण लेख अर्थात् प्रशस्तियों, जो मेदपाट (मेवाड़) देश में पाई गई हैं और थोड़े से बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के पत्रों में प्रकाशित ताम्रपत्रों से प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ।

1. एक प्रशस्ति मेवाड़ में, राजधानी (उदयपुर) से प्राय: 50 कोस पर बीजोलिया ग्राम के समीप महुआ के वृक्ष के नीचे एक चट्टान पर श्रीपार्श्वनाथजी के कुण्ड से उत्तर में कोट के निकट उपलब्ध है। इस चट्टान की अधिक से अधिक लम्बाई 12 फीट 9 इंच और कम से कम 8 फीट 6 इंच और चौड़ाई 3 फीट 8 इंच है। इस प्रशस्ति में लिखा है कि पृथ्वीराज के पिता राजा सोमेश्वर देव ने रेवणा ग्राम स्वयं भू पार्श्वनाथ को भेंट किया। यह प्रशस्ति फाल्गुन कृष्ण 3, सम्वत् 1226 वि०[1] में एक महाजन ने खुदवाई। इस प्रशस्ति में चौहानों की वंशावली सोमेश्वर देव के नाम पर पूरी हो गई है। इससे पता चलता है कि, उसका पुत्र पृथ्वीराज प्रशस्ति की तिथि तक राजगद्दी पर नहीं बैठा था। अतः स्पष्ट है कि, विक्रमी 1158 में पृथ्वीराज कदापि नहीं हो सकता। पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि, वह उस सम्वत् में मारा गया, जो बिलकुल अशुद्ध है।

2. दूसरी प्रशस्ति मेवाड़ के मेनालगढ़ में, एक महल के उत्तरी फाटक के ऊपर वाले स्तम्भ पर मिली है।[2] इसमें वर्णन है कि विक्रमी 1226 में

---

1. गुरुवार, फरवरी 5, सन् 1170 ई०। (सं०)
2. प्रशस्ति का पाठ—
ओउम नमः शिवाय ॥ मालवेशगतवत्सरैः शतैर्द्वादशैश्च षड्विंशपूर्वकैः। कारितं मठमनुत्तमं कलौ भावब्रह्ममुनिनामुनाह्ययं ॥ तस्मात्सत्यमय सुभाषितमयः कंदर्प्पशोभामयः शश्वद्धर्म्ममयः कुलाकुलमयः कल्याण-मालामयः। धर्मज्ञं च सकल्मषं कृतधियं श्रीचाहमानान्वयं सांप्रत्क्ष्माधिपसुन्दरोवनिपतिः श्री पृथ्विराजोभवत् ॥ तस्मै धर्म्म-वरिष्ठस्य पृथ्वीराजस्य धीमतः। पुण्ये कुर्वति वै राज्यं निष्पन्नं मठमुत्तमं ॥ —शेष संग्रह से। (सं०)

के बाद की वंशावली कुछ-कुछ शुद्ध मालूम होती है।

जब "पृथ्वीराज रासौ" लिखा जाकर उसको कवि चंद का बनाया हुआ प्रसिद्ध किया गया, तब भाट और बड़वों ने पृथ्वीराज के स्वर्गवास का सम्वत् विक्रम के 12 वें शतक में मान कर अपनी राजपूताना की सब पुस्तकों में वही लिख दिया। जैसे रासौ में चित्तौड़ के रावल समरसी का विवाह पृथ्वीराज की बहिन पृथा के साथ होना लिखने के कारण रावल समरसी के गद्दी पर बैठने का सम्वत् 1106 और लड़ाई में 13,000 सवारों के साथ सम्वत् 1158 श्रावण शुक्ल 3[1] के दिन पृथ्वीराज के साथ मारा जाना लिख दिया। विचार करना चाहिये कि, उन बड़वा भाटों ने रावल समरसिंह का सम्वत् 1158 वि० में मारा जाना लिख कर उसी की पुष्टि करने के लिये अपनी पुस्तकों में रावल समरसिंह से लेकर राणा मोकल के देहान्त तक नीचे लिखे हुए सब राजाओं के (शासनकाल के) सम्वत् अनुमान से लिख दिये—

1. रावल समरसिंह
2. रावल रत्नसिंह
3. रावल कर्णसिंह
4. राणा राहप्प
5. राणा नरपति
6. दिनकरण
7. यशकरण
8. नागपाल
9. पूर्णपाल
10. पृथ्वीपाल
11. भुवानसिंह
12. भीमसिंह
13. जयसिंह
14. लक्ष्मणसिंह
15. अरिसिंह
16. अजयसिंह
17. हमीरसिंह
18. क्षेत्रसिंह
19. लक्षसिंह
20. मोकल

राजपूताना के लोगों ने इन नामों के सम्वतों पर, जैसा बड़वा भाटों ने लिखा था, उस पर विश्वास कर अपनी किताबों में भी वैसा ही लिख दिया। अब देखिये, कैसे आश्चर्य की बात है कि, रावल समरसी का पृथ्वी-राज की बहिन के साथ विवाह करना पृथ्वीराज रासौ में लिखा है, जो कदापि संभव नहीं हो सकता। क्योंकि राजा पृथ्वीराज रावल समरसी से 100 वर्ष पहले हुआ था।

---

1. सोमवार, जुलाई 1, सन् 1101 ई०। (सं०)

कर्नल टॉड ने अपनी टॉडनामा राजस्थान (एनल्स एण्ड एण्टीक्युटीज ऑफ राजस्थान) नामक पुस्तक में सं० 1249 विक्रमी में शहाबुद्दीन से पृथ्वीराज की लड़ाई होना लिखा है। परन्तु उसने पृथ्वीराज रासो में लिखे हुए सम्वत् 1158 के अशुद्ध होने का कारण कुछ भी नहीं लिखा। अर्थात् उसको अशुद्ध ठहराने के लिये कोई प्रमाण या तर्क नहीं दिया है। फिर उसने रावल समरसी के प्रपौत्र राणा राहप का विक्रम के 13वें शतक में होना लिखा है, जो वास्तव में 14वें शतक के चौथे भाग से हुआ था। हम कर्नल टॉड पर कुछ दोष नहीं लगा सकते। क्योंकि "पृथ्वीराज रासो" से राजपूताना के इतिहासों में सम्वतों की बहुतसी भूलें हो गई हैं। तथा उस समय दूसरा वृतान्त लिखना उसके लिये बहुत ही कठिन बल्कि असम्भव था, जबकि इतिहास की सामग्री बड़ी कठिनता से प्राप्त होती थी। अगर उसका दोष इस विषय में है तो केवल इतना ही है कि, उसने अपनी पुस्तक के पूर्वापर की ओर दृष्टि नहीं दी। उसके वर्णन से बहुतेरे ग्रन्थकर्ताओं ने गलती की। जैसे फार्बस ने अपनी "रासमाला" में, प्रिन्सेप ने अपनी "एण्टीक्युटीज" पुस्तक की दूसरी जिल्द में और डॉक्टर हंटर ने अपने "इम्पीरियल गजेटियर" की नवीं जिल्द, पृष्ठ 166 में (सन् 1881 ई० में लंदन में प्रकाशित) लिखा है कि, ईसवी 1201 ई० (1257-58 वि०) में राहप राणा चित्तौड़ के राजा थे, लेकिन यह गलत है। क्योंकि विक्रमी 1324 (सन् 1267 ई०) के पहले तो रावल समरसी का भी कोई चिन्ह नहीं मिलता जैसा कि इस लेख की अगली प्रशस्ति से प्रमाणित होगा।

पृथ्वीराज रासो से जो-जो भूलें इतिहासों में हुई उनका थोड़ा-सा वृतान्त यहां लिखा जाता है -

पहले समय में इतिहास लिखने की परम्परा मुसलमान लोगों में थी। यह परम्परा हिन्दुओं में नहीं थी, यदि कुछ रही भी तो केवल इतनी ही कि, कवि लोग बढ़ा-चढ़ाकर काव्य की रचना करते थे और बड़वा लोग वंशावली के साथ थोड़ा-थोड़ा इतिहास का विवरण अपनी पोथियों में लिख लिया करते थे। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये कि इन लोगों की पोथियों में सम्वत् 1400 विक्रमी से पहले की जो वंशावलियां पाई जाती हैं वे सब अशुद्ध और अनुमान के आधार पर बनाई गई हैं। सम्वत 1400 से 1600 विक्रमी के मध्य की वंशावलियों में कई गलतियां मिलती हैं। निस्संदेह 1600 विक्रमी

नदी के तीर पर पृथ्वी का एक टुकड़ा किसी को भेंट किया था।

बड़े खेद का विषय है कि, इस प्रशस्ति के प्रारम्भ का भाग खंडित है और बीच-बीच में भी कई जगह अक्षर टूट गये हैं। सम्वत् के चार अंकों में भी दहाई का अंक खंडित हो गया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, यह प्रशस्ति रावल समरसिंह के समय की है और सम्वत् में शतक का अंक 13 और इकाई के स्थान पर 2 का अंक स्पष्ट है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि, यह प्रशस्ति सम्वत् 1332 विक्रमी की होगी। क्योंकि रावल समरसिंह के पिता रावल तेजसिंह की सम्वत् 1324 विक्रमी की प्रशस्ति से यह बहुत कुछ मिलती है। अतः यह सम्भव है कि, एक ही मनुष्य ने दोनों प्रशस्तियों को लिखा हो। इस बात से सम्वत् 1342 विक्रमी होना लगभग असम्भव ही है।

5. पांचवी प्रशस्ति चित्तौड़गढ़ के महल के चौक में मिट्टी में गड़ी हुई मिली है। इसका सम्वत् 1335 विक्रमी वैशाख शुक्ल 5, गुरुवार (4 जिल-हिज्ज, 676 हि०=28 अप्रैल, 1278 ई०) है। यह रावल समरसी के समय में लिखी गई है। जिन्होंने अपनी माता जयतलदेवी, रावल तेजसिंह की रानी के बनवाये हुए श्री श्याम पार्श्वनाथ के मन्दिर को भूमि भेंट की थी।

6. छठी प्रशस्ति आबू पर अचलेश्वर महादेव के मन्दिर के पास मठ में एक पत्थर पर पाई गई। जिसकी लम्बाई 3 फुट 2 इंच और चौड़ाई 3 फुट है। इसका सम्वत् 1342 विक्रमी (हि० 684=ई० 1285) है। इसका उद्देश्य यह हैं कि, रावल समरसिंह ने मठ का जीर्णोद्धार अर्थात् मरम्मत कराई और उसके लिये स्वर्ण का ध्वजस्तम्भ बनवाया।

7. सातवीं प्रशस्ति चित्रकोट (चित्तौड़) पर चित्रंग मोरी के बनवाये हुए जलाशय में एक मन्दिर के भीतर सम्वत् 1344 विक्रमी, वैशाख शुक्ल 3 (गुरुवार, 2 रबीयुल अव्वल 686 हि०=अप्रैल 17, 1287 ई०) की है। इसमें उत्कीर्ण है कि, जब रावल समरसिंह चित्तौड़ में राज्य करते थे, तब वैद्यनाथ महादेव के लिये भूमि भेंट की गई। यह प्रशस्ति मुझको एक सफेद पाषाण के स्तम्भ पर, जो सुरह का स्तम्भ है और जिसमें महादेव की एक मूर्ति बनी है, चित्तौड़ के पूर्वी फाटक "सूर्य पौल" के मार्ग में तीसरे दरवाजे

3. चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले के पास बहने वाली गम्भीरी नदी पर एक पत्थर का पुल बना हुआ है। वह महाराणा लक्ष्मणसिंह के पुत्र अरिसिंह का बनवाया हुआ माना जाता है। यद्यपि मैंने किसी फारसी इतिहास में लिखा हुआ नहीं देखा, परन्तु कोई-कोई मुसलमान लेखक उसको अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र खिज्रखां का बनवाया हुआ भी कहते हैं। चाहे उस पुल को किसी ने बनवाया हो ? हमको इससे कोई विवाद नहीं। परन्तु यह तो निश्चित् है कि, वह विक्रम के 14वें शतक समाप्त होते-होते बनवाया गया था। उसकी बनावट से जान पड़ता है कि, उसे किसी मुसलमान ने बनवाया होगा। उस पुल में पानी के नौ निकास हैं। तथा पूर्व से पश्चिम की ओर के आठवें दरवाजे में एक पाषाण है, जिस पर एक प्रशस्ति है। यह तीसरी प्रशस्ति सम्वत् 1324 विक्रमी (665 हि० = 1267 ई०) की है। इसमें रावल समरसी के पिता रावल तेजसिंह का नाम लिखा है। मालूम ऐसा होता है कि, यह प्रशस्ति पहले किसी मन्दिर में लगी हुई थी। किन्तु पुल बनने के समय प्रशस्ति का यह पत्थर वहां से निकाल कर पुल में लगा दिया गया। अर्थात् पुल बनाने के लिये सामग्री उस मन्दिर से लाई गई होगी। इस प्रशस्ति के अक्षर इतने गहरे खुदे हुए हैं कि, कई सौ वर्ष तक पानी की टक्करें लगने से भी नहीं बिगड़े। इसमें दो पंक्तियां आज भी प्राप्य हैं, जिनकी नकल शेष संग्रह में लिखी गई है।[1]

4. चौथी प्रशस्ति उसी पुल के नौ कोठे में है। जिसका सम्वत् 13-2 ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी है। इस प्रशस्ति में उत्कीर्ण है कि, रावल समरसिंह ने अपनी माता जयतलदेवी के मंगल हेतु लाखोटा बारी के नीचे

---

1. प्रशस्ति का पाठ—(शेष संग्रह से)

ॐ ॥ सम्वत् 1324 वर्षे इह श्रीचित्रकूटमहादुर्गतलहट्टिकायां पवित्रश्री चैत्रगणव्योमांगणतरणिस्वप्नपितामहप्रभुश्रीहेमप्रभसूरिनिवेशितस्य सुविहितशिरोमणिसिद्धान्तसिन्धुभट्टारकश्रीपद्मचसूरिप्रतिष्ठितस्यास्य देवश्रीमहावीरचैतस्य प्रतिभासमुद्रकविकुंजरपिपृतुल्यातुल्यातुल्यवात्स- ल्यपूज्यश्रीरत्नप्रभसूरिणामादेशात् राजभगवन्नारायणमहाराज श्री तेजः सिंहदेवकल्याणविजयि राजा विजयमानप्रधानराजराजपुत्रकांगापुत्रपर- नारी साहो...................। (सं०)

चहिन के साथ समरसिंह का विवाह होना, जैसा कि रासो में लिखा है, सम्भव नहीं। यदि यह विचार किया जाये कि चित्तौड़ पर समरसिंह नाम का कोई दूसरा राजा हुआ हो, तो यह सन्देह मेवाड़ के राजाओं की नीचे लिखी हुई वंशावली को देखने से मिट जावेगा।

क.	महाराणाओं के नाम	जन्म सम्वत्	राज्याभिषेक सम्वत्	मृत्यु सम्वत्	विवरण
1	2	3	4	5	6
1.	गुहिल	0	0	0	इसका विवरण ऊपर लिख दिया गया है।
2.	भोज	0	0	0	
3.	महेन्द्र	—	—	—	
4.	नाग	—	—	—	
5.	शील	—	—	—	
6.	अपराजित	—	—	—	कुण्डा ग्राम की प्रशस्ति से पता चलता है कि, यह राजा 718 में राज्य करता था।
7.	महेन्द्र (वाप्पा)	—	—	—	इसका विवरण ऊपर लिख दिया है।
8.	काल भोज	—	—	—	
9.	खुमाण	—	—	—	
10.	भर्तृ भट्ट	—	—	—	
11.	सिंह	—	—	—	
12.	अल्लट	—	—	—	राजधानी उदयपुर के दिल्ली दरवाजे के बाहर शारणेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति से विक्रमी 1010 में इसका

में मिली, जिसको मैंने राजधानी उदयपुर मंगवा लिया और जो अब विक्टोरिया हाल में रखी हुई है।

इन प्रशस्तियों से सिद्ध होता है कि, रावल समरसिंह के पिता रावल तेजसिंह सम्वत् 1324 विक्रमी (हि॰ 665=सन् 1267 ई॰) में और रावल समरसिंह विक्रमी 1330 से लेकर 1344 (हि॰ 671--686=ई॰ 1273-1287 ई॰) तक चित्तौड़ और मेवाड़ का राज्य करते रहे थे।[1] इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि, रावल समरसिंह का राज्यकाल सं॰ 1324 विक्रमी (हि॰ 665=1267 ई॰) के पहले किसी भी तरह नहीं हो सकता। परन्तु सम्वत् 1344 विक्रमी (हि॰ 686=1287 ई॰) के वाद 2 या 4 वर्ष राज्य किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इसलिये सं॰ 1158 विक्रमी (हि॰ 494=सन् 1101 ई॰) में पृथ्वीराज के साथ रावल समरसिंह का मारा जाना, जो "पृथ्वीराज रासौ" में लिखा है, किसी तरह से ठीक नहीं हो सकता।

सम्वत् 1249 वि॰ (हि॰ 588=सन् 1192 ई॰) में भी, जिस वर्ष में कि, पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गौरी की लड़ाई हुई, रावल समरसिंह का होना संभव नहीं है। इससे स्पष्ट है कि, यदि पृथ्वीराज की वहिन का विवाह चित्तौड़ के किसी राजा के साथ हुआ हो तो वह कोई दूसरा राजा होगा, समरसिंह नहीं। क्योंकि पृथ्वीराज[2] सं॰ 1249 विक्रमी (हि॰ 588=ई॰ 1192) में मारा गया और रावल समरसिंह की प्रशस्तियां सं॰ 1330 वि॰ (हि॰ 671=1273 ई॰) से लेकर सं॰ 1344 वि॰ (हि॰ 686=सन् 1287 ई॰) तक की मिलती है। अर्थात् समरसिंह का राज्य पृथ्वीराज के मारे जाने से लगभग 80 वर्ष वाद पाया जाता है। जिससे पृथ्वीराज की

---

1. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने सं. 1358 वि. के चित्तौड़ के शिलालेख के आधार पर रावल समरसी का राज्यकाल 1330-1358 वि॰ (सन् 1302 ई॰) तक माना है। —ओझा, उदयपुर॰, भाग 1, पृ॰ 178-179। (सं॰)
2. चौहान पृथ्वीराज द्वितीय (पृथ्वीभट) की वहिन का विवाह रावल सामन्तसी (समतसी) से होना सम्भव है। —ओझा, उदयपुर॰, भाग 1, पृ॰ 153–154। (सं॰)

1	2	3	4	5	6
17.	नर वर्म्मा	—	—	—	
18.	कीर्तिवर्म्मा	—	—	—	
19.	वैरट	—	—	—	राणकपुर की प्रशस्ति में कीर्ति वर्म्मा के बाद योगराज लिखा है, किन्तु उसी के निकट समय की आबू की प्रशस्ति में नहीं है, इससे यहां नहीं लिखा गया।
20.	वैरीसिंह	—	—	—	राणकपुर की प्रशस्ति में वैरट के बाद वंश-पाल लिखा है, जो आबू की प्रशस्ति में न होने से यहां लिखा नहीं गया।
21.	विजयसिंह	—	—	—	राणकपुर की प्रशस्ति में वैरीसिंह के बाद वीरसिंह लिखाहै और रसिया की छत्री में विजयसिंह लिखा है।
22.	अरिसिंह	—	—	—	
23.	चौंडसिंह	—	—	—	
24.	विक्रमसिंह	—	—	—	
25.	क्षेमसिंह	—	—	—	
26.	सामन्तसिंह	—	—	—	
27.	कुमारसिंह	—	—	—	
28.	मंथनसिंह	—	—	—	
29.	पद्मसिंह	—	—	—	

1	2	3	4	5	6
					राज्य करना पाया जाता है।
13.	नरवाहन	—	—	—	
14.	शालिवाहन	—	—	—	यह नाम आबू व राणकपुर की प्रशस्तियों में नहीं है। परन्तु उसी के निकट समय की ऐतपुर की प्रशस्ति के अनुसार लिखा गया है।
15.	शक्तिकुमार	—	—	—	ऐतपुर की प्रशस्ति के आधार पर सं. 1034 वि० में इसका राज्य करना पाया जाता है।
16.	शुचिवर्म्मा	—	—	—	रसिया की छत्री की प्रशस्ति में शक्ति कुमार का पुत्र आम्रपसाव लिखा है, लेकिन उदयपुर से 1 मील की दूरी पर सूरज पोल के बाहर हरसिद्धि के मन्दिर की सीढ़ियों पर की प्रशस्ति में जो उसी समय की हैं, शक्तिकुमार के बाद शुचिवर्म्मा लिखा है, इसलिए वह नाम यहां नहीं लिखा गया।

1	2	3	4	5	6
40.	पूर्णपाल	—	—	—	
41.	पृथ्वीपाल	—	—	—	
42.	भुवनसिंह	—	—	—	राणकपुर की प्रशस्ति में यह नाम समरसिंह के वाद में लिखा है।
43.	भीमसिंह	—	—	—	यह नाम राणकपुर की प्रशस्ति में नहीं है।
44.	जयसिंह	—	—	—	इस नाम से लेकर कुम्भकर्ण तक सब पीढ़ियां राणकपुर की प्रशस्ति के क्रम से लिखी गई हैं।
45.	लक्ष्मणसिंह	—	—	—	
46.	अजयसिंह	—	—	—	
47.	अरिसिंह	—	—	—	
48.	हम्मीरसिंह	—	—	1421	
49.	क्षेत्रसिंह	—	1421	1439	
50.	लक्षसिंह	—	1439	1454	
51.	मोकल	—	1454	1490	
52.	कुम्भकर्ण	—	1490	1525	
3.	उदयकर्ण	—	1525	—	इसने अपने वाप को मारा, जिससे पांच वर्ष वाद इसके भाई रायमल्ल ने इसको गद्दी से हटा करके निकाल दिया।
4.	रायमल्ल	—	1530	1565	
5.	संग्रामसिंह	1538	1565	1584	

1	2	3	4	5	5
30.	जैतसिंह	—	—	—	एकलिंगेश्वर में एक समाधि के लेख से विक्रमी 1270 में इसका राज्य करना सिद्ध होता है।
31.	तेजसिंह	—	—	—	चित्तौड़ में गम्भीरी नदी के पुल पर जो प्रशस्ति है, उससे पाया गया कि स० 1324 वि० में तेजसिंह राज्य करते थे।
32.	समरसिंह	—	—	—	सं. 1330 से 1344 विक्रमी तक इसका राज्य करना कई प्रशस्तियों से सिद्ध हुआ है।
33.	रतनसिंह	—	—	—	सं. 1359 विक्रमी में अल्लाउद्दीन खिलजी के साथ इसकी लड़ाई हुई। यह नाम राणकपुर की प्रशस्ति में नहीं है।
34.	कर्णसिंह	—	—	—	यह नाम राणकपुर की प्रशस्ति में नहीं है।
35.	राहप्प	—	—	—	
36.	नरपति	—	—	—	
37.	दिनकरण	—	—	—	
38.	जशकरण	—	—	—	
39.	नागपाल	—	—	—	

ऊपर लिखी हुई इस वंशावली की पुष्टी करने वाली अनेक प्रश-स्तियां हैं —

1. एकलिंगेश्वर से पश्चिम में कुण्डा ग्राम में सं. 718 वि. में उत्कीर्ण की हुई अपराजित के राज्यकाल की।

2. उदयपुर के दिल्ली दरवाजे के बाहर शारणेश्वर महादेव के मन्दिर में सम्वत् 1010 विक्रमी में उत्कीर्ण की हुई अल्लट के राज्यकाल की।

3. उदयपुर से 1 मील पूर्व की तरफ हरसिद्धि देवी के मन्दिर की सीढ़ियों पर।[1]

4. सम्वत् 1034 विक्रमी की ऐतपुर की प्रशस्ति, जो कर्नल टॉड को मिली।

5. सम्वत् 1270 विक्रमी की एकलिंगेश्वर में रावल जैतसिंह के समय की।

6. सम्वत् 1324 विक्रमी की चित्तौड़ में गम्भीरी नदी के पुल में रावल तेजसिंह के समय की।

7. चित्तौड़गढ़ में महासती के उत्तरी दरवाजे के निकट प्रसिद्ध रसिया की छत्री में सम्वत् 1331 वि० की रावल समरसिंह के समय की।

8. सम्वत् 1342 वि० की आबू अचलगढ़ के मठ में रावल समरसिंह के समय की।

9. गोडवाड़ में राणकपुर के जैन मन्दिर में सम्वत् 1496 विक्रमी की महाराणा कुम्भकर्ण के समय की।

10. कुम्भलगढ़ में मामादेव के ऊपर सम्वत् 1517 विक्रमी की महाराणा कुम्भकर्ण के समय की।

---

1. यह प्रशस्ति अपूर्ण मिली है, इसलिये इसका सम्वत् नहीं लिखा गया।

1	2	3	4	5	6
56.	रत्नसिंह	—	1584	1588	
57.	विक्रमादित्य	1574	1588	1592	
58.	उदयसिंह	1579	1594	1628	विक्रमादित्य का देहांत होने के बाद बनवीर का उपद्रव खड़ा हो जाने के कारण यह महाराणा दो वर्ष बाद गद्दी पर बैठा।
59.	प्रतापसिंह	1596	1628	1653	
60.	अमरसिंह	1616	1653	1676	
61.	कर्णसिंह	1640	1676	1684	
62.	जगतसिंह	1664	1684	1709	
63.	राजसिंह	1686	1709	1737	
64.	जयसिंह	1710	1737	1755	
65.	अमरसिंह	1729	1755	1767	
66.	संग्रामसिंह	1747	1767	1790	
67.	जगतसिंह	1766	1790	1808	
68.	प्रतापसिंह	1781	1808	1810	
69.	राजसिंह	1800	1810	1817	
70.	अरिसिंह	—	1817	1829	
71.	हमीरसिंह	1818	1829	1834	
72.	भीमसिंह	1824	1834	1885	
73.	जवानसिंह	1857	1885	1895	
74.	सरदारसिंह	1855	1895	1899	
75.	स्वरूपसिंह	1871	1899	1918	
76.	शम्भुसिंह	1904	1918	1931	
77.	सज्जनसिंह	1916	1931	1941	
78.	फतहसिंह	1906	1941	—	

विक्रमी (हि० 440 = सन् 1049 ई०) में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा और सम्वत् 1158 विक्रमी (हि० 494 = सन् 1101 ई०) में शहाबुद्दीन गौरी से लड़कर पृथ्वीराज के साथ मारा गया। इस बात से रावल समरसिंह के ठीक समय से प्राय: 186 वर्ष पहले उसका विद्यमान होना पाया जाता है। तथा राजपूताना के बड़वा भाटों ने "पृथ्वीराज रासौ" को सच्चा मान कर ऐसा ही लिख दिया। जिससे आगे की वंशावलियों (कुर्सीनामों) में भी गलती हुई, अर्थात् रावल समरसिंह और राणा मोकल के मध्य का समय दो सौ वर्ष अधिक हो गया। भाटों ने गलती के इन वर्षों को समरसिंह और मोकल के बीच के राजाओं के समय में विभाजित कर वंशावलियों में अनुमान से साल सम्वत् लिख दिये।

2. इसी तरह जोधपुर के लोगों ने भी कन्नौज वाले राजा जयचंद राठौड़ के गद्दी पर बैठने का सम्वत् 1132 विक्रमी (हि० 467 = सन् 1075 ई०) लिख दिया। क्योंकि पृथ्वीराज ने जयचंद की बेटी संयोगिता के साथ विवाह किया था। इस प्रकार गलती के एक सौ वर्ष को राजा जयचन्द से लेकर मण्डोवर के राव चूंडा के देहान्त तक जो राजा हुए उनके समय में बांट दिया। सम्वत् 1132 वि० में राजा जयचंद का गद्दी पर बैठना किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता। क्योंकि बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल (जिल्द 33, नम्बर 3, पृ० 232, सन् 1864 ई०) में कन्नौज के राठौड़ों का एक नक्शा मेजर जनरल कनिंघम ने इस तरह लिखा है—

नाम	ईसवी सन्	विक्रम सम्वत्
चंद्रदेव	1050	1107
मदनपाल	1080	1137
गोविन्दचन्द्र	1115	1172
विजयचन्द्र	1165	1222
जयचन्द्र	1175	1232

इस नक्शे से पता चलता है कि "पृथ्वीराज रासौ" के आधार पर जोधपुर के लोगों ने जो सम्वत् जयचंद्र के सिंहासन पर बैठने का लिखा है, उस सम्वत् से वह 100 वर्ष बाद हुआ। पुन: उक्त सोसाइटी के सन् 1858 ई० के जर्नल नम्बर 3, के पृष्ठ 217-220 पर फिट्ज एडवर्ड हॉल के नीचे लिखे हुए ताम्रपत्रों की नकलें छापी हैं—

11. सम्वत् 1545 विक्रमी की एकलिंगेश्वर के दक्षिण द्वार वाली प्रशस्ति।

अनेक प्रशस्तियों और कई एक ग्रन्थों की सहायता से हमने महाराणा हमीरसिंह से पहले की वंशावली को सही किया है। तथा महाराणा हमीर-सिंह से वर्तमान समय तक की वंशावली के नामों में बिल्कुल सन्देह नहीं है। हमने ऊपर लिखी हुई प्रशस्तियों में भी समकालीन अथवा समीप कालीन प्रशस्तियों को मुख्य और अन्य को गौण माना है। पहले हमको ऐतपुर की प्रशस्ति से वंशावली लिखनी चाहिये, क्योंकि वह गुहिल से पन्द्रह पीढ़ी बाद लिखी गई है और कुण्डा, शारणेश्वर और हरसिद्धि की प्रशस्तियां उसकी पुष्टी करती है। उसके बाद रमिया की छत्री तथा आबू अचलगढ़ की प्रशस्तियों को मानना चाहिये। तथा इनके पश्चात् राणकपुर के जैन मन्दिर की प्रशस्ति मानने के योग्य है।

ऊपर लिखी हुई वंशावली में चित्तौड़ पर राज्य करने वाले केवल एक ही महाराणा समरसिंह हुए हैं। रासौ में भी यही लिखा है कि, समरसिंह रावल तेजसिंह के पुत्र थे और उसके ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह और कनिष्ठ पुत्र कुम्भकर्ण थे। तो तेजसिंह के पुत्र और रतनसिंह के पिता यही रावल समर-सिंह हुआ जिसका नाम "पृथ्वीराज रासौ" में भूल से बारहवें शतक में लिख दिया गया है।

सं० 1359 वि० (हिजरी 701 = सन् 1302 ई०) में दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने बड़े खून-खराबे के बाद चित्तौड़ का किला लिया था, जबकि समरसिंह का पुत्र रतनसिंह वहां का राजा था। इस बात से "पृथ्वीराज रासौ" का यह लिखना कि, रावल समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन के साथ विवाह किया और वह पृथ्वीराज के समय सम्वत् 1158 विक्रमी (हि० 494 = सन् 1101 ई०) में मारा गया, कभी सच या सम्भव नहीं हो सकता। क्योंकि यदि ऐसा हुआ होता तो रावल समरसिंह का पुत्र रतनसिह सम्वत् 1359 (हि० 701 = ई० 1302) में अर्थात् अपने पिता के देहान्त के 201 वर्ष बाद अलाउद्दीन से किस तरह लड़ाई करता?

1. "पृथ्वीराज रासौ" के लेख से मेवाड़ के इतिहास में साल सम्वत् की बड़ी गलती हुई। क्योंकि रासौ में लिखा है कि, रावल समरसिंह 1106

पृथ्वीराज रासौ की पुस्तकों में मिलता है, वही डेढ़ अथवा दो सौ वर्ष पहले की लिखी हुई पुरानी पुस्तकों में भी पाया जाता है।

चौथा, सम्वत् केवल एक दो स्थानों पर ही नहीं लिखा गया है कि, लेखक[1] का दोष मान लिया जावे। किन्तु वे कई स्थानों पर लिखे गये हैं।

पृथ्वीराज की जन्मपत्री, जो रासौ में लिखी है, उसका सम्वत् मिती, महीना, ग्रह, घटी और मुहूर्त ये सब दोहे और छन्दों में लिखे हैं। उस जन्मपत्री को काशी के विद्वान ज्योतिषी पण्डित नारायण देव शास्त्री ने, जो महाराणा के यहां नौकर है, गणित से देखा तो पता चला कि वह उस समय की बनी हुई नहीं है। जन्मपत्री का गणित प्रश्नोत्तर के रूप में नीचे लिखे अनुसार है—

प्रश्न – सम्वत् 1115 वैशाख कृष्ण 3, गुरुवार[2] चित्रा नक्षत्र, सिद्धि योग सूर्योदय में ढ़ घड़ी बाकी रहते जन्म हुआ। पृथ्वीराज नाम होने से चित्रा का पूर्वार्द्ध कन्या राशि है। पंचम् स्थान में चन्द्रमा और मंगल है, एवं कन्या राशि पचम् है अर्थात् वृष लग्न में जन्म है। आठवें में शनि, दसवें में गुरु, शुक्र और बुध, एकादश में राहु और द्वादश में सूर्य। यह ग्रह व्यवस्था सब सही है या गलत ? गणित सहित इसका उत्तर कहो।

उत्तर—श्री सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सम्वत् 1115 वैशाख कृष्ण 3, रविवार को होती है।[3] कलियुगादि अहर्गण 15,19,100 स्पष्ट सूर्य 11/21/24/49½, स्पष्ट चन्द्र 6/16/27/17, नक्षत्र स्वाति और योग वज्र होता है। यदि सूर्योदय के पहले जन्म है, तो लग्न से द्वादश सूर्य किसी तरह नहीं हो सकता। तथा वृष लग्न में द्वादश सूर्य उस हालत में होगा

---

1. यहां प्रतिलिपिकार से अर्थ है। (सं०)
2. इण्डियन एफीमरीज के अनुसार इस दिन गुरुवार नहीं होता है। रविवार, मार्च 15, 1058 ई०। (सं०)
3. सम्वत् 1115, शके 980, वैशाख कृष्ण 3, कलिगताब्दा: 4159, अधिमासा 1533, ऊनाहा: 24147 अहर्गण 1519100, सप्ततष्टे-वार, 2, शुक्रवारात् गणिते जातो रविवार एवं वैशाख कृष्ण 3 रविवासरेऽस्तीति सिद्धं।

सं० 1154 (=1098 ई०) का मदनपाल देव का ताम्रपत्र, पृ० 221 नं० 10।

सं० 1182 (=1126 ई०) का गोविन्दचन्द्र का दानपत्र, पृ० 243 नं० 20।

इन ताम्रपत्रों के सम्वतों को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि, इन राजाओं का राज्य काल भी सं० 1132 विक्रमी के बाद ही हुआ, जो सम्वत् जयचंद के गद्दी पर बैठने के लिये लिखा गया। लेकिन राजा जयचंद तो मदनपाल और गोविन्दचन्द्र के भी बहुत समय बाद हुआ है।

3. वैसे ही आम्बेर (जयपुर) के बड़वा भाटों ने भी प्रजून कछवाहा (जिसका नाम पृथ्वीराज रासौ में पृथ्वीराज के शूरवीरों में लिखा है) के लिये सिंहासन पर बैठने का सम्वत् 1127 विक्रमी (हि० 462=सन् 1070 ई०) और उसके देहान्त का सम्वत् 1151 विक्रमी (हि० 487=सन् 1094 ई०) लिख दिया। ये सम्वत् भी किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकते। यद्यपि मुझको प्रजून के गद्दी पर बैठने का सम्वत् ठीक प्रमाण के साथ नहीं मिला है, फिर भी वह पृथ्वीराज के सरदारों में से था। इसलिये उसका समय भी सम्वत् 1249 विक्रमी (हि० 588=सन् 1192 ई०) के लगभग होना चाहिये, जो पृथ्वीराज के मारे जाने का सही सम्वत् है।

4. इसी प्रकार बूंदी, सिरोही और जैसलमेर इत्यादि राज्यों के इतिहासों में भी "पृथ्वीराज रासौ" के लेख के अनुसार अशुद्ध सम्वत् लिखे गये हैं। इस तथ्य से इतिहास लिखने वालों के प्रयोजन में बड़ा अवरोध उत्पन्न हुआ।

यदि कोई यह कहे कि पृथ्वीराज रासौ के लेखक ने 1200 की जगह भूल से 1100 लिख दिया तो उसका उत्तर यह है—

प्रथम, कविता में ऐसा होने से छन्द टूटता है।

दूसरा, "रासौ" में जो 11 के लिये "शिव" और "हर" शब्द लिखे गये हैं, ये ज्योतिष के शब्द हैं। इनका अर्थ 12 कभी नहीं हो सकता।

तीसरा, वही वर्ष अर्थात् 1100 जो वर्तमान में प्रतिलिपि की हुई

वाद का सिद्ध होता है। तो इस हालत में उसका विवाह राजा पृथ्वीराज की बहिन के साथ होना बिल्कुल गलत है। इसके अतिरिक्त आबू के राजा सलख परमार की वेटी और जैत परमार की वहन इच्छनी के साथ पृथ्वीराज का विवाह होना "रासौ" में लिखा है, वह भी गलत है। क्योंकि आबू के पाषाण लेख और ताम्रपत्रों से परमार राजाओं की वंशावली में सलख और जैत नाम का कोई राजा नहीं लिखा है। फिर उज्जैन के राजा भीमदेव परमार की पुत्री इन्द्रावती के साथ पृथ्वीराज का विवाह होना रासौ में गलत लिखा है। क्योंकि उज्जैन के परमार राजाओं की वंशावली से भीमदेव नामक किसी राजा का होना नहीं पाया जाता है। वल्कि उस समय से बहुत पहले परमार राजाओं ने उज्जैन छोड़ कर धारा नगरी में अपनी राजधानी स्थापित करली थी।

तीसरे, राजा पृथ्वीराज की लड़ाईयों का हाल सुनिये कि गुजरात के सोलंखी राजा भीमदेव के साथ पृथ्वीराज की जो लड़ाईयां "रासौ" में लिखी हैं, वहाँ पर लिखा है कि अन्त में जव पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर देव, भीमदेव से लड़कर मारा गया, तो पृथ्वीराज ने लड़ाई में भीमदेव को मार कर अपने पिता का वदला लिया। यद्यपि पृथ्वीराज रासौ में इन युद्धों का वर्णन सविस्तार लिखा गया है, लेकिन भीमदेव का ताम्रपत्र, जो उसने सम्वत् 1256 में भूमिदान के समय लिखवाया था और जिसमें उसका वंश-वृक्ष भी लिखा है, वह पृथ्वीराज रासौ के भीमवध पर्व के लेख से 114 वर्ष वाद और पृथ्वीराज के मारे जाने के वास्तविक सम्वत् 1249 वि० (हि० 588 = सन् 1192 ई०) से 7 वर्ष वाद का है। इससे सिद्ध होता है कि, पृथ्वीराज के मरणोपरान्त सात वर्ष तक भीमदेव जीवित रहा। तो क्या वह मरने के वाद दूसरी वार जीवित होकर गुजरात का राज्य करता रहा था? इसी तरह रावल समरसिंह के साथ करेड़ा ग्राम में भीमदेव की लड़ाई होना और उस अवसर पर मदद के लिये वहां पर पृथ्वीराज का आ पहुँचना लिखा है, वह भी विल्कुल गलत है। क्योंकि रावल समरसिंह भीमदेव के समय से वहुत वाद में अलाउद्दीन खिलजी के समय में चित्तौड़ पर राज्य करता था, जवकि गुजरात से सोलंखियों का राज्य नष्ट हो चुका था। ऐसे ही लिखा है कि, पृथ्वीराज ने शहावुद्दीन गौरी को कई वार गिरफ्तार किया, लेकिन इतिहास ग्रन्थों को देखने से यह भी गलत मालूम होता है।

जबकि वह मेष का होगा। यहां तो मीन का है। अब भौमादिक ग्रह स्थिति पर विचार करना कुछ आवश्यक नहीं। इतने से ही निश्चित् होता है कि, प्रश्न में लिखित वार आदि, तथा लग्न, चन्द्र और सूर्य स्थिति असंगत है।

ऐसे ही पृथ्वीराज रासो में शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की अन्तिम लड़ाई, जिसमें पृथ्वीराज मारा गया, का सम्वत् 1158 लिखा है। तथा तिथि श्रावण वदि 30, कर्क संक्रांति, रोहणी नक्षत्र, चन्द्रमा वृष राशि का लिखा है। यदि चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर हो तो सूर्य की वृष राषि होती है और नियम से अमावस्या के सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि पर होते हैं। कर्क राशि पर सूर्य का होना तो शुद्ध मालूम होता है, परन्तु वृष का चन्द्रमा, जो पृथ्वीराज रासो में लिखा है, वह नहीं हो सकता। यहां कर्क का चन्द्रमा होना चाहिये। इससे पता चलता है कि, ग्रन्थकर्ता ज्योतिष नहीं पढ़ा था। इसलिये उक्त भूल पर ध्यान नहीं दिया। यह भी स्पष्ट है कि, वह राजा सोमेश्वर देव अथवा पृथ्वीराज चौहान का कवि नहीं था। क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह पृथ्वीराज की जन्म तिथि, मुहूर्त और लग्न अवश्य ठीक-ठीक जानता। चंदबरदाई नाम के कवि का होना भी पृथ्वीराज रासो से ही जाना जाता है।

हमारा उद्देश्य वादानुवाद बढ़ाने के विचार से इन तर्कों को लिखने का नहीं है। वरन् केवल इस उद्देश्य से कि उक्त ग्रन्थ के लेख से जो कमी इतिहास में आ गई है, वह दूर की जावे। यदि कोई कहे कि पृथ्वीराज रासो में कुछ हिस्सा पृथ्वीराज के समय में चन्द का बनाया हुआ होगा, जिसमें क्षेपक मिलाकर लोगों ने बढ़ा दिया है। तो यह भी सही नहीं हो सकता। क्योंकि ग्रन्थकर्ता कवि लोग अपने ग्रन्थों में नीचे लिखी हुई बातें लिखना मुख्य मानते हैं: पहले वंश वर्णन, दूसरे विवाहादि सम्बन्ध, तीसरे लड़ाईयां और चौथे जन्म व मृत्यु का हाल।

प्रथम, इस ग्रन्थ में पृथ्वीराज के पूर्वजों का वंश वृक्ष ही अशुद्ध है। यह तथ्य महाराजा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर देव के समय की लिखी हुई बीजोलिया की प्रशस्ति से पाठक लोगों को अच्छी तरह मालूम हो सकता है।

दूसरे, विवाहादि सम्बन्ध का यह हाल है कि पत्थर की प्रशस्तियों से चित्तौड़ के रावल समरसिंह का समय पृथ्वीराज रासो के लेख से दो सौ वर्ष

मुहम्मद का बेटा गयासुद्दीन महमूद शासक बना। लेकिन थोड़े दिनों बाद शहाबुद्दीन के दूसरे गुलाम ताजुद्दीन यलदुज ने किर्मान[1] से आकर गजनी आदि पर अधिकार कर लिया। तथा वह लाहौर पर चढ़ा, तब कुतुबुद्दीन से पराजित होकर किर्मान को चला गया। कुतुबुद्दीन 40 रोज तक गजनी का शासक रहा, फिर उसको निकाल कर ताजुद्दीन शासक हो गया।

अब देखना चाहिये कि पृथ्वीराज रासौ के लेख और फारसी के इतिहास ग्रन्थों के वर्णन में कितना अन्तर है। जब ऊपर लिखी हुई मुख्य-मुख्य बातें गलत हो चुकी, तो पृथ्वीराज रासौ में वह कौनसा वर्णन है, जिसको हम पुराना मान कर उसे चंद का बनाया हुआ स्वीकार करें। हमारे विचार से जिस तरह मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावती का ख्याली किस्सा बना लिया, उसी तरह पृथ्वीराज रासौ भी किसी ने कल्पना के आधार पर ही बना लिया है। क्योंकि इसमें थोड़े से सही नामों के साथ मनगढन्त नाम और मनगढन्त घटनाओं को सम्मिलित कर लिया है। जिस तरह हंसावती के विवाह पर्व में लिखा है कि, राजा पृथ्वीराज का तोता उड़कर समन्दशिखर के राजा की बेटी के पास चला गया और उस पक्षी ने पृथ्वीराज की प्रशंसा की। जिसको सुनकर हंसावती पृथ्वीराज पर मोहित हो गई। उस राजकुमारी का भेजा हुआ वही तोता पृथ्वीराज के पास आया और उस राजकन्या की प्रशंसा कर राजा को मोहित कर लिया। उसी तोते के साथ फौज सहित चढ़ाई करके पृथ्वीराज हंसावती को ब्याह लाया। इसी तरह एक हंस के कहने-सुनने से देवगिरी के राजा की बेटी पद्मावती के साथ पृथ्वीराज का विवाह हुआ और ऐसे ही एक तोते के परस्पर संदेश पहुँचाने से कन्नौज के राजा जयचंद की बेटी संयोगिता और पृथ्वीराज में परस्पर प्रीति उत्पन्न हुई थी। भला ऐसी कल्पित बातों की पुस्तक ऐतिहासिक काव्यों में किस तरह मान्य की जा सकती है?

पृथ्वीराज रासौ में शहाबुद्दीन गौरी को सिकन्दर जलाल का बेटा लिखा है। लेकिन उसका वर्णन फारसी के इतिहास ग्रन्थों में इस प्रकार है—"महमूद गजनवी और उसके बेटे मसऊद के इलाकेदार सरदारों में, गौर जिले का रहने वाला हुसैनगौरी फिरोजकोह का मालिक था। जिसके बेटे

---

1. किर्मान=ईरान के एक शहर का नाम। (सं०)

चौथे, पृथ्वीराज के जन्म और मृत्यु का वर्णन भी मानने योग्य नहीं हैं। जिनमें से उसके जन्म का विवरण तो ऊपर लिखा जा चुका है। अब मौत का हाल भी सुनिये— पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि, शहाबुद्दीन गौरी उस (पृथ्वीराज) को गिरफ्तार करके गजनी ले गया। छः महीने बाद चन्द भाट भी वहां पहुंचा। चन्द ने बादशाह से कहा कि, राजा तीर से पीतल के घड़ियाल को फोड़ डालता है। बादशाह ने परीक्षा के रूप में राजा को ऐसा करने की आज्ञा दे दी। यद्यपि बादशाह ने राजा को अन्धा कर दिया था, तथापि उस (पृथ्वीराज) ने परीक्षा के समय आवाज के सहारे से शहाबुद्दीन को मार डाला और चन्द भाट सहित आप भी आत्मघात करके वहीं मर गया। इसके बाद दिल्ली में पथ्वीराज का बेटा रेणसी गद्दी पर बैठा। जिसने पंजाब का प्रदेश मुसलमानों से वापस लेना चाहा। उस समय शहाबुद्दीन का बेटा विनयशाह चढ़ाई करके आया। रेणसी उससे लड़ कर मारा गया और दिल्ली में मुसलमानों की बादशाहत हो गई।

उक्त ग्रन्थ की ये सब बातें बिल्कुल बनावटी मालूम होती हैं। क्योंकि प्रथम तो शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद चौदह वर्ष तक जीवित रहा और उक्त राजा को मार कर देश को नष्ट करता हुआ अजमेर तक आया। तथा उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। फिर दूसरे साल शहाबुद्दीन ने आकर कन्नौज को विजित किया, इसी तरह उसने कई बार हिन्दुस्तान और तुर्किस्तान आदि प्रदेशों पर हमला किया, जिनका वर्णन फारसी की पुस्तकों में लिखा गया है। अन्त में वह हिजरी 602 (1263 वि०=1206 ई०) में गजनी के पास दमयक गांव के कक्खड़ों[1] के हाथ से मारा गया।[2] उसके एक बेटी के अतिरिक्त कोई भी सन्तान नहीं थी। जिससे उसका गुलाम, कुतुबुद्दीन ऐबक हिन्दुस्तान का बादशाह बन गया और गजनी आदि प्रदेशों पर उसके भाई गयासुद्दीन

---

1. कक्खड़ों=गख्खड़ों, कबीला विशेष। (सं०)
2. सिन्धु नदी के तट पर रोहतक स्थान पर 2 शाबान, 602 हि० = मार्च 12, 1206 ई० के दिन मारा गया था। राबर्टी, तबकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 484-485, ब्रिग्ज, फरिश्ता (अं० अ०), भाग 1, पृ० 185-186। (सं०)

सरदारों के नाम लिखते हैं, जो ऊपर लिखे गये काल्पनिक नामों से बिल्कुल नहीं मिलते —

बादशाह के काजी

1. काजी ममालिक—सद्र ए शहीद निजामुद्दीन अबूबक्र ।
2. काजी लश्कर व वकील ममालिक—शमसुद्दीन बलखी ।

बादशाह के कुटुम्बी और सरदार—

मलिक जियाउद्दीन । (मुहम्मद दुर्र-इ-गौर)
सुलतान बहाउद्दीन साम ।
सुलतान गयासुद्दीन महमूद ।
मलिक बद्रुद्दीन कैदान ।
मलिक कुतुबुद्दीन तिमरानी ।
मलिक ताजुद्दीन हरब ।
मलिक ताजुद्दीन मकरान ।
मलिक अलाउद्दीन ।
मलिक शाह बक्श ।
मलिक नासिरुद्दीन गाजी ।
मलिक ताजुद्दीन जंगी बामियान ।
मलिक नासिरुद्दीन मादीन ।
मलिक मसऊद ।
मुय्यदुद्दीन मसऊद ।
मलिक यूसुफुद्दीन मसऊद ।
मलिक नासिरुद्दीन तिमरान ।
मलिक हुसामुद्दीन अली किर्मान (कर्माख) ।
मलिक मुय्यदलमुल्क किर्मान ।
मलिक शहाबुद्दीन मादीनी ।
सुलतान ताजुद्दीन यल्दुज ।
सुलतान गयासुद्दीन ।
सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक ।
मलिक रुकनुद्दीन सूर कैदान ।
अमीर हाजिब हुसैन मुहम्मदअली गाजी ।

अलाउद्दीन गोरी, सामगौरी व सैफूद्दीन गौरी आदि थे। अलाउद्दीन गौरी महमूद के वंशज वहराम शाह गजनवी को निकाल कर स्वयं वहां का शासक वन गया। उसने अपने भाई माम गौरी के बेटे गयासुद्दीन और शाहवुद्दीन को गजनी का प्रदेश दे दिया। अलाउद्दीन के मरने के वाद गयासुद्दीन तो फिरोजकोह का मालिक रहा और उसने अपने छोटे भाई शहावुद्दीन को गजनी का अधिकारी वना दिया।" लेकिन "पृथ्वीराज रासौ" की रचना करने वाला यह इतिहास नहीं जानता था। इसलिये उसने शहावुद्दीन गौरी को एलेग्जेण्डर अर्थात् सिकन्दर का वेटा मान लिया होगा। इसके अतिरिक्त शहावुद्दीन गौरी के सरदारों के जो नाम पृथ्वीराज रासौ में लिखे हैं, वे नाम कल्पित ही हैं। जिनमें से थोड़े से नाम चुन कर उदाहरण के रूप में में नीचे लिखे जाते हैं—

खुरासान खां	काइम खां	पीरन खां
मूसन खां	तोसन खां	जलू खां
दादू खां	देगन खां	मीरन खां
सालम खां	गजनी खां	हाजी खां
सकत खां	आलम खां	विराहम खां
हीरन खां	ममरेज खां	नवरोज खां
ताजन खां	जलाल खां	सुरेम खां
हासन खां	राजन खां	कोजक खां
फीरोज खां	जोसन खां	मोहब्बत खां
अली खां	ततार खां	मिरजा खां
ऊमर खां	सोसन खां	दोसन खां
रेसन खां	मुस्तफा खां	महदी खां
जलेव खां	सहदी खां	समोसन खां
गालिव खां	एलची खां	सेरन खां
मीर खां	लालन खां	एरन खां
गाजी खां	नगनी खां	

तथा शहावुद्दीन के काजी का नाम "मदन" लिखा है।

अब हम वतकात्-इ-नासिरी"[1] से शहावुद्दीन के सम्वन्धियों और

---

1. रावर्टी, तवकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 489–491। (सं०)

शम्सुल्मुल्क अब्दुल जव्वार कैदानी ।

मुय्यदुल्मुल्क मुहम्मद अब्दुल्ला संजरी ।

पृथ्वीराज रासौ के कल्पित नामों से तवकात-इ-नासिरी में लिखे हुए असली नाम नहीं मिलते। ये कल्पित नाम भी अनभिज्ञ व्यक्ति ने वनाये हैं। जिनको सुनते ही विश्वास हो जाता है कि, ये सव नाम वनावटी हैं।

इन वातों के अतिरिक्त पृथ्वीराज रासौ की वड़ी लड़ाई के पत्र 333 पर लिखा है जव रावल समरसिंह पृथ्वीराज की मदद के लिये दिल्ली जाने लगा तो उस समय उसने अपने वड़े पुत्र रतनसिंह को चित्तौड़ का राज्य देकर वहुत कुछ शिक्षा दी और छोटे पुत्र कुम्भकर्ण को कुछ भी नहीं कहा। जिससे वह नाराज होकर "वहशी वादशाह" के पास चला गया। तव वादशाह ने उसको वीदर नगर जागीर में दिया। "वहशी वादशाह" से ग्रन्थकर्ता का प्रयोजन वहमनी वादशाह से था, क्योंकि वीदर शहर दक्षिण में है। इससे पता चलता है कि, ग्रन्थकर्ता इतिहास से भी अनभिज्ञ था। इसी कारण से उसने ऐसी गलत वात गढ़ ली। क्योंकि सन् 748 हिजरी (सं. 1404 वि. = सन् 1347 ई.) में अलाउद्दीन गांगू वहमनी ने दिल्ली के वादशाह मुहम्मद तुगलक के समय दक्षिण में अपनी राजधानी की नींव डाली थी। जवकि पृथ्वीराज रासौ वनाने वाला वहमनी सल्तनत को शहावुद्दीन गौरी से भी पुरानी मानता है।

जव रावल समरसिंह पृथ्वीराज की मदद के लिए दिल्ली पहुंचा, उस समय चंद भाट ने समरसिंह की प्रशंसा में नीचे लिखे हुए पद कहे हैं—

दख्खनि साहि भजन अलग्ग,

चंदेरी लिद्ध किय नाम जग्ग।

इन शव्दों से ग्रन्थकर्ता का प्रयोजन मांडू के वादशाह से है, क्योंकि तव चंदेरी उन्हीं के अधिकार में थी। तथा मांडू राजपूताना से दक्षिण की तरफ है। मांडू के वादशाह महमूद द्वितीय से महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) ने चंदेरी को लिया था। ग्रन्थकर्ता यह भी नहीं जानता था कि, मांडू की वादशाहत की नींव दिलाकर गौरी ने सन् 809 हिजरी (सं० 1463 वि. =

अमीर हाजिब हुसैन मुहम्मद हब्शी।
अमीर सुलैमान शीश, अमीर दाद।
अमीर हाजिब हुसैन सर्जी (हुसैन-इ-सुर्ख)।
अमीर हाजिब खां।
मलिक हसनद्दीन अली किर्मान (इ-कर्माख)।
मलिक जहीरुद्दीन फतह किर्मान (कर्माख)।
मलिक हुसैनुद्दीन (हुसामुद्दीन)।
मलिक इज्जुद्दीन खर्मिल (खर्मिल का पुत्र)।
मलिक जहीरुद्दीन किर्मान (मुहम्मद-इ-किर्माख)।
मलिक मुबारिजुद्दीन बिन मुहम्मद अली-इ-अतसर।
मलिक नसीरुद्दीन हुसैन अमीर इ शिकार।
मलिक शमसुद्दी सूर कैदानी।
सुलतान शमसुद्दीन अल्तमिश।
सुलतान अलियुद्दीन महमूद।
सुलतान नासिरुद्दीन कवाचा।
मलिक इख्तियारुद्दीन हर्वली (खरवार)।
मलिक असदुद्दीन शेर (मलिक वजीरी)।
मलिक अहमदी।

इनमें से नीचे लिखे हुए चार सरदार गुलामों ने बादशाह का पद प्राप्त किया—

सुलतान ताजुद्दीन यल्दुज।
सुलतान शमसुद्दीन अल्तमिश।
सुलतान नासिरुद्दीन कवाचा।
सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक।[1]

शाहबुद्दीन गौरी के वजीर (मन्त्री)—

जियाउल्मुल्क दुर मुन्शी।

---

1. रावर्टी, तबकात० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 489 पर शमसुद्दीन अल्तमिश के स्थान पर "गयासुद्दीन इवाज, खल्ज" लिखा है। (सं.)

हि०=सन् 1614 ई०) के पहले यह ग्रन्थ बनाया गया। क्योंकि पृथ्वीराज रासो के दिल्ली प्रस्ताव पर्व में इस तरह लिखा है—

दोहा— सोरे से सत्तोतरे, विक्रम सांक विदीत।
दिल्ली धर चित्तोड़पत, ले खागां बलजीत ॥1॥

ग्रन्थकर्ता ने भविष्यवाणी लिखी है कि, सम्वत् 1677 विक्रमी (सन् 1029 हि०=सन् 1620 ई०) में चित्तौड़ के राजा दिल्ली की धरती फतह कर लेंगे। लेकिन सम्वत् 1671 विक्रमी (1023 हि० = 1614 ई०) में जहांगीर बादशाह और महाराणा अमरसिंह प्रथम के मध्य समझौता हुआ और महाराणा ने राजकुमार कर्णसिंह को बादशाह के पास भेज कर नाम मात्र के लिये उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। उस समय से पहले वैसा लिखना सम्भव था। उसके बाद राजपूताना के लोगों के विचारों में अन्तर आ गया था। जिससे हम विश्वास करते हैं कि, अकबर के राज्यारोहण के कुछ समय बाद और जहांगीर के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में यह ग्रन्थ बनाया गया था। इस विषय को हम बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के सामयिक पत्र (जर्नल नम्बर 1, भाग 1, सन् 1886 ई०) में मुद्रित करा चुके हैं। जिसमें सम्पूर्ण विवरण प्रश्नोत्तर सहित, सविस्तार लिखा गया है।

रावल समरसिंह का इतिहास पृथ्वीराज रासो के अतिरिक्त कहीं नहीं मिलता।[1] बड़वा भाटों और ख्यात की पोथियों में भी इसी कल्पित ग्रन्थ से चुन कर लिखा गया है।

---

1. रावल समरसिंह के राजत्वकाल के निम्नलिखित शिलालेख मिलते हैं—
   1. बिसलवास कलां से प्राप्त वैशाख सुदि 12, 1328 वि० का लेख इसकी छाप श्री नटनागर शोध संस्थान में सुरक्षित,
   2. चीरवे ग्राम का कार्तिक सुदि 1, 1330 वि० 1 विएना ओरिएन्टल जर्नल, जि. 21, पृ. 155-162,
   3. रसिया की छत्री चित्तौड़ से प्राप्त शुक्रवार, आषाढ़ सुदि 3, 1331 वि., का शिलालेख भावनगर इन्स्क्रिपशंस, पृ. 74-77,
   4. चित्तौड़ से प्राप्त गुरुवार, वैशाख सुदि 5, 1335, वि० का शिलालेख,

सन् 1406 ई.) में फिरोजशाह तुगलक के वेटे मुहम्मदशाह के समय में डाली थी। तथा महाराणा संग्रामसिंह से महमूद द्वितीय की लड़ाई सम्वत् 1575 विक्रमी (सन् 924 हि० = 1518 ई०) में हुई थी। इन वातों से सिद्ध हो जाता है कि, यह ग्रन्थ महाराणा सांगा के समय से वहुत समय वाद तैयार किया गया है। ग्रन्थकर्ता लिखता है कि, चंद भाट ने रावल समरसिंह को यह आशीष दी, "कलंकियां राय केदार, पापियां राय प्रयाग, हत्यारा राय वाराणसी, मदवों नराय राजानरी गंग, सुलतान ग्रहण मोखण, सुलतान माण मलण" इत्यादि।

इन शब्दों से अर्थात् "सुलतान को पकड़ कर छोड़ने वाले और सुलतान का मान भंग करने वाले" से स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि, महाराणा सांगा ने मांडू के वादशाह महमूद द्वितीय को पकड़ कर छोड़ा था और गुजरात के वादशाह (शासक) के देश को लूट कर उन्होंने उसका मान भंग किया था। वहमनी वावशाह के पास जो कुम्भकर्ण का जाना लिखा है, उससे यह सिद्ध हो गया कि उस राज्य के स्थापित होने के वहुत समय वाद यह ग्रन्थ वनाया गया। फिर मांडू के वादशाह महमूद खिलजी से चंदेरी लेना और उक्त वादशाह को गिरफ्तार कर वापस छोड़ देना तथा मुजफ्फरशाह गुजराती का मान भंग करना, इत्यादि विवरणों से साफ प्रकट होता है कि, महाराणा संग्रामसिंह प्रथम के समय में सं० 1575 विक्रमी (सन् 924 हि० = 1518 ई०) के वाद यह ग्रन्थ वनाया गया। लेकिन मेरा विचार है कि, उक्त समय से भी वहुत काल वाद ही यह ग्रन्थ वना है। क्योंकि यह वात तो इस ग्रन्थ की चाल-ढाल और शब्दों से अच्छी तरह सिद्ध है कि यह ग्रन्थ राजपूताना के कवि ने वनाया। तथा राजपूताना की कविता में फारसी शब्दों का प्रचार अकवर वादशाह के समय से होने लगा है। क्योंकि उक्त वादशाह के समय में मेवाड़ से महाराज शक्तिसिंह, सगरसिंह, जगमाल और रामपुरा का राव दुर्गभाण आदि, तथा मारवाड़ से राव मालदेव के पुत्र रामसिंह व उदयसिंह आदि, वीकानेर के महाराजा रायसिंह व आम्वेर के महाराजा मानसिंह इत्यादि क्षत्रीय सरदारों के साथ मारवाड़ी कवियों का भी वादशाह के दरवार में आना जाना हुआ। तव से ये लोग फारसी शब्दों को अपनी कविता में शामिल करने लगे। इस समय से पहले की जो मारवाड़ी कविता मिलती है, उसमें फारसी शब्द ही कम देखने में आते हैं। उक्त वादशाह के गद्दी पर वैठने के वाद सम्वत् 1671 विक्रमी (1023

तहखानों में बन्द कर देने से प्राण देना लिखा है। लेकिन हमारे विचार में यह बात नहीं आ सकती। मालूम होता है कि, बड़वा, भाटों ने पृथ्वीराज रासो के लेख को सच्चा मान कर शहाबुद्दीन के 115 वर्ष बाद और पृथ्वीराज रासो के लेख से 201 वर्ष बाद अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ को घेरना समझ कर रतनसिंह के स्थान पर लक्ष्मणसिंह के साथ अलाउद्दीन की लड़ाई होना विचार कर वैसा ही लिख दिया। सं० 1344 विक्रमी की प्रशस्ति से यह तो सिद्ध हो ही चुका कि, उस समय रावल समरसिंह चित्तौड़ पर राज्य करता था और आश्चर्य नहीं कि उसके बाद वह पांच-सात वर्ष फिर भी जीवित रहा हो। उसके पुत्र रावल रतनसिंह के साथ अलाउद्दीन खिलजी की लड़ाई होना, सभी इतिहासों में लिखा है। उनमें यह भी लिखा है कि, पद्मनी के भाई गोरा व बादल ने बादशाह से बड़ी-बड़ी लड़ाईयां लड़ी। रावल रतनसिंह की रानी पद्मिनी हजारों स्त्रियों सहित आग में जल मरी। अलाउद्दीन ने इस किले (चित्तौड़) को जीत कर अपने पुत्र खिज्रखां को सौंप दिया और किले का नाम खिजराबाद रखा, तथा अपने बेटे को वलीअहद (उत्तराधिकारी) बनाने का उत्सव भी इसी किले में किया। अलाउद्दीन खिलजी हिजरी 695 (वि० 1353 = ई० 1296) में अपने चाचा जलालुद्दीन खिलजी को मार कर[1] दिल्ली के तख्त (सिंहासन) पर बैठा। तथा छः महीनों तक घेरा डालने के बाद हिजरी 703 मोहर्रम (भाद्रपद, 1360 वि० = अगस्त, 1303 ई०) में उसने चित्तौड़ का किला जीता और 6 शव्वाल 716 हि०, (पौष शुक्ल 7, 1373 वि० = दिसम्बर 22, 1316 ई०) को वह मर गया।[2] इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो गयी कि अलाउद्दीन खिलजी से रावल समरसिंह के पुत्र रतनसिंह की लड़ाई हुई थी।

तारीख-इ-फरिश्ता में जो यह बात लिखी है कि, चित्तौड़ वालों ने

---

1. यह घटना 17 रमजान, 695 हि० = शुक्रवार, जुलाई 20, 1296 ई० की है। ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं०अ०), भाग 1, पृ० 316-18। (सं०)
2. ब्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं०अ०), जि० 1, पृ० 381। अलाउद्दीन की मृत्यु तिथि के विषय पर इतिहासकारों में गहरा मतभेद है। अमीर खुसरो के आधार पर 6 जनवरी 1315 ई० (7 शव्वाल, 715 हि०) को उसकी मृत्यु होना सिद्ध होता है। खिलजी वंश का इतिहास, पृ० 266। (सं०)

अब हम रावल समरसिंह से लेकर अजयसिंह तक की पीढ़ियों का उल्लेख करते हैं—

1. रावल समरसिंह
2. रावल रतनसिंह
3. रावल कर्णसिंह
4. रावल माहप और उसका भाई महाराणा राहप
5. राणा नरपत
6. राणा दिनकरण
7. राणा जसकरण
8. राणा नागपाल
9. राणा पूर्णपाल
10. राणा पृथ्वीपाल
11. राणा भुवनसिंह
12. राणा भीमसिंह
13. राणा जयसिंह
14. राणा गढ़ लक्ष्मणसिंह
15. राणा अरिसिंह
16. राणा अजयसिंह

इन पीढ़ियों के वर्णन में बड़वा भाटों और ख्यात की पोथियां लिखने वालों ने "पृथ्वीराज रासौ" के गलत सम्वत् का अन्तर फैला कर बहुतसी कल्पित बातें बना ली हैं, जैसे—अलाउद्दीन खिलजी की लड़ाई, जो सं० 1359 विक्रमी (सन् 702 हि० = सन् 1302 ई०) में रावल समरसिंह के पुत्र रतनसिंह के साथ हुई थी, उसको उन्होंने लक्ष्मणसिंह और अरिसिंह के साथ होना लिखा है। इसी लड़ाई में 13 पीढ़ियों का मारा जाना और लक्ष्मणसिंह के भाई रतनसिंह की राणी पद्मनी का अनेक स्त्रियों के साथ

---

5. अचलेश्वर मन्दिर आबू के निकट से प्राप्त मार्गशीर्ष सुदि 1, 1342 वि० का शिलालेख,
6. चित्तौड़ से प्राप्त वैशाख सुदि 3, 1344 वि० का शिलालेख,
7. दरीवा ग्राम की खान के निकट माता के मन्दिर से प्राप्त ज्येष्ठ वदि 10, 1356 वि० का शिलालेख,
8. चित्तौड़ दुर्ग की रामपोल के निकट नीमवाले चबूतरे से प्राप्त माघ सुदि 10, 1358 वि० का शिलालेख,
9. चित्तौड़ गम्भीरी नदी के पुल के 10 वें महराव में लगा खंडित लेख (श्यामलदास ने इस शिलालेख के दहाई अंक, जो टूटा हुआ है, उसको "3" मानकर शिलालेख को 1332 का माना है।) (सं०)

मुहम्मद तुगलक ने चित्तौड़ के दुर्ग में एक मस्जिद बनवाई और उसमें बड़े-बड़े अक्षरों में प्रशस्ति भी खुदवाई थी।[1] मुहम्मद तुगलक ने यह किला सोनगरा मालदेव को इसलिये दिया था कि, राजपूत के अतिरिक्त यह किला किसी दूसरे के अधिकार में रह ही नहीं सकता था। बड़वा, भाटों और ख्यात की पोथियों में वर्णन है कि, लक्ष्मणसिंह ने अलाउद्दीन खिलजी से लड़ाईयां लड़ी. उस समय "तेरह पीढ़ियां" काम आईं। परन्तु उपर्युक्त तर्कों से अलाउद्दीन खिलजी के साथ लक्ष्मणसिंह की लड़ाई होना किसी हालत में ठीक नहीं माना जा सकता। निस्सन्देह मुहम्मद तुगलक के साथ होना सम्भव है। अब रहा तेरह पीढ़ियां काम आने का प्रश्न। जिसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि रावल रतनसिंह से अजयसिंह तक पन्द्रह पीढ़ियां होती हैं, उनमें से शायद दो राजाओं के अलावा तेरह राजा चित्तौड़ के लिये मुसलमानों से लड़कर मारे गये होंगे, जिनको बड़वा भाटों ने एक साथ मारा जाना मान लिया है।

राणकपुर के जैन मन्दिर की प्रशस्ति में रावल समरसिंह के बाद भुवनसिंह का नाम लिखा जाकर जयसिंह, लक्ष्मणसिंह, अरिसिंह तथा अजयसिंह लिखे गये हैं। इससे यह पता चलता है कि, जिनके नाम नहीं लिखे गये, वे रावल समरसिंह के बेटे अथवा पोते होंगे, जो महाराणा के खिताब से गद्दी पर बैठ कर चित्तौड़ लेने के उद्योग में मारे गये, तथा भुवनसिंह

---

1. इस प्रशस्ति का पत्थर खंडित हो जाने से उत्कीर्ण किये गये छः शेअरों (पद्यों) में से तीन के प्रारम्भिक पद नष्ट हो गये। शेष पदों का अनुवाद नीचे लिखा जा रहा है—
"..............; सुलैमान के समान मुल्क, ताज व तख्त और नगीने का स्वामी; आफताब (सूर्य) के समान संसार को प्रकाशित करने वाला, खुदा का साया; समकालीन बादशाहों का विजेता अद्वितीय तुगलक शाह, ...; हुकूमत का तख्त उसकी राय से सुसज्जित रहे; मदार-ए-मुल्क असदुद्दीन अरसलां जव्वाद; उसके कारण इन्साफ और न्याय की नींव मजबूत हुई, ... जमादियुल अव्वल से बुरे दिन गुजर गये, खुदा अपनी कृपा से भलाई को स्वीकार करे; अच्छे कार्य का बदला, एक का हजार बार दे।" (शेष संग्रह से)। (सं०)

वादशाह के अधिकारी को हाथ और गर्दन बांध कर किले से गिरा दिया, जबकि अलाउद्दीन के मरने का जमाना करीब था। यह समय महाराणा भुवनसिंह का है। क्योंकि राणकपुर के जैन मंदिर की प्रशस्ति में उक्त महाराणा को अलाउद्दीन पर विजय प्राप्त करने वाला लिखा है। भुवनसिंह से पहले नौ पीढ़ियां अर्थात् रतनसिंह से पृथ्वीपाल तक नौ राजा चित्तौड़ लेने के प्रयासों में मारे गये थे। जब राहप का बड़ा भाई माहप निराश होकर डूंगरपुर में जा रहा, तो चित्तौड़ लेने के लिये उसका छोटा भाई राहप निरन्तर आक्रमण करता रहा। यहां तक कि, वह अपने शत्रु मंडोवर के मोकल परिहार को गिरफ्तार कर लाया और उसका विरुद छीन कर आप महाराणा कह लाया। ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी बड़े-बड़े बहादुरी के काम करने से वह अपने बाप-दादों के बड़प्पन का अधिकारी बन गया।

कहते हैं कि, कुम्भलमेर के पहाड़ों में सीसोदा ग्राम, राहप ने ही बसाया था। पहले इन महाराणाओं के पुरोहित चोर्ड़सा जाति के ब्राह्मण थे। वे तो माहप के साथ रहे, जिनके वंशज डूंगरपुर में अब तक पुरोहित कहलाते हैं, तथा राहप का सलाहकार एक सरसल् पल्लीवाल ब्राह्मण था, उसको राहप ने अपना पुरोहित बना लिया। उसी के वंशजों में अब तक उदयपुर की पुरोहिताई है।

राहप अरावली के पहाड़ों में रह कर चित्तौड़ लेने के लिये आक्रमण करता रहा। अन्त में वह उन्हीं लड़ाईयों में मारा गया। उसके बाद भुवनसिंह ने चित्तौड़ का किला ले लिया। उसी समय में अलाउद्दीन खिलजी के मर जाने के कारण दिल्ली की तरफ से खोज-खबर नहीं हुई। परन्तु जब कुछ समय बाद हिजरी 725 के रबीउल अव्वल (फाल्गुन, 1381 वि०=फरवरी, 1325 ई०) में मुहम्मद तुगलक दिल्ली का बादशाह बना, तो उसने मेवाड़ के राजाओं के दमन का विचार किया और अपनी सेना चित्तौड़ पर भेजी। मेरे विचार से यह महाराणा लक्ष्मणसिंह का जमाना मालूम होता है, जो बादशाह की सेना के विरुद्ध बड़ी बहादुरी से लड़ कर मारा गया और जिसका बेटा अरिसिंह भी इसी तरह लड़कर काम आया और उसका भाई अजयसिंह घायल होकर अरावली के पहाड़ों में जा रहा जिसका कुछ समय बाद वहीं देहान्त हो गया।

खिलजी के दरबार में रहने की योग्यता प्राप्त करली और वह खिलवत (एकान्त) में बादशाह के सामने राणी पद्मावती के रूप की प्रशंसा करने लगा। बादशाह भी चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का बहाना ढूंढ ही रहा था। उसने रावल रतनसिंह को लिख भेजा कि, राणी पद्मिनी को यहां भेज दो ? यह पढ़ कर रतनसिंह मारे क्रोध के आग का पुतला बन गया और बादशाह को उस पत्र का बहुत ही कठोर जवाब भेजा। जिसको सुनकर अलाउद्दीन बड़ा क्रोधित हुआ। एक तो मजहबी तअस्सुब, (धार्मिक विद्वेष) दूसरे रणथम्भोर व सिवाणा आदि किलों की विजय का अभिमान, तीसरे घर के भेदी रघुनाथ जादूगर का जा मिलना और चौथे दक्षिणी हिन्दुस्तान पर शाही अधिकार होने के मार्ग में चित्तौड़ दुर्ग से रुकावट उत्पन्न होना, आदि कारणों से 1359 विक्रमी (702 हि०=1302 ई०) में बड़ी भारी फौज के साथ दिल्ली से रवाना होकर बादशाह ने किले चित्तौड़ को आ घेरा। रावल रतनसिंह ने भी लड़ाई की खूब तैयारियाँ कर ली थीं। धार्मिक जोश के कारण से इलाकेदारों के अतिरिक्त दूसरे भी हजारों राजपूत इकट्ठे हो गये थे। रावल के आदमी किले से बाहर निकल-निकल कर बादशाही सेना पर हमला करने लगे। जिसमें दोनों ओर से हजारों बहादुर मारे गये। अन्त में बादशाह ने रावल के पास यह संदेश भेजा कि, हमको थोड़े से आदमियों के साथ किले में आने दो, जिससे हमारी बात रह जावे, फिर हम चले जावेंगे। रावल रतनसिंह ने इस बात को स्वीकार कर, दो सौ आदमियों सहित बादशाह को किले में आने दिया। धोखाधड़ी का दाव खेलने के लिये अपनी नाराजगी को छिपा कर बादशाह रतनसिंह की प्रशंसा करने लगा। विदा होते समय जब रतनसिंह उसे पहुँचाने को निकला तो उसका हाथ पकड़ कर प्रेम की बातें करता हुआ उसे कुछ दूरी आगे तक ले चला। रावल उसके धोखे में आकर शत्रुता को भूल गया और किले के दरवाजे से कुछ कदम आगे निकल गया, जहां कि, बादशाह की फौज खड़ी थी। बादशाह ने तुरंत ही रावल को गिरफ्तार कर अपने डेरों में ले आया। किले वालों ने रावल को छुड़ाने की बहुतेरी कोशिश की। लेकिन बादशाह ने उनको यही उत्तर दिया कि पद्मावती को सौंपे बिना रतनसिंह का छुटकारा नहीं होगा। तब सम्पूर्ण राजपूतों ने एकत्रित होकर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राय प्रकट की। लेकिन पद्मावती के भाई गोरा व बादल ने कहा कि, बादशाह ने हमारे साथ दगाबाजी की है। इसलिये हमको भी उसी तरह से अपने स्वामी को निकाल लाना चाहिये। इस बात को सभी ने स्वीकार किया। तब इन दोनों बहादुरों

रतनसिंह का छोटा भाई होगा, जिसने दूसरे राजाओं के नाम छोड़ कर अपने नाम के साथ अपने पिता समरसिंह के नाम की आशीष दिलवाई होगी।[1] इसी तरह भीमसिंह और जयसिंह भी भाई थे और प्राचीन समय से प्रचलित प्रथा के अनुसार जयसिंह ने अपने बड़े भाई भीमसिंह का नाम छोड़कर अपने पिता भुवनसिंह की आशीष दिलाई। इसलिये मेरा विचार है कि, राणकपुर की प्रशस्ति में भी कई राजाओं के नाम इसी तरह छोड़ दिये गये हैं। लेकिन उनके होने में किसी तरह का सन्देह नहीं। कुम्भलमेर की प्रशस्तियों में भी लक्ष्मणसिंह और अरिसिंह का वर्णन लिखा है। ये प्रशस्तियां उक्त राजाओं से 125 वर्ष बाद लिखी गई हैं, लेकिन उनमें अलाउद्दीन खिलजी की लड़ाईयों का कुछ भी विवरण नहीं है। इसलिये हमने इन किंवदन्तियों को छोड़ दिया जो बड़वा भाटों ने मनमाने ढंग से बनाली हैं।

रावल रतनसिंह और अलाउद्दीन खिलजी—निस्सन्देह रावल रतनसिंह और अलाउद्दीन खिलजी की लड़ाई आदि का हाल लिखने के योग्य है। लेकिन उसको फारसी तवारीखों में संक्षिप्त रूप से लिखा है। पद्मावती के सम्बन्ध में कई तरह के किस्से प्रसिद्ध हैं। कई लोगों का मत है कि, रावल रतनसिंह की राणी पद्मनी (पद्मावती) सिंहल द्वीप के राजा की बेटी थी। यह तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि बहुत समय से उक्त टापू के राजा सूर्यवंशी थे और उनके साथ चित्तौड़ के राजा का सम्बन्ध होना सम्भव था। लेकिन मलिक मुहम्मद जायसी आदि लोगों ने इस विषय में कई बड़ी-बड़ी मनगढ़न्त कहानियां बनाली हैं। जिनसे हमको कुछ प्रयोजन नहीं, चाहे वे कैसी ही हों। परन्तु मूल विवरण इस प्रकार है कि. उक्त महाराणी के पीहर का रघुनाथ नामक एक कर्मचारी[2] जो बड़ा जादूगर भी था और रावल रतनसिंह के पास रह कर अनेक "चेटक" (चमत्कार) दिखला कर उसको खुश करता था। एक बार रावल रतनसिंह की अप्रसन्नता के कारण वह देश से निकाल दिया गया। उसने दिल्ली पहुंच कर अपनी जादूगरी के माध्यम से बादशाह अलाउद्दीन

---

1. नवीन राजा के राज्यारोहण उत्सव के समय जब राजा राजगद्दी पर बैठता था, उस समय दरबार में उसके नाम के साथ उसके पूर्वजों के नामों का उल्लेख किया जाकर राजा को आशीर्वाद दिया जाता था। (सं०)
2. इसको मलिक मुहम्मद जायसी ने भाट लिखा है।

अपने बेटे खिज्रखां को किला सौंप कर, वापस लौट गया।

रावल रतनसिंह ने अपने कई भाई, बेटों को यह परामर्श देकर किले मे बाहर निकाल दिया था कि, यदि हम मारे जावें तो तुम मुसलमानों से लड़कर किला वापस लेना। कुछ लोगों का मत है कि, रावल रतनसिंह के दूसरे भाई और कुछ लोग कहते हैं कि, रतनसिंह के बेटे, कर्णसिंह पश्चिमी पहाड़ों में रावल कहलाये।[1]

उस समय में मंडोवर का शासक मोकल परिहार पहले के वैर-भाव के कारण रावल कर्णसिंह के कुटुम्बियों पर हमला करता था। इस कारण से उक्त रावल का बड़ा पुत्र माहप तो आहाड़ में और छोटा राहप, स्वयं द्वारा बसाये हुए सीसोदा ग्राम में रहता था। माहप की उदासीनता को देख कर राहप अपने पिता की आज्ञा से, मोकल परिहार को पकड़ लाया। तब कर्ण-सिंह ने मोकल परिहार की "राणा" पदवी छीन कर राहप को प्रदान की, तथा मोकल को राव की पदवी देकर छोड़ दिया। इसके बाद कर्णसिंह तो चित्तौड़ पर आक्रमण करने की हालत में मारा गया और माहप चित्तौड़ लेने से निराश होकर डूंगरपुर चला गया। कुछ लोग इस विषय में यह कहते हैं कि, माहप ने अपने भाई राणा राहप की सहायता से डूंगरिया भील को मार कर डूंगरपुर लिया था। जिसका वर्णन डूंगरपुर के हाल में लिखा जायेगा।

राणा राहप चित्तौड़ लेने के इरादे पर दृढ़ था। वह कभी सीसोदे, कभी कैलवाड़ा और कभी कैलवे में रहता था। एक दिन शिकार खेलते समय राहप ने एक सूअर पर तीर चलाया। दैवयोग से वह तीर कपिलदेव नामक एक ब्राह्मण को जा लगा, जो उसी जंगल में तपस्या करता था और तीर

— 11 मोहर्रम 703 हि० = सोमवार, अगस्त 26, 1303 ई० के दिन चित्तौड़ पर सुलतान का अधिकार हुआ था। खिलजी वंश का इतिहास, पृ० 99। (सं०)

1. रावल कर्णसिंह, रावल रतनसिंह का पुत्र नहीं था। वह तो रतनसिंह से 8 पीढ़ी पहले हुआ था और उसके पुत्र राहप और माहप सीसोदा के अधिपति थे न कि, चित्तौड़ के। (सं०)

ने वादशाह से कहलाया कि, पद्मिनी इस शर्त पर आपके पास आने को तैयार है कि, पहले वह रतनसिंह से अन्तिम वार मिल लेवें। वादशाह ने कसम खाकर इस वात को स्वीकार किया। इस पर गोरा व वादल ने एक "महाजान" और 800 डोलियों में शस्त्र रख कर हर एक डोली को उठाने के लिये सोलह-सोलह वहादुर राजपूतों को कहारों के भेस में नियुक्त कर दिया तथा थोड़ीसी सेना लेकर आप भी उन डोलियों के साथ हो गये। वादशाह की आज्ञा से ये सव लोग पहले रावल रतनसिंह के पास पहुँचे। जनाना वंदोवस्त देखकर शाही सेवक हट गये। किसी को धोखे का आभास नहीं हुआ, तथा इस हलचल में राजपूत लोगों ने रतनसिंह को घोड़े पर सवार कर वादशाही सेना से वाहर निकाला। जव वह वहादुर सेना से निकल गया, तो वे वनावटी कहार अर्थात् वहादुर राजपूत डोलियों में से अपने-अपने शस्त्र निकाल कर लड़ाई के लिये तैयार हो गये। वादशाह ने भी अपनी दगावाजी से राजपूतों की दगावाजी को वढ़ी हुई देख कर, अफसोस के साथ फौज को लड़ाई का हुक्म दिया। गोरा व वादल दोनों भाई अपने साथी वहादुर राजपूतों सहित मरते-मारते किले में पहुंच गये। कई एक लोग कहते हैं कि, गोरा रास्ते में मारा गया और वादल किले में पहुंचा। कितने ही लोगों का मत है कि, दोनों इस लड़ाई में मारे गये। तात्पर्य यह है कि, इन भला चाहने वाले (स्वामी भक्त) राजपूतों ने अपने स्वामी को वादशाह की कैद से छुड़ा कर किले में पहुंचा दिया। यों पुन: लड़ाई शुरू हो गई। अन्त में मोहर्रम, 703 हिजरी (भाद्रपद, 1360 विक्रमी = अगस्त, 1303 ई०) में अलाउद्दीन ने चारों तरह से किले पर भयंकर आक्रमण किया। इस समय रावल रतनसिंह ने सामान की कमी के कारण लकड़ियों का एक वड़ा ढेर चुन कर राणी पद्मिनी और अपने रणवास की समस्त स्त्रियों तथा राजपूतों की औरतों को लकड़ियों पर वैठा कर आग लगा दी। हजारों औरत व वच्चों के आग में जल मरने से राजपूतों ने जोश में आकर किले के दरवाजे खोल दिये। रावल रतनसिंह कई हजार राजपूतों सहित वड़ी वहादुरी के साथ लड़कर मारा गया। वादशाह ने भी रुष्ट होकर कत्ले आम का हुक्म दे दिया। यों 6 महीना, 7 दिन तक लड़ाई चलती रहने के वाद 3 मोहर्रम, 703 हि० (भाद्रपद शुक्ल 5, 1360 वि० = अगस्त 18, 1303 ई०) को वादशाह ने किला फतह कर लिया।[1] इसके वाद वादशाह

1. यह हाल "अकवरनामा" की दूसरी जिल्द के पृष्ठ 407 में लिखा है।

अध्याय चार

महाराणा हमीरसिंह प्रथम से महाराणा मोकल तक

1. महाराणा हमीरसिंह प्रथम—

यह महाराणा ऊनवा ग्राम निवासी चन्दाणा[1] राजपूतों का भानजा था,[2] जिसका वर्णन इस प्रकार से प्रसिद्ध है—चित्तौड़ के महाराणा लक्ष्मणसिंह[3] के पाटवी पुत्र अरिसिंह एक दिन पश्चिमी पहाड़ों की तरफ कैलवाड़ा के जिले में शिकार को गया था। वहां पर क्या देखता है ? कि, एक नवजवान कुंवारी लड़की अपने बाप के यहां ज्वार के खेत की रखवाली कर रही थी। एक सूअर वलीअहद (युवराज, अरिसिंह) के हाथ से घायल होकर उसके खेत में जा घुसा। पाटवी राजकुमार भी घोड़े सहित उसके पीछे खेत में घुसने लगा। लड़की ने निवेदन किया कि, आप खेत में घोड़ा डालकर ज्वार को न विगाड़ें, मैं सूअर को निकाल देती हूँ। उसने सहज में लाठी से सूअर को निकाल दिया। लड़की की इस हिम्मत और वल को देखकर पाटवी राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कुछ दूर आगे चल कर एक आम के वृक्ष की छाया में जा वैठा। इतने में उसी लड़की ने किसी जानवर

---

1. चन्दाणा राजपूत चौहानों की शाखा में से हैं।
2. नैणसी० (भाग 1, पृ० 15) के अनुसार हमीर की मां का नाम "देवी" था, और वह सोनगरा राजपूत की पुत्री थी। (सं०)
3. लक्ष्मणसिंह सीसोदे का सामन्त था। (सं०)

के लगने से वह वहीं मर गया। राणा राहप को उस ब्राह्मण के मरने का बड़ा पश्चाताप हुआ। उन्होंने उसकी यादगार के लिये कुण्ड आदि कई स्थान वनवाये, जो कैलवाड़ा गांव के समीप कपिल मुनि के नाम से अब तक विद्यमान हैं। राणा की पदवी सर्वप्रथम राहप को मिली और उसने सरसल पलीवाल को अपना पुरोहित वनाया। फिर राहप भी चित्तौड़ लेने के प्रयासों में मुसलमानों से लड़ कर मारा गया। उसके वाद भुवनसिंह ने चित्तौड़ का किला लिया, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है।

भुवनसिंह के वाद महाराणा लक्ष्मणसिंह के समय में दिल्ली के वादशाह मुहम्मद तुगलक की फौज ने चित्तौड़ को आ घेरा। ऐसा पता चलता है कि, यह लड़ाई भी वड़ी भारी हुई। जिसमें महाराणा लक्ष्मणसिंह और उनके पुत्र अरिसिंह आदि वड़ी वीरता के साथ लड़कर मारे गये। लेकिन हमको इस लड़ाई का विस्तृत विवरण इसके अतिरिक्त नहीं मिला कि, अरिसिंह का छोटा भाई अजयसिंह घायल होकर कैलवाड़े की तरफ पहाड़ों में चला गया, जहां वह महाराणा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1] तथा सांडेराव के जती (जैन गुरु) ने उसके घावों का इलाज किया। तव अजयसिंह ने उस जती को कहा कि, हमारे वंशज तुम्हारे वंशजों को पूज्य मानते रहेंगे। इसी कारण से अव तक सांडेराव के महात्माओं का आदर सम्मान मेवाड़ के महाराणा करते हैं। अजयसिंह का शेप विवरण महाराणा हमीरसिंह के वर्णन में लिखा जायेगा।

---

1. रावल कर्णसिंह (रणसिंह) से गुहिलोतों की दो शाखायें--रावल शाखा और राणा शाखा-प्रसिद्ध हुई। रावल शाखा (वड़ी शाखा) में मेवाड़ के शासक और छोटी शाखा वाले सीसोदा के जागीरदार (जो राणा कहलाये) थे। रावल शाखा रतनसिंह के साथ ही समाप्त हो गई। सीसोदा का जागीरदार राणा लखमसी अपने सातों पुत्रों सहित रतनसिंह के समय मारा गया। उसका एक पुत्र अजयसिंह घायल होकर वापस घर पहुँचा और वह सीसोदे का स्वामी वना। उसने अपने वड़े भाई के पुत्र हमीर को अपने पास सीसोदा वुलाया। तत्पश्चात् सीसोदा के जागीरदार राणा लखमसी के पौत्र और अरिसिंह के पुत्र हमीर ने सोनगरा मालदेव के पुत्र जैसा (जयसिंह) से पुनः चित्तौड़ लिया। —ओझा० उदयपुर० भाग 1, पृ० 142-143, 201-202, 204, 213। (सं०)

ने अपने दोनों बेटों को आदेश दिया कि, उसको सजा देवें। लेकिन उनसे कुछ भी बंदोबस्त न हो सका। इस पर महाराणा अपने बेटों पर नाराज हुआ। इसी समय में महाराणा अरिसिंह के पास रहने वाले किसी पुरुष ने ऊनवा गांव में गुप्त वास करते हुए हमीरसिंह को प्रकट कर दिया। तब महाराणा ने ऊनवा से हमीरसिंह को बुलाया। यद्यपि हमीरसिंह इस समय 13-14 वर्ष की उम्र का लड़का था, लेकिन महाराणा ने उसको बड़ा दिलेर, बलशाली और बहादुर देखकर मूंजा को दण्डित करने के लिये आदेश दिया। कहावत है कि, "होनहार बिरवान के, होत चिकने पात", हमीरसिंह को सूचना मिली कि, गोड़वाड़ जिले के सेमारी गांव में किसी जातीय उत्सव पर मूंजा बालेचा आया हुआ है। तब उसी समय हमीरसिंह कैलवाड़ा से निकला और मूंजा को मार कर उसका सिर काट लाया। महाराणा अजयसिंह उस समय अधिक बीमार था। हमीरसिंह की हिम्मत और उसके वीरतापूर्ण कृत्य से बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी तलवार उसे देकर उसके मस्तिष्क पर मूंजा के खून का तिलक[1] किया। तथा कहा कि, हमारा उत्तराधिकारी बनने

1. कर्नल टॉड ने अपनी किताब "टॉडनामा राजस्थान" (एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान) में लिखा है कि, मेवाड़ के महाराणाओं में गद्दीनशीनी के समय खून का टीका लगाने की प्रथा बाप्पा (महेन्द्र) रावल के समय से प्रचलित हुई है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि, जब बाप्पा नागदा से चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ, उस समय दो भील भी उसके साथ हो लिये, जो बचपन से उसके साथ रहते थे और हर जगह और हर स्थिति में बाप्पा के साथी और सहायक रहे। इनमें से एक का नाम बील और दूसरे का नाम देवा था। इन दोनों व्यक्तियों का नाम मौखिक किवदन्तियों व कहानियों में बाप्पा के नाम के साथ अधिकांश प्रसिद्ध हुआ है। बील की संतान में ऊंदरी गांव के भील हैं। जब बाप्पा मोरी वंश के राजा से चित्तौड़ छीन कर स्वयं गद्दी पर बैठा, उस समय बील ने अपने हाथ के अंगूठे से खून निकालकर बाप्पा की पेशानी पर राजतिलक किया था। उसी कारण से ऊंदरी के भील मेवाड़ के महाराणा की गद्दीनशीनी के समय उनके ललाट पर अपने हाथ से राजतिलक करने का दावा करते हैं। देवा के वंश का हाल भी उक्त लेखक ने वहां पर सविस्तार लिखा है।

पर गोफन चलाया । संयोगवश गोफन का पत्थर आम के नीचे खड़े घोड़े को जा लगा और घोड़े का पैर टूट गया । इसके बाद जब वह लड़की अपने घर जाने लगी, तो देखा कि सिर पर दूध की गागर रखे भैंस के दो बच्चों को पकड़े हुए अपने साथ लिए जा रही थी तथा उनकी ताकत को इस तरह रोक रखा था कि दूध की गागर को कुछ भी हानि नहीं पहुंचती थी । इस बात से पाटवी राजकुमार को और भी अधिक आश्चर्य हुआ । तब लड़की से पूछा कि, तू किसकी बेटी है ? उसने जवाब दिया कि, चन्दाणा राजपूत की हूं । राजकुमार ने दिल में सोचा कि, यदि इस लड़की से कोई सन्तान उत्पन्न हो, तो निस्सन्देह बडी बलवान होगी । फिर उसने उस लड़की के बाप को बुलाया और कहा कि, तेरी लड़की की शादी हमारे साथ करदे । राजपूत ने इस बात को कृपा समझ कर बड़ी खुशी के साथ राजकुमार की आज्ञा को स्वीकार किया । तथा पाटवी राजकुमार ने शादी कर उस लड़की को उसी गांव में रखा । क्योंकि उसको अपने पिता की तरफ से इस बात का भय था कि, ग्रामीण राजपूत के यहां शादी क्यों की ? लेकिन शिकार के बहाने से वहां कभी-कभी आ जाया करते थे । वहां पर ईश्वर की कृपा से उस चन्दाणी के एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम हमीरसिंह रखा गया ।

जब मुहम्मद तुगलक की लड़ाई में लक्ष्मणसिंह और अरिसिंह आदि मारे गये,[1] तो उक्त चन्दाणी राणी मुसलमानों के भय से अपने पुत्र हमीर-सिंह को छिपा कर उसके साथ ऊनवा गांव में ग्रामीण लोगों की तरह दिन व्यतीत करने लगी । इसी समय में अजयसिंह चित्तौड़ की लड़ाई में घायल होकर कैलवाड़े में आया और महाराणा के विरुद से प्रसिद्ध हुआ । बड़वा भाटों ने लिखा है कि, महाराणा अजयसिंह के दो बेटे थे. बड़ा सज्जन-सिंह और छोटा क्षेमसिंह । अजयसिंह उस समय चित्तौड़ लेने के विचार में था । परन्तु बीमारी के कारण दिन प्रतिदिन उनका शरीर निर्बल होता जा रहा था । इन्हीं दिनों में गोड़वाड़ जिले में रहने वाला प्रसिद्ध लुटेरा मूंजा नामक बालेचा[2] राजपूत उनको लूटमार आदि से सताने लगा । महाराणा

---

1. लक्ष्मणसिंह और अरिसिंह दोनों चित्तौड़ के पहिले साके के समय अलाउद्दीन खिलजी के विरुद्ध लड़ते हुए ही मारे गये थे । (सं०)
2. उदयपुर के निकट भुवाणां गांव की सीमा में एक छोटे से दमदमे को लोग मूंजा बालेचा का महल बतलाते हैं ।

अजयसिंह ने अपने वास्तविक पुत्र सज्जनसिंह और क्षेमसिंह को कम अक्ल जानकर अरिसिंह के पुत्र हमीरसिंह को ऊनवा गांव से बुलाया और उसे राजतिलक दिया। जिसका वृतान्त विस्तार सहित ऊपर लिखा गया है। गद्दी पर बैठने के समय महाराणा हमीरसिंह की आयु 13 या 14 वर्ष की थी, परन्तु यह गद्दीनशीनी की प्रथा नहीं थी, केवल एक वंश परम्परा की पालना की गई थी।

इस बुद्धिमान राजा ने गद्दी पर बैठते ही अपने मुल्क के सभी मार्ग, घाटे व नाके आदि बंद कर मेवाड़ की प्रजा को वस्ती छोड़ कर पहाड़ों में रहने की आज्ञा दी। यद्यपि ऐसा करने से उन्हीं के मुल्क की बरबादी और नुकसान था, परन्तु हम इस कार्यवाही पर अधिक दोष नहीं लगाते। क्योंकि जब हमारे सामने हमारी पैतृक सम्पति से लाभ उठा कर दुश्मन शक्तिशाली बने और हमारी ही सम्पत्ति से हमारा सामना करने में सफल हों, तो इसमें कौनसी हानि की बात है कि, हम अपनी प्रजा को अपने निकट बुलाकर रक्षा में रखें।

ऊपर लिखी हुई इस आज्ञा का प्रजा के मन पर ऐसा प्रभाव हुआ कि सम्पूर्ण मेवाड़ देश वीरान होकर अपने मालिक की रक्षा में जा बसा। बादशाह ने राव कानड़देव के वंशज राव मालदेव सोनगरा को मेवाड़ सहित चित्तौड़ का किला जागीर में लिख दिया था। लेकिन इस समय सम्पूर्ण मेवाड़ वीरान हो गया, शत्रुओं के अधिकार में केवल एक किला ही आबाद रह गया था। मुल्क की आय समाप्त हो जाने के कारण राव मालदेव खर्च से तंग आकर अपने पैतृक ठिकाने जालौर में चला गया और किले की रक्षा के लिए कुछ फौज छोड़ गया। तो महाराणा हमीरसिंह ने किला लेने के लिये बहुत से वीरतापूर्ण हमले और प्रयत्न किये। लेकिन चित्तौड़ का किला, जो ईश्वर को थोड़े दिनों के लिये फिर दूसरे के अधिकार में रखना मंजूर था, हाथ नहीं आया। इस समयावधि में महाराणा को बहुत से कष्ट उठाने पड़े, यहां तक कि आमदनी के बिना फौज को खाना-पीना तक भी नहीं मिलता। इन कष्टों से सभी लोग तितर-बितर हो गये। केवल थोड़े से शुभचिन्तक लोग जो कि कठिनाई के समय में अपने स्वामी के साथ रहा करते हैं, वे ही महाराणा के पास रह गये।

महाराणा अपनी सफलता की आशा छोड़कर अपने उन्हीं शुभचिन्तक

और चित्तौड़ लेने के योग्य तुम ही हो। तथा हमारे बड़े भाई अरिसिंह की सन्तान होने से हक भी तुम्हारा ही है। अजयसिंह के पुत्र सज्जनसिंह और क्षेमसिंह इस बात से नाराज होकर दक्षिण की तरफ चले गये। कहते हैं कि, उनके वंशजों में सतारा, कोल्हापुर, सावंतवाड़ी, तंजावर और नागपुर के राजा हैं।

महाराणा हमीरसिंह का राजगद्दी पर बैठने का सम्वत् निश्चित करना कठिन है। क्योंकि बड़वा भाटों ने तो इनकी गद्दीनशीनी 1357 विक्रमी (699 हि० = 1300 ई०) में लिखी है। लेकिन यह सम्भव नहीं हो सकता। क्योंकि उक्त सम्वत् के दो वर्ष बाद 1360 विक्रमी (703 हि० = 1302 ई०) में तो बादशाह अलाउद्दीन खिलजी और रावल रतनसिंह की लड़ाई हुई थी और उसके बाद बादशाह मुहम्मद तुगलक ने महाराणा लक्ष्मणसिंह व अरिसिंह आदि से लड़कर चित्तौड़ का किला जीता था। फिर कुछ समय तक महाराणा अजयसिंह भी जीवित रहा तथा मुहम्मद तुगलक रबीउल् अव्वल हिजरी 725 (फाल्गुन, विक्रमी सं० 1381 = फरवरी, सन् 1325) में दिल्ली के तख्त पर बैठा और ता० 21 मोहर्रम, हिजरी 752 (प्रथम वैशाख कृष्ण 7, 1408 विक्रमी = 20 मार्च, 1351 ई०) को वह मर गया। तो इस समयावधि में लक्ष्मणसिंह की लड़ाई और हमीरसिंह का राज्यारोहण होना मानना चाहिए। इस शूरवीर महाराणा ने अपनी तलवार के बल से सीसोदियों के वंश को शत्रुओं के हमलों से बचाया, जो उस समय लगभग नष्ट प्राय: हो चुका था और आज दिन पूरी उन्नति पर है।

जिस समय मुहम्मद तुगलक ने हमला कर चित्तौड़ का पराभव किया, उस समय वंश रक्षा के लिए महाराणा लक्ष्मणसिंह के एक पुत्र अजयसिंह को चित्तौड़ से बाहर निकाल दिया गया था और वह कैलवाड़ा के पहाड़ों में आकर रहने लग गया था।[1] यह स्थान पेचीदा घाटियों और विकट रास्तों व झाड़ियों के कारण बड़ा सुरक्षित था।

---

1. यह विवरण सही नहीं है। वस्तुत. सीसोदे का सामन्त राणा लक्ष्मणसिंह रावल रतनसिंह के समय अलाउद्दीन खिलजी के विरुद्ध लड़ता हुआ अपने सात पुत्रों सहित मारा गया था, तथा उसका पुत्र अजयसिंह घायल होकर अपनी जागीर का अधिकारी बना। (सं०)

इसीलिये उसी समय राव मालदेव सोनगरा के मुसाहिबों (मन्त्रियों, सलाहकारों) ने राव से कहा कि, आपकी लड़की बड़ी हो गई है। यदि आज्ञा हो तो हम एक राजनीति काम में लाने की निवेदन करें। इस पर राव ने आज्ञा दी। उन लोगों ने कहा कि, आपको बादशाह ने जो मेवाड़ का प्रदेश दिया है, वह केवल नाम के लिए ही है। क्योंकि जब तक महाराणा हमीरसिंह और उसके वंश वाले बने रहेंगे, तब तक आपको उस प्रदेश से एक कौड़ी का भी लाभ नहीं होगा। ऐसी स्थिति में व्यर्थ ही खर्च से बरबाद होकर केवल किले की रखवाली करना अपनी बहादुरी को बट्टा लगाना है। यदि हमारी सलाह स्वीकार हो, तो आप की लड़की की शादी महाराणा हमीरसिंह के साथ करके उसको बिल्कुल वीरान, कम उपजाऊ और विकट पहाड़ी वाला पश्चिमी मेवाड़ी जिले का हिस्सा गुजारे के लिये दे दिया जाय। जिससे वह भी सन्तोष करलें और शेष आबाद-प्रदेश अपने अधिकार में रहे, जिससे लाभ प्राप्त हो सके। मालदेव को यह बात पसन्द आई और मेहता जूहड़ व पुरोहित जयपाल को टीके का बहुतसा सामान देकर कैलवाड़ा भेजा। इन लोगों ने अरावली पहाड़ों में पहुँच कर महाराणा से मालदेव का संदेशा कहा और बहुत कुछ नम्रता और समझाने वाले ढंग से निवेदन किया कि, आपके बापदादों को मुसलमानों ने मारा है, राव मालदेव ने नहीं मारा। निस्संदेह आपका प्रदेश राव के अधिकार में रहा है। अतः अब वह अपनी लड़की और कुछ जमीन आपको देते हैं। अब आपको इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। इस पर महाराणा ने पहले तो ऊपरी दिल से इन्कार किया, लेकिन फिर बिरवड़ी के वचनों को याद कर इसे स्वीकार कर लिया। तथा प्रथा के अनुसार नारियल झेले गये (सगाई स्वीकार की)।

मेहता जूहड़ और पुरोहित जयपाल ने महाराणा से कहा कि, आप हमारे साथ ही जालौर चल कर शादी करें। महाराणा ने बारू बारहट के लाये हुए घोड़ों पर सवार होकर जालौर की तरफ प्रस्थान किया। वहां पहुँचने के बाद प्रथा के अनुसार शादी हुई। राव मालदेव ने समझौते के अनुसार नीचे लिखे हुए आठ पहाड़ी जिले महाराणा को दहेज में दिये—1. मगरा, 2. सेरानला, 3. गिरवा, 4. गोडवाड़, 5. वाराठ, 6. श्यालपट्टी, 7. मेरवाड़ा और 8. घाटे का चोखला।

जब दुलहन को लेकर जनवासे में आये तो महाराणी सोनगरी, जो

आदमियों सहित द्वारिकापुरी की तरफ रवाना हुआ। वह गुजरात इलाके के खोड़ गांव में जाकर ठहरा। यह ग्राम चारणों की जागीर में था। वहां पर चखड़ा चारण की वेटी को, जिसका नाम विरवड़ी था, वड़ी सिद्धि वाली होना सुना। उसको वहां के सभी लोग देवी का अवतार कहते थे। लेकिन हमको इससे कुछ प्रयोजन नहीं, चाहे कुछ भी रहा हो। जब उसके चमत्कार-पूर्ण विवरण महाराणा के कान तक पहुँचे तो वह स्वयं उसके दर्शनों को गया। कई पुस्तकों में धार्मिक रूप से वड़ी-वड़ी वातें लिखी हैं, लेकिन हमको तवारीखी हाल (ऐतिहासिक विवरण) लिखना है, इसलिये वे चमत्कारी वर्णन छोड़ दिये गये। जब विरवड़ी ने महाराणा को इस कष्ट की स्थिति में वहुत चिन्ताग्रस्त देखा तो कहा कि, "ऐ वीर! तुम वापस कैलवाड़ा लौट जाओ, तुमको चित्तौड़ मिलेगा। यदि तुम्हारी कोई सगाई आवे, तो इन्कार मत करना। वही सम्वन्ध तुमको तुम्हारा राज्य वापस दिलवाने का माध्यम सिद्ध होगा।" महाराणा ने कहा कि,"वाई हम चित्तौड़ को किस प्रकार से ले सकेंगे, क्योंकि हमारे पास न तो चढ़ने के लिये घोड़े हैं और न लड़ने को सिपाही तथा न ही खाने को खर्च।" विरवड़ी ने कहा कि, वीर! मेरा लड़का वारू, घोड़ों का कारवान (काफला) लेकर तुम्हारे पास कैलवाड़े आवेगा। तुम उससे घोड़े लेकर अपना काम करना। घोड़ों की कीमत की कोई चिन्ता नहीं, तुम्हारे पास हो तव दे देना। विरवड़ी के इन चमत्कारपूर्ण वचनों ने महाराणा के दिल पर ऐसा प्रभाव डाला कि, वह उसी समय वापस लौट पड़ा और कैलवाड़े आया।

वाद में विरवड़ी ने, जो वड़ी धनाढ्य थी, अपने पुत्र वारू को कहा कि, पांच सौ घोड़ों का एक कारवान लेकर हमीरसिंह के पास कैलवाड़ा जाओ। चूंकि ये लोग घोड़ों का व्यापार किया करते थे। इसलिये कुछ घोड़े तो इनके पास मौजूद थे और शेष कुछ खरीद कर अपनी माता के आदेश के अनुसार पांच सौ घोड़ों सहित कैलवाड़े आया। यहां पर महाराणा भी इसकी राह देख रहा था। अतः आते ही सभी घोड़ों को वंधा लिया तथा विरवड़ी के पुत्र वारू को अपने विश्वासपात्रों में शामिल करके अपनी पोल का नेग उसको दिया और अपना "वारहट" वना कर कैलवाड़ा के पास कई गांवों सहित आंतरी गांव का ताँबा पत्र लिख दिया। जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है।

ईश्वर को विरवड़ी की भविष्यवाणी को सत्य करना स्वीकार था।

हुए, और मुकाबला करने वाले राव के सभी सैनिक मारे गये, शेष बचे रहने वालों को महाराणा ने बाहर निकाल कर किले पर अपना झंडा फहरा दिया।[1]

अब पिछला विवरण सुनिये। राव मालदेव ने शेर की शिकार के लिये महाराणा का जाना सुन कर एक दिन और एक रात तो उनके वापस लौटने की राह देखी। लेकिन जब उसे खबर मिली कि, वह चित्तौड़ की तरफ रवाना हुए हैं। तो आप भी अपनी फौज व पांचों बेटों अर्थात् जैसा कीर्तिपाल, बणवीर, रणधीर और केलण सहित रवाना हुआ। महाराणा हमीरसिंह ने भी चित्तौड में अपने वंश के राजपूतों को एकत्रित कर लिया था। उसने मुकाबले के साथ मालदेव की अगवानी की। राव मालदेव हार कर वापस जालौर को लौटा। वहां से उसने मेवाड़ पर एक दो वार पुनः आक्रमण किये, लेकिन अन्त में उसको हार का सामना ही करना पड़ा।

जब राव मालदेव महाराणा से पराजित होकर पूर्णतया असहाय हो गया, तब वह सहायता के लिये बादशाह मुहम्मद तुगलक के पास गया। ख्यात की पोथियों में लिखा है कि, मालदेव के पुकारू जाने पर स्वयं मुहम्मद तुगलक ने सेना सहित मेवाड़ पर चढ़ाई की और उसने मेवाड़ के पूर्वी पहाड़ों में होकर, जहां तंग रास्तों में उसकी फौज को बड़ी कठिनाईयां उठानी पड़ी, सींगोली में पहुँच कर पड़ाव डाला। दुर्ग को वापस हस्तगत कर लेने के कारण महाराणा हमीरसिंह का मनोबल बढ़ा

---

1. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार सं० 1383 वि. (सन् 1328 ई०) के आस-पास हमीर ने जैसा सोनगरा से चित्तौड़ लिया था। परन्तु करेड़ा ग्राम के जैन मन्दिर से प्राप्त रविवार, पोष सुदि 7, 1392 वि० (दिसम्बर 24, 1335 ई०) के लेख से इस समय चित्तौड़ पर सोनगरा मालदेव और उसके पुत्र बणवीर का होना सिद्ध होता है। अतः चित्तौड़ के लिए हमीर को मालदेव के पुत्र बणवीर से संघर्ष करना सिद्ध होता है, जिसका सं. 1495 वि० की चित्तौड़ प्रशस्ति में भी उल्लेख है। यों स्पष्ट है कि, सन् 1336 ई० में ही हमीर का चित्तौड़ पर अधिकार हुआ होगा। रामवल्लभ सोमानी कृत ऐतिहासिक शोध संग्रह, पृ० 3-4। (सं.)

वड़ी बुद्धिमान थी, महाराणा से कहने लगी, कि अब मेरा नफा नुकसान (लाभ-हानि) आपके साथ है, मेरे पिता के साथ नहीं। इसलिये निवेदन है कि, यदि आपका इरादा चित्तौड़ लेने का हो, तो मेरे बाप से कामदार मेहता मौजीराम को मांग लेवें। वह वड़ा ईमानदार और बुद्धिमान व्यक्ति है। महाराणा ने इस सलाह को उचित समझ कर अपने श्वसुर से कहा कि, "आपने मुझको इतना प्रदेश दहेज में दिया है कि, जितने की मुझे आशा नहीं थी। परन्तु इस आपत्तिकाल में मेरे पास कोई ऐसा होशियार (बुद्धिमान) आदमी नहीं रहा, जो ठीक ढंग से प्रदेश का प्रवन्ध कर सके। परन्तु मुझको मेरे अधिनस्थ प्रदेश का प्रवन्ध तो अवश्य ही करना होगा। इसलिये आपके कामदार मेहता मौजीराम को मुझे दे देवें तो मैं, आपका वड़ा आभारी रहूँगा।" राव ने महाराणा के मुख से ये स्नेहपूर्ण वचन सुनकर उनको सीधा व साफ समझा और सोचा कि यदि मेरा आदमी इनके पास रहेगा, तो फिर भविष्य में हमारे व इनके मध्य किसी तरह का मनमुटाव नहीं होगा। इसी विचार से मेहता मौजीराम को महाराणा के सुपुर्द कर दिया। तथा मेहता से कहा कि, "अब तक तू मेरा नौकर था, आज से महाराणा का नौकर है। इनके लाभ में अपना लाभ और इनकी हानि में अपनी हानि समझना।" तव उसका हाथ महाराणा के हाथ में देकर कहा कि, "आज से यह आपका सेवक है।"

मौजीराम को साथ लेकर महाराणा अपने डेरों पर आया। तव उस मौजीराम ने कहा कि, जिस काम के लिये आपने राव से मुझे मांगा है, वह काम करना स्वीकार हो तो यही समय है। महाराणा ने कहा कि, "अव हमारा सव भरोसा तुम्हारे ऊपर है, जैसा कहोगे वैसा करेंगे।" यह सुनकर मौजीराम ने प्रकटरूप में महाराणा से कहा, कि अमुक जगह शेर की भाल (खवर) है। महाराणा अपने राजपूतों सहित घोड़ों पर सवार होकर शिकार के वहाने से रवना हुए, और दूसरे दिन आधी रात के समय, किले चित्तौड़ के दरवाजे पर पहुँचे, मेहता मौजीराम ने आगे वढ़कर किले वालों को आवाज दी, कि "किवाड़ खोलो, मैं मौजीराम हूँ।" चूंकि यह मेहता फौज का वेतन बांटने को हमेशा किले में आया करता था, इसलिये इसकी आवाज पहचान कर किले वालों ने दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही महाराणा अपने राजपूतों सहित किले में प्रविष्ट

थोड़े ही दिनों बाद मालदेव का पुत्र वणवीर ने भैंसरोड़ पर हमला कर उसको मेवाड़ में मिला लिया। फिर सब राजपूत लोग अपने वंश के राजा को देखकर प्रसन्न हुए, और सबने महाराणा हमीरसिंह को अपना स्वामी व सरदार समझा। क्योंकि उस समय केवल महाराणा हमीरसिंह ही इस कुल का रक्षक रह गया था। पुराने वंश के हाथ से सभी राज्य निकल चुका था। इसी समय में राव मालदेव तो मारा गया और मालदेव की राणी व महाराणी सोनगरी की अर्जी आने पर महाराणा ने सोनगरी को बुला लिया। राव मालदेव के पास तीन वस्तुऐं, बहरी जोगिन का दिया हुआ एक खांडा,[1] एक खप्पर और ठूमरे की माला थी। इन वस्तुओं को वे चमत्कारी समझते थे। राव मालदेव की राणी ने ये तीनों चीजें अपनी लड़की के साथ महाराणा के पास भेज दीं।

उस समय मेवाड़ की राजगद्दी की सेवा के लिये मारवाड़, ढूंढाड़, बूंदी, ग्वालियर, चन्देरी, रायसेन, सीकरी, कालपी और आबू आदि के राजा तन-मन से मौजूद थे।[2]

यद्यपि मुसलमानों के आक्रमणों के पहले भी मेवाड़ का राज्य उन्नति पर था, परंतु जब से महाराणा हमीरसिंह ने मेवाड़ पर दूसरी बार अधिकार जमाया, उस समय से दो सौ साल तक इस देश का प्रताप ऐसा प्रकाशित हुआ, जैसा कभी नहीं हुआ होगा। क्योंकि उस समय में ये महाराणा अपने प्रदेश की सुरक्षा के अतिरिक्त दूसरे प्रदेशों पर भी आक्रमण करने के लिये भी सक्षम हो गये थे। उनके वैभव की साक्षी उस समय में बनी प्राचीन इमारतें देती हैं। जिनको तैयार कराने में लाखों रुपये लगे होंगे। यह बात कियास (अनुमान) में नहीं आती कि, उनके पास इमारतें बनवाने के लिये

---

1. यह खड़ग अभी तक श्री महाराणा के सिलहखाना (शस्त्रागार) में मौजूद है। जिसका पूजन प्रतिवर्ष बड़ी धूमधाम से आश्विन के नव-रात्रों में होता है।

2. यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण है। इस समय केवल बूंदी और ईडर के शासकों के अलावा अन्य कौन-कौन राजा हमीर के अधीन थे, प्रमाणिक आधार सामग्री के अभाव में कहना कठिन है। (सं०)

हुआ था और सब राजपूत और प्रजा भी उसके पास आ गये थे। अतः उन्होंने एकाएक फौज[1] तैयार कर ऐसा बहादुराना हमला किया, कि बादशाह को हरा कर कैद कर लिया। इस लड़ाई में मालदेव का पोता हरिदास[2] महाराणा हमीरसिंह के हाथ से मारा गया। मुहम्मद तुगलक[3] तीन महीने तक कैद में रहने के बाद अजमेर, रणथम्भोर और शिवपुर के जिले तथा पचास लाख रुपया नकद व 100 हाथी देकर कैद से छूटा। इस स्थान पर महाराणा की बहादुरी देखने योग्य है, कि उस कैद से छोड़ते समय मुहम्मद तुगलक से यह वचन नहीं लिया, कि फिर हमला नहीं करेगा। क्योंकि उसने पहले ही यह स्वीकार करा लिया था कि यदि सामने से आक्रमण करेगा तो मैं, चौड़े में आकर लड़ूंगा।[4]

मालदेव का पुत्र बणवीर वचन बद्ध था कि मैं, महाराणा के अधीनस्थों में रहकर सेवा करूंगा। इसलिये महाराणा ने अपनी राणी का का भाई समझ कर उसके पालन पोषण के लिये नीमच रतनपुर, और खेराड़ उसे जागीर में दिये। तथा कहा, कि पहले तुम मुसलमानों के सेवक थे, अब हिन्दू के अधीन हो, जो तुम्हारे धर्म का साथी है। चित्तौड़ के पहाड़ मेरे बापदादों के खून से तर हुए हैं और जिस देवी की पूजा में करता हूं, उसके दिये हुए मैंने वापस लिये हैं।

---

1. मेवाड़ की आधी से अधिक प्रजा भील, मीना और मेर आदि लड़ने वाली जातियां है।

2. टॉड ने इसको मालदेव का बेटा लिखा है, लेकिन यह मालदेव का पोता था।

3. मुहम्मद तुगलक के स्थान पर टॉड ने महमूद खिलजी लिखा है। (टॉड०, एनल्स०, भाग 1, पृ० 220) जो जो गलत है। क्योंकि खिलजी बादशाहों में महमूद कोई नहीं हुआ।

4. यह हाल फारसी तवारीखों में नहीं लिखा है। कर्नल टॉड की पुस्तक और ख्यात की पोथियों से लिया है। फारसी तवारीखों में मुसलमानों की हार का विवरण बहुत कम लिखा गया है।

न मालूम टॉड ने किस आधार पर यह बात लिखी। पता चलता है कि, उसने किसी के मौखिक कहने पर विश्वास कर लिया। क्योंकि प्रथम तो जिस जमाने का यह उल्लेख है, उस समय से आज दिन तक राजपूतों के किसी खानदान में विधवा की शादी होना कहीं नहीं सुना गया। बल्कि यहां तक रिवाज है कि, यदि किसी लड़की की एक जगह सगाई (मंगनी) हो गई और वह दूसरी जगह व्याह दी गई, तो उस पर भी मरने मारने के अवसर आये हैं। फिर भला ऐसे खानदान में, जिसका उदाहरण अन्य राजपूतों को दिया जाता है, ऐसा क्यों कर हो सकता है। जब सगाईयों पर ही यह हाल होता है, तो भाटी लोग,[1] जो चन्द्रवंश की एक शाखा है, कब चुपचाप रह सकते थे। दूसरे, चित्तौड़ में शादी होना और मालदेव का अपने कुल कुटुम्ब सहित किले में निवास करना भी बुद्धि में नहीं आ सकता। क्योंकि प्रथम तो मालदेव को अपने पैतृक ठिकाने जालौर को खाली छोड़कर चित्तौड़ में बसा होने से हमीरसिंह जैसे बहादुर शत्रु के हाथ में जालौर चले जाने का भय था। दूसरे मेवाड़ को हमीरसिंह ने वीरान कर दिया था। इसलिये मालदेव और उसके कुल आदमियों के लिये खुराक आदि सामान भी जालौर से ही आता था। तो भला ऐसी सम्पति को उसने अरक्षित किस तरह छोड़ा और हमीरसिंह ने उस पर आक्रमण क्यों नहीं किया। तीसरे, जब मालदेव अपने कुटुम्ब व सेना सहित चित्तौड़ में विद्यमान था, तो फिर हमीरसिंह का धोखे से किला लेना किस तरह माना जा सकता है। क्योंकि वह तो उस समय कठिन परिस्थितियों से गुजर रहा था और मालदेव सम्पन्न था और बादशाह भी उसका सहायक था।

अब वंश प्रकाश[2] में बूंदी के इतिहास सम्बन्धी जो उल्लेख मिलता है। वह लिखा जाता है—

---

1. कर्नल टॉड के अनुसार राव मालदेव की इस पुत्री की शादी बाल्या-काल में ही भाटी खांप के राजपूत से हो गई थी। परन्तु इस शादी के तत्काल बाद ही वह मृत्यु को प्राप्त हो गया था। —टॉड, एनल्स०, भाग 1, पृ० 219। (सं०) (1983)

2. सूर्यमल मीसरण कृत, वंश भास्कर का संक्षिप्त रूप। वंश प्रकाश०, पृ० 59-75, ओझा से उधृत। (सं०)

इतना धन और सेना रखने का खर्च कहां से मिलता था। उस समय में मेवाड़ के केवल राजा ही धनवान नहीं थे, बल्कि उनकी प्रजा भी ऐसी सम्पन्न थी, जिसके द्वारा बनाई हुई बड़ी-बड़ी इमारतें जो अभी तक टूटी फूटी दशा में विद्यमान हैं, उनके सम्पन्न होने की साक्षी देती हैं। मेवाड़ देश के महाराजाओं की वीरता की निशानियां बहुत दूर-दूर तक आज भी विद्यमान हैं।

महाराणा हमीरसिंह ने चित्तौड़ पर पुनः अधिकार करने के बाद खोड गांव से बिरवड़ी को बुलाया। वह देवी का अवतार कहलाती थी। उसे बड़े आदर के साथ चित्तौड़ पर रखा और उसके मर जाने के बाद उसकी यादगार में वहां एक बहुत बड़ा मंदिर बनवाया, जो "अन्नपूर्णा" के नाम से अब तक चित्तौड़ के किले में विद्यमान है।

इस महाराणा का देहान्त सं० 1421 वि० (756 हि० = 1364 ई०) में होना लिखा है।

अब हम पाठकों का सन्देह दूर करने के लिये उन बातों को लिखते हैं, जिनमें कर्नल टॉड के विवरण और हमारे लिखने में अन्तर है। जो बातें टॉड ने नहीं लिखीं और हमने यहां पर लिखी हैं, उनका उल्लेख करना तो कुछ जरूरी नहीं। क्योंकि उस समय शान्ति स्थापना का प्रारम्भिक समय होने के कारण वे हालात टॉड को नहीं मिले होंगे। परन्तु जिन बातों में कर्नल टॉड और हमारे वर्णन में अन्तर है, यहां पर हम उनका उल्लेख करते हैं—

प्रथम, कर्नल टॉड ने महाराणा हमीरसिंह के गद्दी पर बैठने का 1357 सम्वत् लिखा है और हमारी खोजबीन के अनुसार उसके राज्यारोहण का समय इसके बहुत बाद में आता है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। दूसरा, टॉड ने राव मालदेव की विधवा बेटी के साथ महाराणा हमीरसिंह की शादी चित्तौड़गढ़ पर होना तहरीर किया (लिखा) है। परन्तु जो सामग्री टॉड को मेवाड़ की तवारीख (इतिहास) लिखने के लिये मिली और जिसका वह हवाला देता है, वह सामग्री और उसके अतिरिक्त जो उल्लेख हमको मिले, वे सब इस समय हमारी आंखों के सामने हैं। परन्तु उनमें महाराणा की शादी विधवा लड़की से होना कहीं भी प्रमाणित नहीं होता।

इस महाराणा के पौत्र महाराणा मोकल और पड़पौत्र महाराणा कुम्भा और कुम्भा के पुत्र रायमल के समय की प्रशस्तियों[1] में लिखा है कि, महाराणा खेता ने लड़ाई में 100 राजाओं सहित गुजरात के राजा रणमल को वन्दी वना वंदीगृह में डाला। हमारी समझ में वह ईडर का पहला राव रणमल[2] होगा, जिसने लड़ाई महाराणा से की थी। उन्हीं प्रशस्तियों में इनका अमीशाह को जीत कर गिरफ्तार करना भी लिखा है। हमने बहुत से फारसी ऐतिहासिक ग्रंथों में खोजा, लेकिन इस नाम का कोई वादशाह उस समय में नहीं पाया गया। लेकिन प्रशस्तियों का लेख भी झूठा नहीं हो सकता। क्योंकि वे उसी समय के लगभग लिखी हुई हैं। यदि यह ख्याल किया जावे कि, लिखने वाले ने अहमदशाह गुजराती को बिगाड़ कर "अमीशाह" वना लिया तो भी यह असम्भव है। क्योंकि प्रथमतः, गुजरात और मालवा की वादशाहत की नींव ही इस समय तक नहीं पड़ी थी। तथा अहमदशाह क्षेत्रसिंह के पौत्र मोकल के समय में गुजरात का वादशाह वना था। शायद फीरोजशाह तुगलक के विरुद में "अहमद" का शब्द हो, और उसको बिगाड़ कर पंडितों ने अमीशाह वना दिया हो, तो आश्चर्य नहीं। अथवा अफगानिस्तान, तुर्किस्तान व ईरान की तरफ कोई अहमदशाह हुआ हो, और वह गुजरातियों की सहायता के लिये आया हो। क्योंकि उन लोगों का आना

---

1. महाराणा क्षेत्रसिंह (खेता) का विवरण निम्न प्रशस्तियों व शिला-लेखों में मिलता है—

    1. सं० 1517 वि० का कुंभलगढ़ का शिलालेख,
    2. सं० 1545 वि० एकलिंगजी के दक्षिण द्वार का शिलालेख, महाराणा रायमलकालीन—भावनगर इन्सक्रिपशंस, पृ० 119;
    3. सं० 1485 वि० शृंगी ऋषि का शिलालेख (अप्रकाशित);
    4. वंवावदे के हाड़ा महादेव का सं० 1446 वि० का मैनाल का लेख;
    5. एकलिंग माहात्म्यं, राज वर्णन अध्याय।
    6. महाराणा कुम्भा की मार्गशीर्ष कृ० 5, 1517 वि० की चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति—(अप्रकाशित) (सं०)

2. ईडर के राव जैतकर्ण का पुत्र। (सं०)

वंबावदे के राजा हालू ने जीरण व भाणपुर जिले के कई गांव दवा लिये थे। जब हालू अपनी शादी के लिए शिवपुर गया और उसने विवाह का कंकण भी नहीं खोला था कि, जीरण के अधिकारी जैतसिंह पंवार व भाण-पुर के राजा भारत खीची ने उस पर चढ़ाई कर दी। महाराणा ने उनकी मदद के लिये जैतसिंह के वेटे सुन्दरदास के साथ कुछ फौज हालू पर भेजी। हालू की मदद के लिए बूंदी से हामा भी आया। इस लड़ाई में महाराणा का काका विजयराज मारा गया और महाराजकुमार क्षेत्रसिंह घायल हुआ। तव महाराणा हमीरसिंह नाराज होकर स्वयं ने हालू पर चढ़ाई कर दी। यह समाचार सुनकर बूंदी से हामा महाराणा के पास आया और निवेदन किया कि, श्रीमान् को, खीची और पंवारों की सहायता कर हालू पर सेना नहीं भेजनी चाहिये थी। महाराणा ने कहा कि, "हमारे काका मारे गये और महाराज कुमार घायल हुए हैं, इसकी सजा हालू को देना उचित है।" हामा ने निवेदन किया कि, विजयराज मेरे हाथ से मारा गया है, इसलिये इस कुसूर की सजा तो मुझको देवें। लड़ना मरना राजपूतों का ही काम है। इस कुसूर में मैं, अपने वेटे लालसिंह की वेटी की शादी[1] महाराजकुमार से कर दूंगा। इसके वाद हामा ने अपने वेटे लालसिंह की वेटी की सगाई महाराज-कुमार क्षेत्रसिंह से कर दी।

महाराणा हमीरसिंह के चार पुत्र खेता, लूणा, खंगार और वैरी-शाल हुए।

2. महाराणा क्षेत्रसिंह— (खेता)

महाराणा हमीरसिंह का देहान्त होने के वाद 1421 विक्रमी (765 हि० = 1364 ई०) में महाराणा क्षेत्रसिंह, जिनका प्रसिद्ध नाम खेता है, गद्दी पर वैठा। इसके गद्दी पर वैठने के सम्वत् में सन्देह कम मालूम होता है। क्योंकि गोगूंदा ग्राम में एक मंदिर के छावणे[2] पर एक प्रशस्ति उत्कीर्ण हैं, उसमें इस महाराणा का नाम लिखा है।

---

1. राजपूतों में खून के वदले जमीन या वेटी देने से समझौता हो जाता है।
2. मुख्य द्वार के ऊपर लगाया हुआ पत्थर। यह शिलालेख आषाढ़ कृ० 13, 1423 वि० का है तथा शीतलामाता के मन्दिर के छवणे में लगा है। (सं०)

तौर पर "उड़ना-पृथ्वीराज" कहते हैं, जिसका वर्णन बीकानेर के प्रधान मेहता नैणसी[1] ने 200 वर्ष पहले बड़ी खोजबीन करके लिखा है[2] तथा दूसरी पोथियों में भी लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त यह बात कहावत के रूप में हर छोटे बड़े की जबान पर प्रसिद्ध है—"भाग लला पृथ्वीराज आयो, सिंह के साथ स्याल ल्यायो।"

महाराणा (क्षेत्रसिंह) के देहान्त का विवरण इस प्रकार है कि, हामा हाड़ा के बेटे लालसिंह की बेटी का विवाह इसके साथ निश्चित् हुआ। शादी करने के लिये बड़ी धूमधाम के साथ उसने बूंदी की ओर प्रस्थान किया। यह शादी बूंदी में हुई थी। रीति पूर्वक विवाह हो चुकने के बाद एक दिन दरबार हो रहा था, उस समय खेता ने बातें करते समय बारहट बारू के सम्बन्ध में कहा कि, हमारे पिता महाराणा हमीरसिंह ने इनको अपना बारहट बनाया है और इन्हीं की माता बिरवड़ी की बरकत से, जो कि देवी का अवतार थी, चित्तौड़ पुनः महाराणा के अधिकार में आया, परन्तु यह बारू हमारा किया हुआ अजाची[3] है। इस पर बारू ने कहा कि, मैं राजपूत को मांगने वाला हूँ और महाराणा के अतिरिक्त मुझको कोई राजपूत पृथ्वी पर दिखाई नहीं देता। इसलिये इनके अतिरिक्त दूसरे से नहीं लेता। यह बात हाड़ा लालसिंह को नागवार गुजरी। परन्तु उस समय तो अवसर नहीं देख कर कुछ नहीं बोला। तथा जब अपने महलों में गया, उस समय बारू को कोई सलाह पूछने के बहाने से अपने पास बुलाया और एक मकान में बन्द करके कहा कि, "हम राजपूत हैं, तुमको हमारे पास से कुछ लेना चाहिये। यदि नहीं लोगे तो हम तुमसे समझेंगे।" बारू बारहट ने देखा कि, इस समय मैं, इसके कब्जे में हूँ। ऐसा न हो कि महाराणा मेरी मदद करें, उससे पहले ही यह कुछ बेइज्जती कर बैठे। यह सोच कर उसने दिल में मरना ठान लिया। तथा जवाब दिया कि, "आप जो देवें वह मुझे इस शर्त पर लेना स्वीकार है कि, जो कुछ मैं दूं उसको पहले आप लें। यह बात लालसिंह ने स्वीकार की। तब बारू ने

---

1. नैणसी, महाराजा जसवन्तसिंह के समय जोधपुर राज्य में देश दीवान था, न कि बीकानेर का। (सं०)

2. मुहता नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 17।

3. अयाची-याचना नहीं करने वाला, दूसरों से नहीं मांगने वाला। (सं)

जाना सिंध देश और गुजरात की तरफ होता रहा है। अथवा दिल्ली के बादशाह के शाहजादे या भाई का नाम अहमदशाह हो, जिसको बादशाह ने सेनापति बना कर राजपूताना की तरफ भेजा होगा। अन्यथा मेवाड़ से दक्षिणी हिन्दुस्तान की तरफ तो उस समय में मुसलमानों का कोई सुदृढ़ राज्य स्थापित ही नहीं हुआ था। केवल एक बीजापुर के राज्य में बानी अलाउद्दीन गांगू हसन बहमनी इस महाराणा के राज्य काल के बाद दक्षिण में हाकिम बना था। इससे पता चलता है कि, अमीशाह या अहमदशाह नाम का कोई बादशाह उस समय में नहीं था। शायद कोई दूसरा नाम बिगड़ कर अमीशाह हुआ हो, तो आश्चर्य नहीं। लेकिन महाराणा क्षेत्रसिंह ने अमीशाह को जीत कर गिरफ्तार किया, इस बात में सन्देह नहीं हैं।[1]

ऊपर वर्णित प्रशस्तियों में यह भी लिखा है कि, महाराणा क्षेत्रसिंह ने मालवा के राजा को जीता था और हाड़ौती को भी विजय किया। लेकिन हमारी समझ में नहीं आता कि, दिल्ली के बादशाह हुमायूं को बाकरोल के स्थान पर महाराणा क्षेत्रसिंह का पराजित करना टॉड ने कहां से लिख दिया।[2] क्योंकि हिजरी सन् और विक्रम सम्वत् का मिलान करने से प्रमाणित होता है कि, महाराणा रतनसिंह के समय में हुमायूंशाह गद्दी पर बैठा हुआ था, जो महाराणा खेता से लगभग 150 वर्ष बाद का समय है। इससे मालूम होता है कि, टॉड ने किसी व्यक्ति की मौखिक कहानी सुनकर ऐसा लिख दिया।

इसके अतिरिक्त टॉड ने लिखा है कि, इस महाराणा ने अजमेर और जहाजपुर को लल्ला पठान से लिया[3]। इसमें भी उन्होंने धोखा खाया है। क्योंकि महाराणा क्षेत्रसिंह से पांच पीढ़ी बाद में महाराणा रायमल के कुंवर पृथ्वीराज ने लल्ला पठान को मारा था और इसी कारण से उसको बढ़ावे के

---

1. वाकियात-इ-मुश्ताकी (इलियट, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जि० 4, पृ० 552) और तुजुके जहाँगीरी (राजर्स० अं० अ०, जि० 1, पृ० 407) के आधार पर मान्डू (मालवा) के सुलतान दिलावर गौरी का मूल नाम अमीशाह होना प्रमाणित होता है। (सं०)
2. टॉड, एनल्स०, भाग 1, पृ० 221 (1983)। (सं०)
3. टॉड, एनल्स०, भाग 1, पृ० 221 (1983) (सं०)

ने श्री एकलिंगेश्वर के भेंट किया था।[1] इस महाराणा ने ईडर के राजा रणमल को कैद कर उसके बेटे को गद्दी पर बैठाया। उसका विवरण श्री एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के तीसवें श्लोक में लिखा है।[2] महाराणा खेता ने वागड़ तक अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

3. महाराणा लक्षसिंह (लाखा)—

महाराणा लक्षसिंह, जिसका नाम लाखा प्रसिद्ध है, 1439 विक्रमी (784 हि० =1382 ई०) में गद्दी पर बैठा। जब महाराणा क्षेत्रसिंह बूंदी में मारा गया उस समय बूंदी के सभी हाड़ा तितर बितर हो गये थे। परन्तु इसमें हाड़ों का कोई विशेष दोष नहीं था। क्योंकि बाह्य बारहट ने एक छोटीसी बात पर अपना सिर काट डाला, और इसी पर महाराणा खेता ने लड़ाई शुरू कर दी। यह एक साधारण बात है, कि जहाँ लड़ाई होती है वहाँ दोनों तरफ के आदमी मारे जाते हैं। इस संग्राम में महाराणा क्षेत्रसिंह काम आया और हाड़ा लालसिंह भी मारा गया। तब हामा हाड़ा का पुत्र वरसिंह और लालसिंह का पुत्र जैतसिंह और नौब्रह्म ये तीनों व्यक्ति महाराणा लाखा के पास उपस्थित हुए, और निवेदन किया, कि "इसमें हमारा तो कुछ अपराध नहीं है। आगे आप स्वामी हैं। आपके लिये हमारे सिर हाजिर है, आपकी इच्छा हो शत्रुओं से लड़ा कर लेवें, अथवा इच्छा हो तो स्वयं लेवें।" इस निवेदन पर महाराणा लाखा ने बूंदी का परगना वापस उनको दे दिया। इस वैर को मिटाने के लिये वरसिंह, जैतसिंह और नौब्रह्म ने अपनी व अपने भाइयों की बारह लड़कियाँ महाराणा के भाइयों और सरदारों को ब्याह दी, तथा जलन्धरी, धनवाड़ा तथा बाजणा आदि चौबीस गांव दहेज में दिये।

फिर महाराणा ने मारवाड़ की तरफ के पहाड़ी जिलों को, जो कि उससे विमुख हो गये थे, वापस अपने राज्य में मिला लिया। बैराट के किले को गिरा कर बदनौर को बसाया। इस महाराणा के समय में आबादी और इमारतों की बड़ी उन्नति हुई। प्रदेश की आमदनी के अतिरिक्त एक बड़ी

---

1. भावनगर इन्स्क्रिपशंस, पृ० 119। (सं०)

2. दक्षिण द्वार की प्रशस्ति—भावनगर इन्स्क्रिपशंस, पृ० 119। (सं०)

एक भाट के लड़के को, जो उसकी सेवा में रहता था कहा कि, "मैं अपना सिर काट कर तुझे देता हूँ। वह हाड़ा को जाकर दे देना। इस सेवा का पारिश्रमिक तुझको महाराणा देवेंगे।"[1] उस लड़के ने पहले तो इन्कार किया, परन्तु अन्त में बारू के समझाने से उसने स्वीकार किया। बारू ने तलवार से अपना सिर काट डाला। उस लड़के[2] ने बारू के आदेशानुसार उसका सिर कपड़े में लपेट कर लालसिंह को जा दिया। सिर को देख कर लालसिंह को बड़ी चिन्ता हुई। उस लड़के ने यह सारा वृतान्त महाराणा से जा कहा। इस पर महाराणा ने अत्यन्त रुष्ट होकर बूंदी को घेर लिया। कई दिनों तक लड़ाई होती रही। जब बूंदी का किला जीता न जा सका तो अन्ततः महाराणा स्वयं किले की दीवार पर चढ़ा। जहां पर भीतरी लोगों के शस्त्रों से वह मारा गया। लालसिंह को भी महाराणा की सेना के शूरवीरों ने मार लिया और हाड़ा बरसिंह अपने प्राण बचा कर भागा। इस समय महाराणी हाड़ी महाराणा के साथ सती हुई।[3]

महाराणा खेता के पुत्र 1. लाखा, 2. भाखर, (जिसके वंशज भाखरोत सीसोदिया कहलाते हैं) 3. माहप, 4. भुवणसिंह, 5. भूचण (जिसके वंशज भूचरोत कहलाते हैं), 6. सलखा (जिसके वंशज सलखावत कहलाते हैं), और 7. सखंर (जिसके वंशज के सखंरावत हैं) तथा खातण पासवान के पेट से 8. चाचा व मेरा थे।

पनवाड़ गांव, जो वर्तमान में जयपुर के अधिकार में हैं, इस महाराणा

---

1. प्रसिद्ध है कि महाराणा लाखा ने बारू बारहट के कहने के अनुसार उस भाट के लड़के को चीकलवास गांव दिया।

2. उदयपुर के पास चीकलवास गांव में इस लड़के के वंशज भाट आज भी निवास करते हैं।

3. इसी तरह का विवरण सूर्यमल मीसण ने अपने ग्रन्थ "वंश प्रकाश" (पृ० 73, 75-76) में भी लिखा है। जिसमें क्षेत्रसिंह का युवराज काल में ही मारा जाने का उल्लेख है, किन्तु ये दोनों विवरण ओझा के अनुसार ठीक नहीं है। — ओझा, उदयपुर, भाग 1, पृ० 257–258 तथा पृ० 258 टिप्पणी। (सं०)

पर विजय पाई। तथा मांजी सोलंखिनी को अपने ठिकाने शार्दूलगढ़ में मेहमान बनाया और घायलों का इलाज करवाया। फिर दोनों भाई बाईजीराज[1] सोलंखिनी को मेवाड़ की सीमा तक पहुंचा कर अपने ठिकाने को लौट गये। बाईजीराज ने यह सब विवरण अपने पुत्र महाराणा लाखा से कहा। इस पर महाराणा ने इसको उनकी बहुत बड़ी सेवा समझ धवल को पत्र भेज कर बुलाया। तथा रतनगढ़, नन्दराय और मसूदा आदि पांच लाख की जागीर उसको दी। इस प्रकार 1444 वि० (789 हि० = 1387 ई०) में महाराणा ने डोडियों को अपना सरदार बनाया। जब दूसरी बार यह सोलंखिनी बाईजीराज गयाजी को गई तब भी महाराणा ने धवल डोडिया को बहुत सी फौज सहित उसके साथ भेजा। इस समय छप्पर घाटा के हाकम शेरखा से लड़ाई हुई, जिसमें धवल ने शेरखां पर विजय प्राप्त की और बाईजीराज को गया का तीर्थ करा कर शेरखां का लवाजमा छीन लाया, जो महाराणा के भेंट किया।

सरदारगढ़ की तवारीख में लिखा है कि, डोडिया धवल अपने बेटे हरू सहित महाराणा के साथ बदनौर की लड़ाई में गयासुद्दीन तुगलक से लड़कर मारा गया। यदि ऐसा हुआ हो, तो गयासुद्दीन की लड़ाई का जो जिक्र पहिले किया गया, वह लड़ाई धवल की ऊपर लिखी हुई कार्यवाइयों के बाद में हुई होगी।

अब हम महाराणा लाखा के छोटे पुत्र मोकल को राज्य मिलने का कारण लिखते हैं—

मारवाड़ में मंडोवर के राव चूंडा ने अपने बड़े पुत्र रणमल को किसी कारण से नाराज होकर निकाल दिया था।[2] उस समय पांच सौ सवारों के

---

1. राज्य करने वाले की माता को बाईजीराज कहते हैं।
2. यह कथन ठीक नहीं है। मारवाड़ पक्षीय प्रामाणिक ग्रन्थों से पता चलता है कि, राव चूंडा का प्रेम अपनी गोहिल राणी से अधिक था। अतः उसके पुत्र कान्हा, जो छोटा था, को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इसी बात से रणमल नाराज होकर अपने 500 सरदारों के साथ महाराणा लाखा की सेवा में आ रहा। (सं०)

प्राप्ति यह हुई कि जावर में चाँदी और सीसे की खान[1] निकली।

जब इस महाराणा पर दिल्ली के गयासुद्दीन तुगलक ने आक्रमण किया और बदनौर पर लड़ाई हुई, तो उस लड़ाई में बादशाह हार कर भागा। तब यह शूरवीर महाराणा उसका पीछा करते हुए "गया" तक चला गया और गयासुद्दीन से गया का कर छुड़ाया।[2] इसी समय में उसने नागर चाल के मालिक किसी सांखला राजपूत को भी अविर में पराजित किया। इस घटना का संवत् न तो कर्नल टॉड ने लिखा और न ही हमको कहीं मिला। लेकिन इस का उल्लेख महाराणा के बाद की प्रशस्तियों में और पोथियों में लिखा हुआ है। कर्नल टॉड ने उक्त महाराणा से यह संघर्ष मुहम्मदशाह लोदी के साथ होना लिखा है, लेकिन जहाँ तक हम जानकारी प्राप्त कर सके, हमको मुहम्मदशाह नामक किसी लोदी का दिल्ली के सिंहासन पर बैठना पता नहीं चला।

जब महाराणा लाखा की माता सोलंखिनी द्वारिकानाथ के दर्शनों को गई, उस समय काठियावाड़ में पहुंचते ही कावों ने, जो एक लुटेरा जाति है, मेवाड़ की सेना को घेर लिया। तब वहां लड़ाई होने लगी। कावों के घेरे को मेवाड़ी सरदार हटा नहीं सके। उस समय शार्दूलगढ़ के राव सिंह डोडिया ने इसको उचित अवसर समझ अपनी सेना सहित आकर मेवाड़ी सेना की मदद की। कावों के साथ बड़ी भारी लड़ाई हुई। राव सिंह के साथ उसके दोनों बेटे कालू व धवल भी इस लड़ाई में उपस्थित थे। लड़ाई में राव सिंह तो मारा गया, और उसके पुत्र कालू व धवल ने मेवाड़ी फौज सहित कावों

---

1. अब यह खान बहुत दिनों से बन्द है।
2. महाराणा लाखा द्वारा गयासुद्दीन तुगलक से युद्ध कर, गया का कर छुड़ाने का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। साथ ही गयासुद्दीन तुगलक महाराणा लाखा का समकालीन भी नहीं था। इसके विपरीत एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति और सं० 1485 वि० के श्रृंगी ऋषि के शिलालेख में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि धर्म परायण राणा ने बहुत सी स्वर्ण मुद्रायें देकर मुसलमानों से गया का कर छुड़ाया था।—भावनगर इन्सक्रिपशंस, पृ० 119। (सं०)

चूंडा ने कहा कि, यदि तुम्हारी वाई के लड़का उत्पन्न होगा, तो वह चित्तौड़ का स्वामी होगा और मैं, उसका नौकर रहूँगा। इस पर चांदण ने कहा कि, "आपसे चित्तौड़ का राज्य नहीं छोड़ा जायेगा।" तव चूंडा ने शपथ खाकर चांदण को आश्वस्त किया। चांदण ने जाकर, रणमल को समझाया और कहा कि, पुराना चन्दन नये चन्दन से हमेशा उत्तम होता है। चांदण के इस प्रकार समझाने और चूंडा की शपथ के अनुसार गद्दी का उत्तराधिकारी अपने भानजे का होना सुनकर रणमल ने अपनी वहिन की शादी महाराणा के साथ करना स्वीकार कर लिया, तथा रीत्यानुसार सगाई के नारियल महाराणा को झेला दिये। साथ ही चूंडा से महाराणा के सामने इस वात का शपथ-पत्र भी लिखा लिया कि यदि रणमल के भानजा पैदा हो, तो मैं, (चूंडा) राज्य छोड़ दूंगा। राव चूंडा की वेटी और रणमल की वहिन हंसवाई[1] से महाराणा की शादी होने के 13 महीने वाद उसके पेट से मोकल पैदा हुआ, जो अपने पिता के वाद राजगद्दी पर वैठा।

महाराणा लाखा राज्य की उन्नति करने वाला और अपनी प्रजा को आराम पहुँचाने वाला हुआ। इसके हाथ से वहुतसी वड़ी-वड़ी इमारतें पुनः वनवाई गई, जो पूर्व में अलाउद्दीन खिलजी ने गिरा दी थीं। वहुत से तालाव, बांध और सुदृढ़ किले तैयार हुये। ब्रह्मा का एक वैभवशाली मन्दिर लाखों रुपयों की लागत से तैयार करवाया, जो चित्तौड़ पर अव तक विद्यमान है, न मालूम यह मन्दिर[2] अलाउद्दीन के हमले से कैसे वचा। पीछोला तालाव भी, जो कि इस तरफ राजधानी उदयपुर की रौनक का एक खास स्थान है, महाराणा लाखा के समय में किसी वणजारे ने वनवाया था। इस महाराणा के वहुतसी संतानें हुई। इसका वड़ा वेटा चूंडा था, जिसके चूंडावत

---

1. टॉड ने अपने इतिहास में हंसवाई को रणमल की वेटी होना लिखा है। परन्तु मारवाड़ की एक तवारीख से, जो मुहणोत नैणसी ने दो सौवर्ष पहले लिखी है, रणमल की वहिन होना प्रमाणित होता है और दूसरी तवारीख में भी ऐसा ही लिखा देख कर हमने हंसवाई को रणमल की वहिन लिखा है।

2. यह मन्दिर कुम्भश्यामजी के मन्दिर के पूर्व की तरफ समिद्धेश्वर महादेव का है, जिसको टॉड ने ब्रह्मा का लिखा है।

साथ रणमल चित्तौड़ में महाराणा लाखा के पास आकर नौकर रहा। वह एक अच्छा शूरवीर राजपूत था। एक दिन की घटना है कि, किसी व्यक्ति की बरात आती हुई देख कर महाराणा ने रणमल से कहा कि, जवान आदमियों की शादी होती है, हम बूढ़ों की शादी कौन करें।[1] इस बात को रणमल ने तो हंसी समझ कर कुछ भी न कहा। परन्तु महाराणा के बड़े कुंवर चूंडा जो पिता भक्त था, इस बात को सुनकर सहन नहीं कर सका और उसने महाराणा से निवेदन किया कि, "रणमल के बहिन बड़ी है, उसके साथ आप विवाह करें।" इस पर महाराणा ने कहा कि, "हमने तो हंसी के रूप में ही यह बात कही थी। हमारी अवस्था और हमारी इच्छा विवाह करने की बिल्कुल नहीं है।" परन्तु चूंडा ने हठ करके महाराणा को शादी करना स्वीकार कराया। इसके बाद चूंडा ने रणमल से कहा कि, आपने अपने डेरे पर हमको कभी गोठ नहीं जिमाई। रणमल ने चूंडा के कृपा और प्रेम भरे वचनों को सुनकर गोठ (भोजन) तैयार करवाई और वह राजकुमार अपने भाइयों व सरदारों सहित रणमल के यहां जीमने को गये। भोजन करते समय चूंडा ने रणमल से कहा कि, तुम्हारी बहिन की शादी महाराणा के साथ करदो।" तब रणमल ने कहा कि, "महाराणा के साथ शादी करने में हमारा सब तरह से बड़प्पन है। परन्तु उनकी आयु अधिक हो गई है, इससे शादी नहीं कर सकता। निस्संदेह आपके साथ शादी करना स्वीकार है।" इस पर चूंडा ने रिणमल को बहुत समझाया, परन्तु उसने इन्कार किया। तब चूंडा ने कहा कि, रणमल के पास यदि कोई चारण हो, तो इसको समझावे। रणमल के पास चांदण नामक एक खिड़िया गौत्र का चारण रहता था। वह बोल उठा कि, मैं हाजिर हूँ। चूंडा ने उससे कहा कि, तुम्हारे ठाकुर को समझाओ। इस पर चांदण ने कहा कि, "महाराणा की आयु अधिक होने की तो कुछ चिन्ता नहीं, परन्तु लोगों में प्रारम्भ से यह प्रथा है कि, बड़ा बेटा राज्य का स्वामी हो और छोटे को नौकरी करने पर खाने को मिले। अतः ऐसी स्थिति में कदाचित् हमारी बाई के लड़का उत्पन्न हो, तो इसका क्या प्रबन्ध किया जावे।"

---

1. कुछ पोथियों में लिखा है कि, रणमल ने अपनी बहिन की शादी कुंवर चूंडा के साथ करने को निवेदन की थी, तब चूंडा ने हठपूर्वक उस राजकुमारी से अपने पिता की शादी करवाई।

के सामने अपने छोटे भाई को राज्य देने का रणमल से कौल कर लिया था, उसको चूंडा ने इस अवसर पर पूरा कर दिया। सूर्यवंशी राजपूतों में यह दूसरा ही अवसर है कि, युवराज ने पिता की भक्ति के कारण बाप के आदेश से राज्य को छोड़ दिया। पहली बार राजा दशरथ के पुत्र महाराजा रामचन्द्र ने ऐसा किया था और दूसरी बार उसी कुल में चूंडा ने किया।

जब महाराणा लाखा का वैकुण्ठवास हुआ, उस समय रणमल की बहिन हंसबाई ने चूंडा से कहा कि, "मैं तो अब सती होती हूँ, तुमने मेरे बेटे मोकल के लिए कौनसा परगना देना तय किया है ?" इस पर चूंडा ने कहा कि, "हे माता ! आपका पुत्र तो मेवाड़ का स्वामी है और मैं, उसका नौकर हूँ।" तथा यह भी कहा कि, आपको सती नहीं होना चाहिये। आप तो बाईजीराज बनकर रहें, आदि। निदान इस तरह बहुत कुछ समझाने पर महारानी राठौड़ ने सती होना स्थगित रखा और चूंडा की बहुतसी प्रशंसा करके कहा कि, "जैसा कर्तव्य पिता के भक्त और सच्चे राजपूतों का होता है, वैसा ही तुमने निभाया। आज से सनदों तथा परवानों पर जो भाला महाराणा करते थे वह तुम्हारे हाथ से होगा।"[1] इसके बाद चूंडा ने महाराणा मोकल का हाथ पकड़ कर 1454 विक्रमी[2] । (799 हि०=1397 ई०) में राजगद्दी पर बैठाया। तथा राजतिलक देकर सबसे पहले स्वयं ने नज्र

---

1. उसी समय से तांबापत्र और परवानों पर चूंडा अपने हाथ से भाले का चिह्न करने लगा और महाराणा भाले के नीचे अपने हाथ से अपना नाम लिख कर परवाने आदि को स्वीकार करते रहे। इसके बाद महाराणा संग्रामसिंह प्रथम (सांगा) ने मुसलमान बादशाहों की प्रथा के अनुसार सही लिखने की प्रथा प्रचलित की।

2. यह सम्वत् ख्यात की पोथियों तथा कर्नल टॉड की किताब में लिखा है, लेकिन हमारे विचार से इसकी गद्दीनशीनी 1460 विक्रमी के बाद होना चाहिये। क्योंकि 1451 विक्रमी में तो राव चूंडा को ईंदा राजपूतों से मंडोवर मिला। उन दिनों उसका बेटा रणमल भी अल्पआयु था और मंडोवर में राज्य जमाने को भी कई वर्षों का समय चाहिये। उसके बाद रणमल का चित्तौड़ में नौकर होना,

राजपूत हैं । 2. राघवदेव, जो पितृ (पूर्वज) के नाम से सीसोदियों में पूजा जाता है और जिसकी छत्री अन्नपूर्णा के मन्दिर के पास चित्तौड़ में विद्यमान है। 3. अज्जा, जिसके सारंगदेवोत हैं,4. दूल्हा, जिसके दूल्हावत, 5. डूंगरसिंह, जिसके मांडावत, 6. गजसिंह, जिसके गजसिंहोत, 7. लूणा, जिसके लूणावत, 8. मोकल और वाघसिंह हुए ।

इस महाराणा की ऊपर लिखी हुई संतानों का वर्णन सरदारों के विवरण में लिखा जावेगा ।

1454 विक्रमी (799 हि० = 1397 ई०) में इस महाराणा का देहान्त हुआ ।[1] महाराणा ने सूर्यग्रहण के अवसर पर पीपलीग्राम झोटिंग ब्राह्मण को दान में दिया था, जिसके वंशजों के अधिकार में अब चित्तौड़ के पास घाघसा और सामता ग्राम है । पीपली दूसरी जाती के ब्राह्मणों के अधिकार में है । इस महाराणा ने धनेश्वर भट्ट को चित्तौड़ के पास ग्राम पंचदेवला दिया था, परन्तु अब यह ग्राम उसकी संतान के पास नहीं है, किन्तु उसी जाति के दूसरे गोत्र वाले दसोरा ब्राह्मणों के अधिकार में है ।

4. महाराणा मोकल—

पहले लिखा जा चुका है कि, महाराणा लाखा के युवराज पुत्र चूंडा ने रणमल की वहिन के साथ महाराणा की शादी होने के समय महाराणा

---

1. महाराणा लाखा के देहान्त का यह सम्वत् ठीक नहीं है । कोट सोलंकियान से प्राप्त सोमवार, आषाढ़ सुदि 3, 1475 वि० (श्रावणादि) के शिलालेख में उत्कीर्ण है कि, महाराणा लाखा के शासनकाल में आसलपुर दुर्ग में श्री पार्श्वनाथ चैत्य का जीर्णोद्धार हुआ । (मुनि जिन विजय, प्राचीन जैन लेख संग्रह, भाग 2, लेख 370, पृ० 221) इससे स्पष्ट है कि लाखा सं० 1475 वि० तक तो जीवित था । इसके वाद महाराणा मोकल के समय का पहला शिलालेख सं० 1478 वि० का प्राप्त हुआ है । अतः महाराणा लाखा की मृत्यु सं० 1475 वि० के वाद और 1478 वि० के पहले हुई । उपेन्द्रनाथ डे ने महाराणा लाखा की मृत्यु सन् 1419 ई० में होना लिखा है । मेडिवल मालवा, पृ० 64 । (सं०)

दिलावर खां[1] के पास पहुंचा ।[2] वहाँ पर बादशाह ने उसकी बहुत खातिरदारी की, और उसको खर्च के लिये कई परगने दिये।

चूंडा के चले जाने के बाद मेवाड़ का सारा काम रणमल को सौंपा गया, रणमल ने राज्य की सम्पूर्ण सेना में राठौड़ों को अधिकारी बनाया, और मारवाड़ के राठौड़ों को कुछ परगने भी जागीर में दे दिये, अर्थात् महाराणा को नाबालिग (अल्प-आयु) देख कर राज्य पर सब तरह से अपना अधिकार जमा लिया। महाराणा मोकल ने जवान होने पर भी उसको अपना विश्वासपात्र मामा समझ कर पूर्ववत् अपना सलाहकार बनाये रखा।

जब मंडोवर का राव चूंडा 1467 वि० (812 हिजरी = 1410 ई०) में मारा गया और उसके पुत्रों में राजतिलक के समय झगड़ा पैदा हुआ। उस समय चूंडा के छोटे पुत्र रणधीर ने अपने से बड़े और रणमल से छोटे भाई सत्ता को कहा कि, "यदि आपको राजतिलक कर दिया जावे, तो आप हमको क्या देंगे ?" इस पर सत्ता ने कहा कि, "अधिकार तो रणमल का है, परन्तु यदि तुम मदद करके ऐसा करो, तो आधा प्रदेश तुम को दे दूंगा।" रणधीर ने जो कि बड़ा बहादुर था, सत्ता को राजतिलक दे दिया। तब रणमल (जो गादी का उत्तराधिकारी था) नाराज होकर निकला, और महाराणा के पास चित्तौड़ चला आया, और सत्ता, मंडोवर पर राज्य करने लगा।[3] सत्ता के नरबद और रणधीर के नापा (नामक पुत्र) हुआ। कुंवर नरबद ने

---

1. इसका असली नाम हुसैन था।
2. यह घटना सन् 1421 ई० के लगभग की है। इस समय मांडू का सुलतान दिलावर खां नहीं, हौसंगशाह था। मेडिवल मालवा, पृ० 64। (सं०)
3. मंडोवर सम्बन्धी लिखा गया यह विवरण ठीक नहीं है। वस्तुतः चूंडा के मरणोपरान्त उसकी आज्ञानुसार ही रणमल अपने छोटे भाई कान्हा को राजगद्दी पर बैठा कर स्वयं मेवाड़ चला गया था। कुछ समय बाद कान्हा मर गया तब सत्ता मंडोवर की गद्दी पर बैठा। वह शराब पीकर मस्त रहता था तथा राज्य का सारा कार्य उसका छोटा भाई रणधीर देखता था। जोधपुर ख्यात०, भाग 1, पृ० 33-34। (सं०)

की। इसके बाद सब छोटे भाईयों ने दस्तूर के अनुसार नजरें पेश की, फिर महाराणा मोकल व बाईजीराज ने चूंडा को अपने राज्य के सभी मुसाहिबों में मुख्य मुसाहिब (प्रधान) होने की सनद देकर, राज्य का सब काम उसको सौंप दिया।

चूंडा बहुत योग्य और बहादुर सरदार था। वह न्याय के साथ अपनी प्रजा को हर तरह से आराम में रखता था। उसने ऐसा अच्छा प्रबंध किया कि, जिससे राज्य और प्रजा दोनों को लाभ पहुँचा। सम्पूर्ण राज्य का काम चूंडा के अधिकार में होने के कारण कितने ही लोग उससे नाराज रहते थे। क्योंकि यह एक आम कायदे (सामान्य रीति) की बात है कि राज्य में जो दुष्ट प्रवृति वाले आदमी होते हैं, वे उत्तम प्रबन्ध करने वाले व्यक्ति से नाराज ही रहा करते हैं। ऐसे आदमियों ने महाराणा मोकल और बाईजीराज के कान भरना शुरू किया, कि चूंडा ने अपनी सौगन्ध और वचन तो पूरा कर दिया, परन्तु अब खुद राज्य करना चाहता है। जैसा कि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा बुद्धि कम होती है, बाईजीराज ने लोगों के बहकावे में आकर चूंडा को कहलवाया कि, "यदि तुम मोकल के नौकर हो, तो मेवाड़ से बाहर जहां जी चाहे चले जाओ और यदि राज्य चाहते हो तो मैं, अपने पुत्र को लेकर तुम कहो वहां चली जाऊं।" चूंडा तो सच्चा, साफ और धर्म वाला था, उसने कहा, कि "मैं तो अभी जाता हूं, परन्तु मेरे भाई और स्वामी मोकल की रक्षा और राज्य की देख-रेख अच्छी तरह से रखना। ऐसा न हो कि राज्य की बरबादी हो जावे।" यह कह कर आप अपने सभी छोटे भाईयों सहित मेवाड़ से चल दिया। केवल राघवदेव को महाराणा की सुरक्षा के लिये छोड़ा। चूंडा यहाँ से रवाना होकर मांडू के बादशाह

जिसके बाद उसकी बहिन हंसबाई की शादी महाराणा लाखा के साथ होना, जिसके गर्भ से महाराणा मोकल पैदा हुआ। इन बातों के लिये कम से कम नौ-दस वर्ष समय चाहिये।

लेकिन श्यामलदास का यह अनुमान भी ठीक नहीं है। क्योंकि कोट सोलंकियान के शिलालेख से सं० 1475 वि० तक महाराणा लाखा का जीवित होना प्रमाणित होता है। अतः मोकल का राज्याभिषेक इसके बाद ही हुआ होगा। (सं०)

चित्तौड़ में ही मर गया और नरबद को महाराणा मोकल ने बड़े अनुराग के साथ अपने पास रखकर एक लाख रुपयों की आमदनी-वाला कायलाणा का पट्टा जागीर में दिया।

जब मंडोवर पर नरबद का आधिपत्य था, उन दिनों रूण गांव के स्वामी सींहड़ा सांखला ने अपनी बेटी सुप्यारदे की शादी नरबद के साथ करना स्वीकार किया था। परन्तु उसके मंडोवर से अपदस्थ हो जाने के बाद रूण के सांखले ने सुप्यारदे का विवाह सींधलों में जैतारण के नरसिंह बीदावत के साथ कर दिया। एक दिन का वर्णन है कि, नरबद ने महाराणा मोकल के सामने लम्बा सांस भरा (उच्छ्वास छोड़ा)। उस पर महाराणा ने कहा कि, यह उच्छ्वास आपने मंडोवर के हेतु लिया या किसी दूसरी तकलीफ (कष्ट) के कारण से। उसने कहा कि, "मंडोवर तो मेरे ही घर में है, परन्तु मेरी मांग सांखलों ने नरसिंह बीदावत जैतारण वाले को ब्याह दी, उसका मुझको बड़ा रंज है।" यह सुन कर महाराणा ने सांखलों को कहलाया कि, नरबद की मांग देनी चाहिये। तब सांखलों ने डर कर निवेदन किया कि, सुप्यारदे की तो शादी हो चुकी, अब उसकी छोटी बहिन को हम नरबद से ब्याह देंगे। महाराणा ने यह बात नरबद से कही। तब नरबद ने निवेदन किया कि, "यदि सुप्यारदे आरती करे, तो उसकी छोटी बहिन से शादी करूं।" महाराणा के कहने से सांखलों ने इस शर्त को भी स्वीकार कर लिया।

यहां से शादी करने हेतु नरबद की बारात रवाना हुई। परन्तु यह शर्त स्वीकार करने के समय सुप्यारदे का पति नरसिंह सींधल महाराणा के दरबार में उपस्थित था। आपस की तानाकशी से वह तुरन्त ही सवार होकर जैतारण पहुंचा। उधर सांखले भी सुप्यारदे को लेने के लिये आये। नरसिंह ने उसको भेजने से इन्कार किया। जिस पर सुप्यारदे ने बहुत कुछ लाचारी पूर्वक विनती की और अन्त में नतीजा यह निकला कि, नरसिंह ने सुप्यारदे से आरती न करने का पूरा वचन लेकर उसे विदा किया। सुप्यारदे

होता है कि, सहायतार्थ आई मेवाड़ी सेना को रणमल ने मंडोवर में भी प्रविष्ट नहीं होने दिया था। इससे रुष्ट होकर मेवाड़ वाले घायल, नरबद को उठा कर अपने साथ ले गये थे। (सं०)

यह सोच कर कि, रणधीर आधा हिस्सा किस बात का लेता है, एक दिन किसी आमदनी के सींगा से (आय के मद से) आई हुई रुपयों की थैली अकेले ने ही रखली। इस पर आपसी झगड़ा बढ़ा। नरवद पाली के सोनगरों का भानजा, और नापा उनका जमाई था। नरवद ने अपने ननिहाल की किसी छोकरी को सिखा कर नापा को जहर दिला दिया, जिससे वह मर गया। अब नरवद रणधीर को मारने की चिन्ता में लगा। रणधीर को इस बात की खबर नहीं थी, परन्तु दयाल नामक एक मोदी ने उसको इस बात की सूचना दे दी। यह सुन कर रणधीर अपने राजपूतों सहित वहां से निकल कर चित्तौड़ चला आया और रणमल से मिला, तथा कहा कि, "चलो तुमको मंडोवर का राज्य दिलाऊं।" इस पर रणमल ने महाराणा मोकल से निवेदन किया और उन्होंने रणमल की सहायता के लिये अपनी सेना साथ लेकर मंडोवर की तरफ प्रस्थान किया।[1] यों तो चूंडा के सभी पुत्र महाराणा के मामा लगते थे, परन्तु रणमल से उसका अधिक अनुराग था। इसका यह कारण था कि, वह उसका नौकर था और कई शुभ कार्य भी उसने किये थे। दूसरे मंडोवर का वास्तविक अधिकारी भी वही था। इसलिये महाराणा ने रणमल की ही सहायता की।

महाराणा की फौज के आने का विवरण सुनकर मंडोवर में नरवद ने अपने पिता सत्ता से कहा कि, "यह शत्रुता मैंने खड़ी की है, इसलिये इसका जवाब मैं ही दूंगा।" यह कह कर उसने अपने राजपूतों सहित महाराणा की सेना का सामना किया, जिसमें चौहथ ईदा और जीवा ईदा आदि बहुत से राजपूत मारे गये। नरवद भी घायल हुआ। तलवार के घाव से उसकी एक आंख फूट गई। फिर महाराणा मोकल रणमल को राजतिलक[2] देकर सत्ता व नरवद को अपने साथ चित्तौड़ ले आया।[3] सत्ता तो कुछ समय बाद

1. इस समय महाराणा मोकल ने रणमल की सहायता के लिए केवल सेना भेजी थी। वह स्वयं मंडोवर की तरफ नहीं गया था। (सं०)
2. मुंशी देवीप्रसाद की राय से पता चलता है कि, 1475 वि० (821 हि० =1481 ई०) में रणमल मंडोवर का स्वामी बना था।
3. महाराणा मोकल द्वारा "रणमल का राजतिलक करना" सत्य नहीं है। जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 1, पृ० 34-35 से प्रमाणित

यहां पर इस विवरण के लिखने से हमारा उद्देश्य यह था कि गद्दी से हटाये जाने के कारण नरवद की मांग साँखलों ने दूसरे को ब्याह दी। उस पर महाराणा मोकल ने नरवद को मदद देकर उसकी हीनता को दूर करने के लिये सींहड़ की दूसरी लड़की के साथ शादी करवाई। जिस पर भी इतना झगड़ा हुआ। तो भला कर्नल टॉड का यह लिखना कैसे माना जा सकता है? कि, महाराणा हमीरसिंह के साथ मालदेव की विधवा लड़की ब्याही गई।

अब हम यहां से महाराणा का शेष ऐतिहासिक विवरण लिखते हैं—

नागौर का अधिकारी फिरोजखां, जिसको स्वाधीन शासक कहना चाहिये, एक बड़ी सेना तैयार कर झगड़े के इरादे से रवाना हुआ। यह खबर सुन कर महाराणा मोकल भी अपनी सेना सहित मुकाबले के लिए रवाना हुआ और गांव जोताई के मैदान में पड़ाव डाला। जहां रात के समय फिरोजखां अपनी फौज के साथ बड़ी दूर से धावा करके मेवाड़ की फौज पर आ गिरा। दोनों तरफ के बहादुरों ने बड़ी वीरता के साथ लड़ाई की। इस लड़ाई में महाराणा मोकल की सवारी का घोड़ा मारा गया। यह देख कर डोडिया धवल के पौत्र सवलसिंह ने अपना घोड़ा महाराणा को भेंट कर दिया, तथा आप स्वयं बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर मारा गया। महाराणा मोकल भाग कर चित्तौड़ आया। फिरोजखां को विजय श्री प्राप्त हुई। इस लड़ाई में महाराणा के 3,000 आदमी मारे गये।[1]

जब फिरोजखां जीत कर निशान उड़ाता हुआ और सम्पूर्ण मेवाड़ को लूटता हुआ मालवा की तरफ चला, तो महाराणा को इस बात से आत्मग्लानी पैदा हुई। उन्होंने पुनः अपने बहादुर राजपूतों को एकत्रित कर फिरोजखां की तरफ प्रस्थान किया। फिरोजखां भी यह बात सुनकर सादड़ी और प्रतापगढ़ के पहाड़ों की तरफ मुड़ा, तथा जावर के स्थान पर, जो उदयपुर से दक्षिण की ओर लगभग दस कोस की दूरी पर है, दोनों फौजों का मुकाबला हुआ। यहाँ पर फिरोजखां की फौज का वैसा ही हाल हुआ, जैसा कि, जोताई के मकाम पर मेवाड़ की सेना का हुआ था। यद्यपि तारीख-इ-फरिश्ता आदि मुसलमानों के इतिहास ग्रन्थों में इसका वर्णन तक नहीं

---

1. वेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ० 148, टिप्पणी 4। (सं०)

अपने पीहर रूण पहुँची। नरवद की बारात भी वहां आई। सांखलों ने सुप्यारदे को नरवद की आरती करने के लिए कहा। परन्तु उसने इन्कार किया। तब सांखलों ने कहा कि, "बाई तेरे पति को जाकर कौन कहता है? इस समय यदि तू आरती नहीं करेगी, तो नरवद हमको मारेगा।" पीहर वालों के कहने से सुप्यारदे ने नरवद की आरती की। उस अवसर पर नरसिंह सींधल का नाई वहां उपस्थित था, उसने जाकर यह हाल नरसिंह से कह दिया। यहां पर सुप्यारदे ने नरवद से कहलाया कि, "मेरे द्वारा आरती करने की खबर मेरे पति को मिलेगी तो, मुझे बड़ा कष्ट उठाना होगा।" नरवद ने कहा कि, "यदि तेरा पति तुझको कष्ट देवे, तो मुझे लिखना मैं उसकी खबर लूंगा।"

देवयोग से वैसा ही हुआ। जब सुप्यारदे जैतारण गई, तो उसके पति ने पलंग का पाया उसकी छाती पर रख कर दूसरी औरत को पलंग पर सुलाया। सुप्यारदे ने बहुतसी लाचारी विनती की। लेकिन उसने एक भी नहीं सुनी। अन्ततः यह सूचना सुप्यारदे की सास को मिली और वह उसको छुड़ा ले गई। सुप्यारदे ने यह सारा हाल नरवद को लिख भेजा। नरवद ने कागज पढ़ कर एक रथ में अच्छे तेज बैल जुतवाये और कागज लाने वाले आदमी सहित आप उसमें बैठ कर जैतारण की तरफ रवाना हुआ। जब गांव के पास प.चा, तो उसने उसी आदमी के हाथ पुरुषों के वस्त्र भेज कर सुप्यारदे को अपने आने की सूचना दी। उस समय सभी सींधल लोग रावलों का तमाशा देखने को गये हुए थे। सुप्यारदे पुरुष के वस्त्र पहन कर नरवद के पास चली आई। पीछे से जब सींधलों को इस बात का समाचार मिला, तो ये सब लोग नरवद के पीछे चढ़ दौड़े। कुछ दूर आगे मार्ग में एक नदी ढावों पूर (किनारों तक) बह रही थी। उसको देखकर सुप्यारदे ने नरवद से कहा कि, "सींधलों के हाथ आने से तो नदी में डूब मरना ठीक है।" यह सुन कर नरवद ने बैलों को नदी में डाल दिया। बैल बड़े तेज और बलवान थे, वे तुरन्त ही पार निकल गये। सींधलों ने भी उसके पीछे अपने घोड़े नदी में डाले। नरवद तो सूर्य उदय होते कायलाणे पहुंच गया। परन्तु उसका भतीजा आसकरण, जो खबर के लिये आया था, सींधलों से मुकाबला होने पर काम आया। यह बात महाराणा मोकल को पता चली, तब उन्होंने नरवद को कायलाणा से चित्तौड़ बुला लिया और सींधलों को धमकाया कि, वह तुम्हारी औरत को ले गया और तुमने इसके भतीजे को मार डाला। अब झगड़ा नहीं करना चाहिये।

था ही नहीं मिला। चाचा, मेरा और महपा पंवार, ये तीनों अपने कुटम्ब के दस-बीस आदमियों सहित महाराणा के डेरे में पहुँचे। मलेसी ने इन लोगों को बेधड़क आते हुए देखकर महाराणा से निवेदन किया। इतने ही में तो उन्होंने एकदम हमला कर दिया। महाराणा मोकल और महाराणी हाड़ी, जो उस वक्त डेरे में थी और मलेसी डोडिया, ये तीनों 19 आदमियों को मार कर बड़ी बहादुरी के साथ काम आये और चाचा व महपा पंवार कुछ घायल हुए। इस समय महाराजकुमार कुम्भा बालक था, इस कारण ये बदमाश शीघ्रता के साथ अपने औरत व बच्चों को चित्तौड़ से निकाल कर पई-कोटड़ी के पहाड़ों में जा रहे।

इस महाराणा ने जहाजपुर के स्थान पर बादशाह फिरोजशाह के साथ लड़ाई की। जिसमें बादशाह हार कर उत्तर की तरफ भागा। यह बात श्री एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के श्लोक 43–44 में[1] लिखी है। यह प्रशस्ति उक्त महाराणा के पौत्र महाराणा रायमल के समय की है और कुम्भलमेर की प्रशस्तियों में भी लिखा है। परन्तु इन प्रशस्तियों के अतिरिक्त इस लड़ाई का विवरण दूसरी जगह कहीं नहीं मिला। अनुमान से पता चलता है कि, यह बादशाह नागौर वाला फिरोजखां होगा, जिसको उक्त महाराणा ने दूसरी बार फिर परास्त किया था।

महाराणा मोकल ने पुष्कर तीर्थ में सुवर्ण का तुलादान किया। चित्तौड़ पर द्वारिकानाथ और समिद्धेश्वर आदि के कई मन्दिर बनवाये। बांधनवाड़ा गांव, जो अब अजमेर जिले में है और रामा गांव, जो एकलिंगजी से एक कोस दूरी पर स्थित है, को इसने श्री एकलिंगजी के भेंट किये थे। इस महाराणा ने अपने छोटे भाई बाघसिंह के संतान न होने के कारण उसके नाम पर श्री एकलिंगजी में "बाघेला तालाब बनवाया। श्री एकलिंगजी के चारों तरफ कोट भी महाराणा द्वारा बनाया हुआ है।

महाराणा मोकल के पुत्र— 1. कुम्भा, 2. क्षेमकरण, 3. शिवा, 4. सत्ता, 5. नाथसिंह, 6. वीरमदेव और 7. राजधर थे।

---

1. भावनगर इन्सक्रिप्शंस, पृ० 120; ओझा ने यह युद्ध बम्बावदे के हाड़ाओं के साथ होना लिखा है न कि, फिरोजशाह के साथ। —ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 275। (सं०)

लिखा है, परन्तु चित्तौड़ पर महाराणा मोकल के बनाये हुए समिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति इसकी साक्षी देती हैं।[1]

1489 विक्रमी (835 हि० = 1432 ई०) में गुजरात का बादशाह अहमदशाह बड़ी सेना लेकर सैनिक अभियान के लिए निकला और नागौर व मेवाड़ की तरफ अग्रसर हुआ। पहले उसने डूंगरपुर वालों से पेशकश (नजराना) ली और इसके बाद देलवाड़ा और कैलवाड़ा को लूटता हुआ मारवाड़ की तरफ चला।[2] यह हाल सुनकर महाराणा मोकल ने अपनी सेना एकत्रित कर अहमदशाह पर धावा करने के लिए चढ़ाई की। उस समय महाराणा खेता की पासवान खातण के बेटे, चाचा और मेरा भी उपस्थित थे, जो बड़े बहादुर और एक सैनिक दल के अधिकारी थे। महाराणा ने हाड़ा मालदेव के कहने से उनको एक वृक्ष की तरफ इशारा करके पूछा कि, "काकाजी इस वृक्ष का क्या नाम है?" मालदेव ने तो यह व्यंग के रूप में कहा था, क्योंकि चाचा और मेरा दोनों खातण की कोख से उत्पन्न हुए थे और वृक्ष को खाती ही पहिचानते हैं। परन्तु महाराणा इस बात को नहीं समझे। यह सुनते ही चाचा और मेरा दोनों के कलेजे में आग लग गई।

1490 विक्रमी (836 हि० = 1433 ई०) में जब सेना का पड़ाव वागौर में हुआ, उस समय चाचा और मेरा ने कितने ही आदमियों को तो अपने साथ मिला लिया। केवल एक मलेसी डोडिया, जो शलजी का भाई

---

1. फिरोजखां सम्बन्धी इन दोनों घटनाओं के सम्बन्ध में मेवाड़ पक्षीय शिलालेखों और प्रशस्तियों के आधार पर ओझा का मत है कि, सं० 1485 वि० में महाराणा मोकल और नागौर के फिरोजखां का एक ही युद्ध हुआ, जिसमें फिरोजखां हारा था। जोताई में महाराणा की हार का उल्लेख बाद के फारसी ग्रन्थों के आधार पर ही लिखा गया है, जो विश्वनीय नहीं हो सकता। ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 273। (सं०)
2. गुजरात के शासक अहमदशाह ने इस समय कोटा और बूंदी के शासकों से भी पेशकश वसूल की। ब्रिग्ज, फरिश्ता०, भाग 4, पृ० 32, कामिसराट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ० 87। (सं०)

में महाराणा मोकल का विद्यमान होना लिखा है। यही बात ए० के० फार्वस् कृत-गुजरात के इतिहास "रासमाला" में लिखी है। इसी तरह महाराणा अमरसिंह प्रथम के समय में बने हुए अमरकाव्य नामक ग्रन्थ में भी महाराणा कुम्भा का 1490 वि० (837 हि०=1433 ई०) मे गद्दी पर बैठना लिखा है। प्रयोजन यह है कि, 1475 वि० (821 हि०=1418 ई०) में इस महाराणा को गद्दीनशीनी सत्य मालूम नहीं होती।

अब हम इस महाराणा के गद्दी पर बैठने के समय का विवरण लिखते हैं :—

जब महाराणा मोकल मारा गया, उस समय राव रणमल मंडोवर में था। यह समाचार मिलते ही उसने अपने सिर से पगड़ी उतार कर फैंटा बांध लिया और यह प्रतिज्ञा करली कि, महाराणा मोकल के मारने वालों (चाचा और मेरा) को मार कर सिर पर पगड़ी बाधूंगा। फिर वहां से चल कर वह चित्तौड़ आया और महाराणा कुम्भा को नजराना किया। उक्त महाराणा की बाल्यावस्था के कारण सम्पूर्ण राज्य का प्रबन्ध करने के बाद, वह चाचा और मेरा को मारने के लिये पांच सौ सवार लेकर रवाना हुआ। उसने पई के पहाड़ों पर कई धावे किए, लेकिन जगह विकट होने के कारण उनको पकड़ नहीं सका।

पई की पाल के एक गमेती भील[1] को पहले रणमल ने मार डाला था। उसके बेटे, कई भीलों सहित चाचा व मेरा की सहायता कर रहे थे। रणमल का जब कुछ दाव नहीं लगा, तब वह घोड़े पर चढ़ कर अकेला उस गमेती के घर गया, जिसको कि, उसने मारा था। उस गमेती की विधवा स्त्री वहां बैठी थी और उसके लड़के कहीं बाहर गये हुए थे। भीलनी ने रणमल को देखकर कहा कि, "वीर तुमने बहुत बड़ा अपराध किया है, परन्तु अब तुम घर पर चले आये हो इससे अब हम तुमको कुछ नहीं[2] कह सकते ?"

---

1. एक पाल के मुखिया को "गमेती" कहा जाता है। (सं०)
2. भीलों में अब भी यह रिवाज है कि, चाहे जैसा शत्रु हो यदि वह उनके घर पर आ जाये, तो फिर उसको किसी तरह का नुकसान नहीं पहुंचाते।

अध्याय पांच

महाराणा कुम्भा और महाराणा रायमल

1. महाराणा कुम्भकरण (कुम्भा)—

यह महाराणा 1490 विक्रमी (836 हि० = 1433 ई०) में अपने पिता मोकल की जगह राजगद्दी पर बैठा। कर्नल टॉड और बड़वा भाटों ने इसके गद्दी पर बैठने का सम्वत् 1475 विक्रमी (821 हि०—1418 ई०) में लिखा है, परन्तु वह गलत है। इस गलती को सिद्ध करने के लिए हमको कई एक विश्वसनीय प्रमाण मिले हैं। प्रथम, चित्तौड़ की महासतियों में किले की पश्चिमी दीवार पर महाराणा मोकल द्वारा बनाया हुआ (समिद्धेश्वर) महादेव का मन्दिर विद्यमान है, जिसकी प्रशस्ति के 74 वें श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि, 1485 विक्रमी (831 हि० = 1428 ई०) में महाराणा मोकल ने अपने हाथ से इस मन्दिर की प्रतिष्ठा की, तथा 75 वां श्लोक आशीर्वादात्मक है, जिसका अर्थ है कि, "इन्द्र जहां तक स्वर्ग में राज्य करें और जहां तक जमीन को शेषनाग अपने सिर पर रखें, वहां तक राज्यलक्ष्मी इस महाराणा मोकल की भुजा पर निवास करे।" इस श्लोक के अर्थ से साफ प्रकट है कि, महाराणा मोकल उस समय विद्यमान था। इसके अतिरिक्त दूसरा प्रमाण यह है कि, तारीख-इ-फरिश्ता[1] की दूसरी जिल्द के 190 पृष्ठ पर अहमदशाह गुजराती के वर्णन में 836 हिजरी (1489 वि० = 1432 ई०)

---

1. ब्रिग्ज, फरिश्ता०, भाग 4, पृ० 32। (सं०)

जवाव दिया कि, "ठाकुर तो मेरे कपड़े पहन कर वाहर निकल गये। मैं विना कपड़े नंगी बैठी हूँ।" यह सुन कर रणमल वापस मुड़ा। इसी समय में चाचा व मेरा उसके साथ वाले राजपूतों के हाथों से मारे गये। चाचा का लड़का एक्का भाग निकला। एक्का और महपा पंवार दोनों ने मांडू के वादशाह महमूद के पास जाकर शरण ली।

राव रणमल मेवाड़ के लोगों की उन सभी लड़कियों को, जिन्हें चाचा और मेरा पकड़ ले गये थे, एकत्रित कर अपने साथ देलवाड़ा ले आया। उस समय वहां पर राघवदेव भी फौज लेकर आ गया था। जव रणमल ने आदेश दिया कि, "ये लड़कियां राठौड़ों के घर में डाल दी जावें।" यह वात राघवदेव को बुरी लगी। वह उठ कर सव लड़कियों को अपने डेरे में ले आया। यह वात रणमल को वुरी लगी। परन्तु वह चुप रहने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता था? क्योंकि राघवदेव महाराणा लाखा का पुत्र और कुम्भा का काका था। परन्तु (इस घटना से) दोनों के मध्य शत्रुता पैदा हो गई। यहां से दोनों ने चित्तौड़ में आकर महाराणा कुम्भा से प्रणाम किया।

अव राघवदेव और रणमल दोनों में खट-पट होने लगी। परन्तु रणमल के हाथ में समस्त रियासत का काम था और महाराणा भी उसी के प्रभाव में था। इस कारण उसने राघवदेव को मरवा डाला। रणमल ने एक दिन राघवदेव को महाराणा कुम्भा के सामने वुला कर सरोपाव दिया। जिसके अंगरखे की दोनों वाहों के मुंह सिले हुए थे। जव राघवदेव को एक तरफ ले जाकर प्रदान की हुई पोशाक पहिनाने लगे, तो अंगरखे की वाहों के मुंह सिले हुए होने के कारण राघवदेव के दोनों हाथ उनमें फस गये। उसी समय रणमल के दो राजपूतों ने दोनों तरफ से उस पर कटार के वार किये, जिससे राघवदेव मारा गया।[1] अव रणमल समस्त कारोवार का मालिक

---

1. नैणसी, ख्यात०, भाग 1, पृ० 53 के अनुसार राघवदेव लाखावत मेवाड़ प्रदेश में लूटमार करता था। इस कारण उसको महाराणा कुम्भा की सहमति से मरवाया गया था। लेकिन नैणसी के इस कथन को कविराजा श्यामलदास के अनुरूप गौरीशंकर हीराचंद ओझा और उसके वाद के इतिहासकारों ने भी एकपक्षीय माना है। (सं०)

इतने में भीलनी के पांचों लड़के भी आ गये। भीलनी ने अपने बेटों के आने से पहले रणमल को घर के भीतर बैठा कर, उसका घोड़ा घर के पीछे बंधवा दिया था। जब उसके बेटे आये तो उनसे कहने लगी कि, "इस समय अपने घर पर रणमल आ जावे तो तुम क्या करोगे?" उन्होंने कहा कि, "माता यदि वह हमारे घर पर आ जावे, तो हम उसको कुछ नहीं कहेंगे।" यह सुन कर भीलनी ने बेटों की प्रशंसा की और राव रणमल को बाहर बुलवाया। रणमल ने उस भीलनी को अपनी बहिन बनाया और उसके बेटों को भाई कह कर बतलाया। भीलनी ने कहा कि "हमारे योग्य कोई चाकरी हो, सो कहो।" रणमल ने कहा कि, "मैं चाचा और मेरा को मारने के लिये तुम्हारे पास आया हूं।" इस पर उन भीलों ने चाचा व मेरा को सहायता नही देने और रणमल की सहायता में रहने का वचन दिया। फिर रणमल अपने रों में आया।

दूसरे ही दिन मेवाड़ और मारवाड़ के पांच सौ राजपूतों को साथ लेकर रणमल पई की तरफ रवाना हुआ। वहां पर उन भीलों ने कहा कि, "आपको थोड़े दिन देर करनी चाहिये। क्योंकि मार्ग में एक शेरनी व्याई है।" रणमल ने कहा कि, कोई चिन्ता की बात नहीं और आगे को चल दिया। रास्ते में जब शेरनी डकराकर सामना करने आई तो रणमल ने अपने बेटे अडमाल (अडवाल) को उसे मारने का आदेश दिया। तब उसने आगे बढ़कर तलवार[1] से उस शेरनी को समाप्त कर दिया। आगे बढ़ कर देखा, तो ऊपर की तरफ खाली पत्थरों का कोट नजर आया, जो चाचा व मेरा ने अपने रहने के स्थान के चारों तरफ बना रखा था। रणमल अपने साथियों सहित उसके भीतर घुस गया। भीतर जाते ही कुछ लोग चाचा के स्थान पर गये और कुछ मेरा के स्थान पर गये। राव रणमल ने महपा पंवार के मकान पर जाकर आवाज दी कि, बाहर निकल। महपा तो पहली आवाज सुनते ही जनानी पोशाक (स्त्री के कपड़े) पहन कर औरत के भेष में बाहर निकल गया। दूसरी बार आवाज देने पर भीतर से एक डोमनी ने

---

1. यह वर्णन इस तरह भी प्रसिद्ध है कि, चांदण नामक खिड़िया चारण रणमल के साथ था। जब रणमल की तलवार से शेरनी को थोड़ासा घाव लगा, उस समय चांदण ने कटार से शेरनी को मार कर कहा कि, "शस्त्र इस तरह चलाना चाहिये।"

पर जब दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ ।[1] भयंकर युद्ध के बाद बादशाह महमूद ने भाग कर मांडू के किले में शरण ली । पीछे से महाराणा कुम्भा भी वहाँ जा पहुंचा और किला घेर लिया । महपा पंवार तो पहले ही किले से निकल कर भाग गया था । महमूद ने किले से निकल कर मेवाड़ की फौज पर पुनः हमला किया । लेकिन राव रणमल ने बादशाह को गिरफ्तार कर लिया । उसकी समस्त सेना तितर-बितर हो गई । महमूद को लेकर महाराणा चित्तौड़ आया । जहां छः महीने तक कैद रखने के बाद कुछ दण्ड लेकर उसे छोड़ दिया । यह वर्णन फरिश्ता आदि फारसी इतिहास लेखकों ने नहीं लिखा । लेकिन इस जीत का चिह्न चित्तौड़ किले पर बना "कीर्तिस्तम्भ" अब तक विद्यमान है, जो इस लड़ाई की यादगार में 1505 वि० (852 हि० = 1448 ई०) में बनाया गया था, जिसकी प्रशस्ति भी वहां पर विद्यमान है ।[2]

अब हम राव रणमल के मारे जाने और मंडोवर पर मेवाड़ का अधिकार होने का हाल लिखते हैं—

---

1. समकालीन फारसी ग्रन्थ "मासीर-इ-महमूदशाही" में इस घटना का कोई विवरण नहीं हैं । परन्तु मेवाड़ पक्षीय समकालीन पुरातात्विक प्रमाणों में महाराणा कुम्भा की सुलतान महमूद पर सारंगपुर में विजय के स्पष्ट उल्लेख को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता । राणकपुर के जैन मन्दिर का सं० 1496 वि० का शिलालेख भावनगर इन्स्क्रिप्शंस, पृ० 114, कुम्भलगढ़ की अप्रकाशित प्रशस्ति श्लोक 268–270, सोमानी, महाराणा कुम्भा, पृ० 89 । (सं०) गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार यह संघर्ष सं० 1494 वि० में सारंगपुर के निकट हुआ था, जिसमें महाराणा कुम्भा की विजय हुई । ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 285-286 । (सं०)
2. मासीर-इ-महमूदशाही के आधार पर उपेन्द्रनाथ डे के समान ही, रामवल्लभ सोमानी भी इस घटना को प्रमाणित नहीं मानता । कीर्तिस्तम्भ के विषय में सोमानी का कथन है कि, कुम्भा द्वारा निर्मित कीर्तिस्तम्भ तत्कालीन परम्परानुसार उपास्य विष्णु के निमित बनवाया गया स्तम्भ है न कि, महमूदशाह की विजय के उपलक्ष में । सोमानी, महाराणा कुम्भा, पृ० 89-90 । (सं०)

बने बैठा। राघवदेव के मरने से जो कुछ खटका था, वह भी निकल गया। अब जहां देखिये वहां मारवाड़ी ही मारवाड़ी लोग दिखाई देने लगे।

अब हम मालवा के बादशाह महमूद की गिरफ्तारी का हाल लिखते हैं। 1496 विक्रमी (843 हि० = 1439 ई०) में जब महाराणा कुम्भा ने राव रणमल से कहा कि, उस हरामखोर महपा पंवार को उसके अपराध का दण्ड नहीं मिला, जिसने हमारे पिता को मारा था। तब रणमल ने निवेदन किया कि, एक खत बादशाह महमूद मालवी को लिखिये। यदि वह महपा पंवार को हमें सौंप देवे तो ठीक, अन्यथा लड़ाई करके लेंगे। महाराणा ने बादशाह को खत भेजा। लेकिन उसने खत का कठोर जवाब दिया। कहा कि, "क्या कभी ऐसा हुआ है कि, अपनी शरण में आये हुए आदमी को कोई बहादुर गिरफ्तार करा देवे ? यदि आपको लड़ाई करना स्वीकार हो तो आइये, मैं भी तैयार हूं।" इस पत्र को देखते ही महाराणा कुम्भा ने सैनिक अभियान का आदेश दे दिया।[1] उधर से बादशाह महमूद भी अपनी फौज लेकर रवाना हुआ। उस समय चूंडा भी बादशाह के पास उपस्थित था। उसको बादशाह ने कहा कि. तुम भी हमारे साथ चलकर रणमल से अपने भाई राघवदेव का बदला लो। तब चूंडा ने कहा कि, महाराणा पर चढ़ाई करने का हमारा अधिकार नहीं है। वह हमारे स्वामी हैं। यदि राव रणमल अपनी सेना लेकर आया होता, तो निस्संदेह मैं आपके साथ रहता। यह कह कर चूंडा तो बादशाह की दी हुई अपनी वर्तमान जागीर पर चला गया।

महमूद पर चढ़ाई करने के समय महाराणा कुम्भा के साथ 1,00,000 सवार और 1400 हाथियों की की सेना होना प्रसिद्ध है। मेवाड़ की सीमा

---

1. उपेन्द्रनाथ डे कृत मेडिवल मालवा, पृ० 169 के अनुसार सुलतान महमूद खिलजी ने इस समय (1437-38 ई०) महाराणा से संघर्ष की स्थिति को टालने के लिए महपा पंवार को मालवा छोड़ने का आदेश दे दिया था। लेकिन महाराणा कुम्भा ने मांडू के पूर्व सुलतान हौसंगशाह के पुत्र उमरखां को दिये गये आश्वासन के कारण उसकी सहायता के लिये ही सम्भवतः इस समय महमूदशाह के विरुद्ध सैनिक अभियान का आदेश दिया हो। (सं०)

भारमली के पूछने पर बातों ही बातों में रणमल ने महाराणा कुम्भा को मारने और राज्य छीन लेने की सम्पूर्ण युक्ति कह सुनाई।

यहाँ पर रणमल का वैसा ही हाल हुआ, जैसा कि पंचाख्यान के चौथे लब्ध-प्रकाश में लिखा है। उस स्वामी भक्त दासी (भारमली) ने ज्यों का त्यों सारा विवरण अपनी स्वामिनी बाईजीराज से जा कहा। यह भयंकर समाचार सुन कर सौभाग्यदेवी को बड़ी चिन्ता हुई। उसने अपने पुत्र महाराणा कुम्भा को बुला कर सारा विवरण कहा। तब दोनों मां बेटों ने सोचा कि, जहां देखो वहां राठौड़ ही राठौड़ दिखाई देते हैं। इसलिये अब रावत चूंडा को बुलवाना उचित है। यह सलाह कर महाराणा ने सांडनी सवार को चूंडा के पास भेजा। महाराणा का आदेश पहुंचते ही चूंडा जल्दी सवार होकर चित्तौड़ आया। रणमल ने बाईजीराज से निवेदन करवाई कि, "चूंडा का यहां आना अच्छा नहीं है। क्योंकि शायद बुढ़ापे में राज्य के लिये इसका दिल बिगड़ा हो।" तब बाईजीराज ने कहा कि, "जिसने राज्य का अधिकारी होकर भी अपने छोटे भाई को राज्य दे दिया हो, उसको किले पर बिल्कुल नहीं आने देने में तो लोग निंदा करेंगे, तथा वह थोड़े से आदमियों के साथ यहां आकर क्या कर सकता है? इसलिये उसके आने में कोई हानि नहीं है।" यह सुन कर रणमल चुप हो गया तथा चूंडा किले पर आया।

दो चार दिन के बाद एक डोमनी ने रणमल से कहा कि, "मुझको संदेह है कि, महाराणा आप पर घात करावेंगे।" रणमल को भी कुछ-कुछ संदेह हुआ। तब उसने अपने बेटे जोधा व कांधल आदि सब कुटुम्बियों को किले की तलहटी में रख कर कह दिया कि, "यदि मैं बुलाऊं तो भी तुम ऊपर मत आना।" जब रावत चूंडा और महाराणा कुम्भा के सलाह हुई कि, इन सबको ऊपर बुला कर मार डालना चाहिये। तो एक दिन महाराणा ने रणमल को फरमाया कि, जोधा कहां है? तब रणमल ने कहा, तलहटी में है। जब महाराणा ने उसे बुलाने को कहा, तो टालाटूली कर गया। इसी रात को भारमली ने महाराणा के इशारे से रणमल को खूब शराब पिलायी। नशा आ जाने के बाद उसको पगड़ी से पलंग पर कस कर बांध दिया। फिर महपा पंवार, एक्का और दूसरे आदमियों को साथ लेकर भीतर घुसा और रणमल पर हथियार चलाये। प्रसिद्ध है कि, तीन आदमियों को रणमल ने पानी के लोटे से मार डाला और आप भी मारा गया।[1]

---

1. सं. 1500 वि० में रणमल मारा गया, इस घटना का क़िस्सा कहानी

महाराणा कुम्भकर्ण के समय में भी राव रणमल का अधिकार बढ़ता ही गया। क्योंकि प्रथम तो उसने चाचा व मेरा से महाराणा मोकल का वैर लिया और उसके बाद बादशाह महमूद की लड़ाई में बड़ी वीरता और स्वामी भक्ति दिखलाई। इस बात से महाराणा कुम्भा के दिल में उसका विश्वास बढ़ता रहा। इसी अन्तराल में महपा पंवार और चाचा का बेटा एक्का अपना अपराध क्षमा कराने के लिये गुप्तरूप से किसी बहाने महाराणा कुम्भा के पैरों में आ गिरे। महाराणा बड़ा दयालु था। अतः दया देखकर उनका अपराध माफ कर दिया, तथा राव रणमल को बुलाकर कहा कि, "हम क्षत्री लोग शरणागत पालक कहलाते हैं और ये लोग हमारी शरण में आये हैं, इसलिये हमने इनका अपराध क्षमा कर दिया।" इस पर रणमल ने कहा, "खैर, आप की इच्छा"।

एक दिन का उल्लेख है, महपा पंवार ने महाराणा से निवेदन किया, कि, "राठौड़ों का दिल साफ नहीं है। मालूम होता है ये मेवाड़ का राज्य लेने का इरादा रखते हैं। क्योंकि चारों तरफ राठौड़ों का जाल फैला हुआ है।" परन्तु महाराणा को महपा पंवार के कहने पर पूरा विश्वास नहीं आया। उसने समझा कि यह रणमल का शत्रु है, इसलिये शायद बनावटी बात बनाली है। फिर एक दिन महाराणा तो सो रहे थे और एक्का पैर दाब रहा था। पैर दबाते-दबाते वह रोने लगा और उसकी आंखों से आंसू निकल कर महाराणा के पैर पर गिरे। गर्म-गर्म आंसू के टपकने से महाराणा की नींद उड़ गई। उसने एका से रोने का कारण पूछा तो, उसने कहा कि, "सीसोदियों के हाथ से मेवाड़ गई और राठौड़ स्वामी बनेंगे, इसी कारण से मुझे रोना आ गया।" इस बात पर महाराणा को रणमल की तरफ से संदेह तो हुआ, परंतु इस कथन को उसने बिलकुल सत्य भी मान लिया। इसी समय बाईजीराज सोभाग्यदेवी[1] की दासी भारमली, जिससे राव रणमल की दोस्ती थी, एक दिन रणमल के पास कुछ देर में पहुँची। उस समय रणमल शराब के नशे में चूर था। उसने भारमली से कहा, कि "देर से क्यों आई?" उसने कहा, कि "जिनकी मैं सेविका हूँ, उनके पास से छुट्टी मिली, तब आई।" इस पर नशे की स्थिति में राव ने कह दिया कि, "अब तू किसी की नौकर नहीं रहेगी। बल्कि जो लोग चित्तौड़ में रहना चाहेंगे, वे तेरे नौकर होकर रहेंगे।" तथा

1. महाराणा कुम्भा की मां। (सं०)

रणमल के मारे जाने पर जोधा तो भाग गया, और मंडोवर में रावत चूंडा ने जाकर अपना अधिकार जमाया। लेकिन रणमल का भतीजा नरवद महाराणा कुम्भा के पास चित्तौड़ में उपस्थित रह कर महाराणा का दिया हुआ, एक लाख रुपये की आमदनी का कायलाणे के पट्टे का उपभोग करता रहा। क्योंकि रणमल ने नरवद और उसके बाप सत्ता से मंडोवर का राज्य छीन लिया था। एक दिन का वृतांत है कि, महाराणा कुम्भा दरबार में बैठा था, उस समय सरदारों में से किसी ने कहा कि, "नरवद अच्छा राजपूत है, जो कोई उससे किसी चीज की मांग करता है, उसको देने में वह कभी इंकार नहीं करता।" महाराणा ने कहा कि "ऐसा तो नहीं होगा।" इस पर लोगों ने फिर निवेदन किया, कि "जो चीज उससे मांगली जाती है, वह उसी को दे देता है, और यदि मांगने वाला नहीं ले, तो किसी अन्य को दे देता है, लेकिन उस वस्तु को फिर वह अपने पास नहीं रखता।" तब महाराणा ने अपने एक खवास को भेज कर नरवद से हंसी के तौर पर कहलाया कि, आपकी आंख चाहता है। तथा खवास को कह दिया कि, आंख निकालने मत देना। खवास ने जाकर वैसा ही कहा। नरवद ने जान लिया कि, यह बात हंसी के तौर पर कहलाई है। खवास मुझे आंख निकालने नहीं देगा। यद्यपि उसकी बाँई आंख तो पहले ही मंडोवर की लड़ाई में तलवार से फूट चुकी थी, तथापि इस समय उसने खवास की नजर बचा कर दाहिनी आंख खंजर से निकाल कर उसको सौंप दी। खवास ने यह सब हाल महाराणा से कहा। इस पर महाराणा बहुत पछताया, और दौड़ कर नरवद के के मकान पर आया तथा उसकी बहुतसी खातिरदारी करके उसको डोढ़ी जागीर कर दी।

अब मंडोवर पर राव रणमल के पुत्र जोधा का वापस अधिकार होने का हाल सुनिये। एक दिन दादी राठौड़ जी ने, जो महाराणा मोकल की माता और कुम्भा की दादी और रणमल की बहिन थी, महाराणा से कहा, कि, "हे पुत्र मेरी चित्तौड़ शादी होने से रणमल का मारा जाना और मंडोवर का राज्य नष्ट होकर जोधा का जंगलों में मारा-मारा फिरना आदि सब

हमारे पास आई। उसमें 1500 विक्रमी (847 हि० = 1443 ई०) में राव रणमल का चित्तौड़ पर मारा जाना लिखा है। —ख्यात में आषाढ़, सम्वत् 1500 वि० लिखा है, जो ठीक नहीं है। (सं०)

उसी समय एक डोम ने किले की दीवार पर चढ़ कर ऊंची आवाज से ये पद गाये—"ज्यांका रणमल मारिया, जोधा भाग सके तो भाग।"[1] इस आवाज को सुनकर रणमल के पुत्र जोधा ने भागने की तैयारी की। उसी समय रावत चूंडा किले पर से तलहटी में जा पहुँचा। चित्तौड़ से थोड़ी ही दूर पर लड़ाई हुई, जिसमें जोधा के साथ वाले कितने ही राजपूत अर्थात् चरड़ा चंद्रावत, शिवराज, पूना भाटी, भीमा, वैरीशाल, वरजांग भीमावत और जोधा का चाचा भीम चूंडावत आदि मारे गये। भागते-भागते जोधा मांडल के तालाव पर आया। इस लड़ाई में कितने ही आदमी मारे गये और कितने ही तितर-वितर हो गये। मांडल के तालाव पर जोधा का भाई कांधल भी उससे आ मिला। फिर दोनों भाई भाग कर मारवाड़ की तरफ गये। पीछे से रावत चूंडा भी फौज लेकर वहां पहुंचा और उसने मंडोवर पर अपना अधिकार कर लिया। चूंडा ने अपने पुत्रों कुन्तल, मांजा और सूवा को वहां के प्रवन्ध के लिये रखा।[2]

कर्नल टॉड लिखता है कि, महाराणा मोकल की अल्प आयु के समय में चूंडा के मांडू से आने पर रणमल मारा गया और मंडोवर चूंडा ने जीत लिया। इससे पता चलता है कि, कर्नल टॉड ने यह विवरण वड़वों की पोथियों और प्रसिद्ध हुई कहानियों से लिखा होगा। क्योंकि हमने जो वर्णन ऊपर लिखा है, वह नैणसी मुहणोत मारवाड़ी की दो सौ वर्ष पहले लिखी हुई एक विश्वसनीय पुस्तक से लिखा है। प्रमाण में कुम्भलमेर में महाराणा कुम्भा के समय की प्रशस्ति के 250 श्लोक से भी जिसकी पुष्टि[3] होती है।

के रूप में विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता हैं। हमने संक्षिप्त रूप में लिख दिया है।

1. विश्वेश्वरनाथ रेऊ के अनुसार यह घटना कार्तिक सुदि 15, 1495 वि० तदनुसार नम्बर 2, 1438 ई० की रात्रि की है। रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ० 78। (सं०)
2. जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग 1, पृ० 40) के अनुसार मंडोवर के थाणे पर अक्का सीसोदिया, हीगोला अहाड़ा और रिणायर (रैणायर) मेहता को नियुक्त किया गया था। (सं०)
3. कविराजा मुरारिदान की भेजी हुई जोधपुर की तवारीख (ख्यात)

पर पुनः अधिकार हुआ। हमारी छानबीन के अनुसार एक चारण की बनाई हुई एक मारवाड़ी कविता[1] और दूसरे कुछ विवरणों के आधार पर सात वर्ष बाद ही उसका मंडोवर पर पुनः अधिकार होना सिद्ध होता।

1499 विक्रमी (846 हि० = 1442 ई०) में मालवे का बादशाह सुलतान महमूद खिलजी अपनी गिरफ्तारी की शर्मिन्दगी मिटाने मेवाड़ पर चढ़कर आया और पहाड़ के किनारे-किनारे होता हुआ सीधा कुम्भलमेर की तरफ गया।[2] महाराणा कुम्भा कुम्भलमेर और चित्तौड़ दोनों जगह उपस्थित नहीं था। वह चित्तौड़ से पूर्व की तरफ के पहाड़ों में किसी पर चढ़ाई करके गया हुआ था। जब बादशाह कुम्भलमेर के निकट पहुंचा, तो किले के बाहर कैलवाड़ा गांव[3] में बाण माता के प्रसिद्ध मन्दिर में (जिसके चारों तरफ सुदृढ़ कोट था), दीपसिंह[4] नामक महाराणा का एक राजपूत जो क़िले पर था, बहुत से

---

1. लाखावत सबल मेल दल लाखां, लोहां पांण धरा लेवाड़।
 कैलपुरे हेकण घर कीधो, मुरधर ने बाधो मेवाड़ ॥1॥
 खोसेलिया अभनमे खेतल, ज्यांवालां रेवतं ने जूंग।
 रंधिया रांणा तणै रसोड़ैं, मुरधर रा नीपजिया मूंग ॥2॥
 थांणो जाय मंडोवर थटियो, जोर करे लखपत रै जोध।
 कियो राज खूंड नवकोटां, "सात बरस" तांई सीसोद ॥3॥
 खेडेचां वाली धर खोसे, दस संहसा आकाय दईव।
 सरगांपुर रड़माल सिधायो, जोधै नींठ बचायो जीव ॥4॥
2. उपेन्द्रनाथ डे के अनुसार इस समय महाराणा कुम्भा का छोटा भाई क्षेमकर्ण सुलतान महमूदशाह की शरण में गया हुआ था। इस स्थिति लाभ उठाने के लिए ही सुलतान ने चित्तौड़ पर सैनिक अभियान किया था। वह मांडू से 26 रजब. सन् 846 हि०—नवम्बर 30, 1442 ई० के दिन रवाना हुआ। — मेडिवल मालवा, पृ० 171-172 (सं०)
3. कैलवाड़ा—25° 7 उत्तर 36° पूर्व में अरावली की श्रेणियों के मध्य में, कुम्भलगढ़ से लगभग 2 मील दक्षिण में तथा उदयपुर से 38 मील उत्तर में स्थित—राजपूताना गजेटियर, मेवाड़ रेजिडेन्सी, भाग 2 ए (1908) पृ० 117। (सं०)
4. "वैनीराय", ब्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं०अ०) भाग 4, पृ० 208। (सं०)

तरह से राठौड़ों की हानि हुई है। किन्तु उन लोगों ने तुम्हारा कुछ भी बुरा नहीं किया था। बल्कि रणमल ने चाचा व मेरा से तुम्हारे बाप का बदला लिया। तुम्हारे शत्रु मुसलमानों के साथ लड़ कर, लड़ाइयों में बड़ी वीरता दिखलाई थी।" अपनी दादी के ये वचन सुन कर महाराणा ने कहा कि, "आप जोधा को लिख देवें कि, वह मंडोवर पर अपना अधिकार कर ले। मैं इसमें नाराज नहीं होऊंगा। परंतु प्रकट रूप से चूंडा के लिहाज से कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि चूंडा के भाई राघवदेव को रणमल ने मारा था। वह कसक अब भी उसके दिल से निकली नहीं है।"

अपने पोते की यह इच्छा देखकर उन्होंने चारण डूला आसिया को जोधा के पास भेजा। यह चारण मारवाड़ की थलियों में गांव भाडंग और पड़ावे के जंगलों में पहुँच कर, क्या देखता है कि, राव जोधा अपने पचास घोड़ों और कुछ पैदलों सहित बाजरे के सिरों से अपनी भूख शान्त कर रहा है। चारण डूला आसिया ने जोधा को पहचान कर महाराणा कुम्भा की इच्छा और उनकी दादी का कहा हुआ सब वृतान्त उसे कह सुनाया। डूला का यह कहना ही जोधा को मंडोवर लेने का सहारा हुआ।[1] वह उसी समय बहुतसी सेना एकत्रित कर मंडोवर को चल दिया। वहां किले की रक्षा के लिये रावत चूंडा के तीन बेटे कुन्तल, मांजा व सूवा और थोड़े से लोग थे। तब असावधान किले वालों पर जोधा ने एक दम से हमला किया जिसमें चूंडा के तीनों बेटे कई राजपूतों सहित मारे गये।

कर्नल टॉड के वर्णनानुसार चूंडा के दो लड़को में से एक का यहीं और दूसरे का गोडवाड़ में मारा जाना पाया जाता है, जिससे तो हमको कुछ विवाद नहीं है। परन्तु उसने लिखा है कि, बारह वर्ष बाद जोधा का मंडोवर

---

1. कविराजा श्यामलदास का यह कथन पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का निष्पक्ष विवेचन करने से पता चलता है कि, इस समय महाराणा कुम्भा को माण्डू और गुजरात के मुस्लिम शासकों का भी सामना करना पड़ रहा था। अतः जोधा के निरन्तर प्रतिरोध का अधिक लम्बे समय तक सामना करने में महाराणा कुम्भा असमर्थ था। ऐसी स्थिति में महाराणा ने जोधा से समझौता करना ही उचित समझा था। (सं०)

महाराणा की जीत होना लिखा है। चाहे कुछ हो, हमको किसी विवाद से प्रयोजन नहीं। इसी समय में महमूद का वाप आजम हुमायूं बीमार होकर मंदसौर में मर गया। महमूदशाह ने वहां पहुँच कर अपने वाप की लाश को मांडू पहुँचाया। इन्हीं दिनों में महाराणा कुम्भा ने भी एक बड़ी विशाल सेना तैयार कर, रात के समय महमूद पर आक्रमण किया।[1] दोनों तरफ के वहादुर खूब लड़े और वादशाह महमूद भाग कर मांडू की तरफ चला गया। तारीख फरिश्ता में लिखा है कि, राणा चित्तौड़ की तरफ और वादशाह मांडू की तरफ चला गया।[2] लेकिन सोचना चाहिये कि, वादशाह की विजय होती तो महमूदशाह वापस क्यों लौट जाता ?

4 वर्ष के वाद अन्य कार्यों से निवृत होकर कार्तिक कृष्ण 5 या 6 1503 विक्रमी (20-21 रज्जव, 850 हि० = 10-11 अक्टूबर, 1446 ई०) को महमूद फिर एक बड़ी भारी सेना लेकर मांडलगढ़ की तरफ आया। जव वह वनास नदी उतरने लगा तो, हजारों राजपूतों ने किले से निकल कर उसका सामना किया। राजपूताना की पोथियों से तो इस लड़ाई में भी महाराणा का ही जीतना पाया जाता है और फरिश्ता[3] लिखता है

1. यह घटना 25 जिल्हिज्ज सन् 846 हि० = अप्रैल 26, 1443 ई० की है। फरिश्ता के अनुसार इस समय महाराणा कुम्भा की सेना में 12000 घुड़सवार और 6000 पैदल थे। लेकिन उपेन्द्रनाथ डे ने मासीर-इ-महमूदशाही के आधार पर महाराणा कुम्भा की सेना की संख्या 10000 घुड़सवार व 23000 पैदल सैनिक वताई है। मासीर-इ-महमूदशाही, पृ० 132 अ०, व्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०) भाग 4, पृ० 210, डे, मेडिवल मालवा, पृ० 175। (सं०)
2. व्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 210। यहां फारसी इतिहास लेखकों का विवरण स्पष्टतया पक्षपात पूर्ण है। अप्रैल माह के अन्तिम सप्ताह में "वर्षा ऋतु आगमन" का उल्लेख ठीक नहीं। वस्तुतः सुलतान खिलजी की कुम्भलगढ़ और चित्तौड़ दुर्गों पर सैनिक अभियानों में असफलता और मंदसौर में हुए रात्रि आक्रमणों में भी अनिश्चित स्थिति के कारण ही उसको मजवूर होकर लौट जाना पड़ा। (सं०)
3. व्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 214-15। (सं०)

बहादुर राजपूतों को लेकर आ घुसा। किले को बेलाग समझ कर महमूदशाह ने इसी मन्दिर को घेरा और सात दिन में मन्दिर की गढ़ी को जीत लिया। दीपसिंह बहुत से बादशाही सेवकों को मार कर अपने कई एक साथी राजपूतों सहित बहादुरी के साथ लड़ कर मारा गया। महमूदशाह ने मूर्तियों को तोड़ कर उनके तोले (बाट) बनवाये, जो कसाई लोगों को मांस तोलने के लिये दिये गये। उसने काले पत्थर की बनी हुई बाणमाता की मूर्ति का चूना पकवा कर हिन्दुओं के पान में खिलवाया। मन्दिर में लकड़ियां जलवाने के बाद ऊपर से ठण्डा पानी डलवा कर मन्दिर को बिलकुल जीर्ण कर डाला।[1]

इस विजय को गनीमत समझ कर महमूद चित्तौड़ की तरफ चला। जहां पर ऐसी विजय कभी अन्य किसी मालवा के बादशाह को प्राप्त नहीं हुई थी। फिर मुकाबले के लिये बहुत-सी सेना चित्तौड़ में छोड़कर, स्वयं महाराणा की तलाश में निकला, तथा अपने पिता आजम हुमायूं को उसने महाराणा के प्रदेश को नष्ट करने के लिये मंदसौर की ओर भेजा। यह खबर सुनकर हाड़ौती की तरफ से महाराणा कुम्भा भी शीघ्रता के साथ कूच करता हुआ चला आ रहा था। मार्ग में मांडलगढ़ के पास बादशाह से मुकबला हुआ।[2] फरिश्ता लिखता है, कि "महाराणा पराजित होकर चित्तौड़ की तरफ भाग आया और बादशाह ने चित्तौड़ को आ घेरा।[3] लेकिन राजपूताना की पोथियों में

---

1. ब्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं०अ०) भाग 4, पृ० 208-209। लेकिन मासीर-इ- महमूदशाही में केवल मंदिर को नष्ट करने ही का उल्लेख है। मेडिवल मालवा, पृ० 174, पादटिप्पणी 3। (सं०)
2. मांडलगढ़ का यहाँ उल्लेख ठीक नहीं है। यह घटना बाद की है। ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं०अ०), भाग 4, पृ० 209 पर स्पष्ट उल्लेख है कि जब सुल्तान को महाराणा के चित्तौड़गढ़ में पहुँचने की सूचना मिली तो स्वयं एक सेना के साथ चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ (सं०)
3. कविराजा श्यामलदास द्वारा यहां पर मांडलगढ़ पर हुए आक्रमण और उसके बाद की घटनाओं का उल्लेख सही नहीं है। वस्तुतः सुलतान महमूद गागरोन विजय (सन् 1443 ई०) के बाद ही महाराणा कुम्भा के क्षेत्र मांडलगढ़ की तरफ अग्रसर हुआ था। डे, मेडिवल मालवा, पृ० 1781 इस अभियान में भी सुलतान महमूद खिलजी को कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। (सं०)

इस पेशकश में क्या हानि थी, जो नाराजगी का कारण बना ?[1] फिर वही लेखक फरिश्ता इसी लड़ाई के संदर्भ में लिखता है कि, महमूद ने मेवाड़ में खिलजीपुर बनाना चाहा था, परन्तु महाराणा द्वारा दीनतापूर्वक "पेशकश" भेंट करने के कारण से इस बात को स्थगित रखकर वह अपने वतन को चला गया। ऊपर लिखी हुई सभी लड़ाईयों के विवरण का ढंग देखने से महमूद की जीत होने में सन्देह हो जाता है, तथा इस महाराणा से लेकर महाराणा सांगा तक मेवाड़ के राजा मालवा के बादशाहों से प्रबल रहे हैं। उसके लिये यहां पर अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इतिहास ग्रन्थ को देखने से ही मालूम हो जावेगा।

859 हिजरी (1512 वि०=1455 ई०) में मंदसौर पर अधिकार करने के लिए बादशाह महमूद खिलजी ने चढ़ाई की। उस समय सेना को मंदसौर की तरफ भेज कर, स्वयं अजमेर को रवाना हुआ। फौज ने वहां जाकर किले को घेर लिया। वहां के किलेदार गजाधर ने बाहर निकल कर महमूद की फौज पर हमला किया, लेकिन हार कर वापस किले में चला गया। चार दिन तक घेरा रहने के बाद, सब राजपूतों को साथ लेकर गजाधर पुनः बाहर निकला और बड़ी बहादुरी के साथ बहुत से शत्रुओं को मार कर काम आया। बादशाह ने किले पर अधिकार किया।[2] वहां का शासन ख्वाजा निआमतुल्लाह को सौंप कर स्वयं मांडलगढ़ की तरफ रवाना हुआ। जब बनास नदी के किनारे पर पहुँचा तो, किले से महाराणा के हजारों राजपूत उसकी सेना पर आ गिरे और दोनों तरफ के बहुत से बहादुर मारे गये। तारीख फरिश्ता में लिखा है[3] कि, शाम के समय अपने-अपने पड़ाव पर ठहरे और प्रातःकाल में ही अमीरों व वजीरों ने बादशाह से निवेदन किया कि,

---

1. फरिश्ता के अनुवादक ब्रिग्ज का अनुमान है कि, सुलतान ने भारी रकम की मांग की, महाराणा द्वारा पूर्ति न कर सकना ही नाराजगी का कारण था। ब्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 221 पादटिप्पणी। (सं०)

2. ब्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 222-223, मासीर-इ-महमूदशाही, प० 199 ब-220। (सं०)

3. ब्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 223। (सं०)

कि, वादशाह पेशकश लेकर चला गया। परन्तु यह वात हमारे अनुमान में नहीं आती।[1] सम्भवतः मुहम्मद कासिम ने लिखने में पक्षपात किया होगा, या जिस पुस्तक से उसने लिखा उस पुस्तक में लेखक ने किया होगा। कारण यह कि, तारीख फरिश्ता के दूसरे खण्ड के पृष्ठ 250 पर लिखा है कि, 857 हि० (1510 वि० =1453 ई०) में सुल्तान महमूद खिलजी ने गुजरात के वादशाह कुतुवुद्दीन से समझौता किया कि, गुजरात के पास वाले महाराणा के प्रदेश को गुजरात की सेना लूटे और मेवाड़ व अजमेर आदि पर मालवा की सेना अधिकार करे।[2] यदि वादशाह महमूद खिलजी पहले की लड़ाईयों में विजय प्राप्त करता और पेशकश लेकर गया होता, तो गुजरात के कुतुवुद्दीन को अपना मददगार क्यों वनाता? द्वितीय यह कि, पहली विजय का प्रतीक कीर्तिस्तम्भ जो हमेशा के लिए उसकी वदनामी की यादगार था, उसको वह जरूर गिरा देता। इसके अतिरिक्त आगे इसी तवारीख के लेखक ने फिर कुतुवुद्दीन का कुछ भी विवरण नहीं लिखा।[3]

858 हि० (1511 वि० =1454 ई०) में शाहजादा गयासुद्दीन को रणथम्भौर पर भेज कर महमूद चित्तौड़ की तरफ चला। उस समय के विवरण में तारीख-इ-फरिश्ता का लेखक लिखता है[4] कि, महाराणा कुम्भा ने वड़ी आवभगत के साथ "पेशकश" भेंट की, जिससे महमूद नाराज हुआ। सोचना चाहिये कि, पहले तो फरिश्ता ने लिखा है कि, महाराणा से पेशकश लेकर वादशाह खुश हो गया, तथा इस समय नाराजगी प्रकट की। तो भला

---

1. उपेन्द्रनाथ डे ने दोनों पक्षों (फारसी इतिहासकारों और राजपूताना की पोथियों के उल्लेखों) को पूर्ण सत्य नहीं वताया है। उसके अनुसार इस समय यद्यपि महाराणा कुम्भा का पक्ष प्रवल था फिर भी अनिश्चितता की स्थिति ही वनी रही और महमूद ने वापस लौट जाना ही उचित समझा। —डे, मेडिवल मालवा, पृ० 180। (सं०)
2. व्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 219। (सं०)
3. तारीख फरिश्ता में कुतुवुद्दीन और महमूद की सन्धि के समय महमूद के कहे हुए जो शब्द लिखे हैं, उनसे साफ प्रकट होता है कि, उसने अपनी कमजोर स्थिति के समय दूसरे से सहायता की याचना की।
4. व्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 221-223। (सं०)

उस एहसान को भूल कर, उल्टा महाराणा पर शक करने लगा कि, वह मेरा राज्य छीन लेंगे। तारीख-इ-फरिश्ता में लिखा है कि, महाराणा ने शम्सखां को कहा कि, नागौर के किले के तीन कंगूरे हमको गिराने दो। लेकिन शम्सखां को उसके मुसाहिबों (सलाहकारों) ने स्वाभिमान की याद दिलाई। इस कारण से उसने यह स्वीकार नहीं किया। महाराणा अपने किये हुए एहसान को समाप्त करना नहीं चाहता था, इसलिये वापस कुम्भलमेर को चला आया। परन्तु एहसान को भूल कर शम्सखां ने अपने बाप-दादों का ही तरीका अपना लिया। तब महाराणा भी बड़ी भारी सेना लेकर नागौर की तरफ रवाना हुआ। शम्सखां मदद के लिए भाग कर कुतुबुद्दीन के पास अहमदाबाद चला गया और महाराणा ने नागौर को घेरा। शम्सखां की सेना के आदमी बहादुरी से लड़कर मारे गये और महाराणा ने किला जीत कर उस पर अपना अधिकार कर लिया।[1]

तब शम्सखां ने गुजरात के बादशाह कुतुबुद्दीन के पास पहुँच कर अपनी लड़की की शादी बादशाह से की और स्वयं उसके पास रहा। बादशाह ने राय रामचन्द्र और मलिक गदाई को बहुत बड़ी सेना देकर महाराणा का मुकाबला करने के लिये नागौर की तरफ भेजा। महाराणा की फौज ने भी बाहर निकल कर मैदान में लड़ाई की। इस लड़ाई में हजारों गुजराती और बहुत से राजपूत मारे गये। अन्त में महाराणा की सेना ने विजय प्राप्त की, तथा बचे हुए गुजराती भाग कर बादशाह कुतुबुद्दीन के पास पहुँचे।

यह हाल सुन कर सुलतान कुतुबुद्दीन बड़ा क्रोधित हुआ, और बड़ी भारी फौज के साथ 860 हिजरी (1513 वि = 1456 ई०) में खुद नागौर की तरफ रवाना हुआ। आबू के किले के पास पहुँच कर स्वयं तो वहीं ठहरा और इमादुल्मुल्क को सेना देकर आबू पर भेजा, जहाँ महाराणा का अधिकार था। इस लड़ाई में भी गुजरातियों के बहुत से आदमी मारे गये, और जो बचे, भाग कर कुतुबुद्दीन के पास पहुँचे।

महाराणा कुम्भा तो पहले ही कुम्भलमेर आ गये थे। लेकिन कुतुबुद्दीन उनकी सेना की विजय होना सुनकर स्वयं कुम्भलमेर की तरफ चला, तथा जाते

---

1. ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 40-41। (सं०)

वर्षा का मौसम आ पहुँचा है, इसलिये अभी तो अपनी राजधानी को चले चलना ही ठीक है। भविष्य में किले को प्राप्त करने का उपाय किया जावेगा। इस सलाह को स्वीकार कर बादशाह अपनी राजधानी को लौट गया। इस विवरण से महमूद का पराजित होकर चला जाना साफ प्रकट है।[1]

इन्हीं दिनों में मालवा के बादशाह का शाहजादा (पुत्र) उमरखां महाराणा कुम्भा की शरण में आया था। यह शाहजादा किसी घरेलू झगड़े के कारण बादशाह से डर कर अहमदाबाद गया था, लेकिन आपस की नाइत्तफाकी (अनबन) के कारण उसको वहां पर सहारा नहीं मिला, तब चित्तौड़ आया। बहुत दिनों तक यहीं पर रहा और उसके बाद चंदेरी नामक स्थान पर मालवा के बादशाह से मुकाबला करके मारा गया।[2]

अब हम नागौर की लड़ाईयों का विवरण लिखते हैं। 1512 वि० (859 हि०=1455 ई०) में नागौर के हाकिम (अधिकारी) फिरोजखां, जिसको एक स्वतन्त्र शासक (बड़ा रईस) समझना चाहिये, के मर जाने के बाद उसके छोटे भाई मुजाहिदखां ने बलपूर्वक नागौर पर अधिकार कर लिया और फिरोजखां के पुत्र शम्सखां को मारने के लिए तैयार हुआ। इसलिये शम्सखां वहां से भाग कर महाराणा कुम्भा की शरण में चला आया। यह वही नागौर का फिरोजखां है, जिसका कुछ वर्णन महाराणा मोकल के विवरण में लिखा जा चुका है। जब महाराणा कुम्भा ने मुजाहिदखां को दण्ड देने और शम्सखां की मदद के लिये अपनी सेना को तैयार किया और शम्सखां सहित चढ़ाई कर नागौर के निकट पहुँचा, तो मुजाहिदखां डर कर गुजरात की तरफ भाग गया। महाराणा ने वहां जाकर शम्सखां को उसके बाप के स्थान पर गादी पर बैठा दिया। परन्तु गद्दी पर बैठने के बाद वह

---

1. इस समय महाराणा मांडलगढ़ को सुरक्षित रखने में तो सफल रहा, लेकिन वह सुलतान महमूद खिलजी को न परास्त कर सका और न ही उसकी वापसी का उद्देश्य जान सका था। डे, मेडिवल मालवा, पृ० 186-187। (सं०)
2. शाहजादा उमरखां गौरी का यहां उल्लेख ठीक नहीं है। यह घटना सन् 1438-39 ई० की है। उमरखां गौरी तब ही सुलतान महमूद खिलजी से लड़ता हुआ मारा गया था। (सं०)

दोनों सेनाओं के बहादुर शाम तक लड़ते रहे, परन्तु जीत किसी को भी प्राप्त नहीं हुई। रात हो जाने के कारण दोनों सेनाएं अपने-अपने डेरों में चली आयीं। मुर्दों को जलाया अथवा दफनाया और घायलों का इलाज किया। प्रातः होते ही फिर लड़ाई शुरू हुई। इस दिन सुलतान कुतुबुद्दीन की बहुतसी सेना मारी गई, क्योंकि मेवाड़ की सेना को पहाड़ों का सहारा था। राजपूताना की पोथियों से तो इस लड़ाई में महाराणा की जीत होना पाया जाता[1] है, लेकिन तारीख-ई-फरिश्ता का लेखक लिखता है कि, चौदह मन स्वर्ण दो हाथी और बहुतसी चीजें भेंट में लेकर सुलतान ने सन्धि कर ली।[2] लेकिन हमारे अनुमान में यह नहीं आता। क्योंकि इस बादशाह की सेना नागौर आदि पर दो तीन बार पराजित हुई थी। तारीख-इ-फरिश्ता का लेखक इस लड़ाई के अन्त में लिखता है कि, सुलतान कुतुबुद्दीन ने अपने शरीर से बड़ा पौरुष दिखलाया। इससे साफ यही प्रकट होता है कि, शत्रु हावी थे, जिससे वह आप अकेला लड़ कर बचा। फिर पेशकश में रुपया देने की प्रथा है, न यह कि, खाली चौदह मन सोना। इससे पाया जाता है कि, मुहम्मद कासिम फरिश्ता ने यह हाल गुजरात के इतिहासों से ही लिया है। हां, ऐसा हो सकता है कि, बादशाह ने आबू के मंदिरों और सिरोही आदि बहुत से इलाकों को लूटा, वहाँ पर उसको इतना सोना और हाथी आदि हाथ लगे होंगे। जिसको इतिहास लेखकों ने 'पेशकश" के रूप में मान्य कर लिया। मुसलमानों के लिये पक्षपात पूर्ण विवरण लिखने का शब्द भी हम उन लेखकों के लिये लिख सकते हैं कि, उन्होंने महाराणा कुम्भा ने मांडू पर विजय प्राप्त कर माण्डू के बादशाह महमूद खिलजी को गिरफ्तार करने का कोई उल्लेख नहीं किया, जिसकी स्मृति में बनवाया गया मीनार अब तक विद्यमान होने के अतिरिक्त कर्नल टॉड ने भी अपनी पुस्तक में उसका हाल लिखा है। चाहे कुछ भी हो, हमारे विचार से तो यदि महाराणा की विजय नहीं हुई हो तो, भी

---

1. किताब मिरात-इ-सिकन्दरी में महाराणा कुम्भा का चित्तौड़ में उपस्थित होना, पराजित होकर नागौर पर हमला नहीं करने की शपथ करना, सिरोही के देवड़ों का विरोध और बादशाह ने मदद करके सिरोही के राव को महाराणा से आबू का दूर्ग वापस दिलवाना लिखा है।

2. ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 42। (सं०)

हुए सिरोही के देवड़ों से बड़ी लड़ाई की। अन्त में सिरोही वाले पहाड़ों में भाग गये। यह खबर सुनकर महाराणा कुम्भा ने कुतुबुद्दीन की फौज पर आक्रमण किया। उस समय कुतुबुद्दीन भी कुम्भलगढ़ की तलहटी अर्थात् गोडवाड़ में आ गया था। इस लड़ाई में दोनों तरफ से राजपूतों और मुसलमानों ने बड़ी बहादुरी दिखाई और हजारों आदमी मारे गये। मुसलमानों ने कहाकि, हमारी जीत और राजपूतों ने अपनी जीत बयान की। लेकिन जीत उसी की कहनी चाहिये कि, दूसरे पर गालिब आवे (वर्चस्व प्राप्त करले)। अन्त में बादशाह कुतुबुद्दीन लाचार होकर वापस लौट गया। तारीख-इ-फरिश्ता में लिखा है कि, कुतुबुद्दीन ने कुम्भलमेर पर घेरा डाला, और महाराणा के राजपूतों और खुद महाराणा ने कई बार बाहर निकल कर हमले किये, लेकिन हारना पड़ा। निदान किले की मजबूती देख कर बादशाह पेशकर लेकर अहमदाबाद को लौट गया।[1]

वहाँ पहुँचते ही मालवा वाला सुलतान महमूद खिलजी ने अपने वजीर ताजखाँ को बादशाह कुतुबुद्दीन के पास इस हेतु भेजा कि पहले तो हमारे तुम्हारे बीच में जो कुछ हुआ सो हुआ, लेकिन अब धर्म ईमान के साथ समझौता कर लिया जावे कि, मालवा की तरफ महाराणा कुम्भा का प्रदेश हम लूटें और गुजरात की तरफ का तुम लूटो, तथा समय पर एक दूसरे की मदद करें। इस बात को सुलतान कुतुबुद्दीन ने स्वीकार किया। दोनों तरफ के आदमियों की मध्यस्थता से चांपानेर में ऊपर लिखे हुए विचारों के अनुसार अहदनामा लिखा गया।[2]

861 हि०(1514 वि०=1457 ई०) में गुजरात का सुलतान कुतुबुद्दीन बहुतसी फौज लेकर पश्चिम से और उसी तरह मालवा का सुलतान महमूद खिलजी दक्षिण से मेवाड़ पर चढ़ आया। महाराणा का इरादा था कि, पहले महमूद खिलजी से लड़ाई करें। परन्तु सुलतान कुतुबुद्दीन सिरोही से बढ़ कर कुम्भलगढ़ के पास तक आ गया था। तब महाराणा ने भी निकल कर सेना का सामना किया। जिसमें मेवाड़ की सेना पराजित होकर पहाड़ों की घाटियों में चली आई। सुलतान कुतुबुद्दीन भी वहां पहुंचा।

---

1. ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 41। (सं०)
2. ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 41-42। (सं०)

महीने के वाद उसका स्वर्गवास हो गया। हमको नीचे लिखे हुए प्रमाणों के आधार पर यह वात विलकुल गलत मालूम होती है। प्रथम, महाराणा कुम्भा जैसे वड़े राजा जिसका गुजरात, वहमनी और मालवा के वादशाहों को भी भय रहता था, अपने अधिनस्थ हाड़ों से अपनी सेना के हारने पर दूसरी वार सजा देने की शक्ति न रख कर लज्जा से मर जाना अनुमान में नहीं आता। दूसरे, कुम्भलमेर के किले में मामादेव के कुण्ड पर मार्गशीर्ष कृष्ण 5, 1517 विक्रमी की खुदी हुई महाराणा कुम्भा के समय की प्रशस्ति के श्लोक 265 में साफ लिखा है कि, हाड़ौती विजय कर वहां के स्वामी को दण्ड दिया। इस प्रशस्ति के उत्कीर्ण होने के आठ वर्ष वाद तक महाराणा जीवित रहा था। तव वूंदी को नहीं जीत सकने के कारण दो महीनें के वाद उसका परलोकवास हो जाना कैसे सम्भव हो सकता है? इसमें सन्देह नहीं कि, इस इतिहास का लेखक सूरजमल वहुत सच्चा आदमी था। लेकिन मालूम होता है कि, उसको कोई सच्ची तवारीख (प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ) नहीं मिला, जिससे इस प्रकार की भूल रह गई।

1513 विक्रमी (860 हि० = 1456 ई०) में मालवा के वादशाह महमूद खिलजी ने मांडलगढ़ पर चढ़ाई की, तव जो-जो प्रदेश रास्ते में आये उनको नष्ट करता हुआ वह मांडलगढ़ पहुँचा। किले को घेर कर पास की पहाड़ी[1] पर महमूद ने तोपें चढ़ा दी। इससे किले वालों का पानी वंद हो गया। तव उन लोगों ने 10,00,000 (दस लाख) टके[2] पेशकश में देना स्वीकार करके किला वादशाह को सौंप दिया। इस लड़ाई में वहुत से राजपूत मारे गये और कितनों ही को वादशाह ने कैद कर लिया। तारीख-इ-फरिश्ता में लिखा है कि, 26 मुहर्रम्म, 861 हिजरी (पौष कृष्ण 10, 1513 वि० = 23 दिसम्वर, 1456 ई०) को महमूद मांडलगढ़ की तरफ रवाना हुआ था और 25 जिल्हिज 862 हि० (मार्गशीर्ष कृष्ण 11, 1515 वि० = 3 नवम्वर, 1458 ई०) को उसने किला जीत लिया।[3] लेकिन ऐसे किले पर

---

1. जो अव नकट्याचौड़ और वीजासण का मगरा कहलाता है।
2. तंगा (टंका) एक तोले भर स्वर्ण या चांदी के सिक्के को कहते हैं। यहां पर चांदी के सिक्के से ही आशय है। उन दिनों में यह 50 पैसे का होता था और पैसा पौने दो तोले का होता था।
3. यहां कविराजा श्यामलदास फरिश्ता के विवरण को ठीक से पढ़ने में

सुलतान कुतुबुद्दीन की जीत होना प्रमाणित नहीं होता। यदि वह पेशकश लेकर गया होता तो, क्या सुलतान महमूद चुपचाप चला जाता? जिसके विषय में तारीख-इ-फरिश्ता में चढ़ाई करने के बाद कुछ भी उल्लेख नहीं नहीं लिखा।[1] इससे सिद्ध होता है कि, दोनों बादशाह विजय न पाकर वापस अपने-अपने प्रदेशों को लौट गये। मिरात-इ-सिकन्दरी में तीन ही महीने के बाद फिर नागौर पर महाराणा कुम्भा का चढ़ाई करना और कुतुबुद्दीन का मेवाड में आकर लूटमार करके वापस चला जाना लिखा है। अगर मिरात-इ-सिकन्दरी का लिखना सच होता, तो क्या फिर कुतुबुद्दीन मेवाड़ की लूट पर सन्तुष्ट हो जाता? और अपने पहले वचन के टूटने का बदला नहीं लेता। क्योंकि ऐसा होता तो फिर किले का भी घेराव करता।[2]

बूंदी के हाड़ा, भांडा और सांडा ने अमरगढ़ तक लूटमार मचा कर अमरगढ़ के किले पर अपना अधिकार कर लिया और मांडलगढ़ के राजपूतों को भी यातनायें दीं। यह खबर सुनते ही महाराणा कुम्भा फौज लेकर चढ़ाई की और अमरगढ़ को जीता। वहां तोगजी आदि कितने ही हाड़ा राजपूत मारे गये। इसके बाद उसने बूंदी को जा घेरा, लेकिन जब सांडा और भांडा ने दण्ड देकर बहुतसी लाचारी की और पैरों में आ गिरे, तब उनके अपराध को क्षमा कर "फौज खर्च" लेने के बाद वह वापस चित्तौड़ को चला आया। बूंदी के इतिहास "वंश भास्कर" के संक्षिप्त रूप "वंश प्रकाश" में लिखा है कि, महाराणा कुम्भा ने अमरगढ़ जीत कर बूंदी पर घेरा डाला। तब अपनी राणी से तीज पर आने का वचन देने के कारण राणा चित्तौड़ चला गया और बूंदी के घेरे पर उसकी फौज रही। उसको हाड़ों ने पराजित किया। इसी लज्जा के कारण से महाराणा वापस रणवास से बाहर नहीं निकला और दो

---

1. 'मिरात-इ-सिकन्दरी' में सुलतान महमूद को मंदसौर आदि कुछ परगने देकर लौटाना लिखा है।

2. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भी फारसी इतिहास लेखकों के विवरणों को पक्षपातपूर्ण मानते हुए मार्गशीर्ष कृष्ण 5, 1517 वि० की कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के आधार पर कुम्भा द्वारा गुजरात व मालवा की सेनाओं का मंथन करना लिखा है।—ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 305। (सं०)

इन दिनों आबू के देवड़ा लोग विद्रोही हो गये थे। इसलिये महाराणा ने राव शलजी के बेटे नरसिंह डोडिया को फौज देकर वहां भेजा। उसने देवड़ों को दण्डित कर उन्हें अधीन किया और आबू पर महाराणा के आदेशानुसार महल[1] व तालाब बनवाया।

माण्डू का बादशाह महमूद खिलजी 1518 वि० (865 हि०=1461 ई०) में फिर मेवाड़ की तरफ आया और आहाड़ में डेरा किया। उसने शाहजादा गयासुद्दीन व ताजखां को मुल्क लूटने का आदेश दिया। फिर वह कुम्भलगढ़ की तरफ गया, लेकिन किले को बेलाग देख कर डूंगरपुर के रावल से फौज खर्च के दो लाख रुपया लेता हुआ वापस माण्डू चला गया।[2]

इस महाराणा ने और भी बहुतसी लड़ाईयां की थीं। 1524 वि० (871 हि०=1467 ई०) में नागौर के मुसलमानों ने हिन्दुओं का दिल दु:खाने के लिए गौवध अर्थात् गाय मारना शुरू किया। यह किला पहले कई बार महाराणा के अधिकार में आया और कई बार उसके अधिकार से निकल

सुलतान महमूद खिलजी का चित्तौड़ के मार्ग से मांडू लौटने का स्पष्ट उल्लेख है। ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 224। (सं०)

1. उस समय किसी चारण कवि ने मारवाड़ी भाषा में एक गीत कहा था, जो यह है -

    जावरचै खेत महाभारथ जुड़, असहां हूंत बकारे आव।
    बाही खग नरसीह महाबल, नाग तणै सिर गयौ निहाव ॥1॥
    करवा जंग सजे गज केहर, तेग बही रणसाल तिको।
    रमियो राव अढार गिरांचो, सेस न खमियो भार सको ॥2॥
    सलह सुजाव देवड़ा साझे, लोह प्रवाड़ा मयन्द लिये।
    भड़ नरसिंह जिसा गज भारां, दो पग पाछा देव दिये ॥3॥
    डोडे राव सिरोही दुजड़ा, दल सजड़ा परहंस दिया।
    आबू गिरवर शिखर ऊपरा, कुम्भे सरवर महल किया ॥4॥

2. फरिश्ता के अनुसार यह घटना सं० 863 हि० सन् 1458 ई० की है। ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 225।

दो वर्ष तक लड़ाई होना विचार में नहीं आता। क्योंकि सोचने की बात है कि, दो वर्ष तक लड़ाई होते रहने की हालत में महाराणा कुम्भा चित्तौड़गढ़ में किस तरह चुपचाप बैठा रहा। कदाचित् बादशाह के भय से न आया हो। तो महमूद इस किले पर क्यों आता? वह चित्तौड़ ही पर क्यों नहीं गया। हमको नहीं मालूम कि, यह विवरण सही है या लेखक की गलती से ऐसा लिखा गया है। यदि सही है, तो महाराणा की तरफ से उन पर भी आक्रमण ज़रूर हुए होंगे, लेकिन उस विवरण को लेखकों ने छोड़ दिया।

पौष कृष्ण 2-3, 1515 वि० (15 मुहर्रम्म, 863 हि० = 23 नवम्बर, 1458 ई०) को[1] महमूदशाह स्वयं तो चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ और शाहजादा गयासुद्दीन को मगरा व भीलवाड़ा की लूट[2] के लिए रवाना किया। शाहजादे ने फिदाईखां और ताजखां को केसूंदी[3] का किला लेने की इजाजत दी और आप भी उनके साथ वहां पहुंचा। वहां के राजपूतों ने बहुतसी लड़ाई की, परन्तु शाहजादे ने किला जीत लिया और उसके बाद मांडू की तरफ अपने बाप के पास चला गया। तारीख-इ-फरिश्ता में महमूद का चित्तौड़ की ओर रवाना होना लिखने के बाद उसका कुछ भी वर्णन नहीं लिखा है कि, वह किस मार्ग से चित्तौड़ होकर या और किसी अन्य मार्ग से मांडू गया।[4]

असमर्थ रहे हैं 25 जिल्हिज्ज 862 हि० के स्थान पर "उसी वर्ष अर्थात् 861 हि० के 20 जिल्हिज्ज को, (नवम्बर 8, 1457 ई०) जबकि मांडू से रवाना हुए ठीक 11 माह व्यतीत हुए थे" होना चाहिये। ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 224;
उपेन्द्रनाथ डे ने मासीर-इ-महमूदशाही के आधार पर दुर्ग विजय की तारीख 1 जिल्हिज्ज सन् 861 हि० = अक्टूबर 20, 1457 ई० लिखी है। डे, मेडिवल मालवा, पृ० 189-190। (सं०)

1. यह तिथि ठीक नहीं है। यहां पौष कृ० 3, 1514 वि० (15 मोहर्रम्म 862 हि० = दिसम्बर 3, 1457 ई०) होना चाहिये। ब्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 224। (सं०)
2. "भील व कोलियों के प्रदेश" ब्रिग्ज, फरिश्ता०, (अं० अ०), भाग 4, पृ० 224। (सं०)
3. "बूंदी"। उपरोक्त (सं०)
4. कविराजा श्यामलदास का यहां यह कथन ठीक नहीं है। फरिश्ता में

महाराणा को तो उन्माद (जनून) हो गया है।" महाराणा के छोटे पुत्र रायमल ने हिम्मत कर अपने पिता से निवेदन किया कि, यह पद आप बार-बार किस लिये कहते हैं ? इस पर महाराणा ने क्रोधित होकर लोगों से कहा कि, "इसको हमारे देश से बाहर निकाल दो।" यह बात सुन कर रायमल तो वहां से अपने ससुराल ईडर[1] चला गया।

अब जो लोग महाराणा के पास रहे, उनमें से किसी की हिम्मत नहीं कि, महाराणा से उस पद के बार-बार कहने का अर्थ पूछ सकें। ज्योतिषियों के इस भविष्यत् कथन—"आपकी मृत्यु चारण के हाथ से होगी", पर विश्वास कर उसने चारणों को पहले से ही मेवाड़ देश से बाहर निकाल दिया था। लेकिन एक चारण राजपूत बनकर किसी सरदार के पास रह गया था। उसने सरदार से कहा कि, "महाराणा के कथन का मतलब मैं समझा हूँ। यदि इच्छा हो तो उनका यह बार-बार कहना छुड़ा दूं।" वह सरदार उसको अपना सम्बन्धी भाई बना कर महाराणा के पास ले गया। महाराणा अपनी आदत के अनुसार वही पद हर समय जबान पर लाते थे। उस चारण ने दरबार के सामने पहुंच कर मारवाड़ी भाषा में यह छप्पय छन्द कहा—

छप्पय — जद धर पर जोवती दीठ नागौर धरंती।
गायत्री संग्रहण देख मन मांहि डरंती॥
सुर कोटी तेतीस आण नीरंता चारो।
नहिं चरंत पीवंत मनह करती हुंकारो॥
कुम्भेण राण हणिया कलम आजस उर डर उतरिय।
तिण दीह द्वार शंकर तणै, कामधेनु तंडव करिय॥1॥

यह छप्पय सुनकर महाराणा ने कहा कि, "तू राजपूत नहीं, किन्तु कोई चारण है। परन्तु मैं तुझसे बहुत खुश हूँ।" तब उसने निवेदन किया कि, मैं वास्तव में चारण ही हूँ। परन्तु आपने मेरी जाति के सब लोगों की जागीरें छीन-छीन कर उन्हें बेकसूर देश से निकाल दिया है, इसलिये अब उनकी जागीरें उनको वापस प्रदान कर देश में आने का आदेश हो जाना

---

1. ईडर के राजा नारायणदास के भाई भाण की बेटी के साथ इसकी शादी हुई थी।

कर फिर मुसलमानों के हाथों में चला गया। महाराणा ने मुसलमानों का यह अत्याचार देख कर उसी सम्वत् में पचास हजार सवार लेकर नागौर पर चढ़ाई की और किले को जीत लिया, जिसमें हजारों मुसलमान मारे गये। इसके बाद वहां के शासक (अधिकारी) ने भाग कर सुलतान कुतुबुद्दीन के पास प्रार्थना की। महाराणा ने किले को जीत कर वहां का माल-असबाब और घोड़े, हाथी आदि लूट लिये। विजय की यादगार के रूप में किले पर से हनुमान की मूर्ति ले आया, जो अभी तक कुम्भलमेर के किले में हनुमान पौल दरवाजे पर विद्यमान है। जब सुलतान कुतुबुद्दीन के पास यह खबर पहुंची, तो उसी समय उसका वजीर इमादुलमुल्क अपने बादशाह को, जो शराब के नशे में चूर था, ले निकला और एक मंजिल चलकर एक महीने तक ठहरा और फौज एकत्रित करने लगा। इसी समयावधि में महाराणा के कुम्भलमेर में चले आने की सूचना मिली, जिससे बादशाह भी वापस लौट गया। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद कुतुबुद्दीन एक बड़ी विशाल फौज तैयार कर सिरोही की तरफ आया। उस जिले को लूट कर देवड़ों को नष्ट करता हुआ, वहां से आगे बढ़ कर कुम्भलमेर की तरफ आया। तब महाराणा ने भी अपने बहादुरों को साथ लेकर उसका सामना किया। कुतुबुद्दीन मेवाड़ से होकर मालवा की तरफ होता हुआ वापस अपने स्थान पर चला गया।

अब हम महाराणा कुम्भा के देहान्त के समय का विवरण लिखते हैं। 1525 वि० (873 हि० = 1468 ई०) में जब यह महाराणा कुम्भलमेर से श्री एकलिंगजी के दर्शनों के लिये गया और मन्दिर के बाहर उसकी सवारी पहुँची, उस समय एक गाय ने बड़ी आवाज से हम्माई[1] की। महाराणा ने उस समय तो गाय के बोलने के विषय में किसी से कुछ नहीं कहा। लेकिन जब एकलिंगजी के दर्शन कर वापस कुम्भलमेर के किले में आया तथा दूसरे दिन दरबार किया। तब एकाएक तलवार हाथ में उठा कर उन्होंने एक पद "कामधेनु तंडव करिय" का अपने मुख से उच्चारण किया। कुछ देर बाद जब किसी व्यक्ति ने किसी काम के लिए निवेदन की, तो उसका जवाब कुछ नहीं दिया। केवल वही उपरोक्त पद कहा। दो-चार दिनों तक यही हाल रहा। तब तो सब लोग घबराये और कहने लगे कि, "अब क्या किया जावे?

---

1. बैल की आवाज के अनुसार खुशी के साथ निकलने वाली गाय की आवाज को "हमाई" कहते हैं।

हजार शत्रुओं को मार कर रणथम्भौर का किला लिया। आमृदाचल पर्वत को जीता। हाड़ौती को विजित किया। विशाल नगर को फतह किया, तथा डूंगरपुर व सारंगपुर को लूटा।

इस महाराणा के पुत्र—1. उदयसिंह, 2. रायमल, 3. नगराज, 4. गोपालसिंह, 5. आसकरण, 6. अमरसिंह, 7. गोविन्ददास, 8. जैतसिंह, 9. महरावण, 10. क्षेत्रसिंह और अचलदास थे।

2. महाराणा उदयकरण—

यह महाराणा उदयसिंह नाम से भी प्रसिद्ध था। 1525 वि० (873 हि० = 1468 ई०) में अपने बाप कुम्भा को मार कर राजगद्दी पर बैठा। इस दुराचारी महाराणा ने असत्य और अस्थिर राज्य के लालच में अपने धर्मशील, विवेकी, प्रजावत्सल और प्रतापी पिता को मार कर सूर्यवंशियों के कुल में अपने आप पर कलंक का टीका लगाया। यदि संसार के सर्व साधारण लोगों पर नजर डाली जावे, तो भी यह सम्भव नहीं कि, बाप के बदचलन होने की स्थिति में बेटा, बाप को दण्ड देवे अथवा मार डाले। जिसमें भी कुम्भा जैसे सदाचारी महाराजाधिराज को मार डालना तो बड़ा भारी अपराध था। इस महाराणा का गद्दी पर बैठना तो हकदारी के कारण से किसी ने नहीं रोका, परन्तु महाराणा कुम्भा द्वारा पोषित लोगों को इसकी यह दुष्टता कब सहन हो सकती थी। सब लोगों को इससे घृणा हो गई। किसी ने अपने बेटे को और किसी ने भाई को इसके पास सेवा के लिए भेज दिया। उदयसिंह ने बहुतेरा चाहा कि, सब लोग मुझ से प्रीति रखें, परन्तु इस भारी अपराध से लोगों के दिलों में ऐसा रंज पैदा हो गया था कि, सब लोग विरोधी बन गये।

उदयसिंह ने सिरोही वाले देवड़ों को स्वतन्त्र किया और अपने देश में से कई परगने आसपास के राजाओं को दे दिये। अन्त में रावत चूंडा के पुत्र कांधल आदि सरदारों ने सोच-विचार कर महाराणा रायमल को बुलाया, जो उस समय अपने ससुराल ईडर में था। सूचना मिलते ही रायमल शीघ्र ही कुम्भलमेर में आ पहुँचा और बाहर से सरदारों को सूचना दी। सभी ने अपने भाई बेटों को समझा कर महाराणा उदयसिंह को शिकार के बहाने से बाहर निकाला और महाराणा रायमल को किले के भीतर ले लिया। 1530

चाहिये।" उसकी निवेदन के अनुसार आदेश हो गया। परन्तु महाराणा का चित्त विक्षेप हो गया था। इस आदत को छोड़ने पर भी वह कुछ की कुछ बातें करता था। एक दिन कुम्भलमेर के किले में कटारगढ़ के उत्तर की तरफ मामादेव नामक स्थान के पास कुण्ड पर महाराणा बैठा था। इतने में पीछे से उसका बड़ा बेटा उदयसिंह पहुंचा और उसने तलवार म्यान से निकाल कर महाराणा का काम तमाम कर डाला।[1]

इस महाराणा की बनाई हुई बहुतसी इमारतें अभी तक विद्यमान हैं। कुम्भलमेर का किला और वहां पर कुम्भश्यामजी का मन्दिर; चित्तौड़ के किले पर कीर्तिस्तम्भ, कुम्भश्यामजी का मन्दिर, लक्ष्मीनाथ का मन्दिर और रामकुण्ड इसने बनवाये। कुकड़ेश्वर के कुण्ड का जीर्णोद्धार करवाया और किले के बड़े विकट और पहाड़ी मार्ग में चार दरवाजे और परकोटा तैयार करा कर उसे ठीक करवाया। इसके अतिरिक्त आबू पर अचलगढ़ के खण्डहर, बसन्तगढ़ का किला और कुम्भश्यामजी का मन्दिर, आरास अम्बाव के पास एक किला, गोडवाड़ में सादड़ी के पास राणकपुर का जैन मन्दिर, बदनौर के पास विराट का किला और एकलिंगजी के मंदिर का जीर्णोद्धार आदि कुल मिला कर 32 किले और बहुत से देवल व भवन आदि इसके द्वारा बनवाये हुए हैं, जिनको देखकर आश्चर्य होता है कि, एक पुश्त (पीढ़ी) में इतने भवन कैसे तैयार हुए होंगे? नागदा, कठड़ावण, आमलखेड़ा और भीमाणा (भुवाणा) ये चार गांव इसने श्री एकलिंगजी के भेंट किये थे। यह महाराणा बड़ा प्रतापी और वैभवशाली होने के अतिरिक्त पूरा विद्वान भी था। व्याकरण, छन्द और संगीत विद्या में बहुत ही निपुण था। इसने स्वयं संगीतराज वार्तिक और एकलिंग महात्म्य आदि कई ग्रन्थों की रचना की।

अब हम महाराणा कुम्भा का वह विवरण लिखते हैं, जिसका उल्लेख उस समय की प्रशस्तियों के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता। उसने जोगिनीपुर[2] को जीता। हमीरनगर को विजय कर अपनी शादी की। धान्य नगर को नष्ट किया, जनकाचल पर्वत को विजित किया। वृन्दावती[3] पुरी को जलाया। मल्हारगढ़ को जला कर उसके स्वामी को कैद किया। पच्चीस

1. यह घटना सं० 1525 वि=सन् 1468 ई० में घटित हुई। ओझा, उदयपुर, भाग 1, पृ० 322. (सं०)
2. पृथ्वीराज रासौ आदि में यह नाम दिल्ली का लिखा है।
3. गागरौन का नाम वृन्दावती है।

रायमल की फौज में आकर उपस्थित हुए और कुम्भलमेर को जा घेरा। जहाँ पर कुछ लड़ाई के बाद उदयसिंह निकल भागा और सम्पूर्ण मेवाड़ में महाराणा रायमल का राज्य हो गया। उदयसिंह का वृतान्त महाराणा रायमल के समय की श्री एकलिंगजी के द्वार की प्रशस्ति के 66 वें श्लोक में भी लिखा है।

3. महाराणा रायमल—

यह महाराणा 1530 विक्रमी (878 हि०=1473 ई०)में राजगद्दी पर आसीन हुआ।

उदयसिंह कुम्भलमेर से भाग कर सोजत को चला गया, जहाँ पर कुंवर वाघा राठौड़ की पुत्री के साथ उसकी शादी हुई थी। उसके वाल वच्चे भी उससे वहीं जा मिले। वहां से उदयसिंह अपने दोनों वेटों, सूरजमल और सेंसमल सहित मांडू के वादशाह गयासुद्दीन खिलजी के पास गया। वादशाह ने इसका सम्पूर्ण हाल सुनकर मदद देने का वचन दिया। तब उदयसिंह ने अपनी वेटी की शादी वादशाह से करना स्वीकार कर लिया। जब उदयसिंह वादशाह से विदा होकर अपने डेरे की तरफ आने लगा तो उस समय मार्ग में एकाएक उस पर विजली आ गिरी। जिससे वाप को मारने का फल पाकर,वह दूसरी दुनिया को कूच कर गया। इसके मरने के बाद सूरजमल और सेंसमल ने वादशाह गयासुद्दीन से निवेदन किया कि आप मदद करके मेवाड़ का राज्य हमको वापस दिला देवें। तव वादशाह अपनी विशाल फौज लेकर उनकी मदद के लिये चित्तौड़ पर चढ़ा। आपस की यह फूट गयासुद्दीन के लिये लाभप्रद हुई। क्योंकि आपस की लड़ाई झगड़ों के कारण राज्य शक्तिहीन हो गया था और राज्य की जो सम्पत्ति उदयसिंह के हाथे में थी, उसको वह अपने साथ ही ले गया। इसके अतिरिक्त प्रदेश की आमदनी भी कम हो गई थी। ऐसी स्थिति में एक शक्तिशाली शत्रु का मुकावला कर उस पर विजय पाना ईश्वर के भरोसे पर ही समझा जाना जाहिये।

गयासुद्दीन ने अपनी शक्तिशाली सेना के साथ चित्तौड़ के किले को आ घेरा, तथा शक जाति के (मुसलमान) लोगों ने किले पर वड़े-वड़े हमले किये, जिसमें उन लोनों का अधिकारी मारा गया। फिर महाराणा रायमल अपनी सेना को व्यवस्थित कर किले से वाहर निकला और उसने वादशाह

वि० (878 हि० = 1473 ई०) में महाराणा रायमल को सब सरदारों ने मिलकर गद्दी पर बैठाया। इस खुश खबरी को सुनकर उदयसिंह के साथ वाले लोग उसका साथ छोड़ कर किले में चले आये। उदयसिंह ने बाहर से ही उत्तर का रास्ता लिया। बाद में सरदारों ने उसके पुत्र सैंसमल व सूरजमल को उनके कुटुम्बियों सहित निकाल दिया। उस समय किसी कवि ने यह दोहा कहा—

दोहा — ऊदा बाप न मारजैं, लिखियो लाभै राज।
देम बसायो रायमल, सर्‌यो न एको काज ॥1॥

इसका शेष वर्णन महाराणा रायमल के वृत्तान्त में लिखा जावेगा। अब हम महाराणा रायमल के शासन-काल में रचित "रायमल का रासा" नामक ग्रंथ में लिखा हुआ वर्णन यहाँ लिखते हैं। यह ग्रंथ दो सौ वर्ष पूर्व का लिखा हुआ मिला है, लेकिन पूरा नहीं है। इसमें उदयसिंह का वर्णन इस तरह लिखा है कि, जब महाराणा कुम्भा को मार कर उदयसिंह गद्दी पर बैठा, तब से ही यह बात महाराणा रायमल को, जो अपनी ससुराल ईडर में था, बहुत बुरी लगी। उसी वर्ष से उसने धावा करना शुरू किया। दो तीन वर्ष तक तो उदयसिंह की फौज से कहीं-कहीं मुकाबला होता रहा। अंत में रायमल ने जावर पर अपना अधिकार कर लिया। यहां पर चांदी और सीसे की खान थी और यह एक बड़ा कस्बा था। फिर रायमल ने कुछ लोगों को एकत्रित करने के बाद श्री एकलिंगजी की पुरी में आकर मेवाड़ के कई सरदारों को बुलाया। यह बात उदयसिंह को पता चली। इस पर वह 10,000 फौज लेकर रायमल से मुकाबला करने को रवाना हुआ। दाड़मी ग्राम में दोनों तरफ के बहादुरों ने घमासान लड़ाई की। अन्त में महाराणा की जीत हुई और उदयसिंह भाग निकला। उसके हाथी, घोड़े और नक्कारे, निशान, रायमल ने छीन लिये। फिर उदयसिंह जावी के किले में जा घुसा। रायमल ने उसके पीछे का पीछे वहां पहुंच कर उस किले को जीत लिया। वहां से पानगढ़ के किले पर हमला किया। वहां का चौहान किलेदार उदयसिंह का समर्थक था। उसको जीत कर रायमल ने चित्तौड़ को जा घेरा। बहुत बड़ी लड़ाई होने के बाद प्रातःकाल में चित्तौड़ का किला भी जीत लिया गया। उदयसिंह भाग कर कुम्भमेर के किले में जा घुसा। फिर तो वागड़, छप्पन, मारवाड़, खैराड़ और बूंदी आदि के सभी सरदार लोग महाराणा

रावत कांधल चूंडावत	मृग
रावत सारंगदेव ग्रजावत	सिंहला
रावल सूरजमल क्षेमकरणोत	सूरज पसाव
सिंह मूवावत	सीचाणा
रावत भवानीदास सोढ़ा	भूमर्या
रावल उदयसिंह	उच्चैश्रवा
ब्रह्मदास	बलोंहा
कीता	काछी
रामदास पुरोहित	मनमेल
राय विनोद प्रधान	ग्रलवा
ग्रचला	ग्रमर ढाल
सांवला	शंकर पसाव
भीमसिंह भाणावत	नरिन्द
सांवतसिंह जोधावत	रिपुहण
पर्वतसिंह राठौड़	हयथाट
सुल्तानसिंह हाड़ा	श्रृंगार हार
महेश	मेघनाद
देवीदास	हयदीप
देवड़ा पूंजा	भ्रमर
रघुनाथ गौड़	लाडा
सगता (शक्ता) गेपावत	गजकेसरी
नाथू रायमलोत	जगरूप
रामदास	पेखणा
सूरजसेन सोलंखी	कोड़ीधज
नेतसी	कमल
जोगायत डूंगरोत	जशकलश
सांवल सोलंखी	हाथीराव
हंसा वाणोत	हंस
राव सुलतान	ग्रारवी
लोला	लाडला
कांधल मेहावत सांखला	दल भंजन

गयासुद्दीन की फौज पर हमला किया। इस आक्रमण में सुलतान ने भाग कर माँडू का रास्ता लिया। उसकी सम्पूर्ण सेना तितर-वितर हो गई। इस विजय के विवरण की तसदीक (प्रामाणिकरण) श्री एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के श्लोक 68-71[1] से होती है।

इस समयावधि में महाराणा रायमल तो निश्चिन्त होकर आराम से राज्य करने लगा। क्योंकि गयासुद्दीन जैसे शत्रु के पराजित होने से आप-पास के सब शत्रु उससे भयभीत हो गये थे। लेकिन गयासुद्दीन इस पराजय को सहन न कर सका। धीरे-धीरे वह लड़ाई का सामान इकट्ठा करता रहा। कुछ समय बाद स्वयं तो मांडू के किले में रहा और अपने सेनापति व रिश्तेदार जफरखां को अपनी सारी शक्तिशाली फौज साथ देकर मेवाड़ की तरफ रवाना किया। उसने आकर मेवाड़ के पूर्वी हिस्से में लूटमार मचाई। तब हाड़ा चाचकदेव ने, जो उस समय वेगूं का जागीरदार था, महाराणा के पास उपस्थित होकर निवेदन किया, कि जफरखाँ मलिक ने फौज लाकर सम्पूर्ण प्रदेश को नष्ट कर दिया है, तथा कोटा, भैंसरोड़ व श्योपुर तक अपने थाने भी स्थापित कर दिये हैं। यह सुनकर महाराणा रायमल ने जफरखाँ से मुकाबला करने के लिये सेना तैयार की। इस लड़ाई का विवरण "महाराणा रायमल का रासा" नामक ग्रंथ में लिखा है, इस ग्रंथ में जिन सरदारों तथा पासवानों आदि को जो घोड़े दिये गये उनके नाम लिखे हैं, वे नीचे दर्ज किये जाते हैं:—

सरदारों के नाम	घोड़ों के नाम
कुंवर कल्याणमल[2]	सोहन मुकट
कुंवर पृथ्वीराज	परेवा
कुंवर जयमल	जैत तुरंग
कुंवर संग्रामसिंह	जंगहत्थ
कुंवर पत्ता	पंखराज
कुंवर रामसिंह	रेवंत पसाव

1. दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, भावनगर इन्सिक्रप्शंनस् पृ०121. (सं०)
2. मालूम होता है, कि यह गागरौन के खीची राजा का बेटा था।

महासाणी महेश	माणक
जोगा राठौड़	सायर
भाण छपन्या राठौड़	रेणायर
मालदेव	मनरंजन
सूवा वीसावत	साहणदीप
सगता (शक्ता)	सारंग
हरदेह	हंसमन
जैसा वालेचा	विहंग
खेमा	चित्रंग
रावत जोगा	रणधवल
पर्वत	पारावत
भांडा सींधल	दल श्रृंगार
खंगार	कटारमल
हरराज	रूपड़ा
मेरा	जगमोहन
रणभमशाह सहणावत	सालहा
राजसिंह रामसिहोत	सोहन
हंसराज कालावत कायस्थ	नील
कान्ह कायस्थ	केवड़ा
निशानदार	गरुड़
छत्रधारी	निकलंक
तम्बोलदार	सुचंग
पाणेरी	मोतीरंग
हरिदास कपड़दार	पदार्थ
राव दूल्हा	रेवंत
आथण महासाणी	बालसिरताज

इस तरह सब राजपूत सरदारों को महाराणा ने घोड़े दिये और आप रूपमल घोड़े पर सवार होकर आसेर, रायसेन, चन्देरी, नरवर, बूंदी, आमेर सांभर, अजमेर, चाटसू, लालसोट, मारोठ और टोडा आदि के राजाओं व सरदारों सहित चित्तौड़ से कूच कर मांडलगढ़ की तरफ आया। जहां मलिक जफरखां से लड़ाई शुरू हुई। इस लड़ाई में बहुत से राजपूत काम आये, लेकिन

सिंह समरावत	सारंग
चरड़ा	हय विनोद
तेजसी	तरंजड़ा
नारायणदास कर्मसिंहोत	निर्मोलक
भाखर हाड़ा	सिंहला
शत्रुसिंह का पोता हटीसिंह हाड़ा	वांदरा
तेजा	तेजगंल
भामा	भगवती पसाव
वणवीर हाड़ा	विनोद
भाखर चन्द्रावत	चित्रांगद
ऊदा झांजावत	नैनसुख
राव जयब्रह्म वीरमदेवोत	मोर
सारंग रायमलोत	सैंसरूप
नरपाल	करड़ा
भारमल	पंचरेण
रघुनाथ सोलंखी	रींछड़ा
मेघ खेतावत सोलंखी	सपंख
रघुनाथ सोलंखी	हीरा
वाला	वोर
चरड़ा	सांवकरण
मूला	मनवश
लोका	लाखीणा
भीमसिंह	रूप रेख
राघव महपावत पंवार	लटियाला
करणा	सहजोग
रायसिंह	सालहा
सोढा चाचावत	नीला
कर्णसिंह डोडिया	चंचल
त्रम्बकदास बाघेला	छींपड़ा
दूदा लोहटोत हूल	हीरा
हौजा	हरलंगल

हमला कर दिया। डेरों में जो बादशाह के सिपाही थे, उनको समाप्त कर बादशाह को गिरफ्तार कर लिया। जब बादशाह की सेना चारों तरफ से कुंवर पृथ्वीराज पर हमला करने को तैयार हुई, तब गयासुद्दीन, जो राजकुमार के अधिकार में था, अपनी सेना के सरदारों को ऊंची आवाज से पुकार कर कहने लगा कि, "अगर तुम लोग इन राजपूतों पर हमला करोगे, तो ये मुझको किसी भी स्थिति में जीवित नहीं छोड़ेंगे। मेरे शुभचिन्तक हो, तो कोई भी मत बोलो।" अपने स्वामी के यह वचन सुन कर गयासुद्दीन की फौज के सरदार चुप हो गये। राजकुमार पृथ्वीराज गयासुद्दीन को गिरफ्तार करके चित्तौड़ से आया। अर्थात् अपने बाप के सामने जो वचन कहे थे, वे सच्चे कर दिखाये। फिर एक महीने बाद गयासुद्दीन को कुछ दण्ड लेकर छोड़ दिया। यह बात ख्यात की पोथियों में लिखी है। तारीख-इ-फरिश्ता आदि फारसी किताबों में इसका कुछ भी उल्लेख नहीं है। बल्कि फरिश्ता और दूसरी कई फारसी किताबों में लिखा है कि, गद्दीनशीन होने के बाद गयासुद्दीन बाहर ही नहीं निकला। वह सुख विलास में व्यस्त हो गया।

महाराणा रायमल के 13 कुंवर और 2 राजकुमारियां थीं, जिनके नाम ये हैं—1. पृथ्वीराज, 2. जयमल, 3. संग्रामसिंह, 4. पत्ता, 5 रामसिंह, 6. भवानीदास, 7. कृष्णदास, 8 नारायणदास, 9. शंकरदास, 10. देवीदास, 11. सुन्दरदास, 12. ईसरदास और 13. वेणीदास; 1. आनन्दकुंवर और दमाबाई, जो सिरोही के जगमाल देवड़ा को ब्याही गई।

एक दिन की बात है कि, राजकुमार पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह तीनों भाईयों ने एक ज्योतिषी को अपनी-अपनी जन्म पत्रियां दिखलाईं। जन्म पत्रियों को देखकर उस भविष्यवक्ता ने कहा कि, "ग्रह तो पृथ्वीराज और जयमल के भी अच्छे पड़े हैं, परन्तु मेवाड़ का राज्य संग्रामसिंह करेगा।" इस पर दोनों भाइयों ने नाराज होकर छोटे भाई संग्रामसिंह को मारने का इरादा किया और पृथ्वीराज ने तलवार की हूल मारी, जिससे संग्रामसिंह की आंख फूट गई। इसी समय इनका काका सूरजमल[1] आ गया। उसने दोनों

---

1. ओझा ने राजकुमार पृथ्वीराज और संग्रामसिंह संबन्धी इस घटना के संदर्भ में "सूरजमल क्षेमकरणोत" के स्थान पर "सारंगदेव अजावत" का उल्लेख करते हुए लिखा है कि, सूरजमल का पिता क्षेमकर्ण राणा रायमल का विरोधी था और दाड़िमपुर में वह

मुसलमानों के सैंकड़ों सरदारों के मारे जाने पर जफरखां भाग निकला। महाराणा की सेना ने उनका पीछा किया। लिखा है कि, इस सेना ने मांडू के पास खैरावाद नामक एक गांव को जाकर लूटा। जहां पर गयासुद्दीन ने महाराणा के पास अपने विश्वासी व्यक्तियों के साथ पेशकश भेजी।

ऊपर लिखा हुआ विवरण "महाराणा रायमल्ल का रासा" से लिखा गया है जो उसी जमाने का वना हुआ है, तथा इन्हीं महाराणा के राज्य-काल में उत्कीर्ण श्री एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के श्लोक 77-78 जिसकी साक्षी देते हैं।[1]

इसके वाद एक दिन चित्तौड़ पर गयासुद्दीन खिलजी का प्रमुख व्यक्ति आया। महाराणा रायमल उससे समझौते की वातें कर रहे थे कि, इतने में महाराणा का वड़ा कुंवर पृथ्वीराज आया। महाराणा को उस प्रमुख से नम्रता पूर्वक वातें करते हुए सुनकर उसको गुस्सा आया। तव उसने कहा कि, "क्या श्रीमान मुसलमानों से दव कर ऐसी लाचारी करते हैं ?" इस वात को सुनते ही वह प्रमुख व्यक्ति क्रोधित होकर उठ खड़ा हुआ। और अपने डेरे पर जाकर मांडू की तरफ रवाना हो गया। उसने मांडू पहुंच कर सम्पूर्ण विवरण गयासुद्दीन को कह सुनाया। गयासुद्दीन पहले वाली वातों से तो जलता ही था, यह सुनकर और भी अधिक क्रोधित हुआ। तव वड़ी विशाल फौज अपने साथ लेकर चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ। इस तरफ से राजकुमार पृथ्वीराज भी अपने राजपूतों को लेकर चला और मेवाड़ व मारवाड़ की सीमा पर दोनों दलों का मुकावला हुआ। सम्पूर्ण दिन वड़ी वहादुरी के साथ दिल खोल कर दोनों ओर की फौजें लड़ती रहीं। शाम को दोनों फौजें हट कर अपने-अपने डेरों में आई। फिर रात के समय कुंवर पृथ्वीराज ने सोचा कि, मैंने इस वादशाह को पकड़ कर हाजिर करने के लिए अपने पिता से कहा था। परन्तु ऐसा कर दिखाना कठिन मालूम होता है। इसलिए अव कोई धोखे की लड़ाई करनी चाहिये। यह विचार कर उसने अपनी सेना में से अच्छे-अच्छे पांच सौ राजपूत चुने और उनको अपने साथ लेकर मालवा के वादशाह के डेरों की तरफ रवाना हुआ। अलग-अलग मार्ग से दस-दस, पांच-पांच राजपूत वादशाह की फौज में जा घुसे और शाही डेरों के पास पहुँच कर एकदम

1. फरिश्ता आदि फारसी इतिहास ग्रन्थों में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

थी, उस पर तो संग्रामसिंह बैठ गया, जो इस प्रदेश का स्वामी होगा तथा गादी के कोने पर सूरजमल बैठा है, इसलिये इस प्रदेश के थोड़े से हिस्से का अधिकारी यह होगा तथा पृथ्वीराज और जयमल दोनों दूसरों के हाथ से मारे जावेंगे।

बीरी के मुख से ये वचन निकलते ही पृथ्वीराज और जयमल दोनों ने संग्रामसिंह पर शस्त्र चलाना शुरू किया और इधर से संग्रामसिंह और सूरजमल भी तैयार हुए। अंत में परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीराज और सूरजमल तो अधिक घायल होकर वहीं गिर गये और सांगा अपने घोड़े पर सवार होकर भागा। जयमल ने सोचा कि, पृथ्वीराज और सूरजमल तो मर ही गये होंगे, अब संग्रामसिंह बाकी रहा है। यदि इसको मार डालूं तो राज्य का स्वामी मैं ही रहूंगा और देवी के वचन भी असत्य हो जावेंगे। यह विचार करके उसने अपने साथी राजपूतों को साथ लेकर संग्रामसिंह का पीछा किया। संग्रामसिंह एक दिन और एक रात में सेवंत्री गांव में पहुंचा, जहाँ महाराणा हमीरसिंह का बनाया हुआ रूपनारायण का प्रसिद्ध मंदिर है। वहाँ पर मारवाड़ से राठौड़ बीदा जैतमलोत दर्शन करने को आया था। उसने सांगा को खून से तरबतर देख कर घोड़े से उतारा और उसके घावों पर पट्टी बांधी। इतने में जयमल भी अपने साथियों सहित आ पहुंचा। तथा बीदा से कहा कि "सांगा को हमारे सुपुर्द कर दो। नहीं तो तुम भी मारे जाओगे।" बीदा ने सांगा को सुपुर्द करने से इन्कार किया। इस पर जयमल ने लड़ाई शुरू कर दी। तब बीदा ने सांगा को मारवाड़ की तरफ रवाना किया और आप वहां लड़कर मारा गया।[1] बीदा की औलाद में केलवा वाले हैं। निदान सांगा के न मिलने से जयमल निराश होकर कुम्भलमेर के किले में चला आया।

इसी समय में पृथ्वीराज और सूरजमल के भी घाव अच्छे हो गये। पृथ्वीराज को महाराणा रायमल ने कहला भेजा कि, "ऐ दुराचारी पुत्र तूं मुझको आकर मुंह मत दिखा। क्योंकि मेरे जीतेजी ही राज्य के लिये तूने ऐसा क्लेश बढ़ाया और मेरा कुछ भी लिहाज नहीं किया। इसलिये तूं

1. रूपनारायण के मन्दिर की परिक्रमा में उत्कीर्ण लेखों के आधार पर ओझा ने इस घटना को सन् 1561 विक्रम=सन् 1504 ई० की माना है। ओझा उदयपुर० भाग 1, पृ० 332 पाद टिप्पणी 2। (सं०)

भाईयों को ललकार कर कहा कि, यह क्या दुराचार करते हो ? सूरजमल को देखकर आपस का झगड़ा बन्द हो गया। तब सूरजमल ने सांगा को अपने मकान पर लाकर पट्टी आदि कर, आंख का इलाज किया।

थोड़े ही दिन बाद भाईयों में आपस का विरोध बढ़ता हुआ देख कर सूरजमल ने अपने भतीजों को समझाया कि, तुम आपस में क्यों कटते-मरते हो। ज्योतिषियों के कहने पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अभी तक महाराणा रायमल राज्य कर रहे हैं। इसलिये ऐसा विचार करना ही बुरी बात है। इसके उपरान्त भी यदि तुम राज्य मिलने की भविष्य वार्ता ही सुनना चाहते हो, तो श्री एकलिंगजी से पूर्व में नाहर मगरा के पास भीमल गांव में देवी का अवतार, तुंगल शाखा[1] के चारण की बीरी नामक कन्या रहती है, उससे पूछताछ करो। तब यह बात सुनकर उक्त तीनों भाई अपने काका सूरजमल सहित नाहर मगरा की तरफ रवाना हुए। भीमल गांव में पहुँच कर बीरी के यहां गये। बीरी ने कहा कि, आज तो तुम अपने डेरे पर जाओ, कल सुबह ही देवी के मन्दिर में आना। यह सुनकर उस समय तो वे अपने डेरे पर चले आये।

दूसरे दिन सुबह होते ही देवी के मंदिर में गये। देवी की मूर्ति के दर्शन करके पृथ्वीराज तो एक तरफ एक सिंहासन पड़ा था, उस पर जा बैठा, तथा उसी सिंहासन के कोने पर जयमल भी बैठ गया। सिंहासन के सामने एक गादी बिछी थी, उस पर सांगा और गादी के कोने पर सूरजमल बैठ गये। थोड़ी देर बाद शक्ति का अवतार वह (बीरी) आई। उसको सबने उठ कर प्रणाम किया और कहा कि, "बाई हम एक काम के लिये आपके पास आये हैं।" तब बीरी ने कहा कि, बीर हमने तुम्हारे आने का कारण पहले ही से समझ लिया और उसका जवाब भी हो गया। परन्तु तुमको कहना शेष है। इसलिये कहती हूँ कि, "यह गादी, जो मैंने मेवाड़ के स्वामी के लिये बिछाई

उदयसिंह के समर्थक के रूप में लड़ता हुआ मारा गया था। तब से उसका पुत्र सूरजमल राणा रायमल का विरोधी बन गया। अतः उसका चित्तौड़ में उपस्थित रहना आदि संभव नहीं लगता। –ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 331, पादटिप्पणी। (सं०)

1. तुम्बेल शाखा होनी चाहिये। (सं०)

अधिकार करलो।" इस पर सोलंखी रायमल ने निवेदन की कि, "मादड़ेचे तो हमारे संबंधी हैं। मेरे लड़के उनके भानजे हैं। राजकुमार पृथ्वीराज ने कहा कि, यदि तुमको ठिकाना लेना है, तो यही मिलेगा।" तब लाचार सोलंखी रायमल ने भी राजकुमार का कहना स्वीकार किया, तथा सर्वप्रथम अपने लड़के शंकरसी व सामन्तसी को उनके ननिहाल, देवसूरी भेज कर पीछे से आप भी बहुत से लोगों के साथ वहां पहुंचा। भीतर से रायमल के लड़के शंकरसी और सामन्तसी का इशारा पाकर लोग अन्दर घुस पड़े और मादड़ेचा सांडा आदि कितने ही राजपूतों को मार कर किला जीत लिया। देवसूरी के किले को जीत कर रायमल ने कुंवर पृथ्वीराज से जाकर मुजरा किया। तब राजकुमार ने 140 गांव सहित देवसूरी का पट्टा उसको लिख दिया। जिसकी विगत आगरिया गांव 12, बांसरोट गांव 12, धामण्या गांव 12, सेवंत्री गांव 12, देवसूरी गांव 12, ढोलाणा गांव 12, आना, कर्णवास, बांसड़ा, मांडपुरा, केशुली, गांथी, गोडला और चावड़या आदि। रायमल के पुत्र शंकरसी की औलाद जीलवाड़ा गांव में और सामन्तसी की औलाद रूपनगर में विद्यमान है, जो मेवाड़ के बत्तीस सरदारों में गिने जाते हैं।

जब कुंवर पृथ्वीराज ने गोडवाड़ व मगरा आदि जिलों पर अपना अधिकार अच्छी तरह जमा लिया तथा उसका छोटा भाई जयमल भी उसी के पास उपस्थित था। उस समय लल्लाखां पठान ने सोलंखियों से टोड़ा छीन लिया। जिससे सोलंखी चित्तौड़ पर चले आये। महाराणा ने राव श्यामसिंह सोलंखी को बदनौर का पट्टा दिया। जब राव श्यामसिंह का देहान्त हो गया और राव सुलतान, बदनौर में पैतृक गद्दी पर बैठा, तब कुम्भलमेर से कुंवर जयमल ने राव सुलतान को कहलाया कि, "तुम्हारी बहिन सुंदर सुनी जाती है। यदि पहले मुझे बता दो, तो मैं उसके साथ शादी करूं।" राव सुलतान ने जवाब दिया कि, राजपूत की बेटी पहले दिखाई नहीं जाती, तथा आपको शादी करना स्वीकार हो, तो हमको इंकार नहीं है।" इस पर जयमल ने कहा कि, "मैंने कहा उसी तरह करना होगा।" तब राव सुलतान ने अपने साले रतनसिंह सांखला को भेज कर जयमल से कहलाया कि, "हम परदेसी राजपूतों को आपके पिता ने कठिनाई के समय में रखा है। इसलिये हम नम्रता के साथ कहते हैं कि, ऐसा नहीं करना चाहिये।" लेकिन जयमल ने उसके कहने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया,

चित्तौड़ पर मत आ। जहां तेरी खुशी हो वहां रह।" इस शर्मिन्दगी से राजकुमार पृथ्वीराज कुम्भलमेर में जा रहा।

अब राजकुमार संग्रामसिंह (सांगा) का हाल सुनिये। जैसे इंग्लैन्ड के प्रसिद्ध बादशाह एल्फ्रेड ने एक गडरिये के यहां भेड़ चराकर कठिनाई के दिन व्यतीत किये और रोटी जल जाने के अपराध में उस गडरिये की औरत के मुंह से बहुत कुछ बुरा भला सुना, उसी तरह संग्रामसिंह ने भी पृथ्वीराज और जयमल के भय से अपना घोड़ा छोड़ कर मारवाड़ में जाकर एक गडरिये के यहां थोड़े दिन तक विश्राम किया। तत्पश्चात् वहां से निकल कर अजमेर के निकट श्रीनगर के ठाकुर कर्मचन्द पंवार, जो एक बड़ा लुटेरा राजपूत था, के यहां जा रहा। कर्मचन्द के साथ दो-दो, तीन-तीन हजार राजपूत चढ़ते थे, उन्हीं राजपूतों में अपना वेष बदले हुए सांगा भी विदेशी राजपूत के नाम से जा रहा।

अब हम कुछ विवरण कुंवर पृथ्वीराज और उसके काका सूरजमल का लिखते हैं। कुम्भलमेर के पास गोडवाड के जिले में मादड़ेचा, वालेचा आदि पालवी राजपूत आदेश नहीं मानते थे। कुंवर पृथ्वीराज ने उन पर धावा करना शुरू किया और अन्त में सब राजपूत उक्त राजकुमार के आज्ञाकारी बन गये। लेकिन देवसूरी [1] के मादड़ेचा राजपूत अधिकार में नहीं आये, बल्कि दंगा-फसाद व लड़ाई करते रहे। कुंवर पृथ्वीराज ने भी उन पर कई हमले किये मगर देवसूरी का किला मजबूत होने के कारण अधिकार में नहीं आ सका। उसी जमाने में मादड़ेचों के संबंधी सोलंखी राजपूतों (जो सिरोही के गांव लांछ में आकर रहने लगे थे) और सिरोही के राव लाखा के मध्य शत्रुता पैदा हो जाने के कारण राव लाखा ने सोलंखियों पर कई हमले किये। परन्तु राव के पांच सात हमले सोलंखी भोज ने असफल कर दिये। इस पर राव लाखा लज्जित होकर ईडर के राजा भाण की मदद प्राप्त कर लांछ के सोलंखियों पर चढ़ाई की। इस लड़ाई में सोलंखी भोज मारा गया। उसका बेटा रायमल और रायमल के पुत्र शंकरसी, सामन्तसी, सखरा और भाण वहां से भाग कर कुंवर पृथ्वीराज के पास कुम्भलमेर पहुंचे। राजकुमार पृथ्वीराज ने इन लोगों को कहा कि,- "हम तुमको देवसूरी का पट्टा देते हैं। तुम मादड़ेचों को मार कर निकाल दो और वहां अपना

---

1. वर्तमान देवसूरी, पाली जिले का एक तहसील मुख्यालय। (सं०)

को सौंप दिया। उन दिनों अजमेर में बादशाह का सूबेदार मुसलमान था। यह हाल सुनकर वह लल्लाखां की सहायता के लिये अजमेर से रवाना हुआ। कुंवर पृथ्वीराज ने उसको आता हुआ सुनकर अजमेर के निकट ही उसे जा घेरा। वहां पर भी लड़ाई हुई, जिसमें उक्त सूबेदार मारा गया, तथा कुंवर पृथ्वीराज ने विजयश्री प्राप्त की। इस लड़ाई में बहुत से राजपूत मारे गये। कुंवर पृथ्वीराज वापस लौट कर कुम्भलमेर आया।

इसी समय महाराणा मोकल का पोता और क्षेमकरण का बेटा, रावत सूरजमल और महाराणा लाखा का पोता रावत अज्जा का बेटा रावत सारंगदेव, दोनों ने महाराणा रायमल से कहा कि, प्रथा के अनुसार हमको जागीर मिलनी चाहिये। तब महाराणा रायमल ने भैंसरोड़ का परगना सूरजमल और सारंगदेव को जागीर में दे दिया।[1] यह बात सुनकर राजकुमार पृथ्वीराज ने महाराणा रायमल को लिखा कि "हुजूर ने इन दोनों को पांच लाख की जागीर दे दी। यदि इसी तरह छोटों को इतनी जागीरें मिलती तो अब तक आप के पास मेवाड़ का कोई भी प्रदेश बाकी नहीं रहता।" इस पर महाराणा रायमल ने राजकुमार के नाम रुक्का लिखा कि, "हमने तो भैंसरोडगढ़ दे दिया, यदि तुमको यह बात बुरी मालूम हुई हो, तो तुम और वे आपस में समझ लो।" महाराणा रायमल उस समय कुंवर पृथ्वीराज का लिहाज रखते थे और रावत सूरजमल और सारंगदेव से भी दबते थे, इसलिये उनको तो जागीर दे दी और इसको ऐसा जवाब लिख दिया। महाराणा का रुक्का पढ़ते ही अपने दो हजार सवारों के साथ कुंवर पृथ्वीराज ने भैंसरोड़गढ़ पर चढ़ाई कर दी, तथा गढ़ के दरवाजे खुले पाकर भीतर घुस गया। जिन लोगों ने सामना किया उनको मारा और बाकी लोगों के शस्त्र छीन लिये। रावत सूरजमल और सारंगदेव किले से भाग निकले। कुंवर पृथ्वीराज ने इन दोनों के औरत व बच्चों को किले से निकाल दिया।

सूरजमल और सारंगदेव दोनों मेवाड़ से निकल कर मांडू पहुंचे। वहां जाकर बादशाह नासिरुद्दीन खिलजी से सहायता मांगी। बादशाह ने

---

1. ओझा के अनुसार महाराणा ने केवल रावत सारंगदेव अजावत को ही भैंसरोड की जागीर दी थी। ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 335। (सं०)

ग्रौर एकदम चढ़ाई की तैयारी कर दी। यह सम्पूर्ण विवरण सांखला रतनसिंह ने अपने वहनोई राव सुलतान से जाकर विस्तारपूर्वक कहा। तव राव सुलतान ने महाराणा का नमक खाने के विचार से लड़ाई करना तो उचित नहीं समझा ग्रौर ग्रपना सव सामान छकड़ों में भर कर, ग्रपने सव ग्रादमियों सहित वदनौर छोड़ कर चल दिया।

इधर कुंवर जयमल भी ग्रपने राजपूतों सहित वदनौर पहुंचा। परन्तु गांव खाली मिला। तव वहां से रवाना होकर राव सुलतान के पीछे लगा। वदनौर से सात कोस की दूरी पर गांव ग्राकड़सादा के निकट सुलतान के लोगों के पास पहुंच गया। मशालों की रोशनी देख कर राव सुलतान की ठकुरानी सांखली ने ग्रपने भाई रतनसिंह को कहा कि, "शत्रु ग्रा पहुंचे हैं।" यह सुनते ही रतनसिंह ग्रपने घोड़े का तंग संभाल कर वापस मुड़ा. ग्रौर जयमल की सेना में ग्राया। मशालों की रोशनी में कुंवर जयमल को घुड़वहल में वैठा देख कर कहा, कि "कुंवर साहव सांखला रतना का मुजरा पहुंचे।" यह कहते ही वर्छी से कुंवर जयमल का काम-तमाम कर डाला। जयमल के साथ के राजपूतों ने उसी जगह रतनसिंह को भी मार लिया। जयमल की दाह क्रिया उसी स्थान पर की गई, जहां पर कि वह मारा गया। चूंकि जयमल ने यह कार्य महाराणा रायमल की ग्राज्ञा प्राप्त किये विना किया था, इसलिये जयमल के राजपूतों ने सोलंखियों का पीछा छोड़ दिया, ग्रौर कुम्भलमेर को लौट ग्राये। फिर राव सुलतान ने वदनौर ग्राकर सव हाल की ग्रर्जी महाराणा रायमल के दरवार में भेज दी। तव महाराणा ने कहा कि, "उसी कुपुत्र का ग्रपराध था। राव सुलतान का कोई ग्रपराध नहीं है।" इसके वाद कुंवर पृथ्वीराज को सुलतान ने वड़ी नम्रता के साथ कहलाया कि, ग्राप मेरी वहिन तारादे के साथ ग्रपनी शादी करलें जिसको राजकुमार ने स्वीकार कर शादी कर ली।

शादी होने के वाद सोलंखियों ने राजकुमार से निवेदन किया कि, हमारा वतन लल्लाखां पठान ने छीन लिया है, ग्राप सहायता कर वह प्रदेश वापस दिला देवें। सोलंखियों द्वारा विनती करने पर 500 सवार लेकर कुंवर पृथ्वीराज ने तुरन्त ही टोड़े पर चढ़ाई कर दी। उस तरफ से लल्लाखां पठान भी ग्रपनी सेना को लेकर मुकावला करने हेतु ग्राया। लड़ाई हुई जिसमें लल्लाखां मारा गया। राजकुमार ने टोडा जीत कर राव सुलतान

मैं नहीं दूंगा ।" इस पर सूरजमल बोला, कि "भतीजा मैं भी आपको एक पलंग के नीचे आवे जितनी जमीन पर आराम से अधिकार करने नहीं दूंगा ।" तब पृथ्वीराज ने कहा "मैं फिर आऊंगा सावधान रहना ।" सूरजमल बोला कि, "भतीजा जल्दी आना मैं भी हाजिर हूं ।" पृथ्वीराज ने कहा, "कल ही आऊंगा ।" सूरजमल बोला "बहुत अच्छा ।" इस तरह उत्तर प्रत्युत्तर करने के बाद राजकुमार अपने रों में लौट आया और सुबह होते ही सवार हुआ । सामने से सूरजमल और सारंगदेव भी मुकाबला करने के लिये आया । रावत सारंगदेव के शरीर पर 35 घाव और पृथ्वीराज के 7 घाव लगे । सूरजमल भी गम्भीर रूप से घायल हुआ, जिसको उसके साथ वाले राजपूत वहां से ले निकले और कुंवर पृथ्वीराज घायल अवस्था में महाराणा के पास गया, जिसको साथ लेकर महाराणा चित्तौड़ पर आया । दोनों तरफ घावों का इलाज हुआ । इसके बाद सूरजमल सादड़ी और सारंगदेव बाठरड़े में रहने लगा ।

थोड़े दिनों के बाद रावत सूरजमल सारंगदेव से मिलने के लिये बाठरड़े गया । उसी समय एक हजार सवार लेकर कुंवर पृथ्वीराज वहां आ पहुंचा । रात का समय होने के कारण गांव का फलसा[1] लगा हुआ था और भीतर लोग आग जला कर ताप रहे थे । फलसा तोड़ कर राजकुमार तुरन्त ही गांव के भीतर घुस गया । राजपूतों ने हाथ में तलवारें पकड़ी और कितने ही लड़ कर मारे गये । पृथ्वीराज के आमने-सामने होते ही सूरजमल ने कहा कि, "भतीजा हम आपको नहीं मारना चाहते । क्योंकि आपके मारे जाने से राज डूबता है । हमारे ऊपर निस्संदेह तुम शस्त्र चलाओ ।" तब पृथ्वीराज ने लड़ाई स्थगित कर दी और सवारी से उतर कर सूरजमल से मिले, तथा पूछा कि "काकाजी क्या करते थे ?" उन्होंने कहा कि "भतीजा निश्चित् होकर बैठे हुए ताप रहे थे ।" इस पर राजकुमार ने कहा कि, "काकाजी क्या मेरे जैसा शत्रु सिर पर होने की स्थिति में भी निडर होकर बैठना चाहिये ?

ऐसी बातें करके सूरजमल तो सुबह होते ही सादड़ी की तरफ चला गया और सारंगदेव को पृथ्वीराज ने कहा कि "चलो देवी के दर्शन करें ।" ये दोनों देवी के मन्दिर में पहुंचे और बलिदान हुआ । कुंवर पृथ्वीराज उन

---

1. कांटे और लकड़ियों से बनी हुई फाटक को फलसा कहते हैं ।

शत्रु के घर की फूट देख कर इन दोनों को अपनी सेना के साथ बहुत कुछ खातिर व तसल्ली करके मेवाड़ पर भेजा।[1] महाराणा रायमल ने भी इनका आगमन सुनकर अपनी फौज को व्यवस्थित किया। रावत सूरजमल और सारंगदेव ने अपने औरत व बच्चों को तो सादड़ी में रखा और स्वयं अपने राजपूतों और शाही सेना को साथ लेकर चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ। उधर से महाराणा रायमल ने भी चढ़ाई की। गम्भीरी नदी पर दोनों दलों का मुकावला हुआ, जिसमें दोनों तरफ के वहादुरों ने दिल खोल कर खूब लड़ाई की और महाराणा रायमल घायल हुआ। करीव था कि सूरजमल और सारंगदेव विजयश्री प्राप्त करते, लेकिन कुंवर पृथ्वीराज इन लोगों के आने की खबर सुनकर कुम्भलमेर से रवाना होकर ठीक लड़ाई के समय पर आ पहुंचा। सूरजमल, सारंगदेव और पृथ्वीराज आपस में खूब लड़कर घायल हुए और विजय का झंडा पृथ्वीराज के हाथ में रहा। सूरजमल और सारंगदेव भाग कर अपने डेरों में चले गये। महाराणा रायमल को कुंवर पृथ्वीराज पालकी में डालकर डेरों पर लाया। दोनों तरफ के लोग अपने-अपने घायलों को सम्भालकर डेरों में ले गये और मरहम पट्टी की गई।

राजकुमार पृथ्वीराज ने महाराणा के घावों का इलाज किया और पहर रात गये घोड़े पर सवार होकर अकेले रावत सूरजमल के डेरों पर पहुंचा। सूरजमल के घावों पर भी पट्टियां वन्धी थीं। वह पृथ्वीराज को आते देखकर उठ खड़ा हुआ। पृथ्वीराज ने कहा कि, "काका जी खुश हो?" सूरजमल ने जवाव दिया कि "तुम्हारे मिलने से अधिक खुशी हुई।" पृथ्वीराज ने कहा कि, काकाजी मैं भी श्री दाजीराज[2] के घावों पर पट्टी वांध कर आया हूं।" सूरजमल ने कहा कि, "भतीजा राजपूतों का यही काम है।" पृथ्वीराज वोला कि "काकाजी आपको भाले की नोक से दवे उतनी जमीन

1. हिजरी सन् 609 = 1503 ई० में सुलतान नासिरुद्दीन के चित्तौड़ पर चढ़ाई करने और महाराणा के उसको "वहूमूल्य भेंट" देने और उसके निकट सम्वन्धी जीवनदास या भवानीदास के अपनी पुत्री सुलतान को प्रदान करने आदि का फारसी ग्रन्थों में उल्लेख है—फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 243, तबकात (अं० अ०), भाग 3, पृ० 570। (सं०)
2. मेवाड़ के राजकुमार अपने पिता को दाजीराज कहते हैं।

कोना काट लिया[1] और अपनी बूआ रमाबाई को पालकी में बैठा कर अपने साथ ले आया, जो उम्र भर यहीं रही,[2] तथा उन्होंने कुम्भलमेर में विष्णु भगवान् का एक मंदिर बनवाया। महाराणा रायमल ने रमाबाई को जावर का परगना जागीर में दिया था, जहां उसने रामस्वामी का मन्दिर और रामकुंड आदि भवन बनवाये, जिनकी प्रतिष्ठा विक्रमी 1554 चैत्र शुक्ल 7 रविवार[3] को हुई। इस अवसर पर महाराणा रायमल और राजकुमार पृथ्वीराज ने राजा मंडलीक को भी निमंत्रण भेज कर गिरनार से बुलवाया था। इन इमारतों का कुछ विवरण महेश्वर पंडित ने वहां की प्रशस्तियों में लिखा है।

अब हम यहां पर राजकुमार पृथ्वीराज की मृत्यु का वृत्तान्त लिखते हैं। राजकुमार पृथ्वीराज की बहिन आनन्दबाई की शादी सिरोही के राव जगमाल के साथ हुई थी। दूसरी स्त्रियों के बहकाने से वह उसको बहुत दुःख दिया करता था। यहां तक कि पलंग का पाया उसके हाथ पर रख कर रात को सोता। तथा कहता कि, "तेरा बहादुर भाई कहां है? उसको सहायता के लिये बुलाओ।" उस पतिव्रता ने तो अपने भाई को कुछ नहीं लिखा। लेकिन यह वृत्तान्त अन्य किसी माध्यम से पृथ्वीराज के कान तक पहुंच गया, जिसको सुन कर इस शूरवीर से चुप न रहा गया और वह अपने राजपूतों सहित उसी समय सिरोही की तरफ रवाना हुआ। राजकुमार ने आधी रात के समय सिरोही में पहुंच कर दूसरे साथी राजपूतों को तो गांव के बाहर छोड़ा और आप अकेला राव जगमाल के महलों में घुस गया। वहां क्या देखता है कि, आनन्दकुंवर बाई के हाथ पर पलंग का पाया रख कर राव नींद में बेखबर सो रहा है। पृथ्वीराज ने म्यान से तलवार निकाल

---

1. यह बात बड़वा भाटों और ख्यात की पोथियों से लिखी है।
2. यह विवरण ठीक नहीं है। वस्तुतः गिरनार का राजा मंडलीक गुजरात के सुलतान महमूद बेगड़ा से पराजित होने के बाद सन् 876 हि० = 1471 ई० में मुसलमान होकर राणा रायमल के राज्यारोहण के पूर्व ही सन् 877 हि० = 1472 ई० में मर गया था। सम्भवतः मंडलीक के मुसलमान होकर मरने के बाद ही रमाबाई मेवाड़ में आई। – ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 240। (सं०)
3. मार्च 12, 1497 ई०। (सं०)

घावों को नहीं भूला था, जो सारंगदेव के हाथ से पहली लड़ाई में उसके लगे थे। इस समय इन्होंने भी मौका पाकर अपनी कमर से कटारी निकाली और सारंगदेव के शरीर में पार कर दी। सारंगदेव ने भी तलवार का वार किया, लेकिन वह देवी के पाट पर जा लगा।

सारंगदेव को मारने के बाद कुंवर पृथ्वीराज वहां से रवाना होकर सादड़ी आया, तथा सूरजमल से मिल कर जनाने (रणवास) में गया। अपनी काकी से मुजरा करके कहा कि, "वहूजी मुझको भूख लगी है।" सूरजमल की स्त्री ने भोजन तैयार कर सामने रखा। यह खवर सुनकर सूरजमल भीतर आया और राजकुमार के साथ खाने में सम्मिलित हुआ। तव सूरजमल की औरत ने जिस चीज में जहर मिलाया था, वह कटोरी उठा ली। पृथ्वीराज सूरजमल की तरफ देखने लगा। इस पर सूरजमल ने क्रोध में आकर कहा कि, "ऐ नादान मैं तो तेरे पिता का भाई हूँ, इसलिये अपने खून के जोश से अपने पुत्र की मृत्यु को नहीं देख सकता। लेकिन इस औरत को तेरे मरने की क्या फिक्र है ?" यह वात सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि, "काकाजी अब सब मेवाड़ का राज्य आपके लिये हाजिर है।" सूरजमल ने कहा कि, "भतीजा अब हमको आपकी जमीन में पानी पीने की भी सौगन्ध है।" इसके वाद सूरजमल ने वहां से चलने की तैयारी की। पृथ्वीराज ने वहुतेरा कहा, लेकिन उसने एक भी न सुनी और मेवाड़ के किनारे कांठल[1] में जाकर वहां के भीलों को परास्त कर अपना राज्य जमाया। सूरजमल के वंशजों का वर्णन इस इतिहास के दूसरे भाग में लिखा जावेगा।

सादड़ी से रवाना होकर कुंवर पृथ्वीराज वापस कुम्भलमेर आया। इन्हीं दिनों में महाराणा रायमल की वहिन रमावाई के और उसके पति गिरनार के राजा मंडलीक जादव के मध्य मनमुटाव हो गया। मंडलीक ने रमावाई को वहुत कष्ट दिया। यह खवर सुनकर कुंवर पृथ्वीराज से कव रहा जाता था ? वह उसी समय अपने शूरवीरों को साथ लेकर गिरनार पर चढ़ दौड़ा, तथा राजा मंडलीफ को उसके महलों में सोते हुए जा दवाया। मंडलीक उस समय वेखवर था, उससे कुछ भी न वन पड़ा और राजकुमार से प्रार्थना करने लगा। तव राजकुमार ने दया करके मंडलीक के एक कान का

---

1. यह प्रतापगढ़ जिले का नाम है।

एक दिन की घटना है, कर्मचन्द पंवार कहीं से धाड़ा डाल कर[1] वापस आ रहा था। उसने मार्ग के किसी एक जंगल में अपने साथियों सहित ठहर कर आराम किया। साथ वालों में से हर एक व्यक्ति वृक्षों की छाया में जहां जिसके दिल में आया ठहर गया। एक वड़ के नीचे राजकुमार संग्रामसिंह ने भी अपना घोड़ा वांध दिया और जीनपोश विछा कर सो रहा। उस समय कर्मचन्द के राजपूतों में से जयसिंह वालेचा और जामा सींधल दोनों अपने-अपने साथियों की सुरक्षा के लिये फिरते हुए इत्तफाक से उस वड़ के पास आ निकले। वड़ के पत्तों के बीच में होकर सूर्य की किरणें राजकुमार संग्रामसिंह के मुंह पर गिरने लगी। तव उस बड़ की जड़ों में से निकल कर एक काले सांप ने अपने फन से उस पर छाया[2] कर ली। ये दोनों राजपूत इस वात को देखकर वड़े अचम्भित हुए, तथा दौड़ कर कर्मचन्द को सारा विवरण सुना कर कहा कि, वह कोई राजा या राजकुमार है, क्योंकि इस तरह किसी के सिर पर सांप अपने फन से छाया नहीं करता। कर्मचन्द भी दौड़कर वड़ के पास आया। तो वैसा ही दिखाई दिया। इसके वाद सर्प तो विल में घुस गया और इन्होंने सांगा को जगा कर कहा कि, "सच कहो आप कौन हो?" तव उसने कहा कि, "मैं सीसोदिया राजपूत हूं, और संग्रामसिंह मेरा नाम है, इसके अतिरिक्त मेरा अधिक हाल पूछने से आपको क्या मतलव है?" यह सुनकर कर्मचन्द को और भी अधिक शक हुआ कि, यह सभवतः महाराणा रायमल का छोटा कुंवर संग्रामसिंह है, जिसका वहुत दिनों से पता नहीं है। इसी कारण से यह अपना हाल छुपा रहा होगा। ऐसा अनुमान कर कर्मचन्द ने राजकुमार से कहा कि, "हम जानते हैं, आप महाराणा रायमल के छोटे पुत्र संग्रामसिंह हैं। यदि ऐसा ही है तो, आपको इस तरह छिप कर नहीं रहना चाहिये, हम भी राजपूत हैं। यदि राजकुमार पृथ्वीराज आप पर चढ़ाई कर आवेंगे, तो हम सैकड़ों राजपूत आपके लिये उनसे मुकावला करने को तैयार हैं।" यह सुनकर राजकुमार ने भी अपना सारा सच्चा हाल कह सुनाया। राजकुमार को कर्मचन्द अपने घर श्रीनगर ले आया और उसके साथ अपनी वेटी का विवाह कर दिया। यह हाल सुनकर राजकुमार पृथ्वीराज को वड़ा क्रोध आया और उसने कर्मचन्द

---

1. लूट कर। (सं०)
2. यह वात हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध है कि, ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर लोग उस व्यक्ति के छत्रधारी राजा होने का शुभ शकुन मानते हैं।

कर राव जगमाल को ठोकर मारी और कहा कि, "ऐ राव ! मेरी वहिन को इस तरह कष्ट देकर ऐसा गाफिल सोता है ?" ठोकर लगते ही राव घवरा कर उठा और आनन्दकुंवर वाई ने भी पाये के नीचे से हाथ खेंच लिये, तथा अपने भाई के सामने झोली विछा कर वोली, कि "हे भाई ! मेरा सुहाग रखो, और मेरे पति को जीवन-दान दो।' अपनी वहिन की लाचारी से राजकुमार ने राव जगमाल को जीवनदान देकर कहा कि "आगे इस वात का ध्यान रखना चाहिये।" राव जगमाल ने राजकुमार से वहुत कुछ प्रार्थना की और अपने महलों में ले जाकर दावत की तैयारी की। राजकुमार तो साफ दिल था। राव का विश्वास कर, अपने राजपूतों सहित उसके आतिथ्य में व्यस्त हो गया। लेकिन राव इस घटना से वहुत शर्मिदा हो गया था। जव राजकुमार कुम्भलमेर को विदा होने लगा, तव राव ने तीन गोलियां, जिनमें जहर मिला हुआ था, राजकुमार को दी और कहा कि "ये वंग्रज की वहुत लाभदायक गोलियां है।" राजकुमार ने कुम्भलगढ़ के निकट पहुंच कर एक गोली खाई और थोड़ी दूर जाकर दूसरी और इसी तरह तीसरी भी खाली। तीनों गोलियां खाते ही जहर ने एकदम ऐसा असर किया कि, कुम्भलमेर के निकट पहुंचते-पहुंचते उसका देहान्त हो गया। कुम्भलमेर के किले में मामादेव के पास उसका दाह संस्कार किया गया। इस राजकुमार की एक छत्री किले के निकट जहां इसका देहान्त हुआ था और दूसरी दग्ध-स्थान पर किले में मामादेव के स्थान पर वनी है। इसके साथ 16 सतियां हुईं।

अव महाराणा के तीसरे कुंवर संग्रामसिंह (सांगा) का वृत्तान्त सुनिये। ऊपर लिखा जा चुका है कि, पृथ्वीराज के भय से कुंवर संग्रामसिंह मेवाड़ छोड़ कर कुछ दिनों मारवाड़ में एक गडरिये के यहां दिन गुजारे।[1] वहां से अजमेर जिले के प्रसिद्ध लुटेरे, श्रीनगर के ठाकुर, कर्मचन्द पंवार के पास जा रहा और अपने पास जो कुछ पहनने का जेवर था, उसे वेच कर घोड़ा खरीद लिया। इस राजकुमार को पृथ्वीराज के भय से राजकीय प्रकृति को छोड़कर वहुत दिनों तक लुटेरों के गिरोह में उन्हीं के समान होकर रहना पड़ा।

1. मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार विपत्ति के दिनों में सांगा आंवेर के कछवाहा राजा पृथ्वीराज के पास रहा था। सोलहवीं सदी में राजस्थान, पृ० 66। (सं०)

अध्याय—छठवां

महाराणा संग्रामसिंह से महाराणा विक्रमादित्य तक

सांगा—

जेष्ठ शुक्ल 5, विक्रमी 1565 (4 मोहर्रम, 914 हि० = मई 5, 1508 ई०) को महाराणा संग्रामसिंह गद्दी पर बैठा।[1] उसने राजगद्दी पर बैठते ही कर्मचन्द पंवार को उसकी सेवा के अनुसार अजमेर का पट्टा जागीर में लिख दिया और उसे अपने उमरावों में प्रथम श्रेणी का उमराव बनाया।

दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी ने जब सुना कि, महाराणा संग्रामसिंह ने शाही प्रदेश पर अपना अधिकार करना शुरू किया है तो, दिल्ली का बादशाह होने के कारण ऐसी बात सुनकर वह भी चुप नहीं रह सका। तथा बड़ी विशाल सेना तैयार कर मेवाड़ की तरफ रवाना हुआ। यह खबर सुनकर इधर से महाराणा संग्रामसिंह ने भी अपने बहादुर राजपूतों सहित प्रस्थान किया। हाड़ौती की सीमा पर खातोली गांव के पास दोनों फौजों का मुकाबला हुआ। दो पहर तक लड़ाई होती रहने के बाद शाही फौज भाग निकली। बादशाह इब्राहीम लोदी[2] ने सेना को ठहराने के लिये बहुत प्रयत्न किया, लेकिन उसे एक में भी सफलता नहीं मिली। तब लाचार उसको भी

---

1. मुहणोत नैणसी ने (नैणसी ख्यात० भाग 1, पृ० 19) महाराणा संग्रामसिंह के राज्यारोहण की तिथि जेठसुदि 5, 1566 वि; मई 24 1509 ई०) लिखी है। (सं०)
2. 1517 ई० इब्राहीम लोदी दिल्ली का सुलतान बना था। (सं०)

पंवार पर चढ़ाई करने का पूरा इरादा कर लिया। लेकिन उसी समय में उसको अपनी बहिन के कष्टों का समाचार मिला, जिसको सुन कर उसे पहले सिरोही की तरफ जाना पड़ा और वहां से वापस आते समय मार्ग में ही देहान्त हो गया, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

महाराणा रायमल को पृथ्वीराज और जयमल के मर जाने का बहुत दुःख हुआ। उसी दुःख के आघात से वह अधिक बीमार हो गया। तब उसने राजकुमार संग्रामसिंह को कर्मचन्द पंवार के यहां सुन कर उसके पास आदमी भेजे। महाराणा का आज्ञापत्र देखते ही कर्मचन्द पंवार राजकुमार को लेकर चित्तौड़ में उपस्थित हुआ। अपने पुत्र को देखकर महाराणा ने बड़ा ही स्नेह प्रकट किया और कर्मचन्द को अपने उमरावों में सम्मिलित कर बहुतसी जागीर निकाल दी। अब भी कर्मचन्द के वंश में बत्तीस सरदारों में बंबोरी का ठाकुर विद्यमान है, जिसका वर्णन इतिहास के दूसरे भाग में लिखा जावेगा।

गुजरात देश में हलवद एक राज्य है; वहां के राजा झाला राजसिंह के बेटे अज्जा और सज्जा अपने भाईयों के झगड़े से निकल कर 1563 वि० (912 हि० = 1506 ई०) में मेवाड़ में आये और महाराणा रायमल की सेवा में रहे थे। उन दोनों भाईयों के वंशजों पांच ठिकाने अभी तक मेवाड़ में विद्यमान हैं—प्रथम श्रेणी के उमरावों में 1. सादड़ी, 2. देलवाड़ा और 3. गोगूंदा और द्वितीय श्रेणी के सरदारों में 1. ताणा, 2. झाडोल। इनका सविस्तार वर्णन उमराव सरदारों के वर्णन में किया जायेगा।

1565 विक्रमी (914 हि० = 1508 ई०) में महाराणा रायमल का देहान्त हुआ[1] और उसी साल में महाराणा संग्रामसिंह गद्दी पर बैठा। उदयकरण के समय में श्री एकलिंगजी का मन्दिर गिर गया था, उसको महाराणा रायमल ने पुनः बनवाया और कितने एक गांव जो उदयकरण के समय में खालसा हो गये थे, वे वापस भेंट किये, तथा थूर नामक गांव गोपाल भट्ट को दिया। महाराणा रायमल की महाराणी जोधपुर के राव जोधा की बेटी शृंगारदेवी ने घोसूडी गांव में एक बावड़ी तैयार करवाई थी।

---

1. ओझा के अनुसार महाराणा रायमल का देहान्त जेष्ठ शुक्ल 5, 1566 वि० = मई 24, 1509 ई० को हुआ था। ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 346। (सं०)

तव तो रायमल ने भी पहाड़ों से निकल कर निजामुल्मुल्क की सेना पर आक्रमण कर दिया। इसमें बहुत से मुसलमान मारे गये और निजामुल्मुल्क पराजित हुआ। सुलतान मुजफ्फर ने यह खबर सुन कर निजामुल्मुल्क को लिख भेजा कि, यह लड़ाई तुमने अलाभकारी ही की। हमारा उद्देश्य केवल ईडर लेने से था। सुलतान का यह खत पहुंचने पर निजामुल्मुल्क वापस ईडर चला आया।

1573 वि० (922 हि० = 1516 ई०) में सुलतान मुजफ्फर महमूदाबाद (चांपानेर) को गया। जहां से अपने प्रधान नुस्रतुल्मुल्क को ईडर भेज कर निजामुल्मुल्क को अपने पास बुलाया। नुस्रतुल्मुल्क के ईडर पहुंचने से पहले ही जल्दी करके निजामुल्मुल्क तो महमूदाबाद को चल दिया और 100 सवारों सहित जहीरुल्मुल्क को ईडर में छोड़ गया। नुस्रतुल्मुल्क तो ईडर पहुंचने ही नहीं पाया, वह आमनगर उर्फ अहमदनगर के जिले में ही था कि, इतने में पहाड़ों में से निकल कर राव रायमल ने ईडर पर आक्रमण कर दिया। जहीरुल्मुल्क 27 आदमियों के साथ मारा गया।[1] यह समाचार सुन कर सुलतान ने नुस्रतुल्मुल्क को लिखा कि, बीजापुर बदमाशों का ठिकाना है इसलिये उसको लूट लो। इसी बीच में मालवे का सुलतान महमूद खिलजी मेदिनीराय पूर्बिया राजपूत से भयभीत होकर मांडू से भागा और सुलतान मुजफ्फर गुजराती के पास पहुंचा।[2] सुलतान मुजफ्फर भी बहुतसी फौज लेकर महमूद के साथ मांडू की तरफ चला। यह सूचना पाकर मेदिनीराय[3] अपने बेटे राय नत्थू को बहुत से राजपूतों सहित मांडू के किले में छोड़, महमूद के हाथी और 10,000 सवार लेकर धार होता हुआ महाराणा सांगा के पास पहुंचा। उधर से सुलतान मुजफ्फर ने आकर मांडू के किले को घेर लिया। राय नत्थू की सेना के राजपूतों ने बाहर निकल कर शाही सेना पर हमला किया, जिसमें बहुत से राजपूत और किवामुल्मुल्क की सेना के मुसलमान मारे गये। फिर राजपूत वापस क़िले में चले गये। सुलतान ने अपने अमीरों को सुदृढ़ मोर्चों पर नियुक्त कर किले को घेरा। मेदिनीराय ने राय नत्थू को लिख भेजा कि, मैं एक महिने की अवधि

1. ब्रिग्ज० फरिश्ता, (अं० अ०) भाग 4, पृ० 83; हरविलास शारदा, महाराणा सांगा पृ० 55। (सं०)
2. ब्रिग्ज, फरिश्ता, (अं० अ०) भाग 4, पृ० 259-260। (सं०)
3. यह रायसेन का राजा था। (सं०)

फौज के साथ भागना पड़ा। लेकिन उसके एक शाहजादे ने पीछे फिर कर महाराणा की सेना का सामना किया और वह पकड़ा गया। इस लड़ाई में महाराणा संग्रामसिंह का एक हाथ तलवार से कट गया और एक पैर के घुटने पर ऐसा जोर से तीर लगा कि, जिससे वह लंगड़ा हो गया। इसके वाद महाराणा ने चित्तौड़ में आकर वादशाह के शाहजादा को कुछ दण्ड लेकर छोड़ दिया।

उन्हीं दिनों में चन्देरी के गौड़ राजा ने सिर उठाया। इसलिये कर्मचन्द पंवार के पुत्र जगमाल को फौज देकर चन्देरी पर भेजा। वह उस राजा को जीत कर पकड़ लाया। तव महाराणा ने उसको तो अपना अधीनस्थ वनाया और जगमाल को राव की पदवी प्रदान की।

अव हम गुजरात के वादशाहों की लड़ाईयों का वर्णन लिखते हैं –

ईडर के राव भाण के दो लड़के थे, पहला सूर्यमल और दूसरा भीम। राव भाण का देहान्त होने के वाद राव सूर्यमल राजगद्दी पर वैठा, जो 18 मास तक राज्य करके परलोक को सिधाया। उसके स्थान पर उसका लड़का रायमल गद्दीनशीन हुआ। लेकिन कम उम्र होने के कारण रायमल के काका भीम ने उससे ईडर का राज्य छीन लिया। तव राव सूर्यमल का पुत्र रायमल महाराणा सांगा की शरण में चला आया। महाराणा ने अपनी वेटी की शादी उसके साथ कर देने का वचन किया। फिर कुछ समय वाद भीमसिंह तो मर गया और उसका वेटा भारमल ईडर के राज्य का स्वामी वना। तव महाराणा सांगा की सहायता से चैत्र, 1572 वि० (सफर, 921 हि० = मार्च, 1515 ई०) में रायमल पुनः ईडर का स्वामी वन गया।[1]

ईडर ने निकल कर भारमल निवेदक के रूप में गुजरात के सुलतान मुजफ्फर के पास गया। जिस पर सुलतान ने अपने प्रधान निजामुल्मुल्क को कहा कि, ईडर का राज्य रायमल से छीन कर भारमल को दिला देना चाहिये, तथा स्वयं भी अहमदनगर की तरफ आया। फौज साथ लेकर निजामुल्मुल्क ने ईडर को आ घेरा। उस समय मुसलमानों की फौज को अधिक देखकर रायमल ईडर छोड़ वीजानगर के पहाड़ों में चला गया। लेकिन भारमल को ईडर का राजा वनाकर निजामुल्मुल्क ने उसका पीछा किया।

---

1. व्रिग्ज०, फरिश्ता०, (अं० अ०) भाग 4, पृ० 83।

प्रकृति थी कि, यदि महाराणा घबराकर वापस भागता तो चित्तौड़ तक उसका पीछा किये बिना किसी हालत में नहीं रहते। इसके अतिरिक्त अगले हालात पढ़ने से पाठकों को तारीख-इ-फरिश्ता के लेखक का पक्षपात पूर्ण रवैया अच्छी तरह मालूम हो जावेगा।

मिरात-इ-सिकन्दरी में महाराणा सांगा का मेदिनीराय सहित सारंगपुर तक पहुंचना और मांडू के कतल की खबर सुनकर वापस चित्तौड़ की तरफ लौट जाना लिखा है। यदि ऐसा हो तो निस्संदेह अनुमान में आ सकता है कि, जिन लोगों की मदद के लिये उसने चढ़ाई की, वे लोग मारे गये। तो ऐसे अवसर पर लौट आना ही ठीक समझा हो। क्योंकि थोड़े ही दिनों के बाद इस लड़ाई का परिणाम भी जाहिर हो गया। अर्थात् 1575 वि० (924 हि०= 1518 ई०) में जब सुलतान महमूद ने गागरौन के किले पर चढ़ाई की, उन दिनों यह किला मेदिनीराय के अधिकार में होने के कारण वह निवेदक के रूप में महाराणा सांगा के पास आया कि, महमूद हमको नष्ट कर रहा है। तब महाराणा सांगा बड़ी विशाल फौज लेकर गागरौन की तरफ रवाना हुआ। जब दोनों फौजों का मुकाबला हुआ, उस समय गुजरात के आसफ खां ने, जो गुजरात के बादशाह की तरफ से बहुसंख्यक सेना सहित महमूद की सहायता कर रहा था, उस दिन लड़ाई करना उचित नहीं समझ कर महमूद को रोका। लेकिन उसने किसी का कहा न माना और लड़ाई शुरू कर दी। इस लड़ाई में महमूद के 32 सिपहसालार (सेनापति) और आसफ खां आदि के साथ सेना के हजारों आदमी मारे गये। फिर सुलतान महमूद अकेला बड़ी बहादुरी के साथ राजपूतों से लड़ा। अन्त में गम्भीर रूप से घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। राजपूतों ने उसको उठाकर महाराणा के पास प. चाया। महाराणा ने इज्जत के साथ उसको पालकी में बैठाकर चित्तौड़ में ले आये। फिर वहां उसका इलाज करवाया और कुछ दिनों बाद उससे बहुतसा फौज खर्च और जड़ाऊ ताज लेकर, एक हजार राजपूतों के साथ इज्जत से उसको मांडू प. चा दिया।[1] उसके एक शाहजादे को, जो उसी के साथ कैद हुआ था, अपने मुलाजिमों में ओल के रूप में रखा। इस शाहजादे को रखने में यह हिकमत अमली (नीति) थी कि, फिर कभी महमूद झगड़ा नहीं करने पावे। महमूद खिलजी की महाराणा सांगा

---

1. ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 262-263। (सं०)

में महाराणा संग्रामसिंह से मदद लेकर आता हूँ। उस समय तक तुम सुलतान से वातचीत करके टालाटूली करते रहना। राय नत्थू ने वैसा ही किया। उसने वकील भेज कर सुलतान मुजफ्फर को कहलाया कि, "हम एक महीने की अवधि में किले से निकल जावेंगे। आप अपनी सेना सहित एक मंजिल पीछे हट जावें।" इस पर सुलतान ने तीन कोस पीछे हट कर अपनी सेना के डेरे किये। किला खाली कर देने की आशा में सुलतान मुजफ्फर ने 20 दिन व्यतीत किये। लेकिन फिर यह सुना कि मेदिनीराय ने महमूद के बहुत से हाथी, जेवर और रुपया महाराणा सांगा को भेंट कर उन्हें उज्जैन की तरफ अपनी मदद के लिये लाने का इरादा किया है। तब सुलतान ने बुरहानपुर के हाकिम आदिलखां फारूकी के साथ किवाबुलमुल्क को बहुतसी सेना देकर महाराणा सांगा का सामना करने के लिये भेजा और आप अपने अमीरों सहित मांडू के किले पर हमला करने को रहा। चार दिन तक किले पर वरावर हमले होते रहे। पांचवीं रात को सुलतान धोखा देने के लिये लड़ाई करने से रुका। किले वाले चार दिन के थके हुए होने के कारण सो गये। सुलतान ने आधी रात के समय अपने बहादुरों को सीढ़ियां लगा कर किले पर चढ़ा दिया और भीतर से दरवाजे खोल देने के कारण फौज भी किले में घुस गई। चैत्र शुक्ल 15, 1575 विक्रमी (14 रबीउल-अव्वल, 924 हि० = 26 मार्च, 1518 ई०) को किले वाले राजपूतों ने भी अपने वालवच्चों व औरतों को जला कर हाथ में तलवारें पकड़ी। लिखा है, 19,000 राजपूत और हजारों मुसलमान इस लड़ाई में मारे गये।[1] इसके वाद महमूद को मांडू की वादशाहत देकर मुजफ्फरशाह महमूदावाद (चांपानेर) की तरफ चला गया, क्योंकि महाराणा सांगा का उसको भी भय था।

तारीख-इ-फरिश्ता का लेखक लिखता है कि, महाराणा सांगा सुलतान मुजफ्फर के भय से वापस चित्तौड़ चला गया। लेकिन यह वात मानने में नहीं आती। क्योंकि महाराणा सांगा जैसे रोब-दाव वाला राजा का केवल मांडू में हुए कत्लेआम से घवराकर सुलतान मुजफ्फर के नाम से पीछे हट जाना, जिसमें भी ऐसी कमजोर स्थिति में कि, किले के 19,000 राजपूत मारे गये, उनके मुकावले में पचास साठ हजार से कम उसकी फौज के आदमी भी न मरे होंगे ? इसके अतिरिक्त इन मुसलमान वादशाहों की यह स्वाभाविक

1. ब्रिग्ज, फरिश्ता (अं० अ०) भाग 4, पृ० 261; तवकात (अं० अ०), भाग 3, पृ० 604। (सं०)

तैयार हूँ। यहां आकर अपना जोर आजमावे।[1] यह सब वृत्तान्त उस भाट ने चित्तौड़ में आकर महाराणा संग्रामसिंह से कहा। यह बात सुन कर महाराणा का भी आत्म स्वाभिमान जाग उठा और उसने ईडर की तरफ गुजरात के प्रदेश पर चढ़ाई का आदेश दे दिया। कहते हैं कि, 40 000 सवार और बहुत से पैदलों के साथ विक्रमी 1575 (हि० 925=1518 ई०) के अंत में चित्तौड़ से महाराणा ने कूच किया। जब बागड़ में पहुंचा तो डूंगरपुर का रावल उदयसिंह भी अपने राजपूतों सहित उसकी सेवा में आ उपस्थित हुआ, फिर ये डूंगरपुर पहुंचे। यह खबर मुबारिजुलमुल्क को मिली। उसने सुलतान मुजफ्फर को मदद भेजने के लिये लिखा। लेकिन सुलतान से कुछ मदद नहीं मिली। बल्कि उसने यह कहला भेजा कि, "तुमने एक जानवर का नाम संग्रामसिंह रख कर महाराणा के आत्म स्वाभिमान को ललकारा जिससे वह चढ़ाई कर आये हैं। तो अब अपने किये का जवाब आप देलो।" इस पर प्रथम तो मुबारिजुलमुल्क महाराणा संग्रामसिंह से लड़ाई करने के लिये उनके सामने गया, लेकिन डर कर वापस ईडर को लौट आया। परन्तु वहां भी उसके पैर नहीं ठहर सके। तब उसने अहमदनगर के किले का सहारा लिया।

दूसरे दिन महाराणा संग्रामसिंह ने आकर ईडर पर अपना अधिकार कर लिया और ईडर से निकल कर अहमदनगर को जा घेरा। मुसलमानों ने द्वार बन्द कर किले में से लड़ाई शुरू की। महाराणा ने भी अपने लोगों को अहमदनगर पर हमला करने का आदेश दिया। इस हमले में डूंगरसिंह चौहान[2] घायल हुआ और उसके भाई, बेटे सब मारे गये। डूंगरसिंह के बेटे कान्हसिंह ने बड़ी बहादुरी दिखाई। जब किले के दरवाजों को तुड़वाने के लिये हाथी हूलने का अवसर आया और दरवाजों के भालों के कारण हाथी मुहरा न कर सका, उस समय कान्हसिंह ने भालों के सामने आकर महावत को ललकारा कि, हाथी को मेरे शरीर पर आने दे और ऐसा ही हुआ। कान्हसिंह पर हाथी ने मुहरा किया, जिससे वह तो मारा गया, किन्तु किवाड़ टूट गये। महाराणा की विजय हुई और मलिक मुबारिजुलमुल्क दूसरे मार्ग से किले के

---

1. मिरात-इ-सिकन्दरी (अं० अ०), पृ० 107; बेले० हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ० 264-265। (सं०)
2. डूंगरसिंह चौहान के वंशज बागड़ में अब तक विद्यमान हैं। डूंगरसिंह को महाराणा ने बदनौर का ठिकाना जागीर में दिया था, जहां उसके बनवाये हुए तालाब, बावड़ियां व महल मौजूद हैं। (सं०)

के साथ लड़ाई और उसमें आसफखां और उसके पुत्र सहित मालवा के बहुत से उमरावों का मारा जाना और बादशाह महमूद का गम्भीर रूप से घायल हो, महाराणा सांगा की कैद में आना, फिर महाराणा का अपनी जवांमर्दी से उस पर कृपालु होकर उसको इज्जत के साथ वापस मांडू को पहुंचा देना आदि हाल सुनकर सुलतान मुजफ्फर बहुत ही उदास हुआ और अपने कई सरदारों को महमूद के पास भेज कर खत से उसकी तसल्ली की।

तबकात-इ अकबरी में अकबर का बख्शी निजामुद्दीन अहमद लिखता है कि, जो काम महाराणा सांगा से हुआ, वैसा विचित्र काम आज तक किसी से नहीं हुआ। सुलतान मुजफ्फर गुजराती ने तो महमूद को अपनी शरण में आने पर केवल मदद दी थी, लेकिन लड़ाई में विजय पाने के बाद शत्रु को गिरफ्तार करके वापस उसको राज्य दे देना, यह काम आज तक मालूम नहीं कि, किसी दूसरे ने किया हो।[1] जब इस विजय की खुशी का दरबार महाराणा संग्रामसिंह ने किया उस समय इस इतिहास के लेखक कवि-राजा श्यामलदास के पूर्वज महपा जैतावत को उन्होंने ढोकलिया गांव उदक आघाट लिख दिया था। उस समय का मारवाड़ो भाषा का एक छप्पय प्रसिद्ध है, जो यहाँ पर लिखा जा रहा है—

छप्पय — चढ़ते दिन चीतोड़, तपै शांगण तालाबर।
रतनेसर ऊपरा, बणे दरबार बधोतर।
महपा ने कर मौज, बड़ा लीधा जस वायक।
ढोकलिया ऊपरे, शही कीधी शर नायक।
पनरासे समत पिचोतरै, शुकल पक्ख सरसावियो।
वैशाख मास रवि सप्तमी, दीह तेण सासण दियो ॥1॥

सुलतान मुजफ्फर ने ईडर पर मुबारिजुलमुल्क को हाकम नियुक्त किया था। एक भाट ने उसके सामने महाराणा सांगा की प्रशंसा की और कहा कि, आज तो सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में महाराणा संग्रामसिंह के बराबर दूसरा कोई राजा नहीं है। यह बात सुन कर मुबारिजुलमुल्क अपमान जनक शब्दों में बोल उठा और एक जानवर का नाम संग्रामसिंह रख कर उसको ईडर के दरवाजे पर बांध दिया और कहा कि, महाराणा संग्रामसिंह ऐसा मर्द है, तो मैं भी

1. तबकात॰ (अं॰ अ॰), भाग 3, पृ॰ 608। (सं॰)

हिम्मत और वीरता से बादशाह की सेवा में महाराणा को जीत लेने के लिये निवेदन किया। लेकिन बादशाह ने उचित अवसर नहीं जानकर कुछ जवाब नहीं दिया। निदान 1577 वि० पौष शुक्ल पक्ष (927 हि०, मुहर्रम = दिसम्बर, 1520 ई०) में 1,00,000 सवार और 100 हाथी मलिक अयाज के साथ देकर उसको चित्तौड़ अर्थात् मेवाड़ की तरफ रवाना किया।[1] फिर बादशाह ने ताजखां और निजामुल्मुल्क को 20,000 सवार देकर अयाज की मदद के लिये भेजा। जब मलिक अयाज वागड़ में पहुँचा और वहां उसने डूंगरपुर व बांसवाड़ा को उजाड़ दिया। उस स्थान पर बांसवाड़े का रावल उदयसिंह उग्रसेन पूर्विया के साथ छापा मारने के लिये पहाड़ों में तैयार था। मुसलमानों को इनके आने की खबर हो गई। इसलिये अश्जउलमुल्क[2] और सफदर खां दोनों सेनानायकों ने इनका मुकाबला किया। जिसमें उग्रसेन घायल हुआ और 80 राजपूत और बहुत से मुसलमान मारे गये। मलिक अयाज भी मदद के लिए इस लड़ाई में आ पहुंचा।

दूसरे दिन किवाबुलमुल्क तो बांसवाड़ा के पहाड़ों की तरफ चला और अयाज ने सम्पूर्ण सेना के साथ कूच कर मंदसौर के किले को जा घेरा। यहां अशोकमल[3] राजपूत महाराणा की तरफ से किलेदार था। यह बात सुनकर महाराणा सांगा भी अपनी फौज तैयार कर मंदसौर की तरफ चले। इसी अवधि में मांडू का बादशाह महमूद खिलजी, जो मुजफ्फर का अहसानमन्द था, मलिक अयाज की मदद को आ पहुँचा। फिर किवाबुलमुल्क और मलिक अयाज के आपस में मतभेद हो गया। अयाज ने चाहा कि, किवाबुलमुल्क के नाम जीत न हो और इसने चाहा कि, अयाज के नाम फतह न हो। फिर एक सुरंग, जो किले की दीवार में लगायी थी, उड़ायी गई। लेकिन उससे कुछ सफलता नहीं मिली। इसी अवधि में महाराणा भी मंदसौर से 12 कोस की दूरी पर नादसा नामक गांव में आ पहुँचे, दोनों तरफ से समझौते के संदेश आने लगे और अन्त में समझौता करना निश्चित् हुआ। महमूद खिलजी को अयाज ने वापस लौटा दिया और आप खिलजीपुर की

---

1. मिरात-इ-सिकन्दरी (अं० अ०), पृ० 112। (सं०)
2. "शुजाउल्मुल्क लिखा है—मिरात-इ-सिकन्दी (अं० अ०), पृ० 112। (सं०)
3. मिरात-इ-सिकन्दरी में अशोकमल का मारा जाना लिखा है, लेकिन फरिश्ता में नहीं लिखा।

बाहर निकल कर नदी के दूसरी तरफ जा खड़ा हुआ। मेवाड़ की सेना ने वहां भी पहुँच कर उसका मुकाबला किया। मुबारिजुलमुल्क के साथ 1,200 सवार और 1,000 पैदल थे। बड़ी वीरता के साथ उसने लड़ाई की। जिसमें उसका सिपहसालार असदखां (असदुल्मुल्क) और दूसरे गुजराती सरदार मारे गये। फिर घायल मुबारिजुल्मुल्क, खिज्रखां सहित अहमदाबाद की तरफ चला गया।

महाराणा की सेना ने एक दिन ठहर कर अहमदनगर को लूटा। दूसरे दिन वहां से चलकर बड़नगर को पहुंचे। वहां के ब्राह्मणों ने बाहर निकल कर बड़ी नम्रता के साथ महाराणा से प्रार्थना की कि, हम आपके भिक्षुक हैं। हमेशा से आपके बड़ों ने हमारी सहायता की है। इसलिये आप भी इस शहर को लूटना माफ करें। तब बड़नगर को लूटना स्थगित रख कर महाराणा फौज सहित बीलनगर[1] पहुंचे। वहां हाकम मलिक[2] लड़ाई में मारा गया। बीलनगर को महाराणा की फौज ने लूटा। फिर वहां से गुजरात के प्रदेश को लूटते हुए महाराणा वापस चित्तौड़ को गया।[3]

जब सुलतान मुजफ्फर ने अपने प्रदेश की बरबादी व महाराणा की चढ़ाई का यह हाल सुना, तो उसने भी अपनी सेना को तैयार किया और इमादुल्मुल्क और कैसरखां को 100 हाथी और बहुतसी सेना देकर महाराणा सांगा का सामना करने के लिये भेजा। इन लोगों ने सरगच के कस्बे में पहुँच कर महाराणा सांगा के वापस चित्तौड़ चले जाने का हाल सुलतान को लिखा, तथा सुलतान के लिखने के अनुसार ये लोग अहमदनगर में ठहरे।

सुल्तान मुज़फ्फर ने अपने पिता के समय के खास गुलाम अयाज को, जो सूरत आदि समुद्री किनारे का जागीरदार था[4], बुलाया। उसने बड़ी

---

1. तारीख-इ-फरिश्ता और मिरात-इ-सिकन्दरी में बीसानगर लिखा है, परन्तु हमारे अनुमान से यह बीसलनगर मालूम होता है।
2. मिरात-इ-सिकन्दरी (अं० अ०पृ० 110) में एनुल्मुल्क व फतहखां नाम लिखा है, लेकिन मारा जाना किसी का नहीं लिखा है। किले में नाजिम का शरण लेना लिखा है।
3. फार्व्स, रासमाला पृ० 295। (सं०)
4. मिरात-इ-सिकन्दरी (अं० अ०), पृ० 111 के अनुसार वह सोरठ का हाकम था। (सं०)

महाराणा के हाथ आई है। इस वात के सुनते ही शाहजादा से रहा नहीं गया और उसने एक हाथ तलवार का ऐसा मारा कि, महाराणा के भतीजे के दो टुकड़े हो गये। इस पर सभी राजपूतों ने जोश में आकर शाहजादा को मारने का इरादा किया। तव वाईजीराज झालीजी अर्थात् महाराणा सांगा की माता ने मना किया और कहा कि इसको कोई मारेगा तो मैं, अपनी जान दे दूंगी। इस कारण से शाहजादा वच कर मेवात की तरफ से दिल्ली के लिये रवाना हुआ।

फाल्गुन शुक्ल 3, 1582 वि० (2 जमादियुल अव्वल 932 हि० = फरवरी 15, 1526 ई०) को सुलतान मुजफ्फर का देहान्त हुआ और उसका वड़ा वेटा सिकन्दर तख्त पर वैठा, तथा सिकन्दर का छोटा भाई लतीफखां अपने भाई से विद्रोही होकर चित्तौड़ के जंगलों में चला आया। जिसकी गिरफ्तारी के लिये सिकन्दर ने मलिक लतीफ को, जिसका विरुद शरजाखां था भेजा। महाराणा की सेना ने निकलने, भागने के जो नाके घाटे थे, उनको वन्द करके 1700 आदमियों सहित मलिक लतीफ को कत्ल कर डाला।[1] फिर सिकन्दर ने कैसरखां को वहुतसी सेना देकर चित्तौड़ की तरफ रवाना किया। लेकिन मौत के पंजे में आकर तीन महीने 17 दिन शासन करने के वाद सिकन्दर अपने प्रदेश में आप ही मर गया। सिकन्दर के मरने की खवर सुन कर वहादुर खां चित्तौड़ की तरफ आया। यहां उसके वहुत से गुजराती सिपाही भी आ शामिल हुए। सुलतान मुजफ्फर के शाहजादे, चांदखां और इब्राहीम ये दोनों, पहले से ही महाराणा संग्रामसिंह के यहां सेवकों में आ रहे थे। इस अवसर पर दोनों वहादुरखां से मिले। इब्राहीम तो वहादुरखां के साथ गुजरात को आया और चांदखां महाराणा के पास रहा। वहादुरशाह अहमदावाद में जाकर गुजरात के वादशाही तख्त पर वैठा।

महाराणा सांगा के पाटवी अर्थात् वड़ा पुत्र भोजराज था। जिसको मेड़ता के मेड़तिया राजा वीरमदेव की वेटी[2] और जयमल की वहिन व्याही थी।

---

1. व्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 99। (सं०)
2. वस्तुतः मीरावाई वीरमदेव के छोटे भाई रतनसिंह की पुत्री थी। कविराजा श्यामलदास द्वारा यहाँ पर वीरमदेव का उल्लेख भूलवश ही हुआ है। (सं०)

तरफ चला गया। तारीख-इ-फरिश्ता में लिखा है कि, जब मलिक अयाज चांपानेर स्थान पर बादशाह मुजफ्फर की सेवा में पहुँचा तो, सुलतान मुजफ्फर उससे बहुत नाराज हुआ कि. तुमने समझौता क्यों कर लिया ? तथा यह भी लिखा है कि, महाराणा सांगा ने मलिक अयाज के लिखने से मोड़ासा के कस्बा में अपने पुत्र को बहुत से तोहफे लेकर बादशाह की सेवा में भेजा।[1]

1581 विक्रमी (930 हि०=1524 ई०) में सुलतान मुजफ्फर का शाहजादा बहादुरखां, अपने भाई सिकन्दरखां की अदावत (विरोध) और आमदनी की कमी व खर्च की अधिकता के कारण अपने बाप से नाराज होकर चित्तौड़ आया महाराणा सांगा ने उसकी बहुत आवभगत की और धैर्य प्रदान किया तथा महाराणा की माता बाईजीराज झालीजी ने उसको अपना बेटा बनाया।[2]

हम यहां पर फारसी इतिहास लेखकों के विवरण में कुछ अन्तर बतलाते हैं कि, उन्होंने अपने-अपने इतिहास ग्रन्थों में मुसलमानों की तरफदारी की है। तारीख-इ-फरिश्ता में तो बहादुरखाँ और महाराणा संग्रामसिंह की बातचीत से प्रकट होता है कि, महाराणा ने उक्त शाहजादे के आने पर उसकी ऐसी आवभगत की जैसा कि, अपने स्वामी की करते हैं इसी वर्णन को मिरात-इ-सिकन्दरी में देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि, किसी बड़े आदमी ने किसी इज्जतदार आदमी के कष्टों के हरण के लिये अपना बड़प्पन दिखाया हो, सो खैर।

अब हम वह हाल लिखते हैं जो मिरात-इ-सिकन्दरी[3] के अतिरिक्त न तो किसी दूसरी किताब में और न हमारे यहां की पोथियों में लिखा देखा गया। वह यह है कि, जब सुलतान मुजफ्फर का शाहजादा बहादुरखां चित्तौड़ आकर रहा, उस समय में एक दिन महाराणा के भतीजे ने शाहजादा को दावत दी थी। रात के समय उस जलसे में नाचने, गाने और नशे आदि का कार्य होने लगा। उस वक्त शाहजादा की निगाह एक पातर की तरफ देखकर महाराणा के भतीजे ने कहा कि यह शरीफजादी "अहमदनगर की लूट" में

---

1. ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०) भाग 4, पृ० 90-94; बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात पृ० 271-75। (सं०)
2. बेले हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ० 306। (सं०)
3. मिरात-इ-सिकन्दरी (अं० अ०), पृ० 140-141। (सं०)

को खुशी हो, उसी में मैं भी खुश हूँ।" यद्यपि रतनसिंह के दिल में यह बात अच्छी नहीं लगी, परन्तु उसको ऐसे प्रतापी पिता के सामने अपने दिल का हाल खोल देने पर राज्य के अधिकारों से विमुख रहने का भय था। इसलिये उसे हां में हां मिलानी पड़ी। "फिर महाराणा ने आदेश दिया कि, हमारी इच्छा है कि, तुम्हारे इन दोनों भाईयों का हाथ बूंदी के हाड़ा सूरजमल को पकड़ा कर इनकी जागीर का उत्तरदायी उसको बना दिया जावे। परन्तु सूरजमल तुम्हारी सम्मति चाहता है।" तब रतनसिंह ने सूरजमल से कहा कि, "मैं अपने भाईयों को रणथम्भोर दिये जाने में बहुत खुश हूँ, तथा तुमको भी उचित है कि श्री महाराणा के आदेशों का पालन करो।" इस पर सूरजमल ने महाराणा के आदेश के अनुसार विक्रमादित्य व उदयसिंह का हाथ पकड़ कर रणथम्भोर का पट्टा महाराणा से ले लिया।

अब हम तैमूरी खानदान के मुगल बादशाह बाबर द्वारा हिन्दुस्तान की सल्तनत का ताज अपने सिर पर रख कर महाराणा सांगा से बयाना नामक स्थान पर मुकाबला करने और उसमें विजय प्राप्त करने का विवरण लिखते हैं। बाबर ने इब्राहीम लोदी को पराजित कर दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया, तो इसके बाद उसने हिन्दुओं की तरफ ध्यान दिया। उन दिनों हिन्दू राजाओं में महाराणा सांगा प्रथम श्रेणी के महाराजा थे और हिन्दुस्तान के कई राजा इनको कर देते थे। उन्हीं दिनों में बयाना का शासक निजामखां[1] महाराणा सांगा और बाबर दोनों की अधीनता से टाला-टूली करने लगा। अर्थात् जब महाराणा संग्रामसिंह ने उसको सेवा के लिये कहा, तो बाबर की आधीनता का बहाना किया और बाबर ने दबाया तो महाराणा का आधीन होना बता कर टाल दिया। इस कारण से बाबर ने निजामखां पर चढ़ाई कर दी। निजामखां ने बादशाह से डर कर किला उसको सौंप दिया और महाराणा सांगा ने यह हाल सुना।

बाबर जब अफगानिस्तान की विजय कर रहा था, उन दिनों इब्राहीम लोदी से विरोध होने से महाराणा सांगा ने भी उससे मैत्रीपूर्ण पत्र व्यवहार किया था।[2] उसका वास्तविक मतभेद व्यक्तिगत रूप से इब्राहीम लोदी से

---

1. ओझा के मतानुसार बयाना महाराणा ने निजामखां को जागीर में दिया था। ओझा, उदयपुर० भाग 1, पृ० 366। (स०)
2. बाबर, अपनी किताब तुजुक-इ-बाबरी, कलमी (हस्तलिखित) के पत्र

इस राजकुमार का देहान्त महाराणा के जीवन-काल में ही हो चुका था। इसलिये राजकुमार रतनसिंह, जो राठौड़ वाघा की वेटी महाराणी धनवाई के पेट से पैदा हुआ था, भोजराज के मरने के वाद राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।

महाराणा सांगा ने एक विवाह बूंदी के हाड़ा भाडा के पुत्र नरवद की वेटी करमेती वाई के साथ भी किया था। इस महाराणी की कोख से दो राजकुमार उत्पन्न हुए। 1. विक्रमादित्य और 2. उदयसिंह। उक्त महाराणा की कृपा महाराणी हाड़ी पर अधिक थी। एक दिन महाराणा सांगा से उसने निवेदन किया कि, आपके बड़े पुत्र रतनसिंह तो गद्दी के अधिकारी हैं, तथा मेरे पुत्र विक्रमादित्य और उदयसिंह छोटे हैं। इसलिये इनको आपके हाथ से जागीर मिल जावे तो अच्छा है, अन्यथा रतनसिंह इन दोनों भाईयों से नाराज रहने के कारण जागीर नहीं देगा और ये दोनों मारे-मारे फिरेंगे। तव महाराणा ने कहा कि, "तुम्हारी इच्छा हो उस जागीर की निवेदन करो। वही इन दोनों को मिल जावेगी।" इस पर महाराणी ने विनती की कि, "यदि परगनों सहित रणथम्भोर का किला इन दोनों को मिल कर मेरे भाई बूंदी के शासक सूरजमल को इनका हाथ पकड़ा दिया जावे, तो इनकी नींव मजवूत हो जाने में संदेह नहीं रहेगा।"

"महाराणा ने उक्त महाराणी की यह प्रार्थना स्वीकार की और रणवास से पधार कर दरवार किया। सूरजमल को आदेश दिया कि, हम रणथम्भोर का किला तुम्हारे भानजे विक्रमादित्य व उदयसिंह को देते हैं और तुमको इनका हाथ पकड़ाते हैं, ताकि तुम इनके मददगार रहो।" तव सूरजमल ने निवेदन किया कि, "हम तो गादी के नौकर हैं। जो मेवाड़ की गद्दी पर वैठेगा उसी का आदेश सिर पर रखेंगे। यदि आपके आदेश से विक्रमादित्य और उदयसिंह का हाथ पकडूं, तो संभव है कि, कभी न कभी मुझको रतनसिंह से मुकावला करना पड़े। क्योंकि रणथम्भोर का दिया जाना रतनसिंह को अच्छा नहीं लगेगा यदि मुझको इस विषय में रतनसिंह की भी अनुमति हो जावे, तो आपके आदेश का पालन करना हम लोगों का काम ही है।" तव महाराणा ने रतनसिंह को वुला कर कहा कि, "हम तुम्हारे दोनों छोटे भाईयों को परगनों सहित रणथम्भोर का किला देते हैं। इसमें तुम्हारी क्या राय है।" तव रतनसिंह ने निवेदन किया कि, "जिसमें हुजूर

बड़ी भारी सेना साथ लेकर[1] इनके आने की खबर हुई। तब उसने रायसेन के राजा सलहदी तंवर के माध्यम से समझौता करने की इच्छा से पत्र व्यवहार किया। यह बात महाराणा को पसन्द आई, लेकिन शत्रु पर अधिक से अधिक दबाव डालने के लिये सेना का कूच कर दिया। फिर वहां से बयाना के निकट प चा, जो आगरे से 50 मील की दूरी पर है और जिस पर बाबर ने अधिकार कर लिया था। बाबर वहां से निकल कर फतहपुर सीकरी में पहुँचा, जो वहां से 20 मील की दूरी पर है। इधर से महाराणा सांगा की सेना ने आकर शाही फौज की हरावल पर हमला किया। चैत कृष्ण 6, 1583 वि० (20 जमादियुलअव्वल 933 हि० = 21 फरवरी, 1527 ई०) को इस लड़ाई में बाबर की फौज पराजित हुई और भाग कर कुछ दूरी पर जा ठहरी[2] यदि महाराणा की सेना का उसी समय दूसरा हमला होता, तो बाबर के पैर अवश्य ही नहीं ठहर सकते, क्योंकि उसकी फौज के सिपाहियों का दिल टूट गया था।

मुसीबत के मारे भागे हुए सिपाहियों के मौखिक वर्णन को सुनकर तो बाबर की सारी फौज का दिल टूटता ही जा रहा था कि, इस कठिनाई में एक दूसरी आफत और पैदा हुई। अर्थात् काबुल के एक ज्योतिषी[3] ने कहा कि, "मंगल का तारा सामने है। इसलिये बादशाह की फौज की जरूर हार होगी।"

---

1. सोमवार, 9 जमादिउल अव्वल (फाल्गुन सुदि 10, 1583 वि० = फरवरी 11, 1527 ई०) के दिन राणा सांगा के विरुद्ध सैनिक अभियान के उद्देश्य से बाबर आगरा से रवाना होकर खुले मैदान में पड़ाव डाला। दो चार दिन वहां पर व्यतीत कर वह मंढापुर (मंडावर) होता हुआ सीकरी पहुँचा था। बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 547-548। (सं०)
2. बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 547-548 पर बयाना की पराजय सम्बन्धी उल्लेख से स्पष्ट है कि, यह घटना 14 जमादिउल अव्वल (15 फरवरी) से पहले घटित हो चुकी थी। अतः यहाँ दी गई तिथि चैत्र कृष्ण 6, 1583 (20 जमादियुल अव्वल=21 फरवरी) मान्य नहीं की जा सकती है। (सं०)
3. इस ज्योतिषी का नाम 'मुहम्मद शरीफ' था। बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 551। (सं०)

नहीं था, वल्कि यह मतभेद शाही ताज से था। जब वावर दिल्ली का वादशाह हुआ तो, वही मतभेद उससे भी रहने लगा। उन्हीं दिनों में वावर ने मेवात के नवाव हसनखां के एक पुत्र को, जो उसके पास जामिन के रूप में वन्दी था, इस हेतु छोड़ दिया कि, इसका वाप (हसनखां) मेरा आज्ञाकारी होकर प्रेम से पेश आवेगा। लेकिन उसका परिणाम उल्टा हुआ। अर्थात् हसनखां 10,000 सवार लेकर महाराणा से आ मिला। महाराणा ने भी वयाना का किला लेने और हसनखां की सहायता करने की तैयारी की।

इस समय इब्राहीम लोदी के कितने ही अमीर महाराणा की सेना में आ मिले। दिल्ली के वादशाह सुलतान सिकन्दर का वेटा महमूदखाँ जिसके पास 10,000 सवार थे और मारवाड़ का राव गांगा[1] व आमेर का राजा पृथ्वीराज भी अपनी फौज सहित महाराणा की सेना में आ शामिल हुए। इसी तरह राजा व्रह्मदेव व राजा नरसिंहदेव, चंदेरी का राजा मेदिनीराय, डुंगरपुर का रावल उदयसिंह, चन्द्रभाण, माणकचन्द चौहान[2] और राय दिलीप आदि पचास-साठ हजार राजपूतों सहित महाराणा सांगा की फौज में सम्मिलित हो गये।

इस प्रकार महाराणा सांगा दो लाख सवार और वहुतसी पैदल सेना लेकर वयाना की तरफ चले। महाराणा रणथम्भोर में पहुँचे तव वावर को

---

223 वेवरिज, वावरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 529 में लिखता है कि, जव मैं कावुल में था, तव मेरे पास राणा सांगा का एलची (राजदूत) आया था। जिसके साथ यह करार पाया कि, वादशाह तो उधर से दिल्ली की तरफ चढ़े और इधर से हम आगरे की तरफ चढ़ाई करें। लेकिन मैंने इब्राहीम लोदी को जीत करके दिल्ली व आगरे पर अधिकार कर लिया, तो भी वह नहीं आया। (सं०)

1. वस्तुतः इस समय राव गांगा ने महाराणा सांगा की सहायतार्थ मारवाड़ की सेना अवश्य ही भेजी थी, स्वयं नहीं गया। तव राव गांगा की तरफ से रायमल मेड़तिया और रतनसिंह मेड़तिया ने युद्ध में भाग लिया था। (सं०)

2. ये अन्तरवेद से महाराणा की सहायतार्थ आये थे। इनके वंशजों में वेदला, कोठारिया, पारसोली के प्रथम श्रेणी के सामन्त हैं। (सं०)

दिल होकर ऊंची आवाज से कुर्आन की कसम खाकर कहा, "हम मर जावेंगे, लेकिन पीछे कभी नहीं हटेंगे।" यद्यपि बाबर ने अपनी फौज को हिम्मत और तसल्ली दिला कर मजबूत किया, लेकिन उसको विजय की आशा नहीं थी। इसलिये रायसेन के राजा सलहदी तंवर के माध्यम से महाराणा के पास फिर समझौते का संदेश भेजा और बहुतेरा चाहा कि, जो-जो शर्तें महाराणा सांगा चाहे वे सब स्वीकार कर ली जावें। कर्नल टॉड के अनुसार उसने कर देना तक भी स्वीकार कर लिया था।[1] लेकिन महाराणा ने एक भी बात स्वीकार नहीं की। क्योंकि उनके सलाहकार लोग रायसेन के राजा सलहदी से वैमनस्य रखते थे। इसलिये इस मामले में उक्त राजा का बीच में रहना उनको बुरा प्रतीत हुआ। इस कारण से उन्होंने महाराणा को अपनी फौज की अधिकता और शक्ति और मुसलमानों की पस्त हिम्मती (साहस हीनता) दिखलाकर समझौता-वार्ता को नहीं जमने दिया।

तब बाबर ने विचारा कि, अब देर करना ठीक नहीं है। जो कुछ होना हो, वह जल्दी हो जावे। फिर उसने अपनी फौज़ को मोर्चों के सामने जमाया और तोपें बराबर रख दीं। जब सेना पूरी तरह से व्यवस्थित हो गई, तो स्वयं घोड़े पर चढ़ कर सारी फौज में घूमा और सिपाहियों को बड़ी-बड़ी पदवियों के साथ सम्बोधित कर उनके हौंसले बढ़ाये और सरदारों को लड़ाई का ढंग बतला कर निर्देश दिये। चैत्र शुक्ल 15, 1584 वि० (जमादिस्सानी, 933 हि० = 16 मार्च, 1527 ई०) को दोनों तरफ से हमला हुआ[2]। इस लड़ाई में राजपूतों ने अपनी प्रथा के अनुसार तोपों के सामने हमला कर दिया। तोपों में गाफ (गोला) भरे हुए थे. एकदम बाढ़ झड़ने से हजारों राजपूत मारे गये, रायसेन का राजा सलहदी तंवर जिसको उसकी बात न मानी जाने से बहुत बड़ा रंज हुआ था, महाराणा की फौज के हरावल से निकल कर 35,000 सवारों सहित बाबर से जा मिला। इतने में ही महाराणा सांगा के चेहरे पर एक ऐसा जोर से तीर लगा कि, जिससे उनको मूर्छा आ गई। उसी समय आंबेर और जोधपुर के राजा व कितने ही मेवाड़ी सरदार उसी मूर्छा की हालत में महाराणा को पालकी में बिठाकर मेवाड़ की

---

1. टॉड० एनल्स०, भाग 1, पृ० 245 (1983), लेकिन टॉड का यह कथन केवल अतिशयोक्ति मात्र है। (सं०)
2. बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 558। (सं०)

इस ज्योतिषी के वचन ने बाबर के सभी अमीरों व फौजी अधिकारियों आदि के दिलों में यकायक ऐसी घबराहट पैदा कर दी कि, सलाह-मन्त्रणा में सम्मिलित होना तो दूर अपने अधीनस्थ सिपाहियों के सामने उनके चेहरों का रंग तक फीका पड़ गया[1] इससे हिन्दुस्तानी सेना तो बादशाह का साथ छोड़ कर भागने लगी। इसका प्रभाव अमीरों व अधिकारियों पर ही नहीं हुआ, बल्कि स्वयं बादशाह को भी पूरी आशंका पैदा हो गयी थी। लेकिन बाबर को बहुतसी मुसीबतें उठा-उठाकर आदत पड़ रही थी, इससे वह निराश नहीं हुआ। लेकिन उसके दिल पर भय इतना छा गया था कि, उसने अपने धार्मिक व्यवहार के विरुद्ध जो-जो अपराध किये थे, उनसे तोबाह कर ली अर्थात् शराब पीना छोड़ कर सोने चांदी के प्याले आदि फकीरों को लुटा दिये और खुदा से अहद किया, कि यह लड़ाई में जीतूंगा, तो डाढ़ी मुड़ाना और मुसलमानों से "महसूल" अर्थात् 'कर" लेना छोड़ दूंगा।[2]

फिर तो बाबर को अच्छा समय मिलने से संतोष आता गया। उसने अपनी सेना के लोगों को खूब आश्वस्त किया और समझाया कि, भाईयों भाग कर अपमान के साथ जीने से तो सिपाही के लिये लड़ाई में मर जाना ही अच्छा है। यदि लड़ाई में मरोगे तो शहीद होवोगे और जिन्दा रहोगे, तो गाजी (धर्म विजेता) कहलाओगे। एक समय सबको मरना है, लेकिन अपमानित होकर जीना मरने से भी खराब है।[3] बाबर के ऐसे-ऐसे नसीहत के वचनों ने उन्हीं 20,000 विलायती सिपाहियों के दिल पर ऐसा असर किया कि, सबने एक

---

1. बाबर ने लिखा है कि, "इस समय क्या छोटे क्या बड़े सभी सैनिक भयभीत और हतोत्साह हो रहे थे? कोई भी आदमी ऐसा नहीं था जो बहादुरी की बात कहता या हिम्मत बढ़ाता।..........वजीर जिनका कर्त्तव्य ही नेक सलाह देना था, तथा अमीर जो राज्य की सम्पति का उपभोग करते थे, वीरता की बात भी नहीं करते थे और न उनकी सलाह वीर पुरुषों के योग्य थी।" बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 556। (सं०)
2. बेवरिज, तुजुक-इ-बाबरी (अं० अ०), भाग 2, पृ० 551-553। (सं०)
3. बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 556-57। (सं०)

वहां पर महाराणा की मूर्छा खुली। उस समय उन्होंने लोगों को कहा कि, सेना की क्या हालत है? और जीत किसकी और पराजय किसकी हुई? तब लोगों ने निवेदन किया कि, "बाबर की विजय हुई और आपकी सम्पूर्ण सेना कट गई। आपको घायल और मूर्छित समझ कर हम लोग कई सरदारों सहित ले निकले हैं।" यह सुनकर महाराणा ने कहा कि, "तुमने बहुत बुरा किया, जो मुझको लड़ाई की जगह से ले आये।" यह कह कर फिर वहीं पड़ाव डाल दिया और कहा कि, "मैं बाबर को जीते बिना वापस चित्तौड़ नहीं जाऊंगा।" इसके बाद उसी स्थान से सेना एकट्ठी करने के लिये कागज लिखे गये। कहते हैं कि, महाराणा के दूसरी बार लड़ाई करने के इस इरादे को बहुत आदमियों ने स्थगित करवाना चाहा। लेकिन उन्होंने अपना इरादा नहीं छोड़ा। तब नमक हरामों ने उनको जहर दे दिया।

यदि यह महाराणा जिन्दा रहते, तो निश्चित् था कि, बाबर से दूसरी बार जरूर मुकाबला करते। यद्यपि इस समय बाबर विजयी हुआ, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि, वह इस बड़े मारिके (संहारक युद्ध) से कमजोर भी हो गया था, तथा राजपूतों में 'वतनी कुव्वत" बाकी थी। इसलिये यदि फिर हमला होता, तो बाबर को कठिनाई अवश्य होती। इस लड़ाई के बाद बाबर ने अपना विरुद "गाजी" रखा, तथा उन मुर्दों की खोपड़ियों से एक मिनार तैयार करवाया, जो लड़ाई में मारे गये थे। लेकिन बयाना के दक्षिण की तरफ मेवाड़ के इलाके पर दिल चलाने का इरादा उसको स्थगित ही रखना पड़ा। काणोता व बसवा मेवाड़ की उत्तरी सीमा निश्चित् हुई।

ऊपर वर्णित लड़ाई का हाल बादशाह बाबर ने अपनी पुस्तक "तुजुक-इ-बाबरी" के पत्र 242-250[1] पर बड़ी धार्मिक भावनाओं के साथ लिखा है, जिसका खुलासा हम नीचे लिखते हैं—

बसवा—27°9′ उ०, 76° 35′ पू०, बांदीकुई से 7 मील उत्तर में है। महाराणा सांगा के दाह स्थल पर तब बनाया गया चबूतरा बसवा रेलवे स्टेशन के पास अब भी विद्यमान है। मेवाड़ के स्वर्गीय महाराणा भगवतसिंह ने वहां कुछ नये निर्माण करवाए थे। (सं०)

1. बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 561-574। प्रस्तुत विवरण संक्षिप्त रूप में लिखा गया है। (सं०)

तरफ ले निकले। तब मेवाड़ी सरदारों ने जो सेना में लड़ाई कर रहे थे, यह सोचा कि, बिना मालिक के रही सही सेना के भी पैर उखड़ जावेंगे। इसलिये हलवद के झाला अज्जा को छत्र चंवर आदि महाराणा का सम्पूर्ण लवाजिमा देकर महाराणा की सवारी के हाथी पर बैठा दिया। अज्जा का छोटा भाई सज्जा तो महाराणा के साथ मेवाड़ की तरफ रवाना हो चुका था और अज्जा नैमित्तिक कार्य विशेष के लिये महाराणा बन कर हाथी पर चंवर उड़वाने लगा। तब सभी सरदारों ने, जो लड़ाई में उपस्थित थे, निश्चय मान लिया कि, लड़ाई में महाराणा विद्यमान हैं। यदि पीछे पैर हटेंगे तो पीढ़ियों तक हमारे वंश को कलंक का धब्बा लगेगा। इसलिये शत्रुओं की सेना की तरफ सबने घोड़े उठा दिये। लेकिन बहुत से तो तोपों के श्राफ (गोलों) से समाप्त हो गये, और कितने ही बहादुरों ने गम्भीर रूप से घायल होने पर भी तलवारों से बाबर की फौज का मुकाबला किया। परन्तु अन्त में सब मारे गये। माणकचन्द व चन्द्रभाण चौहान, हसनखां मेवाती, महमूदखां लोदी, रावल उदयसिंह, रावत रतनसिंह चूंडावत कांधलोत[1], झाला अज्जा सजावत,[2] सोनगरा रामदास, गोकलदास परमार,[3] रायमल राठौड़,[4] और खेतसी व रतनसिंह[5] आदि बड़े-बड़े सरदार इस लड़ाई में मारे गये। विजय बाबर को प्राप्त हुई। इस विजय की जो प्रसन्नता बाबर को हुई, वह तुजुक-इ-बाबरी से अच्छी तरह प्रकट है, क्योंकि बाबर को विजय होने की कोई आशा नहीं थी।

जब राजपूताना के राजा व सरदार लोग महाराणा सांगा को पालकी में लिये हुए बसवा गांव[6] में पहुंचे, जो आजकल जयपुर की उत्तरी सीमा परहै,

---

1. रावत रतनसिंह चूंडावत—कांधल चूंडावत का पुत्र, इस वंश में सलुम्बर का ठिकाना प्रथम श्रेणी के ठिकानों में है। (सं०)
2. झाला अज्जा सजावत—सादड़ी वालों का मूल-पुरुष। (सं०)
3. गोकलदास परमार—सभवत: बिझोल्या वालों का पूर्वज था। (सं०)
4. रायमल राठौड़—मेड़ता के राव दूदा जोधावत का पुत्र, मारवाड़ की सेना के साथ था। (सं०)
5. रतनसिंह—मेड़ता के राव दूदा जोधावत का पांचवा पुत्र। (सं०)
6. अमर काव्य में देहान्त कालपी गांव में और अन्तिम क्रिया मांडलगढ़ में होना लिखा है। ईसा की 18वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में रचित इस काव्य के कथन को मान्य नहीं किया जा सकता है।

ग्रौर फौज को ग्रागस्त (पंक्तिवद्ध) करके लड़ाई के लिये मुसलमानों के सामने ग्रा डटे। इधर मुसलमानी सेना ने भी तैयारी की। दस्तूर रूम (रोम की युद्ध प्रणाली) के ग्रनुसार वन्दूकचियों की सुरक्षा के लिये गाड़ियों की कतार को जंजीर-वंध कर दिया गया ग्रौर सम्पूर्ण प्रवन्ध सराहनीय किया। इस काम को निजामुद्दीन ग्रली खलीफा ने वड़ी मेहनत से किया, सव सरदारों ने ग्रौर मैंने भी उसके काम को पसंद किया। शाही सेना को इस तरह से व्यवस्थित किया गया कि, मध्य में मैं, (वावर वादशाह) रहा, ग्रौर दाहिनी तरफ मेरा भाई चीन तैमूर सुल्तान, शाहजादा सुलेमानशाह, ख्वाजा कमालुद्दीन दोस्त-खावन्द, यूनसग्रली, शाहमन्सूर वर्लाश, दर्वेश मुहम्मद सारवान, ग्रव्दुल्लाह कितावदार ग्रौर दोस्त एशक ग्राका, ग्रपनी-ग्रपनी जगह खड़े हुए।

वाई तरफ वहलोल लोदी का वेटा सुलतान ग्रलाउद्दीन, ग्रालमखां, निजामुद्दीन ग्रली खलीफा, शेख जैन खवाफी, कमालुद्दीन मुहव्वेग्रली, निजामुद्दीन ग्रली खलीफा का वेटा तर्दीवेग ग्रौर उसका भतीजा शेर ग्रफगान, ग्राराईशखां ग्रौर ख्वाजा कमालुद्दीन हुसेन ग्रादि वड़े-वड़े सरदार ग्रपनी-ग्रपनी जगह पर जम गये। इस तरह मुख्य फौज की व्यवस्था हुई। जव वरंनगार फौज (वादशाह के दाहिनी तरफ की सेना) में शाहजादा हुमायूं वहादुर, जिसके दाहिनी तरफ कासीम हुसैन सुलतान, ग्रहमद यूसुफ ग्रोगलाकची, हिन्दूवेग कोचीन, ख़ुसरो कोकलताश, किमामवेग उर्दू शाह, वलीखां जिन कराकोरी, पीरकुली सीस्तानी, सुलेमान, ख्वाजा पहलवान वदखशी, ग्रव्दुल शकूर ग्रौर सुलेमान ग्राका, हुसैन ग्राका एलची सोस्कानी नियुक्त हुए। शाहजादा के वाई तरफ मीरहहाम, शमसुद्दीन मुहम्मदी कोकलताश, ख्वाजगी ग्रसद जामदार नियुक्त हुए, तथा वादशाह के वुरंनगार में हिन्दुस्तानी ग्रमीरों में से खानखाना दिलावरखां, मलिकदाद किर्रानी ग्रौर शेख घूरन खड़े हुए।

शाही फौज के जरंनगार (वादशाह के वाई तरफ की सेना) में सैयद महदी ख्वाजा, मुहम्मद सुलतान मिर्जा, ग्रादिल सुलतान, ग्रव्दुल ग्रजीज मीर ग्राखुर, मुहम्मद ग्रली खिगजंग, जलालुद्दीन कुतुल्ककदम कराविल, शाह हुसैन वारकी ग्रौर जानी-ए मुहम्मद ग्राताक ग्रादि ने कतार जमाई। इस समूह में हिन्द के ग्रमीर जमालखां व कमालखां सुलतान, वहलोल लोदी के पौत्र, निजामखां वयाना वाला खड़े थे। वुरंनगार की मदद को तरदीक ग्रौर मलिक कासिम ग्रादि कई मुगल सरदार रखे ग्रौर जरंनगार की मदद को मोमिन ग्रन्का (ग्राताक) रुस्तम तुर्कमान ग्रादि नियुक्त हुए।

वह लिखता है कि, हमारी जीत दिल्ली, आगरा व जौनपुर आदि पर हुई और हिन्दू व मुसलमान सबने हमारी आधीनता स्वीकार की। केवल राणा सांगा ने सब विरोधियों का नेता बन कर सिर फेरा। वह विलायत हिन्द में इस तरह छाया हुआ था कि, जिन राजा और रावों ने किसी की आधीनता स्वीकार नहीं की थी वे भी अपने बड़प्पन को छोड़ कर उसके झण्डे के नीचे आये, तथा 200 मुसलमानी शहर उसके अधिकार में थे और मस्जिदें उसने खराब कर डाली थीं, तथा मुसलमानों की स्त्रियों व बच्चों को पकड़ कर कैद कर ले गया। उसके अधीन एक लाख सवार होने से विलायती कायदे के अनुसार[1] उसका प्रदेश 10 करोड़ रुपये वार्षिक की आमदनी वाला था। इस्लाम से वैमनस्य होने से दस बड़े-बड़े सरदार उसके साथ थे। राजा सलहदी तंवर (रायसेन का) 30,000 सवारों का स्वामी, रावल उदयसिंह वागड़ी (डूंगरपुर का) 12,000 सवारों का स्वामी, मेदिनी-राय (चंदेरी का) 12,000 सवारों का स्वामी, भारमल ईडरी (ईडर का) 4,000 सवारों का स्वामी, नरवद हाड़ा[2] (बूंदी का) 7,000 सवारों का स्वामी, शत्रुदेव खीची (गागरौन का) 6,000 सवारों का स्वामी, वीरमदेव (मेड़ता का) 4,000 सवारों का स्वामी, नरसिंह देव चौहान 4,000 सवारों का स्वामी, और सुलतान सिकन्दर का बेटा शाहजादा महमूदखां 10,000 सवारों का स्वामी, जिनकी कुल सेना दो लाख एक हजार सवार होती है, इस्लाम के विरुद्ध चढ़ कर आये। इधर मुसलमान भी जिहाद (धर्मयुद्ध) समझ कर तैयार हो गये।

हिजरी 933, 13 जमादियुस्सानी शनिवार (चैत्र शुक्ल 15, वि० 1584 = 16 मार्च, 1527 ई०) के दिन बयाना के निकट खानवा[3] नामक स्थान पर विरोधी की सेना से दो कोस पर बादशाही सेना का पड़ाव हुआ था। यह सुनकर विरोधी लोग इस्लाम को नष्ट करने के लिये हाथियों को

---

1. हिन्दुओं की गणनानुसार—बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०) भाग 2, पृ० 262।

2. बूंदी के राव नरायणदास का छोटा भाई और सूरजमल का चाचा, खटकड़ का जागीरदार और बूंदी की सेना का सेनापति। (सं०)

3. खानवा—27°2′ उ०, 77°3′ पू० में, फतहपुर सीकरी से 8 मील पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम में। (सं०)

कहता है, कि हमारे हक में मरना और मारना दोनों अच्छा है। हमारे लोगों ने इस बात पर दृढ़ होकर मरने और मारने का झण्डा ऊंचा किया।

जब लड़ाई ने उग्ररूप धारण किया और बहुत समय तक चलती रही, तब बादशाह के आदेश से खास जंगी सिपाही ताबीनान-इ खास-इ-पादशाही जो कि जंजीर बन्द गाड़ियों की आड़ में थे, दोनों तरफ शाही गोल से निकले। बीच में बन्दूकचियों और तोपचियों को रख कर वे दोनों तरफ से टूट पड़े। जिससे बहुत से विरोधी मारे गये। उस्ताद अली कुली ने भी, जो अपने साथियों सहित बादशाह के गोल के आगे खड़ा था, बड़ी वीरता दिखलाई। तोप, बन्दूक व भारी पत्थरों से दूसरी तरफ वालों को बहुत नुकसान पहुंचाया, बन्दूकचियों ने भी शाही आदेश से गाड़ियों के आगे बढ़ कर बहुत से शत्रुओं को नष्ट किया। पैदलों ने बड़े ख़तरे की जगह में घुस कर प्रसिद्ध प्राप्ति की। बादशाह लिखता है कि, हम भी गाड़ियों को बढ़ा कर आगे बढ़े। जिससे सेना में बड़ा जोश-खरोश पैदा हो गया और फौजों के चलने से ऐसी गर्द उड़ी कि, अंधेरा छा गया। लड़ाई ऐसी हुई कि कौन हारा, कौन जीता और किसने वार किया और किसके लगा, इसकी पहचान जाती रही। इस जगह बादशाह लिखता है कि, हमारे गाजियों के कान में गैब से उस कलामुल्लाह की आयन के अनुसार आवाज आती थी, जिसका अर्थ यह है कि, "मत दबो, मत उदास हो, तुम ही विजयी रहोगे।" मुसलमान गाजी ऐसे लड़े कि फरिश्ते भी आसमान में उनकी प्रशंसा करते थे। दो पहर ढले, चार घड़ी दिन रहने तक लड़ाई ऐसी हुई कि, जिसके शोले आसमान तक पहुंचे। बादशाह की फौज ने विरोधियों की सेना को उनके गोल में मिला दिया। तब उन्होंने एकदम पूरा संकल्प कर दिल जान से तोड़ कर हमारे दाएं-बाएं गोल पर हमला किया और बाईं तरफ हमारे गाजियों ने आखरत का सवाब समझ कर बहादुरी से उनको वापस हटा दिया। इसके साथ ही हमको विजय की शुभ सूचना मिली। दूसरी तरफ वाले कठिनाई देख कर तितर-बितर हो गये। बहुत से लड़ाई में मारे जाकर शेष बचने वालों ने जंगल का रास्ता लिया। लाशों के टीले और सिरों की मिनारे बन गयीं।

हसनखां मेवाती बन्दूक के लगने से मारा गया। इसी तरह विरोधियों के बड़े-बड़े सरदार तीर और बन्दूकों से समाप्त हुए। जिनमें डूंगरपुर का रावल उदयसिंह, जिसके साथ 12,000 सवार थे, राय चन्द्रभाण चौहान

सुलतान मुहम्मद बख्शी सरदारों को अपनी-अपनी जगह पर जमा कर आप बादशाह के आदेश सुनने और उसका पालन कराने को मुस्तैद रहा। जब सब लोग जम गये, तब बादशाह ने आदेश दिया कि, हमारे आदेश के बिना कोई अपनी जगह से नहीं हिले और बिना आज्ञा लड़ाई नहीं करे।

लगभग एक पहर और दो घड़ी दिन चढ़े लड़ाई शुरू हो गई। बुरंनगार और जरंनूगार से ऐसी भारी लड़ाई हुई कि, जिसका शोर आसमान तक प चा, अर्थात् महाराणा की जरंनुगार शाही बुरंनगार पर टूट पड़ी और खुसरो कोकलताश और मलिक कासिम पर हमला किया। तब शाही आदेश से चीन तैमूर सुलतान उनकी मदद को गया और राजपूतों को हटा कर उनको फौज में पहुँचा दिया। यह काररवाई तैमूर सुलतान की मानी गई। मुस्तफा रूमी ने शाहजादा हुमायूं की फौज से निकल गाड़ियों को सामने लाकर बन्दूकों और तोपों से दूसरी तरफ की फौजी कतारों को तोड़ना शुरू किया। लड़ाई के समय बादशाह के आदेशानुसार कासिम हुसैन सुलतान, अहमद यूसुफ और किमामबेग उसकी सहायता के लिये पहुँचे। दूसरी तरफ के सेना वाले भी दम-बदम अपने आदमियों की मदद को चले आते थे। बादशाह ने हिन्दूबेग कोचीन और उसके बाद मुहम्मदी कोकलताश और ख्वाजा की असद और उसके बाद यूनसअली, शाह मन्सूर बर्लास और अब्दुलाह किताबदार को और इनके पश्चात् दोस्त एशक आका और मुहम्मद खलील अ ख्ताबेगी को मदद के लिये भेजा।

इधर बादशाह की जरंनूगार पर दूसरी तरफ के बुरंनगार ने लगातार आक्रमण किये और गाजियों तक पहुँच गये। शाही फौज के गाजियों ने बहुतसों को तीरों से मारा और बहुतसों को वापस हटाया। फिर मोमिन अन्का (आताक) और रुस्तम तुर्कमान ने शाही फौज से निकल कर विरोधियों की फौज के पीछे की तरफ से आक्रमण किया। मुल्ला महमूद और अली अन्का (आताक) बाशलिक को बादशाह ने उनकी मदद को भेजा। मुहम्मद सुलतान मिर्जा आदिल सुलतान, अब्दुल अजीज मीर आखुर व कुतुल्ककदल-कराबिल, व मुहम्मद अली खिगजंग, शाह हुसैन बारकी (यारगी) भी लड़ाई का हाथ खोलकर युद्ध प्रारम्भ कर रणक्षेत्र में आ डटे, तथा ख्वाजा हुसैन वजीर को उसके सैनिकों सहित बादशाह ने उनकी मदद को भेजा। इन सब जिहाद करने वालों ने बड़ी कोशिश से लड़ाई की। बादशाह कुरआन की आयत पढ़कर

ने मीरावाई को महाराणा कुम्भा की राणी लिखा है। लेकिन यह वात गलत है। क्योंकि मीरावाई का भाई जयमल तो विक्रमी 1624 (हि० = 975 = 1567 ई०) में अकवर की लड़ाई में चित्तौड़ पर मारा गया और महाराणा कुम्भा का देहान्त 1525 वि० (873 हि० = 1468 ई०) में हो गया था। फिर न मालूम कर्नल टॉड ने यह वात अपनी किताव में कहां से लिखी।

इन महाराणा के 7 राजकुमार थे—भोजराज, कर्ण, रतनसिंह, पर्वतसिंह, कृष्णदास, विक्रमादित्य और उदयसिंह। जिनमें से भोजराज, कर्ण, पर्वतसिंह और कृष्णदास तो कुंवरपदे में ही परलोकवास कर गये। रतनसिंह, विक्रमादित्य व उदयसिंह ये तीनों मेवाड़ की गादी पर बैठे, जिनका हाल दूसरे भाग में लिखा जायेगा।

महाराणा सांगा का जन्म वैशाख कृष्ण 9, 1538 वि० (23 मुहर्रम, 886 हि० = 24 मार्च, 1481 ई०) को, राज्याभिषेक जेष्ठ शुक्ल 5, 1565 वि० (4 मुहर्रम, 914 हि० = 4 मई, 1508 ई०) को और देहान्त 1584 वि० (933 हि० रज्जव = 1527 ई० अप्रैल) के वैशाख में[1] हुआ था।

२. महाराणा रतनसिंह—

महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) के सात पुत्र हुए – 1. पूर्णमल, 2. भोजराज, 3. पर्वतसिंह, 4. रतनसिंह, 5. विक्रमादित्य, 6. कृष्णसिंह, और 7. उदयसिंह। 1. पूर्णमल, 2. भोजराज. 3. पर्वतसिंह और 6. कृष्णसिंह

---

1. महाराणा सांगा की मृत्यु की यह तिथि ठीक नहीं है। वावर ने चंदेरी विजय (7 जमादिउल अव्वल 934 हि० = जनवरी 29, 1528 ई०) के वाद अपने सरदारों से राणा सांगा पर सैनिक अभियान करने के लिये परामर्श किया। स्पष्टतया तब तक महाराणा सांगा की मृत्यु का समाचार नहीं मिला था। चतुर कुल व चरित, पृ० 27 पर दी गई महाराणा सांगा की मृत्यु तिथि माघ शु० 9, 1585 वि० (जनवरी 30, 1528 ई०) ठीक प्रतीत होती है। गोरीशंकर हीराचंद ओझा आदि वाद के इतिहासकारों ने भी यही तिथि स्वीकार की है। (सं०)

जिसके साथ 4,000 सवार और राव दलपत जिसके 4,000 सवार और गंगू, कर्मसी व डूंगरसी जिनके साथ तीन-तीन हजार सवार थे. आदि और भी कई प्रसिद्ध सरदार मारे गये । जिधर इस्लाम की सेना जाती, कोई कदम मुर्दों से खाली नहीं पाती थी । इस जीत के बाद मैंने अपना नाम "गाजी" रखा । बाबर लिखता है कि, मैं इस्लाम के लिये इस लड़ाई के जंगल में भटका और मैंने अपना शहीद होना ठान लिया था । लेकिन खुदा का शुक्र है कि, गाजी बन कर जीवित रहा ।

ऊपर लिखा हुआ खुलासा जो "तुजुक-इ-बाबरी" से लिया गया है, केवल लड़ाई के हाल का है । यदि किसी पाठक को अधिक हाल की जानकारी प्राप्त करना हो, तो तुजुक-इ-बाबरी को देखें ।

महाराणा सांगा का कद मंझला मोटा चेहरा, बड़ी आंख, लम्बे हाथ और गेहुआ रंग था । यह दिल के बड़े मजबूत थे । इनकी ज़िन्दगी में इनके बदन पर शस्त्रों के 84 घाव लगे थे । एक आँख बेकाम, एक हाथ कटा हुआ और एक पैर लगड़ा, ये भी लड़ाई की निशानियां उनके अंग पर विद्यमान थीं ।

इस महाराणा ने महियारिया गोत्र के चारण हरिदास को बादशाह महमूद मालवी को गिरफ्तार करने की खुशी में अपना सम्पूर्ण चित्तौड़ का राज्य दे दिया था । हरिदास ने राज्य लेने से इंकार किया और बारह ग्राम अपनी खुशी से लिये । जिनमें से पांचली नामक एक गांव अभी तक उसके वंशजों के अधिकार में है ।

इन महाराणा ने जोधपुर के राव जोधा के पौत्र और राव सूजा के पुत्र कुंवर बाघा की तीन बेटियों से शादी की थी । ये तीनों राव बाघा की राणी चौहान पुहपावती से पैदा हुई थी । इनमें से धनबाई के पेट से बड़े कुंवर रतनसिंह पैदा हुए । बूंदी के राव भांडा की पोती और नरबद की बेटी महाराणी कर्मवतीबाई से महाराणा विक्रमादित्य और उदयसिंह पैदा हुए । इन महाराणा के सबसे बड़े राजकुमार भोजराज थे, जिनकी शादी मेड़ता के राजा वीरमदेव के छोटे भाई व जयमल के काका रतनसिंह की बेटी मीराबाई के साथ हुई थी । लेकिन उक्त राजकुमार का देहान्त महाराणा सांगा के जीवनका में ही हो गया था । कर्नल टॉड आदि कितने ही इतिहासकारों

महाराणा सांगा के देहान्त के समय सात में से तीन पुत्र—रतनसिंह, विक्रमादित्य और उदयसिंह जीवित रहे। इनमें से बड़ा रतनसिंह मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठा और छोटे दोनों विक्रमादित्य और उदयसिंह रणथम्भोर[1] के स्वामी बने।

इनको रणथम्भोर मिलने कारण यह है कि, बूंदी के राव भांडा के दूसरे बेटे नरवद की बेटी कर्मवतीबाई, महाराणा सांगा को व्याही गई थी। उसके गर्भ से विक्रमादित्य और उदयसिंह हुए। महाराणी हाड़ी कर्मवती से महाराणा सांगा अधिक प्रसन्न थे। एक दिन महाराणी हाड़ी ने महाराणा से प्रार्थना की कि, मेरे दोनों बेटों के लिये आप के हाथ से जागीर नहीं मिलेगी तो बाद में रतनसिंह इनको दुःख देगा। तब महाराणा सांगा ने कहा कि तुम जो जागीर मांगोगी वही तुम्हारे बेटों को दी जावेगी। इस पर राणी ने रणथम्भोर के लिये निवेदन की और महाराणा ने उसको स्वीकार किया। फिर महाराणी हाड़ी ने कहा कि यदि आपने मेरी विनती स्वीकार की है तो

जयमल का मारा जाना लिखा है, इस हालत में जयमल की बहिन मीराबाई कुम्भा की राणी किस तरह समझी जावे ?

4. मीराबाई महाराणा विक्रमादित्य व उदयसिंह के समय तक जीवित रही और महाराणा ने उसको जो दुःख दिया वह उसकी कविता से स्पष्ट है। इससे स्पष्ट है कि कर्नल टॉड ने धोखा खाया है। इसका कारण यह होगा कि, महाराणा कुम्भा ने चित्तौड़गढ़ पर कुम्भश्यामजी के नाम से एक मन्दिर बनाया था। उसके पास ही एक दूसरा मन्दिर बना हुआ है जो, मीराबाई के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु यह पता नहीं कि यह मन्दिर मीराबाई का बनवाया हुआ है या किसी अन्य का। सम्भवतः इन दोनों मन्दिरों के पास-पास होने से मीराबाई महाराणा कुम्भा की स्त्री मानी गई। परन्तु हमारे यहां व मेड़तिया राटौड़ों व जोधपुर के इतिहास ग्रन्थों में मीराबाई को भोजराज की राणी लिखा है।

1. रणथम्भोर—यह प्रसिद्ध किला इस समय जयपुर के राज्य में है। (सं०)

चार तो महाराणा सांगा के जीवनकाल में मृत्यु को प्राप्त हो गये। इनमें से 2—भोजराज, सोलंखी रायमल की बेटी के गर्भ से जन्मा था. उसका विवाह मेड़ता[1] के राव दूदा जोधावत के पांचवें बेटे रतनसिंह की बेटी मीराबाई के[2] साथ हुआ था। मीरबाई बड़ी धार्मिक और साधु-सन्तों का सम्मान करने वाली थी, वह वैराग्य के गीत बनाती और गाती। इससे उसका नाम अब बहुत प्रसिद्ध है।

---

1. मेड़ता-जोधपुर राज्य में एक कस्बा है, जिसके नाम से एक परगना "मेड़ता की पट्टी" कहा जाता है। (सं०)
2. कर्नल टॉड मीराबाई को महाराणा कुम्भा की राणी लिखता है, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि राव जोधा ने 1515 वि० (862 हि०=1458 ई०) में जोधपुर बसाया। 1525 वि० (872 हि०=1468 ई०) में महाराणा कुम्भा का देहान्त हुआ। तथा 1542 विक्रमी (890 हि०=1485 ई०) में राव दूदा जोधावत को मेड़ता (झामादेव के वरदान से) मिला। 1584 वि० (933 हि०=1527 ई०) में महाराणा सांगा और बाबर बादशाह की लड़ाई में दूदा के दो पुत्र वीरमदेव (यहीं रायमल) और रतनसिंह (मीराबाई के पिता) मारे गये। वीरमदेव का बेटा जयमल 1624 विक्रमी (975 हि०=1568 ई०) में चित्तौड़ पर, अकबर से हुई लड़ाई में मारा गया।
   1. सोचना चाहिये कि महाराणा कुम्भा के समय दूदा को मेड़ता ही नहीं मिला था, फिर दूदा की पोती "मीराबाई मेड़णी" कुम्भा की राणी किस तरह हो सकती है।
   2. महाराणा कुम्भा के देहान्त से 59 वर्ष बाद बाबर और महाराणा सांगा की लड़ाई में मीराबाई का बाप रतनसिंह मारा गया। यदि टॉड का लिखना ठीक समझा जाय तो महाराणा कुम्भा के समय में रतनसिंह की अवस्था चालीस वर्ष से कम नहीं रही होगी। इस हिसाब से मारे जाने के समय उसकी आयु अनुमानित सौ वर्ष की होनी चाहिये। इतनी उमर के आदमी का बहादुरी के साथ लड़ाई में मारा जाना असम्भव है।
   3. महाराणा कुम्भा के 100 वर्ष बाद मीराबाई के चचेरे भाई

बावर के हाथों पराजित होने के कुछ दिनों बाद महाराणा संग्रामसिंह का देहान्त हुआ। यह समाचार सुनकर मांडू का बादशाह महमूद खिलजी बहुत खुश हुआ और उसने शर्जाखां नामक एक सरदार को बहुतसी फौज देकर मेवाड़ की तरफ रवाना किया। शर्जा ने महाराणा के प्रदेश में लूट-खसोट शुरू की। यह देख कर महाराणा रतनसिंह ने मालवा की तरफ चढ़ाई की। तब महमूद भी महाराणा का सामना करने को रवाना हुआ और उज्जैन होता हुआ सारंगपुर पहुंचा। वहां से मुईनखां को (जिसे सिकन्दरखां ने अपना बेटा मानकर देवास[1] का स्वामी बनाया था) बुलाकर मसनदआली (बड़े दर्जे वाला) की पदवी और लाल डेरे (जो खास बादशाहों के होते हैं) दिये। उसी तरह रायसेण से सलहदी (शल्यहती) पूरबिये को बुलाकर बहुत से परगने प्रदान किये और दोनों को अपना मददगार बनाना चाहा। परन्तु इनको महमूद का पूरा विश्वास नहीं हुआ। इसलिये उन्होंने महाराणा से मैत्री कर वे गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के पास चले गये।[2] तब महमूद खिलजी डर कर मांडू को लौट गया और महाराणा उसका प्रदेश लूटता हुए चित्तौड़ आते समय मार्ग में बांसवाड़ा की तरफ गुजरात के बादशाह बाहदुरशाह से, जिसको मुईनखां और सलहदी महमूद खिलजी पर चढ़ा लाये थे, मिले।[3] महाराणा चित्तौड़ आया, और बाहदुरशाह ने मांडू (मालवा) की सल्तनत छीन कर गुजरात में मिला ली।

जब महाराणा सांगा ने बाबर बादशाह से लड़ाई के लिये चढ़ाई की, उस समय विक्रमादित्य और उदयसिंह सहित महाराणी हाड़ी को रणथम्भोर में रख कर आप स्वयं आगे बढ़ा था। महाराणा का देहान्त होने के बाद चित्तौड़ पर तो उसका पुत्र रतनसिंह गद्दी पर बैठा और महाराणी

---

1. ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 267 पर "सीवास" लिखा है। (सं०)
2. मिरात० (अं० अ०), पृ० 165, ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 265-266। (सं०)
3. महाराणा रतनसिंह व सुलतान बहादुरशाह की यह मुलाकात खरजी घाटी के पास हुई। तब बहादुरशाह ने महाराणा को 30 हाथी कितने एक घोड़े भेंट किये और 1500 जरदोजी खिलअतें उसके साथियों को दीं। मिरात० (अं० अ०), पृ० 165। (सं०)

अब विक्रमादित्य और उदयसिंह मेरे भाई सूर्यमल (सूरजमल) को सौंप दिये जायें ताकि वह इन दोनों की देख-रेख करेगा। महाराणा ने राणी की प्रार्थना के अनुसार आज्ञा दी। परन्तु सूर्यमल ने कहा कि मुझे इस आज्ञा को पूरा करने में कदाचित् आपके पश्चात् रतनसिंह से सामना करना न पड़े। इसलिये रतनसिंह की भी इस में सलाह लेनी आवश्यक है। तब महाराणा सांगा ने महाराज कुमार रतनसिंह को बुलाकर इस विषय के संदर्भ में पूछा। रतनसिंह ने ऊपरी मन से सूर्यमल को अनुमति दी। इस तरह पूरा प्रबन्ध होने पर सूर्यमल (सूरजमल) ने भी महाराणा की आज्ञा का पालन करना स्वीकार किया।

महाराणा रतनसिंह जोधपुर के राव वाघा सूजावत[1] की बेटी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। वह कार्तिक शुक्ल 5,[2] 1584 विक्रमी (3 सफर, 934 हि०[3] = 29 अक्टूबर, 1527 ई०) को चित्तौड़ की गादी पर बैठा।[4]

---

1. कुंवर वाघा सूजावत अपने पिता के जीवनकाल में ही मर गया था। (सं०)
2. कतिपय लोग जेष्ठ महीने (शावान=मई) में गद्दी पर बैठना लिखते हैं। जोधपुर का नैणसी मुहणोत कार्तिक (सफर=अक्टूबर) लिखता है। नैणसी मुहणोत ने दो सौ वर्ष पहले जांच पड़ताल कर लिखा है, इसलिये हम उसके लेख को विशेष प्रमाणिक समझते हैं। ऐसा सम्भव है कि, गद्दी पर तो जेष्ठ माह में बैठे हों और गद्दीनशीनी का उत्सव, जो मुहूर्त से होता है, वह कार्तिक में हुआ हो। (सं०)
3. जहां तिथि व तारीख है, वहां हिजरी अथवा ईसवी सन् के मिलान में यदि अन्तर हो तो, एक आध दिन से अधिक नहीं होगा ऐसा पूरा अनुमान और निश्चय है। उसी हिसाब से जहां केवल वर्ष का ही अंक है वहां एक वर्ष का अन्तर रहेगा। ऐसे ही मास मात्र हो वहां एक मास का न्यूनाधिक अन्तर होना सम्भव है, उदाहरण में भूमिका का हिजरी 934 ही समझो। यह 33 व 34 दोनों विक्रमी 1584 में आते हैं। (सं०)
4. "चतुरकुल चरित्र" के आधार पर ओझा ने महाराणा सांगा की मृत्यु तिथि और उसी के आधार पर "माघ सुदी 15, 1584 वि० = 5 फरवरी, 1528 ई० के आस पास" रतनसिंह का राज्यारोहण होना मानते हैं। ओझा, उदयपुर०, भाग 1, पृ० 388. (सं०)

की रस्म में सूर्यमल की तरफ से जो एक घोड़ा और हाथी आया था, वह वापस रणथम्भोर भेज कर महाराणा ने कहलाया कि लाल लश्कर घोड़ा[1] और मेघनाद हाथी जो श्री बड़े हजूर ने तुम्हें टीके में दिया था, इस समय नजर करना चाहिये। इस पर सूर्यमल ने उत्तर दिया कि, "मैं गांव का पटेल नहीं हूं कि, घोड़ा हाथी मेरे पास चराई के लिये भेजे हों।" जिन्हें वापस मंगाते हैं। यह मुझको स्वर्गवासी श्री हजूर के द्वारा प्रदान किये हुए हैं। अतः इनको नजर नहीं कर सकता।"

फिर बून्दी के राव ने सोचा कि महाराणा ने घोड़ा हाथी मांगा है। कभी न कभी मेरे सरदार या कामदार दबाव डालकर उन्हें नजर करवा कर मेरा हलकापन दिखावेंगे। इस विचार से घोड़ा और हाथी, मीसण गोत के चारण भाणा[2] को उसकी कविता पर प्रसन्न होकर दे दिया।

भाणा चित्तौड़ आया तब महाराणा के सामने सूर्यमल की बहुत प्रशंसा की। महाराणा ने कहा कि सूर्यमल ने कौनसी बहादुरी दिखाई और तुमको क्या दिया? भाणा ने उसकी बहादुरी के विषय में एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा कि एक दिन सूर्यमल शिकार पर गया तब मैं भी उसके साथ था। जंगल में सूर्यमल के ऊपर दो रीछ आ पड़े। तब उस बहादुर ने कटारियों से उन दोनों को एक साथ मार डाला। दानवीरता के विषय में उसके द्वारा लाल लश्कर घोड़ा और मेघनाद हाथी इनाम देना बताया। इस बात को सुनकर महाराणा को बड़ा क्रोध आया। उसने भाणा को अपने राज्य से चले जाने का आदेश दिया। भाणा वहां से निकल कर बून्दी गया। तब सूर्यमल ने उसका बहुत सत्कार किया और कहा कि, महाराणा ने हमारे ऊपर बड़ी मेहरबानी की, जो ऐसा आदमी मिला। उसी समय सूर्यमल

---

1. महाराणा सांगा ने 20,000 रुपये में लाल लश्कर घोड़ा और 60,000 रु० में मेघनाद हाथी खरीदा था और वही सूर्यमल को उसके पिता नारायणदास के, बाबर की लड़ाई में, मारे जाने पर टीके में दिया था। (सं०)
2. मेवाड़ राज्य के मांडलगढ़ परगने में रीठ व कोदिया आदि बारह गांव महाराणा के दिये हुए इसकी जागीर में थे। उस समय वह बून्दी में यजमान गौड़ राजपूतों से नेगचार लेने के लिये गया था।

हाड़ी दोनों लड़कों के साथ सूर्यमल की[1] संरक्षता में रणथम्भोर में रही।

रणथम्भोर के अधीन पचास माठ लाख का प्रदेश था। इतने बड़े प्रदेश और प्रसिद्ध सुदृढ़ किले का छोटे भाईयों के हाथ में रहना रतनसिंह को अच्छा नहीं लगा[2]। इसी अभिप्राय: से मांजी हाड़ी को किसी तरह, चित्तौड़ बुला लेना ठीक समझ कोठारिया के पुरबिया चौहान पूर्णमल को उन्हें लेने के लिये रणथम्भोर भेजा, तथा कहलाया कि "आप हमारे सिर पर तीर्थ स्वरूप हैं और विक्रमादित्य व उदयसिंह मेरे भाई हैं। इसलिये उन्हें लेकर आपको यहां पधारना चाहिये। इसके अतिरिक्त और भी कई बातें पत्र में लिख भेजी। रणथम्भोर पहुँचने पर पूर्णमल का अच्छी तरह से शिष्टाचार हुआ। जब उसने जनानी ड्योढ़ी पर जाकर सारी बातें कहलायीं, तब मांजी ने इस बात में रतनसिंह का कपट समझ, उत्तर दिया कि, "विक्रमादित्य और उदयसिंह अभी बच्चे हैं और श्री हजूर वैकुण्ठवासी ने मेरे भाई सूर्यमल को इनका संरक्षक नियुक्त किया है। अत: कहीं पर जाना या न जाना इनके अधिकार में नहीं है।" इसके अतिरिक्त रतनसिंह ने महाराणा सांगा का महमूद खिलजी से लिया हुआ जड़ाऊ ताज और कमर पेटा उसके (पूर्णमल) हाथ मंगवाया, वह भी महाराणी हाड़ी ने नहीं दिया। पूर्णमल ने बूंदी में राव सूर्यमल के पास जाकर सारा वृत्तांत कहा। सूर्यमल ने जवाब दिया कि जब मैं चित्तौड़ में उपस्थित होऊंगा, तब सब हाल महाराणा से निवेदन करूंगा।

पूर्णमल चित्तौड़ आया और सब बातें महाराणा से निवेदन की। जिस पर महाराणा रतनसिंह सूर्यमल से बहुत नाराज हुआ। यह विरोध दिनों-दिन बढ़ता ही गया। पहले भी रतनसिंह के सिंहासन पर बैठने के समय टीके

---

1. सूर्यमल (सूरजमल) महाराणी कर्मवती का चचेरा भाई था। इसका पूरा वृत्तान्त बूंदी के हाल में मिलेगा। (सं०)

2. हमारी राय में महाराणा सांगा ने यह काम अपनी प्रसिद्ध और बुद्धिमानी के विरुद्ध किया। क्योंकि अपने छोटे बेटों के अधिकार में रणथम्भोर को अलग करने से प्रत्यक्षत: राज्य के दो भाग हो गये। महाराणा रतनसिंह के देहान्त होने पर यदि विक्रमादित्य गद्दी पर नहीं बैठता तो, राज्य के पतन के लिये कुछ भी शेष नहीं रहा था। क्योंकि विक्रमादित्य के रहते हुए भी राज्य में कई तरह के नुकसान हुए। (सं०)

हिन्दू ने, जो विक्रमादित्य का प्रतिष्ठित आदमी है, आकर आधीनता और सेवा स्वीकार करना प्रकट किया, तथा अपने गुजर के लिये सत्तर लाख की जागीर मांग कर, ऐसा स्वीकार किया कि, वह जब रणथम्भोर का किला सौंप दे, तो उसकी इच्छानुसार परगने दिये जावें। इस बात का वचन देकर हमने उनको विदा किया। हम ग्वालियर की सैर को जा रहे थे, इसलिये उन आदमियों को ग्वालियर में भेंट करना निश्चित् किया। निश्चित् समय से कुछ अधिक दिन लग गये। यह अशोक हिन्दू विक्रमादित्य की मां पद्मावती का निकट का सम्बन्धी होता है। उसने यह हाल मां-बेटों को बता दिया है। उन्होंने भी अशोक से सहमत होकर शुभेच्छा और सेवा स्वीकार कर ली है। एक ताज और जरी का पटका उनके पास था। जब सांगा ने सुलतान महमूद को पराजित किया और वह काफिर की कैद में आया, तब यह ताज और जरी का पटका, जो प्रशंसा के योग्य था, लेकर उसने महमूद को छोड़ दिया। वही ताज और जरी का पटका विक्रमादित्य के पास था। उसके बड़े भाई रतनसी[1] ने जिसने बाप के स्थान पर राजा बन कर अब चित्तौड़ पर अधिकार कर रखा है, ताज और जरी का पटका अपने छोटे भाई से मांगा था। उसने नहीं दिया। इन आदमियों, जो आये हैं, के साथ ताज और जरी का पटका मुझे देने का कहलाया है, तथा रणथम्भोर के बदले बयाना मांगा। हमने बयाना की बात से उनको टाल कर रणथम्भोर के बदले में शमशाबाद देने का वादा किया। उसी दिन इन आये हुए आदमियों को खिलअत पहना कर नौ दिन के बाद पूर्व निश्चित् समय पर बयाना आने के लिये रवाना किया।

पत्र 268, तारीख 5, सफर सोमवार (कार्तिक शुक्ल 7 = 19 अक्टूबर)[2]

"तारीख 5 सफर सोमवार के दिन विक्रमादित्य के अव्वल एलची

---

1. नाम अनेक कारणों से (उच्चारण, देश भेद वा अर्थ भेद आदि से) अपभ्रंश होकर अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक बिगड़ जाते हैं। जैसे संग्रामसिंह का सांगा, रतनसिंह का रतनसी, अरिसिंह का अरसी, अमरसिंह का अमरसी, कुम्भकर्ण का कुम्भा आदि।

2. बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 616-17। (सं०)

ने भाणा[1] को हरणा गांव दिया जो अब तक उसके वशंजों के अधिकार में है ।

इस ढंग से विरोध को बढ़ता देख कर सूर्यमल ने सोचा कि अब किसी बड़े सहारे के बिना निर्वाह होना कठिन है । इस विषय में उसने अपनी बड़ी बहिन महाराणी हाड़ी से सलाह कर, उसकी तरफ से बाबर बादशाह के बड़े बेटे हुमायूं को राखी[2] भिजवाई । यह बात राजपूताना में प्रसिद्ध है ।[3] इसके सन्दर्भ में बाबर ने अपनी किताब तुजुक-इ-बाबरी में लिखा है । उस पुस्तक की हस्तलिखित प्रतिपत्र के 265-266 और 268 का अनुवाद यहां पर किया जाता है—

पत्र 265-266[4] हि० 935, तारीख 14 मुहर्रम, मंगलवार (कातिक कृष्णा 1, 1585 वि०=29 सितम्बर, 1528 ई०) ।

तारीख 14 मुहर्रम को राणा सांगा के दूसरे बेटे विक्रमादित्य की तरफ से जो अपनी मां पद्मावती[5] के साथ रणथम्भोर किले में रहता है, आदमी आये । ग्वालियर सैर को रवाना होने के पहले अशोक[6] नाम के एक

---

1. भाणा मीसण के वंश में ही प्रसिद्ध कवि सूर्यमल मीसण पैदा हुआ, जिसने वंश भास्कर नामक एक वृहद् इतिहास ग्रन्थ की रचना की । (सं०)
2. हिन्दुओं में बहिन अपने भाई को राखी बांधती है, और राखी बंधाने वाला भाई समझा जाता है । (सं०)
3. महाराणी कर्मवती हाड़ी द्वारा शाहजादा हुमायूं को राखी भेजने का उल्लेख यहाँ पर ठीक नहीं है । राखी भेजने वाली घटना तो गुजरात के सुलतान द्वारा चित्तौड़ पर दूसरी बार आक्रमण करने के समय की है, तब हुमायूं बादशाह था । (सं०)
4. बेवरिज, बाबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 612-613 । (सं०)
5. बाबर ने कर्मवती का नाम भूल से पद्मावती लिखा है । (सं०)
6. यह राव अशोक परमार वंश का था, जिसके वंश में बिझोलिया के राव गोविन्ददास प्रथम श्रेणी के सरदारों में इस समय पांचवें क्रम पर गिने जाते हैं ।

"राणा मुझको धोखे से मारने के लिये बुला रहे हैं। अतः कहो तो बाहर निकल कर राजपूती के हाथ बताऊं, तथा कहो तो बुलाने के अनुसार चला जाऊं।" उसकी मां ने कहा "हमने महाराणा का कोई अपराध नहीं किया बल्कि हमेशा से हम उनके सामधर्मी चाकर रहे हैं। तुमको उनकी सेवा में जाकर उपस्थित होना चाहिये।"

इधर विक्रमी 1588 (937 हि० = 1531 ई०) की ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भिक दिनों में महाराणा रतनसिंह शिकार खेलने के लिये बूंदी की तरफ रवाना हुआ। उधर से अपनी मां की आज्ञानुसार सूर्यमल आ रहा था। सो मार्ग में ही इनका मिलाप हो गया। परन्तु उनके दिल में खटका ही था। एक दिन महाराणा मस्त हाथी पर सवार हो शिकार को निकले। सूर्यमल घोड़े पर था। अवसर देख कर महाराणा ने सूर्यमल पर हाथी को पेला, परन्तु वह बच गया। उस समय महाराणा ने हाथी का कुसूर बता कर कहा कि, अब से इस पर सवारी नहीं करेंगे। बाद में बूंदी के पास बाजणा गांव[1] में पहुँच कर शिकार के समय एक जगह सूर्यमल को खड़ा किया और उसके पास पुरबिया पूर्णमल[2] को छोड़ महाराणा स्वयं दूसरी तरफ गया। वापस आकर देखा तो पूर्णमल से कुछ नहीं हुआ था। तब झुंझला कर घोड़े को झपटाया और तलवार का एक वार[3] सूर्यमल पर किया। फिर तो पूर्णमल ने भी एक तीर मारा जो उसकी छाती फोड़ कर निकल गया। सूर्यमल ने दौड़ कर पूर्णमल को कटार से मारा। महाराणा ने पूर्णमल की मदद करने के लिये दूसरा वार सूर्यमल पर करना चाहा। परन्तु उसने कटार का एक हाथ उनकी (महाराणा) छाती में ऐसा मारा कि, महाराणा भी इस संसार को छोड गया। पाटण ग्राम में इन महाराणा का दाह संस्कार हुआ। उसके साथ महाराणी पंवार सती हुई।

यह महाराणा सुलह पसंद (संधि प्रिय) और बहादुर था। परन्तु चापलूसों और मीठे बोलने वालों की बात पर जल्दी भरोसा कर लेते थे। इनके समय किसी बाहरी शत्रु से कोई बड़ी लड़ाई नहीं हुई। क्योंकि इस

---

1. यह गांव बूंदी से मेवाड़ की तरफ दस कोस की दूरी पर है। (सं०)
2. पूर्णमल को धोखे से वार करने के लिये पहले से ही संकेत था (सं०)
3. पता नहीं कि मारे जाने के समय पहला वार किसका और किस तरह हुआ। परन्तु यह सच है कि, तीनों उसी समय मारे गये। (सं०)

और पिछले एलची के साथ पुराने हिन्दुओं में से देवा का बेटा बेहरा होमी[1] भेजा गया कि, यह रणथम्भोर सौंपने, आधीनता स्वीकार करने और उसके व्यवहार के लिये शर्त तय करे। यह हमारा आदमी जो गया है, देख कर, समझकर, यह विश्वास कर आवे और वह अपनी बातों पर दृढ़ रहेगा तो, मैंने भी वचन दिया, जो खुदा पूरा करेगा कि, उसके बाप के स्थान पर उसको राणा बना कर चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा दूंगा।"

यह सूर्यमल की ही कारवाई थी कि, इतनी बात होने पर भी बाबर को रणथम्भोर नहीं दिया। क्योंकि उस समय के क्षत्री मुसलमानों के आधीन रहना मन से नहीं चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि, यह सब कारवाई महाराणा रतनसिंह को डराने के लिये की गयी और उनकी तरफ से दबाव कम होने पर इन्होंने भी बाबर से सम्बन्ध नहीं रखा।

इस तरह की विरोधपूर्ण बातों से[2] महाराणा ने सूर्यमल को मार डालने का विचार कर दिखावे के रूप में चित्तौड़ आने के लिये उसे चिकनी चुपड़ी भाषा में रुक्के लिखे। परन्तु सूर्यमल इस बात को समझ गया था। अतः कई बार बुलाने पर भी नहीं आया और टाला-टूली करता रहा। जोधपुर का दीवान नैणसी मुहणोत लिखता है कि, महाराणा रतनसिंह ने सूर्यमल को बुलाया, तब उसने अपनी मां सोलंखिनी[3] से पूछा कि,

---

1. बेवरिज, बाबरनाम (अं० अ०), भाग 2, पृ० 616 पर "मीर का हामूसी"। (सं०)
2. बूंदी के इतिहास वंश प्रकाश में सूर्यमल से महाराणा के विरोध का कारण पूर्णमल का स्त्रियों के विषय में झूठा अपराध लगाना लिखा है और कर्नल टॉड भी कुछ हेर-फेर से वही लिखते हैं। परन्तु इस रीति की कहानियों पर हमें विश्वास नहीं होता। क्योंकि दो सौ वर्ष (वि० 1720 = हि० 1073 = 1663 ई०) पहले एक दूसरे राज्य के प्रमाणिक मनुष्य नैणसी मेहता (मुहणोत) ने विक्रमादित्य को रणथम्भोर देना ही इस विरोध का कारण लिखा है। ऊपर लिखे हुए तुजुक-इ-बाबरी के लेख से भी यही सिद्ध होता है। (सं०)
3. वस्तुतः सूरजमल सोलंखियों का भानजा नहीं था। वह जोधपुर के राव जोधा के पुत्र सावंतसी की पुत्री खेतूबाई राठौड़ का पुत्र था। अतः यहां सोलंखिनी का उल्लेख ठीक नहीं है। (सं०)

करेंगे ? कोई बाहर का शत्रु आवेगा तो हमारे पहलवान ही बहुत हैं।" इन बातों से सरदार उमराव तो अपने-अपने ठिकानों में चले गये और कर्मचारियों (अहलकारों) ने भी सब काम छोड़ कर यह कहना शुरू किया कि, अब जिसको इज्जत बचाना हो वह सरकार में जाना छोड़े। इससे सरदारों आदि पर और भी तरह-तरह की तंगी होने लगी, राज्य में बड़ा द्वन्द मचा। परन्तु महाराणा को कुछ भी चिन्ता नहीं थी, न किसी के कहने सुनने पर विश्वास होता था। बुरी आदतों वाले स्वार्थी लोग पास रह कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे। मांजी हाड़ी ने भी जो बुद्धिमान थी, बहुत समझाया परन्तु

बड़वा भाटों की पोथियों और अमरकाव्य में गद्दी पर बैठने का सम्वत् 1587 वि० लिखा है। मिरात-इ-सिकन्दरी के पृष्ठ 222 (अं० अ०, पृ० 165) के अनुसार हि० 937 जमादिउस्सानी (1587 विक्रमी माघ शुक्ल पक्ष) में गुजरात के बहादुरशाह से महाराणा रतनसिंह का मिलना सिद्ध होता है, तथा बून्दी के इतिहास वंशभास्कर तथा वंश-प्रकाश के अनुसार सम्वत् 1588 में महाराणा रतनसिंह और बून्दी के राव सूर्यमल का परस्पर मारा जाना निश्चित् है।

इन बातों से सिद्ध हो जाता है कि चैत्र शुक्ल सम्वत् 1588 से असाढ़ शुक्ल 15 तक चार महीनों के मध्य विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। उक्त ताम्रपत्र से कर्नल टॉड का उपर्युक्त लेख गलत सिद्ध हो जाता है। बड़वा भाट अपनी पोथियों में कार्तिक से सम्वत् बदलते हैं, जिससे सम्वत् 88 के कार्तिक तक उनके लेखों में 87 माना गया। हमारी गणना से (इस इतिहास में) चैत्र से सम्वत् 88 शुरू हुआ है। मेवाड़ में श्रावण कृष्ण 1 से सम्वत् का आरम्भ मानते हैं। इसलिये अमरकाव्य में सम्वत् 1587 (श्रावणी) लिख दिया है। जिससे हमारा चैत्री सम्वत् 1588 श्रावणी के पहले लगा।

मिरात-इ-सिकन्दरी से सम्वत् 1587 विक्रमी माघ शुक्ल में महाराणा रतनसिंह का विद्यमान होना प्रकट होता है। जिससे चैत्र शुक्ल 1 से असाढ़ शुक्ल 15, 1588 विक्रमी के मध्य महाराणा रतन-सिंह का देहान्त और विक्रमादित्य को राज्याधिकार प्राप्त होना सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त बून्दी के इतिहास के अनुसार भी हमारा लिखना ही ठीक है।

समय दिल्ली का बादशाह बाबर बनारस और बंगाल की तरफ के प्रबन्ध में व्यस्त था और मांडू के प्रताप का सूर्य अस्त हो चुका था। इसके अतिरिक्त गुजरात वालों से संधि हो गई थी।

छंद पद्धरी—

चित्तौड़ रत्न राज्याभिषेक, रणथम्भ भ्रात सापत्न थेक।
नृप सूर्यमल हड्डाविरोध, दुहँ शस्त्रघात पंचत्व बोध ॥1॥
इतिहास मड्डपति पातसाह, बब्बर सवंश वृत्तान्त राह[1]।
यह प्रथम वीर पूर्वज प्रकास, कविराज कीन्ह श्यामल विकास ॥2॥

3. महाराणा विक्रमादित्य—

महाराणा रतनसिंह के बाद राज्य का अधिकारी विक्रमादित्य था। इसलिये सब सरदारों व उमरावों ने मांजी हाड़ी कर्मवती को दोनों बेटों[2] सहित रणथम्भोर से बुलवाकर विक्रमादित्य को 1588 वि० (938 हि० = 1531 ई०) में राजगद्दी पर बैठाया।[3] महाराणा बिल्कुल नादान होने के अतिरिक्त राज्य के कार्यों में किसी का भरोसा भी नहीं करता था। फिर इतने बड़े राज्य का प्रबन्ध किस तरह हो सकता था ? उसने अपने पास सेवकों के अतिरिक्त केवल सात हजार पहलवान रख छोड़े थे। इन महाराणा की आदतें बहुत बुरी थी। कभी तो सभा में चुपके से किसी के जामे की कोर जाजम से सिलवा देना और वह उठे तब खूब हंसना, इसी तरह कभी-कभी सरदार उमरावों की हंसी करा कर कहते कि, "बेचारे राजपूत क्या करेंगे?

---

1. कविराजा श्यामलदास दधवाड़िया ने महाराणा रतनसिंह के विवरण के बाद माण्डू के सुलतानों और मुगल बादशाह बाबर का इतिवृत भी लिखा है, यह इतिवृत अलग खण्ड में ही दिया जावेगा। (सं०)
2. विक्रमादित्य और उदयसिंह, जिनका रणथम्भोर जाने का हाल महाराणा रतनसिंह के वर्णन में लिखा गया है।
3. कर्नल टॉड ने 1591 सम्वत् में इसका राजगद्दी पर बैठना लिखा है, परन्तु वह ठीक नहीं है। क्योंकि गद्दी पर बैठने के बाद सम्वत् 1589 के वैशाख में विक्रमादित्य मांडलगढ़ शादी करने गया। तब एक ब्राह्मण को उस परगने में जालिया ग्राम उदक (पुण्यार्थ) दिया। जिसका ताम्रपत्र उस ब्राह्मण के वंशजों के पास विद्यमान है।

मेदपाट के पाट कहे वल, सो भी सटके ग्रासा रावल।
ग्रनमीं थक्का विरद कहावत, सो भी सटके खेता रावत ।।

महाराणा के वे ही (स्वार्थी) सलाहकार उसको किले से निकाल कर दिल्ली के बादशाह हूमायूं[1] के पास ले गये ग्रौर उससे सहायता मांगी[2] हूमायूं शाह इनकी सहायता के लिये सेना लेकर रवाना भी हुग्रा। लेकिन ग्वालियर प चने पर उसको बहादुरशाह की तरफ से इस ग्राशय का एक खत मिला कि "मैं जिहाद (धर्मयुद्ध) पर हूँ। तुम विक्रमादित्य को सहायता करोगे तो खुदा के सामने क्या उत्तर दोगे?" तब तो हुमायूं ग्वालियर में रुक गया ग्रौर दो महीने तक वहीं ठहरा। उसकी इस उदासीनता को देख कर महाराणा वापस चला ग्राया।

यहाँ गुजरात की सेना ने चित्तौड़ को घेर कर 1589 वि० माघ शुक्ल 15 (14 रजब, हि० 939=फरवरी 9, 1533 ई०) को भैरवपोल[3] दरवाजे पर ग्रपना ग्रधिकार कर लिया।[4] यही बड़े ग्राश्चर्य की बात है कि किले के ऊपर तक नहीं प चे। क्योंकि किले में बहादुर राजपूतों की सेना तो थी ही नहीं। केवल पहलवान ग्रौर शागिर्द पेशा लोग (छोटे नौकर) थे, वे ग्रपनी जान बचाने के लिये बन्दूक ग्रादि शस्त्रों को चलाते थे। कहावत

---

1. महाराणा की मां हाड़ी कर्मवती ने महाराणा रतनसिंह के समय हुमायूं शाह को राखी भेजी थी ग्रौर उसी प्रसंग से इस वक्त वे मदद लेने के लिये गये।
2. कोई ले जाना, कोई मदद मांगना लिखता है कोई कहता है कि ग्रहमदाबाद पर सैनिक चढ़ाई कर हुमायूं चला ग्रा रहा था, कोई बहादुरशाह पर ही चढ़ाई करना लिखता है।
3. इसके खंभे ग्रादि कुछ ग्रवशेष 1938 वि० (1298 हि०=1881 ई०) तक तो थे। परन्तु कैलाशवासी महाराणा सज्जनसिंह के शासनकाल में चित्तौड़ में लार्ड रिपन के दरबार के समय सड़क का निर्माण करते समय उन्हें तोड़ कर मार्ग साफ किया गया।
4. मिरात० (अं० ग्र०), पृ० 178; लेकिन ग्रोझा (उदयपुर० भाग 1, पृ० 395) ने 5 रजब हि० 939 (माघ सुदि 6, 1589 वि०= जनवरी 31, 1533 ई०) के दिन तातारखां द्वारा नीचे के दो दरवाजों पर ग्रधिकार करना लिखा है। (सं०)

चिकने घड़े पर बून्द के समान कुछ असर नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में राज्य की बरबादी हो तो क्या आश्चर्य है?

महाराणा विक्रमादित्य ने बून्दी के राव सूरजमल (जो महाराणा रतनसिंह को मार कर मरा) के बेटे सुलतान को, जो कम उमर था, राजतिलक दिया।

चित्तौड़ पर बहादुरशाह की पहली चढ़ाई —महाराणा विक्रमादित्य की यह दशा देख कर आसपास के शत्रु उसके प्रदेश को हड़पने के लिए ललचाने लगे। गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने, जो मालवा विजय के बाद मांडू में रहता था, 1589 विक्रमी (939 हि० = 1532 ई०) में चित्तौड़ की तरफ अपने सरदार मुहम्मदशाह आसेरी को फोज सहित रवाना किया। यह खबर सुन कर महाराणा के सलाहकारों (पासवान लोगों) के होश उड़ गये। उन्होंने कुछ नज्र भेंट देकर गुजरात की सेना को वापस भेजने का विचार किया, तथा मन्दसौर के पड़ाव पर वकील भेज कर मुहम्मदशाह आसेरी को कहलाया कि मांडू राज्य के जो जिले मेवाड़ में आये हैं, उन्हें छोड़ने के अतिरिक्त आगे के लिये विरोधी कार्रवाई नहीं की जायेगी। परन्तु कमजोर स्थिति में शत्रु कब मानता है। महाराणा की बुरी आदतों और कटु व्यवहार से घर के भेदू (महाराणा सांगा का भतीजा नरसिंह देव और चंदेरी का राजा मेदिनीराय आदि) कई सरदार नाराज होकर बहादुरशाह के पास चले गये थे। वे ही फौज के साथ रहकर मुसलमानों को घर का भेद बताया करते थे। मुहम्मदशाह व खुदावंदखां गुजराती ने महाराणा के समझौता प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और बिना किसी अवरोध के सेना लेकर नीमच आ पहुँचे, जहां महाराणा अपनी सेना व सरदारों के साथ सामना करने के लिये तैयार था। परन्तु युद्ध के प्रारम्भ में ही मेवाड़ की सेना भाग कर चित्तौड़ के किले में जा घुसी। सरदार लोग अपनी-अपनी जागीरों में चले गये। मुसलमानों ने आकर चित्तौड़ को घेर लिया। किसी कवि ने उस समय यह पद्य कहा था।

"आछी मधुरी बोलज राव, सो भी सटके दलपतराव।
पान फूल का लेते भोग, सो भी सटके राव असोग॥
घोड़े चढ़े फेरते भाला, सो भी सटके सज्जा झाला।
हाथां सेल राखते बाना, सो भी सटके बीकम राना॥

करने के इरादे से अलाउद्दीन के बेटे तातारखां को 40,000 (चालीस हजार) सेना के साथ हुमायूं के प्रदेश में लूटमार करने के लिये आगरा की तरफ रवाना किया । तातारखां ने बयाना पहुंच, वहां पर अधिकार किया, तथा आगरा तक लूटमार मचाई । इस खबर के पहुंचने पर हुमायूं ने अपने भाई मिर्जा हिंदाल को सेना देकर उसका सामना करने के लिये भेजा । हुमायूं की सेना ने गुजरातियों को ऐसा मारा कि, तातारखां के साथ सिर्फ 10,000 (दस हजार) आदमी रह गये । मिर्जा ने उनसे मुकाबला करके बयाना ले लिया और तातारखां 300 पठानों सहित मारा गया ।[1]

बहादुरशाह द्वारा चढ़ाई करने की खबर चित्तौड़ पहुँची । प्रथम बार उसको यह किला जीतना कठिन दिखलायी पड़ता था, परन्तु अब घर के भेदू मिल जाने से वह बड़ा सरल दिखाई दिया । पहली लड़ाई से सब लोग डरे हुए थे और इस समय लड़ाई का (सामान भी न तो मौजूद था, न ही इकट्ठा हो सकता था । तब मांजी हाड़ी ने सब सरदार-उमरावों के नाम इस आशय के खास रुक्के लिखवाये कि "अब तक तो चित्तौड़ सीसोदियों के अधिकार में रहा, परन्तु इस समय किला जाने (उनके हाथ से निकलने) का दिन आया सा मालूम होता है । मैं किला तुम लोगों को सौंपती हूँ । चाहे तुम रखो चाहे शत्रु को सौंप दो । अब यह तुम्हें सोचना चाहिये कि कदाचित् किसी पीढ़ी में स्वामी बुरा ही हुआ, तो भी जो राज्य वंश परम्परा से चला आता है, वह हाथ से निकल जाने में तुम लोगों की बड़ी अपकीर्ति होगी ।"

मांजी द्वारा इस रीति से दिल बढ़ाने वाले और सच्चे वचनों से क्षत्रियों को ऐसा जोश आया कि उन्होंने अपने जीतेजी चित्तौड़ को मुसलमानों के अधिकार में न जाने देना ठान कर महाराणा के दुराचरणों का विचार मन से निकाल दिया । छोटे-बड़े सब राजपूत सरदार किले पर एकत्रित हो गये । देवलिया प्रतापगढ़ के रावत बाघसिंह[2] हाड़ा अर्जुन,[3]

---

1. मिरात० (अं० अ०), पृ० 186; ब्रिग्ज, फरिश्ता० (अं० अ०), भाग 4, पृ० 125-126 । (सं)०
2. महाराणा सांगा और बाबर के मध्य बयाना के युद्ध में इसने बड़ी बहादुरी दिखाई थी ।
3. बूंदी के राव सुलतान की तरफ से अर्जुन 5000 सेना के साथ आया था । क्योंकि उस समय सुलतान की आयु केवल 9 वर्ष की होने से वह स्वयं नहीं आ सका.

भी है कि "टूटी कमान दोनों तरफ डराती है," इस तरह हिंडोल राड़ हो रही थी। इतने में पांच हजार सवारों और बहुतसी सेना के साथ बहादुरशाह भी मांडू से आ पहुंचा। तब उसने अलफखां को तीस हजार (30,000) सवारों सहित लाखोटा दरवाजे पर, तातारखां और मेदनीराय वगैरा को हनुमान पोल, मल्लूखां और सिकन्दरखां को धौली बूर्ज की तरफ और भोपतराय (भूपति) व अलपखां आदि को दूसरे मोर्चों पर नियुक्त कर बड़ी तेजी के साथ आक्रमण किया। इधर से किले वालों ने भी कुछ लड़ाई की। परन्तु किला टूटने का भय उत्पन्न हो जाने से मांजी हाड़ी कर्मवती ने बहादुरशाह के पास वकील भेज कर कहलाया कि, "अब आप लड़ाई बन्द कर दो। मालवा का जो प्रदेश (पूर्व में मेवाड़ के अधिकार में आया था, उसे छोड़ देने का हम इकरार करते हैं।" फिर जड़ाऊ कमरपेटा व ताज (जो महाराणा सांगा ने महमूद खिलजी से लिया था) के साथ कुछ नकद, सौ घोड़े तथा दस हाथी देकर बहादुरशाह को विदा किया।

बहादुरशाह चैत्र कृष्ण 14, 1589 वि० (27 शाबान, 939 हि० = मार्च 24, 1533 ई०) को चित्तौड़ से वापस लौटा[1] तथा हुमायूं भी ग्वालियर में दो महीने तक ठहर कर आगरा की तरफ रवाना हुआ। महाराणा भी अपने सलाहकारों की सलाह के अनुसार हुमायूं के पास गया था, वापस चित्तौड़ पहुंचा।

इस समय राज्य के लोगों को महाराणा के चाल-चलन सुधरने का कुछ विश्वास हुआ। परन्तु उसके स्वभाव में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। कहावत प्रसिद्ध है—"नीम न मीठा होय, सींचो गुड़ घीव सूं, ज्यांका पड्या स्वभाव क जासी जीव सूं।" जब महाराणा का व्यवहार पूर्ववत ही रहा तब शेष बचे हुए सरदार भी भाग कर गुजरात के बादशाह के पास चले गये, तथा अनेकों ने महाराणा की बुराई करना ही अपना काम समझ लिया।

चित्तौड़ पर बहादुरशाह की दूसरी चढ़ाई— सं० 1591 विक्रमी (941 हि० = 1534 ई०) में बहादुरशाह ने दूसरी बार चढ़ाई की। मांडू से रवाना होते समय चित्तौड़ फतह होने पर वह किला अपने सेनापति रूमीखां को दे देना निश्चय किया था। पहली लड़ाई में महाराणा स्वयं के आगरा जाने पर भी हुमायूं द्वारा मदद न करने से इस समय बहादुरशाह को बड़ा अभिमान हो गया था। इसी कारण उसने दिल्ली पर अधिकार

---

1. मिरात० (अं० अ०), पृ० 179-180 (सं०)

"मेरे बहनोई मिर्जा मुहम्मद जमान[1] को यहां भेज दो।" लेकिन उसने नहीं भेजा। प्रथम तो बहादुरशाह को बड़ा गर्व हो ही रहा था। दूसरा मिर्जा मुहम्मद जमान और सुलतान बहलोल लोदी का पुत्र अलाउद्दीन[2] उसके सलाहकार बन कर हुमायूं के विरुद्ध हो गये थे। फिर उसके पत्र की पालना किस प्रकार हो सकती थी। इस कारण से बहादुरशाह का चित्तौड़ लेने का पूर्ण निश्चय सुनकर हुमायूं बादशाह दिल्ली से रवाना हुआ। सारंगपुर पहुंच कर उसने बहादुरशाह के नाम एक पत्र लिखा कि, "तू चित्तौड़ लेना चाहता है, लेकिन सावधान रहना, मैं भी तेरे ऊपर चढ़ाई कर आ रहा हूं।" इसके उत्तर में बहादुरशाह ने लिखा कि, "मैं चित्तौड़ पर चढ़ाई कर के आया हूं, तथा हिन्दुओं को पकड़ता हूँ। यदि तुम उनकी मदद करना चाहते हो, तो आकर देखो कि मैं यह किला किस प्रकार लेता हूं।"

बहादुरशाह ने अपने सलाहकारों से पूछा कि, "पहले हुमायूं से युद्ध करें या चित्तौड़ पर आक्रमण ?" सभी की राय थी कि, पहले चित्तौड़ लेना चाहिये। क्योंकि हुमायूं मुसलमान है। हिन्दुओं से लड़ते समय वह हमसे सामना नहीं करेगा। इस विचार से चित्तौड़ को घेर लिया। मेवाड़ी राजपूत सुसज्जित ही थे। झुंड के झुंड बाहर निकल कर गुजरात की सेना पर आक्रमण करने लगे। मुसलमानों की शक्ति अधिक थी और उनके साथ यूरोपी सैनिक होने से गोला बारूद आदि सामान भी पूरा-पूरा था। इस से किले वालों को किसी तरह की सफलता प्राप्त नहीं हुई। गुजरातियों ने एक ऐसी सुरंग लगाई जिससे बीकाखोह की ओर किले की पैंतालीस हाथ दीवार उड़ गई। इस में अर्जुन हाड़ा अपने साथियों सहित मारा गया। तब गुजरातियों ने किले के अन्दर घुस कर आक्रमण करना चाहा। परंतु बचे हुए हाड़ा व दूसरे राजपूतों ने बड़ी बहादुरी के साथ उनको रोका। इसमें दोनों तरफ के बहुत से आदमी मारे गये। बहादुरशाह ने जलेब (आगे) तोपें रख कर पाडलपोल[3], सूरजपोल

---

1. मिर्जा मुहम्मद जमान को हुमायूं ने बयाना के किले में कैद कर रखा था। वहां से भाग कर वह बहादुरशाह की शरण में चला गया।
2. बयाना की लड़ाई में मारा गया तातारखां इसी अलाउद्दीन का बेटा था।
3. यह दरवाजा बाद में पुनः बनाया गया। इसके बाहर रावत बाघसिंह का चबूतरा है, जहां वह मारा गया था।

रावत सत्ता, सोनगरा माला, डोडिया भाण, सोलंकी भैंवरदास, झाला सिहा, झाला सज्जा, रावत नरवद आदि बड़े-बड़े सरदारों ने मिल कर सोचा कि इस समय बहादुरशाह को बड़ा गर्व हो गया है। इसी से दिल्ली तक लेने का उसका इरादा है। उसके साथ दक्षिणी, कर्णाटकी, बीजापुरी, मालवी, गुजराती और योरोपीय बड़े-बड़े बुद्धिमान सरदारों सहित सेना भी बहुत है। यहां लड़ाई और खाने पीने का सामान इतना भी नहीं कि दो तीन महीने तक चले, तथा अब इकट्ठा भी नहीं हो सकता है। इसलिये महाराणा विक्रमादित्य को उसके छोटे भाई उदयसिंह सहित ननिहाल बूंदी भेज देना चाहिये, तथा जब तक लड़ाई हो, देवलिया के रावत बाघसिंह महाराणा के प्रतिनिधि के रूप में रहें। यह विचार कर महाराणा को तो बूंदी की ओर रवाना किया और सब लवाजमें (ऐश्वर्य चिह्न) सहित रावत बाघसिंह को[1] उसका पद दिया। तब इसने सरदारों से कहा कि, "आप लोगों ने मुझे बहुत बड़ा पदाधिकार देकर सब राजपूत सरदारों में प्रथम श्रेणी का अधिकारी बनाया है, तथा अधिकारी को आगे रहना चाहिये। इसलिये मैं किले के बाहरी दरवाजे पर रहूंगा।" यह कह कर स्वयं भैरवपोल[2] दरवाजे के बाहर मोर्चे को मजबूत किया, तथा उसके भीतर की तरफ सोलंकी भैंरवदास, हनुमान पोल पर राजराणा सज्जा झाला और उसका भतीजा राजराणा सिंहा, गणेशपोल पर डोडिया भाण और इसी तरह सभी दरवाजों, परकोट के बुर्जों आदि पर मेवाड़ के सभी छोटे बड़े राजपूतों ने मोर्चाबन्दी कर लड़ाई के लिये कमर बांधी।

उधर तातारखां के मारे जाने के बाद, जिसको बहादुरशाह ने आगरा की तरफ भेजा था, हिंदाल ने बयाना पर अधिकार कर लिया। इसके बाद हुमायूं बादशाह ने मित्रता का एक पत्र बहादुरशाह को लिखा कि,

1. महाराणा को दीवान भी कहते हैं। क्योंकि इस राज्य के स्वामी श्री एकलिंगजी (महादेव) और महाराणा उनके प्रधान (दीवान) समझे गये हैं। उस समय "कायम मुकाम" महाराणा बनाये जाने से देवलिया वाले अब तक "देवलिया-दीवान" कहलाते हैं।
2. दरवाजे के निर्माण के समय महाराणा कुंभा ने इसका नाम कुछ और रखा होगा। परन्तु इस लड़ाई के पश्चात् भैरवसिंह के नाम से इसका नाम भैरवपोल प्रसिद्ध हुआ।

के हाकिम मुबारकशाह फारूकी, मालवा के सरदार मल्लूखां, कादिरशाह और सदरजहांखां आदि पांच आदमियों को साथ लेकर रात के समय निकल भागा।[1]

हुमायूं ने उसका पीछा किया। परन्तु बहादुरशाह मांडू के किले में जा छुपा।। हुमायूं ने भी किले पर हमला किया। एक दिन तीन सौ पठान धावा करके किले में जा घुसे, जिससे वहां उपस्थित गुजरात के सैनिक भाग गये। बहादुरशाह ने भी मांडू से निकल कर चांपानेर के किले में शरण ली। मालवा का सरदार सदरजहांखां घायल हो जाने से भाग नहीं सका। उसको हुमायूं ने बड़ा बहादुर समझ कर नौकर रख लिया और मांडू पर अधिकार किया। फिर तीन दिन तक वहां ठहर कर हुमायूं बहादुरशाह की तलाश में चांपानेर की तरफ रवाना हुआ। लेकिन वह (बहादुरशाह) बहुत सारा धन लेकर चांपानेर से अहमदाबाद की तरफ भाग गया था। हुमायूं ने पीछा नहीं छोड़ा। तब तो घबराकर बहादुरशाह खंभात होता हुआ जहाज में बैठ कर किसी टापू की तरफ चला गया।

बादशाह हुमायूं चांपानेर के किले को घेरने के लिये दौलतख्वाजा बर्लास को नियुक्त कर गया था, उसने घेरा डाल दिया था। इतने में बहादुरशाह के भाग जाने पर बादशाह हुमायूं भी अपनी सेना के साथ आ पहुंचा, तथा पहले किले का भेद लेकर एक रात वह तीन सौ सैनिकों के साथ भीतर घुसा। दरवाजे खोल दिये, किला जीत लिया गया और गुजरातियों का बहुतसा खजाना हाथ लगा। इस समय में आगरा की तरफ पठानों का उपद्रव होने से हुमायूं को लौटना पड़ा। तब अवसर देख कर बहादुरशाह टापू से निकला और गुजरात पर पुनः अधिकार कर लिया।[2]

को चित्तौड़ पर दुर्ग जीते जाने पर उक्त प्रदेश जागीर में देने का वचन दिया था। उक्त वचन पूरा नहीं होने के कारण वह निराश होकर हुमायूं से मिल गया। मिरात० (अं० अ०), पृ० 187-188।

1. 20 रमजान 941 हि० (वैसाख वदि 7, 1592 वि० = मार्च 25, 1535 ई०) को भागा। मिरात० (अं० अ०), पृ० 189। (सं०)
2. बहादुरशाह भाग कर दीव टापू पर चला गया था। वहीं पर वह फिरंगियों के हाथ से मारा गया था। मिरात-इ-सिकन्दरी (अं० अ०), पृ० 198-200। (सं०)

व लाखोटावारी की तरफ से आक्रमण किया। तब भीतर के बहादुरों ने भी दरवाजों के किवाड़ खोल दिये और बड़ी वीरता के साथ गुजराती सेना पर टूट पड़े। देवलिया प्रतापगढ़ का रावत बाघसिंह पाडलपोल दरवाजे के बाहर, देसूरी का सोलंकी भैरवदास भैरवपोल के बाहर, देलवाड़ा का राजराणा सज्जा व सादड़ी का राजराणा सिंहा हनुमान पोल के बाहर तथा इसी तरह दूसरे दरवाजों पर तथा अन्य स्थानों पर रावत दूदा रतनसिंहोत[1] चूंडावत, सीसोदिया कम्मा रतनसिंहोत चूंडावत, रावत बाघ सूरचंदोत, रावत सत्ता रतनसिंहोत चूंडावत, सोनगरा माला बालावत, रावत देवीदास सूजावत, सीसोदिया रावत नगा सिंहावत,[2] रावत कर्मा चूंडावत, डोडिया भाण,[3] आदि लड़ते-भिड़ते अपने साथियों सहित काम आये। बत्तीस हजार राजपूत इस लड़ाई में मारे गये। तेरह हजार स्त्रियां महाराणी हाड़ी कर्मवती के साथ आग में जल मरी। यह लड़ाई विक्रमी 1592, चैत शुक्ल 5 (4 रमजान 941 हि०=9 मार्च, सन् 1535 ई०) को हुई।[4]

बहादुरशाह और हुमायूं की लड़ाई—इस समय तक बादशाह हुमायूं सारंगपुर से मंदसौर की तरफ प्रस्थान कर चुका था। उसको मार्ग में महाराणा विक्रमादित्य के वकीलों ने बहादुरशाह द्वारा चित्तौड़ पर अधिकार कर लेने की खबर दी। वह बहादुरशाह से लड़ने को तो आ ही रहा था। इन लोगों की भी तसल्ली करके आगे बढ़ा। इधर हुमायूं का आगमन सुन बहादुरशाह अपनी सेना को व्यवस्थित कर युद्धार्थ रवाना हुआ। मन्दसौर पहुँचने पर मुकाबला हुआ। बहादुरशाह गुजराती के पास तोपखाना अच्छा था। रूमीखां की सलाह से खाइयां खोद कर मोर्चा बन्दी की गई। दो माह तक लड़ाई चलती रही। तब हुमायूं ने गुजरात की सेना में रसद पहुँचना बंद कर दिया। जिससे[5] बहादुरशाह घबराया और मोर्चा छोड़ बुरहानपुर

---

1. सलूंबर के रावत इस रतनसिंह के वंश में हैं।
2. इसके वंशजों में अब आमेट और देवगढ़ के रावत हैं।
3. इसके वंशज वर्तमान में सरदारगढ़ के ठाकुर हैं।
4. अकबरनामा (अं० अ०), भाग 1, पृ० 301 के अनुसार यह घटना 3 रमजान 941 हि० (मार्च 8, 1535 ई०) की है। (सं०)
5. इसके अतिरिक्त बहादुरशाह ने अपने तोपखाना के अधिकारी रूमीखां-

सजा देता। जिससे सब सरदार आदि राज दरबार से अलग हो गये। बनवीर ने अवसर देखकर महाराणा को तलवार से मार डाला। क्योंकि उस समय कोई शुभचिन्तक तो था ही नहीं, जो सामना करता, तथा बदचलन व स्वार्थी लोग बनवीर से मिल गये थे। बनवीर महाराणा विक्रमादित्य को मार कर राज्य का पूरा मालिक बनने के इरादे से महाराणा के छोटे भाई उदयसिंह को भी मारने के लिये तलवार लेकर उदयसिंह के शयन कक्ष में पहुंचा। परन्तु उदयसिंह को, जिसकी आयु इस समय 14 वर्ष थी, धाय ने छुपा कर उसके पलंग पर अपने पुत्र को सुला दिया। बनवीर ने आते ही उसी को उदयसिंह जान तलवार के एक ही वार में उसके दो टुकड़े कर दिये।

विक्रमादित्य के मारे जाने से महलों में शोर तो मच ही रहा था, इतने में उदयसिंह की धाय ने भी रोना पुकारना शुरू कर दिया। बनवीर दोनों को मार कर महलों में गया और अपनी आण दुहाई फिरवा कर निष्कंटक राज्य करने लगा। उदयसिंह के नाम से अपने पुत्र को धाय ने उसी जगह जलवा कर वास्तविक उदयसिंह को सही सलामत चित्तौड़ से ले निकली।[1]

महाराणा विक्रमादित्य का देहान्त सं० 1592 विक्रमी (941 हि० = 1535 ई०) में हुआ। इसका जन्म सम्वत् ठीक-ठीक नहीं मिलता, परन्तु अमरकाव्य से यह सिद्ध होता है कि, मृत्यु के समय इसकी आयु 18 वर्ष की थी।

छन्द नाराच— नृपाल विक्रमार्क सिह पिट्ठ चित्रकोट पै।
विराज हर्ष शीत व्है कुकर्म धर्म ओट पै॥
भटादि मान हीन धर्म छीन गुर्जरेश तें।
मिले रु चित्रकोट दे संदेस छद्‌म वेश तें॥1॥
धनादि दै रु फेर दीन्ह एक वेर ताहि को।
दुवार आन शाह दुर्ग छीन लीन वाहि को॥

---

1. इसका सविस्तार वर्णन महाराणा उदयसिंह के वृत्तांत में लिखा जावेगा।

चित्तौड़ पर पुनः अधिकार—जब गुजरात का सुलतान बहादुरशाह मन्दसौर से भागा तब रहे-सहे मेवाड़ी राजपूतों ने पांच सात हजार सेना एकत्रित कर महाराणा विक्रमादित्य व उदयसिंह को बूंदी से चित्तौड़ ले आये और किले पर अधिकार कर लिया। गुजरात के मुसलमानों ने मेवाड़ के राजपूतों की वीरता पहले से देख रखी थी। इसके अतिरिक्त हुमायूं के भय से बहादुरशाह के भागने की सूचना सुनकर सब के सब किला छोड़ कर भाग खड़े हुए। महाराणा के पास जो दो-चार होशियार व पुराने आदमी थे, उन्होंने जैसे-तैसे प्रदेश का प्रबन्ध किया और जो लोग पहली लड़ाई से बच गये थे वे सब आकर उपस्थित हुए। परन्तु नादान अवस्था में बदमाश[1] लोगों की संगत के कारण महाराणा विक्रमादित्य को इतना कष्ट उठाने पर भी कुछ समझ नहीं आयी और वह पहले के समान ही व्यवहार करने लगा। तब तो राज्य के लोग अत्यन्त घबराकर अपना जीवन और सम्मान बचाना कठिन जान कर बड़े सोच विचार में पड़ गये।

4. बनवीर (बरवीर)—

इन्हीं दिनों महाराणा सांगा के बड़े भाई पृथ्वीराज (जो कुंवरपदे में ही मर गया था) की पासवान का बेटा बनवीर[2] अवसर देखकर चित्तौड़ आया। उसने महाराणा के इन समर्थकों से मिल राज्य के कार्यों में हस्त-क्षेप करना प्रारम्भ किया। यहां तक कि थोड़े ही दिनों में प्रधान सलाहकार बन गया। महाराणा किसी की नसीहत (उपदेश) की बात तो मानता ही नहीं था। इस पर भी यदि कोई कुछ कहता तो उसको उलटी

---

1. उन लोगों ने महाराणा को सिखलाया कि, गुजरात व मालवा की सल्तनतें तो नष्ट हो गई और हुमायूं आपका मददगार है ही। अब क्या डर है? तथा जो लोग लड़ाई में मारे गये, उनको समय पर काम आने के लिये ही जागीरें मिली थीं।

2. यह राजकुमार पृथ्वीराज की पासवान पूतलदे के गर्भ से पैदा हुआ था। महाराणा सांगा ने बुरी आदतों के कारण उसको मेवाड़ से निकाल दिया था। तब वह गुजरात के सुलतान मुजफ्फर के पास चला गया। सुलतान की तरफ से इसको वागड़ का प्रदेश जागीर में मिला।

अध्याय—सातवां

महाराणा उदयसिंह व महाराणा प्रताप

1. महाराणा उदयसिंह—

महाराणा उदयसिंह का गद्दी पर बैठने का सम्वत् 1592 विक्रमी (हि॰ 942=1535 ई॰) माना जाता है। लेकिन हम इसको गद्दी पर बैठने का समय नहीं कह सकते। क्योंकि उस समय महाराणा विक्रमादित्य व उदयसिंह के धोखे में धाय के बेटे को मार कर बनवीर राज्य का स्वामी बन बैठा था।[1] कदाचित् कुम्भलगढ़ में बहुत से सरदारों के एकत्रित होने पर 1594 विक्रमी (944 हि॰=1537 ई॰) में जो एक उत्सव मनाया वह दिन गद्दीनशीनी का समझा जाय तो भी ठीक है। नहीं तो इस महाराणा का गद्दी पर बैठने का दिन वही मानना चाहिये जिस दिन बनवीर को निकाल कर वह चित्तौड़ का अधिपति बना।

उदयसिंह को उसकी धाय पन्ना ने, जो खीची जाति की राजपूतनी थी, टोकरे में बैठा कर ऊपर से पत्ते व पत्तल ढक दिये और एक बारिन के सिर पर रख कर, अपने व उसके पति को साथ ले देवलिया की[2] ओर रवाना हुई। रास्ते में बड़े-बडे दुःख उठाते हुए वे सब रावत रायसिंह के पास पहुंचे।

---

1. अमरकाव्य में विक्रमादित्य का मारा जाना और बनवीर का गद्दी पर बैठना 1593 वि॰ में लिखा है, तथा उक्त सम्वत् की एक प्रशस्ति चित्तौड़ के रामपोल दरवाजे पर है, उसमें बनवीर को महाराणा लिखा है। प्रशस्ति-पाठ (शेष संग्रह से)—
   महाराजाधिराज महाराणा श्री बणवीर आदेशातु चारण ब्राह्मण जोग्यां दाण दपाण मुक्ति कीधो जको चित्रकूट राजवि होएन चारण भाट शुदाण लेवे जीं की माउए गवे गाल है श्री मुखी सम्वत् 1593 वर्षे फागण वदी 2 दिने चारण कालजी वाही दाण मुक्ति करायो चारण। (सं॰)
2. इसके बदले में अब प्रतापगढ़ राजधानी है।

अनेक वीर युद्ध में समीर वेग आय के।
निघात शस्त्र घात पात स्वर्ग द्वार पाय के ।।2।।
दिलीप क्रोध गुर्जरेश दुर्ग ते पलायगो।
अनीत मग्ग फेर लीन विक्रमार्क आयगो ।।
कुमार पथ्थ पुत्त ताहि मार दुर्ग ईश भौ।
तदीश भ्रात गुप्त रीत कुम्भ मेरु शीस भौ ।।3।।
नृपाल सज्जेन्द्र के विचार सिद्ध कैनको।
फते नृपाल के कृपाल हुकम चित्र द्वैनको ।।
विनोद वीर के दुतीय खड सार भूत है।
बयान "श्यामदास" के विचारवान दूत है ।।4।।
वीर विनोद विधायक सज्जन सुधियां धिया भ्युदकर्ता।
श्रीमान् फतहनरेन्द्रों वीर विनोदेन नंदयेत्सुजनान् ।।

को अपने थाल में से कुछ खाने की भूठी चीज देकर कहा कि, "इसका स्वाद अच्छा है, थोड़ासा तुम भी चखो।" रावत खान ने अपनी पत्तल पर उस पदार्थ के पड़ते ही खाने से हाथ खींच लिया। तव वनवीर ने पूछा कि, "भोजन क्यों नहीं करते ?" खान ने जवाव दिया कि "मैं खा चुका।" वनवीर बोला कि, "यह तुम्हारा वहाना है। क्या तुम मुझे कम असल (अकुलीन) जान कर घृणा करते हो ?" रावत ने भी कह दिया कि, "हां अब तक तो हमने नहीं कहा था, परन्तु आप खुद ही जो कहते हैं, वह सच है।" ऐसे सवाल जवाव होने पर रावत खान उठ खड़ा हुआ और अपने डेरे पर आकर कुंभलगढ़ की तरफ चल दिया। वहां पहुंच कर महाराणा उदयसिंह को नज्रें की तथा कोठारिया से सांईदास[1], केलवे से जग्गा[2], वागौर से रावत सांगा[3], आदि को भी रुक्के लिख कर वुला लिया। इन लोगों ने महाराणा को नज्रें दीं और स० 1594 वि० (944 हि० = 1537 ई०) में रीति के अनुसार गद्दीनशीनी का उत्सव हुआ।

फिर सरदारों ने मारवाड़ से पाली के सोनगरा अखैराज को बुला कर उसकी लड़की का विवाह महाराणा से कर देने के लिये कहा। उसने जवाव दिया कि, "यह संवंध करने में हमारी सव तरह उन्नति ही है। परन्तु वनवीर ने अपने हाथ से वास्तविक उदयसिंह को मार डालना और इनका नकली होना प्रसिद्ध कर रखा है। अतः यदि आप सव सरदार लोग इनका भूठा खा लें, तो मैं अपनी वेटी व्याह दूं।" सरदारों ने अखैराज का संदेह दूर करने के लिये महाराणा उदयसिंह की पंक्ति में वैठ कर भोजन किया। उस समय महाराणा अपने थाल में से भूठे पदार्थ सवको देते गये और सवने ख़ुशी के साथ सम्मान सहित लेकर खाया।[4] तव अखैराज ने अपनी वेटी का सम्वन्ध करना स्वीकार किया। सव सरदारों ने, जो वहां उपस्थित थे, वड़ी धूमधाम

---

1. तव कोठारिया का जागीरदार रावत खान पूरविया चौहान था और सांईदास रावतचूंडा का वंशज और सलूंवर वालों का पूर्वज था। (सं०)
2. रावत सांगा कांधल चूंडावत का पौत्र, देवगढ़ वालों का मूल पुरुष। (सं०)
3. रावत चूंडा के पुत्र कांधल का पौत्र, आमेट वालों का पूर्वज। (सं०)
4. इसी दिन से यह प्रथा महाराणा के सामने खाने के समय अव तक प्रचलित है।

उसने इनकी बड़ी आवभगत की और घोड़ा आदि सवारी देकर वनवीर के डर से विदा कर दिया। क्योंकि उसका क्रोध वह सहन नहीं कर सकता था। उदयसिंह वहां से रवाना होकर अपने साथियों सहित डूंगरपुर पहुँचा। परन्तु रावल आसकरण ने भी वनवीर के भय से इनको नहीं रखा। केवल खर्च व सवारी आदि देकर रवाना कर दिया। तब वहां से चल कर कुम्भलगढ़ में आशा देपुरा के[1] पास आया।

धाय के पति ने आशा के सामने महाराणा विक्रमादित्य के मारे जाने और महाराणा उदयसिंह के यहां आने का सारा हाल कहा। यह सुन कर आशा को बड़ा रंज और फिकर[2] हुआ। उसने महाराणा को धाय सहित अपनी मां के पास ले जाकर उनकी तकलीफों का हाल सुनाया। उसकी मां ने कहा कि "बेटा यह अवसर चूकने का नहीं है। क्योंकि महाराणा सांगा ने तुमको बहुत कुछ देकर बड़ा (इज्जतदार) आदमी बनाया। अब तुम भी उनके बेटों का हक दिलाने में जहां तक हो सके प्रयत्न करो।" इन बातों से आशा का दिल बहुत मजबूत हुआ और उसने महाराणा को अपना भानजा बता कर अपने पास रख लिया। परन्तु यह बात कब तक छिप सकती थी, थोड़े ही दिनों में सब जगह फैल गई।

वनवीर, जो चित्तौड़ में बेखटके राज्य करता था, अब अपने को असल (कुलीन) बनाने की भी कोशिश करने लगा। जिन लोगों ने उसके साथ किसी तरह का परहेज रखा उन पर उसने सख्ती करनी शुरू की। इस कारण से सरदार व राजपूतों के दिल बहुत बिगड़ने लगे। जब उदयसिंह की विद्यमानता की पक्की निश्चित सूचना मिल गई तो ऐसी हालत में वे लोग उस गैर हकदार और अकुलीन का शासन कब पसन्द करते ?

एक दिन भोजन करते समय वनवीर ने रावत खान[3] पूर्बिया चौहान[4]

1. आशा देपुरा माहेश्वरी जाति का महाजन महाराणा सांगा के समय से कुम्भलगढ़ का किलेदार था।
2. महाराणा सांगा के बेटों की ऐसी हालत देखने व सुनने से रंज और अपने पास रखने में वनवीर के भय से चिन्ता।
3. ऐसा मालूम होता है कि, किसी फकीर की दुआ से पैदा होने के कारण यह नाम पड़ा होगा।
4. कोठारिया वालों का पूर्वज। (सं०)

पर कहलाया कि "तुम भी महाराणा सांगा के नौकर हो। यह समय खैरख्वाही जाहिर करने का है।" किले के बहुत से आदमी महाराणा उदयसिंह को चाहते थे। चील मेहता ने आशा के कहलाने पर उससे गुप्त सांठ-गांठ कर बनवीर से कहा, "किले में अनाज आदि सामान कम है। अतः रात के समय दरवाजे खोल कर मंगाया जाय तो बहुत अच्छा है।" बनवीर ने यह बात उचित जान कर स्वीकार कर ली। चील मेहता ने अपनी कार्रवाही का पूरा हाल आशा को कहलवा दिया और लगभग डेढ़ पहर रात गये दरवाजे खोल दिये। हजार पांच सौ भैंसे व बैलों पर कुछ सामान लदवाकर उनके साथ ही महाराणा के राजपूत किले में जा घुसे, और दरवाजों पर अपना अधिकार कर दिया। उस समय अपने लड़के वालों सहित लाखोटा बारी के मार्ग से भाग जाने के अतिरिक्त बनवीर[1] से और कुछ न बन पड़ा। दोनों तरफ के बहुत से राजपूत मारे गये और महाराणा की विजय हुई।[2]

फिर महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ का पूरा-पूरा बन्दोबस्त कर कुम्भलगढ़ चला गया और मेवाड़ देश में उसका अधिकार हुआ।

इन्हीं दिनों में सिरोही के राव रायसिंह के मारे जाने के बाद उसके बेटे उदयसिंह का देवड़ा दूदा के लड़के मानसिंह के साथ झगड़ा हुआ।

राव रायसिंह ने भीनमाल की लड़ाई में मारे जाने के समय कह दिया था कि, राज्य का स्वामी मेरा छोटा बेटा उदयसिंह है। उसका पालन-पोषण दूदा करेगा। रायसिंह के कहने के अनुसार दूदा ने उदयसिंह को

---

1. बनवीर को किले के अन्दर वाले तथा राज्य के लोगों का विश्वास नहीं था। इसलिये उसने अपने शासन-काल में चित्तौड़ गढ़ में राजमहलों के उत्तर की तरफ एक छोटा सा मजबूत किला इस मतलब से बनवाना शुरू किया था कि, यदि किले के लोग बदल जावें तो इसमें रह कर बचाव किया जा सके। उसकी दक्षिणी दीवार तैयार भी हो चुकी थी, जो अब तक विद्यमान है और "नौ कोठा" के नाम से प्रसिद्ध है।
2. अमरकाव्य और टॉड, राजस्थान में इस विजय का सम्वत् 1597 वि० (हि० 947 = 1540 ई०) लिखा है।

के साथ महाराणा की शादी की, और चित्तौड़ पर चढ़ाई करने के लिये परवाने भेज कर बाकी सरदारों को भी बुलाया।

परवानों के अनुसार ईडर का राव भारमल, बून्दी का अधिपति हाड़ा सुलतान, डूंगरपुर का रावल आसकरण, बांसवाड़ा का रावल जगमाल, प्रतापगढ़ का राव रायसिंह, सिरोही का राव रायसिंह, चूंडावत रावत सांईदास, चूंडावत रावत सांगा, चूंडावत रावत जग्गा, डोडिया ठाकुर सांडा, पंवार राव अखैराज इत्यादि बहुत से सरदार तो आकर उपस्थित हुए। परन्तु कितने ही स्वार्थी लोग जैसे सोलंखी रामा व सोलंखी मल्ला[1] आदि बनवीर के हित चिन्तक बने रहे। बनवीर ने यह समाचार सुनकर अपनी सेना और लड़ाई के सामान की व्यवस्था की।

उसी सम्वत् में महाराणा उदयसिंह ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। इस समय उसके पास ऊपर लिखे हुए सरदारों के अतिरिक्त जोधपुर के राव मालदेव की तरफ से बहुत से लोगों सहित राठौड़ कूंपा व राठौड़ जैता और पाली के सोनगरा अखैराज के साथ भी बहुसंख्यक सेना थी। इस तरह बहुतसी सेना एकत्रित हो गई। महाराणा के कुम्भलगढ़ से रवाना होने की खबर बनवीर को चित्तौड़ में मिलते ही उसने कुंवरसी तंवर को फौज देकर मुकाबले के लिये भेजा। माहोली (मावली) के पास मुकाबला हुआ। महाराणा की जीत हुई और कुंवरसी तंवर बहुत से आदमियों के साथ मारा गया।

यहां से रवाना होकर महाराणा ने ताणा को जहां का मालिक मल्ला सोलंखी था, एक महीने तक घेरे रखा, लेकिन फतह नहीं कर सके। मल्ला सोलंखी जिसको महादेव का इष्ट था, एक दिन एक पहाड़ी की खोह में पूजन करते समय पता लगने पर मेदा सांखला के हाथ से मारा गया। इसके मरते ही ताणा जीत कर महाराणा चालीस हजार सवार व फौज सहित चित्तौड़ पहुंचा और किले को घेरा। परन्तु तोपखाना साथ न होने के कारण किले का टूटना बहुत कठिन मालूम होता था। इसलिये आशा देपुरा ने बनवीर के प्रधान चोल मेहता से सांठ-गांठ कर ली और उसको गुप्तरूप

---

1. सोलंखी रामा की जागीर में माहोली (मावली) और सोलंखी मल्ला की जागीर में ताणा था।

सामन्तसिंह को यह भी कह कर गया कि, यदि महाराणा याद फरमावें तो शिकार के लिये चले जाने का वहाना कर लेना।

महाराणा ने मानसिंह को याद किया तो पता चला कि वह शिकार को गया है। फिर शाम को बुलाया तो किसी ने कहा कि, मुझको सिरोही की तरफ बड़ी तेजी के साथ जाता हुआ यहां से दस कोस पर मिला था। उसी समय एक अन्य आदमी ने निवेदन किया कि, "सिरोही का राव उदयसिंह शीतला की बीमारी से मरने के करीब है। यह खबर मुझको चिट्ठी से मिली है। इस पर महाराणा ने कहा कि, मानसिंह के डेरे से किसी मौतवर उत्तरदायी) व्यक्ति को बुलाकर पूछना चाहिये। इस हुक्म के अनुसार देवड़ा जगमाल को बुलाया गया और सिरोही का हाल पूछने के बाद महाराणा ने उससे कहा कि, "मानसिंह भाग कर क्यों गया? हम उसका क्या बिगाड़ते थे? जगमाल ने निवेदन किया कि, "पृथ्वीनाथ यह बात तो मानसिंह ही जाने।" तब महाराणा ने कहा कि, "हम सिरोही के चार परगने खालसा करना चाहते हैं, तुम स्वीकृति लिख दो।" इस बात को सुनकर जगमाल ने सोचा कि, शायद मेरे इन्कार कर देने पर महाराणा फौज रवाना करे और मानसिंह कही रास्ते में ठहरा हो तो मारा जाय। इसलिये निवेदन किया कि, "सिरोही का सब राज्य ही आपका है और मानसिंह आपका सेवक है, जो हुक्म देंगे वही करेगा।" उस समय रात अधिक बीत जाने से यह बात स्थगित रही।

फिर प्रातःकाल होते ही जगमाल को बुलाया गया। तब उसने निवेदन किया कि, "परगने देना मेरे अधिकार में नहीं है। आप किसी आदमी को सिरोही भेजें। वहां राव मानसिंह और सब देवड़े राजपूत विद्यमान हैं। सो विचार कर निवेदन करावेंगे। यहां मैं अकेला मंजूरी नहीं लिख सकता। अगर आप मुझ पर जबरदस्ती करेंगे तो मैं राजपूत हूँ, व्यर्थ ही मारा जाऊंगा।" तब महाराणा ने कहा कि "हम तुम्हारे साथ सेना भेजते हैं। यदि मानसिंह स्वीकार नहीं करेगा, तो वलपूर्वक परगनों पर अधिकार कर लिया जावेगा।" इस पर जगमाल ने दूसरी वार प्रार्थना की, कि "आप इतना श्रम न करें। एक वार मेरे साथ पुरोहित को भेज दें। मानसिंह आप से कुछ दूर नहीं है। यदि वह हुक्म न माने तो आपकी जो इच्छा हो सो करें।" उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई, तथा पुरोहित को लेकर

राज्य का अधिकारी बनाया और आम रियासत का कारबार सम्हालने लगा।[1] दूदा के मरने के बाद उदयसिंह ने एक वर्ष तक तो उसके बेटे मानसिंह की जागीर में लोहियाणा गांव, जो दूदा ने मरते समय निवेदन करके दिलाया था, बहाल रखा, फिर कहा कि, "मानसिंह ने एक बार मुझ पर तुक्का[2] चलाया था इसलिये में भी उसको लोहियाणा से निकाल दूंगा। सब राजपूतों ने निवेदन किया कि दूदा ने आपके साथ अच्छा व्यवहार किया है और मानसिंह भी स्वामीभक्त है इसलिये आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिये। लेकिन राव उदयसिंह ने किसी की बात नहीं मानी और फौज भेज कर मानसिंह को निकाल, लोहियाणा खाली करा लिया।

मानसिंह महाराणा उदयसिंह के पास आया तो महाराणा ने अठारह गांवों के साथ बरकाणा व बीजेवास का पट्टा देकर उसे अपने पास रख लिया। कुछ दिनों बाद राव उदयसिंह शीतला निकलने से मरा[3] और रियासत का हकदार मानसिंह हुआ। तब सिरोही के राजपूत सरदारों ने सोचा कि, इस समय मानसिंह महाराणा उदयसिंह के पास है। यदि राव उदयसिंह के मरने की खबर वहां पहुँचे तो शायद मानसिंह को मार कर महाराणा सिरोही पर अधिकार कर लेंगे। इस धोखे से दो पहर तक उदयसिंह की लाश को छिपा कर रखा और पायगा (अश्वशाला) के दारोगा जयमल को सब बातें समझा कर कुम्भलगढ़ भेजा। जयमल ने मानसिंह के पास पहुंच कर सारा हाल कह सुनाया। तब मानसिंह चीवा सामन्तसिंह से सब हाल कह कर पचास सवारों के साथ सिरोही की तरफ रवाना हुआ, तथा

---

1. वस्तुतः राव रायसिंह ने मरते समय स्पष्ट कहा कि, मेरा पुत्र उदयसिंह अल्पायु है। अतः राज्य का स्वामी मेरा छोटा भाई दूदा होगा। बाद में दूदा ने मरते समय पुनः उदयसिंह को राज्य सौंप देने के लिये कहा और अपने पुत्र के लिये लोहियाणा मांगा था। मुंहता नैणसी-री ख्यात०, भाग 1, पृ० 137। (सं०)
2. तुक्का एक छोटा तीर सात-आठ अंगुल लम्बा होता है, जो होली के दिनों में बांस की नली में रखकर फूंक से चलाया जाता है। इससे कुछ ज्यादा घाव नहीं हो सकता।
3. उदयसिंह की मृत्यु सं० 1619 वि० में हुई थी। (सं०)

नष्ट कर देंगे। इसलिये इस समय तो थोड़े दिन बाद शादी कर देना स्वीकार कर लेना चाहिये। फिर जैसा चाहें वैसा करें।" यह बात जैतसिंह को भी पसन्द आई। उसने राव मालदेव से जाकर निवेदन किया कि, "एक तो अभी लग्न नहीं है। दूसरे हमारे पास खर्च भी नहीं है कि जिससे विवाह की तैयारी की जावे।" इस पर मालदेव ने उसी समय पन्द्रह हजार रुपये खर्च के लिये देकर उससे विवाह का पक्का इकरार करा लिया।

राव मालदेव तो अपनी राणी स्वरूपदेवी को उसी जगह छोड़ जोधपुर की तरफ रवाना हुआ और जैतसिंह ने महाराणा उदयसिंह के नाम इस अर्थ की एक अर्जी भेजी कि, "मैंने अपनी छोटी बेटी का विवाह आपके साथ करना विचारा है, सो मेरी ओर से वह आपकी राणी हो चुकी।" महाराणा ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया। तब जैतसिंह अपनी बड़ी बेटी स्वरूपदेवी को खैरवा में ही छोड़ कर छोटी बेटी व घर वालों सहित कुम्भलगढ़ की तरफ पहाड़ों के पास स्थित गुढ़े[1] में चला आया। खैरवा से रवाना होते समय स्वरूपदेवी ने अपनी छोटी बहिन को देहज के रूप में जेवर देना चाहा। तब जेवर के डिब्बे के बदले राठौड़ों की कुलदेवी "नागणेची" का डिब्बा दे दिया।

इधर महाराणा उदयसिंह कुम्भलगढ़ से रवाना होकर गुढ़े पहुंचा और शादी करके राज जैतसिंह झाला को भी कुम्भलगढ़ ले आया। जब वह डिब्बा, जो जेवर समझकर, स्वरूपदेवी ने अपनी बहिन को दिया था, खोला गया तो उसमें एक देवी की मूर्ति निकली जिसको महाराणा ने बड़ी खुशी के साथ अपने पूजन[2] में रखा।

राव मालदेव से महाराणा उदयसिंह की कुछ तो पहिले से ही अनबन थी। इस घटना से और भी बढ़ गई।[3] राव को क्रोधित करने के

---

1. इस देश में "गुढ़ा" छोटे गांव को कहते हैं।
2. उस दिन से अब तक "नागणेची देवी" का पूजन उदयपुर में होता है। साल में दो बार (माघ शुक्ल 7, व भाद्रपद शुक्ल 7 को) मेवाड़ के महाराणा बड़े उत्सव के साथ दरबार भी करते हैं।
3. कहते कि, राव मालदेव की "ब्याही हुई" राणी को महाराणा "कुम्भा" ले आये थे, तथा कर्नल टॉड के अनुसार मारवाड़ के

जगमाल कुम्भलमेर से सिरोही पहुंचा। राव मानसिंह ने पुरोहित का वहुत आदर सत्कार किया और विदाई के समय महाराणा की नज्र के लिये हाथी घोड़े सवार देकर एक अर्जी लिखी कि, "आप केवल परगनों के लिये ही कहते हैं, मैं तो सिरोही के राज्य व कुल राजपूतों सहित हाजिर हूं।" पुरोहित की जवानी सव वृत्तान्त मालूम होने पर मानसिंह की इस विनय और लाचारी से महाराणा उदयसिंह वहुत प्रसन्न हुआ।[1]

इन्हीं दिनों महाराणा ने सांखला मेदा[2] को चौरासी गांवों सहित ताणे का पट्टा दिया जो, पहले मल्ला सोलंखी की जागीर में था।

महाराणा उदयसिंह व जोधपुर के राव मालदेव के मध्य वैमनस्य उत्पन्न होने का हाल इस तरह है —

हलवद के झाला अज्जा व सज्जा, जो गुजरात देश से मेवाड़ में आये, उनमें से एक तो वावर और दूसरा वहादुरशाह की लड़ाई में मारा गया। जिसका वर्णन हम पहले लिख चुके हैं। राज सज्जा का पुत्र जैतसिंह किसी कारण से जोधपुर चला गया, तव राव मालदेव ने उसको खैरवा का पट्टा जागीर में दिया था।

जव राव मालदेव अपनी राणी जैतसिंह की वेटी झाली स्वरूप देवी सहित अपनी ससुराल खैरवा आया, उस समय उसने स्वरूपदेवी की छोटी वहिन को अधिक सुन्दर देख कर जैतसिंह को कहलाया कि, "इसकी भी शादी हमारे साथ कर दो।" जैतसिंह ने जवाव दिया कि, "मैं अपनी वेटी पर दूसरी वेटी को सौत नहीं वना सकता।" इस पर राव मालदेव ने पहले तो नरमी से कहलाया परन्तु उसके न मानने पर वल दिखलाया। तव स्वरूपदेवी ने अपने पिता से कहा कि, "आपको इस समय हठ करना उचित नहीं है। क्योंकि रावजी वलशाली हैं। सो बलपूर्वक शादी कर आपको

---

1. यह प्रसन्नता ऊपरी दिल से थी। क्योंकि वह दिल से देवड़ों को नष्ट कर सिरोही का राज्य अपने अधिकार में कर लेना चाहता था।
2. रूण के सांखलों में से राजपाल की वेटी सौभाग्य देवी महाराणा मोकल को व्याही गई थी। इस सम्वन्ध के कारण सांखला मेदा महाराणा के पास रहता था।

होकर वहुतसी फौज के साथ कुम्भलगढ़ पर चढ़ आया ।[1] महाराणा ने भी अपनी फौज मुकाबले के लिये भेजी। लड़ाई में दोनों तरफ के बहुत से राजपूतों के मारे जाने के बाद राव मालदेव भाग निकला।

1610 वि० (960 हि० = 1553 ई०) में महाराणा उदयसिंह ने भामाशाह के बाप भारमल कावड़िया को अलवर से बुलाकर एक लाख का पट्टा प्रदान किया।

बून्दी के राज्य से हाड़ा सुलतान का अपदस्थ होना और उसके स्थान पर सुर्जन की नियुक्ति का हाल इस तरह है—

हाड़ा सूरजमल और महाराणा रतनसिंह आपस में लड़कर, एक दूसरे के हाथ से मारे गये और चित्तौड़ में महाराणा विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। तब उसने सूरजमल के पुत्र सुलतान को, जिसकी अवस्था 8 वर्ष की थी बून्दी की गद्दी पर बैठाया। परन्तु उसने जवान होने पर यहां तक जुल्म किया कि बून्दी के सरदार हाड़ा सहसमल और सातल की आँखें[2] निकलवा डालीं। इन बातों से सब सरदार व राजपूत नाराज होकर अपनी-अपनी जागीरों पर चले गये। केवल हाड़ा सामन्त रह गया था, उसको भी मारना चाहा। तब वह अपनी जागीर के गांव बांसी में आया और वहां से दिल्ली के बादशाह के पास चला गया। जिसके सम्बन्ध में बून्दी की तवारीख में लिखा है कि, बादशाह सूर ने उसको रणथम्भोर की किलेदारी[3] दी थी।

---

1. सम्वत् 1597 वि० में राव मालदेव ने कुम्भलगढ़ पर राठौड़ पंचायण करमसीयोत, और राठौड़ वीदा भारतोल वालावत आदि को भेजा था। वह स्वयं इस अभियान पर नहीं गया था।
—जोधपुर राज्य री ख्यात, भाग० 1, पृ० 109। (सं०)

2. मुहणोत नैणसी ने आँखें निकलवाना लिखा है और बून्दी के इतिहास "वंश प्रकाश" में मुसलमानों से लड़कर मारा जाना उल्लेखित है।

3. इस समय ऐसा हुआ होगा कि, किलेदारी जो महाराणा की तरफ से हमेशा से बूंदी के हाड़ों को ही सौंपी जाती रही थी, उसी तरह उस समय भी हाड़ा सुलतान के नाम रही हो और शेष किले का अधिकार शाह भारमल को महाराणा ने दे रखा हो। परन्तु बादशाह

लिये महाराणा ने कुम्भलगढ़ के किले की चोटी पर एक महल बनवाया, जिसका नाम "झाली का मालिया" रखा। उसके ऊपर रखने के लिये एक चिराग भी ऐसा तैयार करवाया जो कि दो मन विनौले और तेल से जलाया जाता था। इन सब बातों से राव मालदेव लज्जित और रुष्ट

राजा की "सगाई की हुई" राणी को लाना पाया जाता है। ऐसी प्रसिद्ध बात के लिखने में, जो इस देश के हर एक छोटे-बड़े आदमी की जबानी मालूम हो सकती है, हमको बड़ा सोच विचार हुआ। परन्तु न लिखने में तवारीख की खामी (ऐतिहासिकता की कमी) समझ कर लिखना ही पड़ा। सोचना चाहिये कि—

प्रथम, महाराणा कुम्भा 1490 वि० में गद्दी पर बैठा और 1525 वि० में स्वर्गवासी हुआ, तथा मालदेव का जन्म पौष कृष्ण 1, 1568 वि० के दिन, गद्दीनशीनी श्रावण शुक्ल 15, 1588 वि० के दिन और स्वर्गवास कार्तिक शुक्ल 12, 1619 वि० को हुआ।

दूसरा, सादड़ी के राज रायसिंह व देलवाड़ा के राज फतहसिंह ने जो अपनी तवारीख यहां भेजी, उसमें 1562 में महाराणा रायमल के समय राज अज्जा व सज्जा का गुजरात छोड़ कर मेवाड़ में आना लिखा है।

तीसरा, मुहणोत नैणसी ने महाराणा सांगा के समय में उनका आना लिखा है, जिन्होंने 1565 वि० से 1584 वि० राज्य किया।

ऐसी स्थिति में जब राव मालदेव का जन्म कुम्भा के देहान्त से 43 वर्ष बाद हुआ और राज सज्जा व अज्जा क्रम से बाबर व बहादुरशाह गुजराती की लड़ाईयों में मारे गये। तब महाराणा कुम्भा का मालदेव की राणी को लाना, जो प्रसिद्ध है, किसी तरह ठीक नहीं हो सकता। सम्भवतः कुम्भलगढ़ के किले पर जो महाराणा कुम्भा के समय का बना हुआ है, "झाली राणी का मालिया" (महल) होने से लोगों ने ऐसा प्रसिद्ध कर दिया होगा। हमने जोधपुर की तवारीख व महारणा उदयसिंह के पौत्र महाराणा अमरसिंह के नाम पर बने हुए "अमर काव्य" नामक संस्कृत ग्रन्थ इत्यादि के लेखों के प्रमाणों से यह तथ्य निश्चित् कर लिखा है।

और रंगराय नामक एक पातर थी। राव मालदेव ने यह खबर पाकर खजाना लूटने के उद्देश्य से पृथ्वीराज जैतावत को फौज के साथ अजमेर की तरफ रवाना किया। हाजीखां ने महाराणा को अर्जी लिखी कि, "मैं आपकी शरण में आया हूँ और राव मालदेव मुझे मारना चाहता है। अतः आप मेरी मदद करें।" इस अर्जी के पहुँचने पर महाराणा हाजीखां की मदद के लिये हाड़ा सुर्जन, राव दुर्गा और जयमल मेड़तिया आदि कई सरदारों के साथ रवाना हुआ। उसके आने की खबर सुन कर राठौड़ों ने पृथ्वीराज जैतावत को समझाया कि, अब लड़ाई हाजीखां से नहीं महाराणा से है। यदि हम सब राजपूत मारे जावेंगे, तो राव मालदेव को बड़ी हानि होगी। क्योंकि अच्छे-अच्छे राजपूत तो पूर्व की लड़ाईयों में मर चुके हैं। रहे-सहे हम लोग भी मारे जावेंगे तो उनकी सैनिक शक्ति को बहुत नुकसान पहुंचेगा। इस तरह समझा कर वे तो लौट गये और पृथ्वीराज शरमिन्दगी से अपने गांव बगड़ी के बाहर ही ठहरा रहा। महाराणा उदयसिंह हाजीखां को सान्त्वना देकर वापस चित्तौड़ लौट गया।

झाली राणी के मामले में जब राव मालदेव ने फौज लेकर कुम्भलगढ़ पर चढ़ाई की, तब बालिसा राजपूत सूजा (सांवतोत) ने, जो महाराणा की नाराजगी से मालदेव के पास चला गया था मेवाड़ पर चढ़ने से इंकार किया और राव मालदेव की नौकरी छोड़ कर राव का देश लूटता हुआ महाराणा के पास आया। महाराणा ने उसको पहले से दो गुनी जागीर और नाडोल गांव दिया। राव मालदेव ने सूजा से बहुत नाराज होकर राठौड़ नगा भारमलोत का 500 अच्छे सवार व राजपूत साथ देकर नाडोल भेजा। उन लोगों ने वहां चौपाये घेर लिये, तब सूजा ने भी सामना किया। इस लड़ाई में राठौड़ धन्ना व बीजा भारमलोत काम आये और सूजा ने अपने चौपाये छुड़ा लिये। फिर राव मालदेव ने मेड़ते पर चढ़ाई करके उनसे अच्छी लड़ाई की। पृथ्वीराज जैतावत मारा गया।[1]

महाराणा उदयसिंह ने हाजीखां पठान के पास तेजसिंह डूंगरसिंहोत और बालिसा सूजा को भेज कर कहलाया कि, "तुमको हमने मालदेव से

---

1. राठौड़ पृथ्वीराज जैतावत वैशाख वदि 2, 1610 वि० = बुधवार, अप्रैल 4, 1554 ई० के दिन मारा गया था।
   – जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग० 1, पृ० 74। (सं०)

कतिपय किताबों को देखने से ऐसा मालूम होता है कि, एक बार शेरशाह सूर ने रणथम्भोर पर चढ़ाई की तब भामाशाह के बाप भारमल ने कुछ पेशकश (नज़राना) देकर चढ़ाई स्थगित करवा दी ।

सुलतान की बदचलनी से नाराज होकर महाराणा उदयसिंह ने सुर्जन को[1] आदेश दिया कि, "हम सुलतान को गद्दी से अपदस्थ करते हैं । तुम उससे बूंदी का प्रदेश छीन लो ।" यह कह कर अपने हाथ से उसके राजतिलक किया और फौज देकर बूंदी की तरफ रवाना किया । वहां की सम्पूर्ण प्रजा राव सुलतान के जुल्म से घबरा रही थी, अब सुर्जन की तरफ हो गई । सुलतान भाग कर पाटन होता हुआ रायमल खीची के पास पहुँचा, जो महाराणा उदयसिंह का एक बड़ा सरदार था । उसने सुलतान को निर्वाह के लिए बड़ौदा का इलाका दिया था । जिसके वंश वाले सुलतानोत हाड़ा कहलाते हैं ।

सुलतान को भगा देने के बाद सुर्जन सेना लेकर रणथम्भोर के किले में पहुँचा । बूंदी के राजतिलक के साथ ही महाराणा ने वहां की किलेदारी भी इसको दे दी थी । सामन्तसिंह हाड़ा ने किले से बाहर निकल कर वहां की चाबियां इसको सौंप दी और कहा कि, "मैं तो आपका सेवक हूँ और किले में भी आपकी तरफ से ही रहता था, मुझको किसी तरह मुसलमानों का समर्थक नहीं समझे ।" तब सुर्जन ने अपनी तरफ से किला सामन्तसिंह के ही अधिकार में रखकर सम्पूर्ण विवरण सहित एक अर्जी महाराणा उदयसिंह के नाम लिख भेजी, तथा 1611 वि० (961 हि० = 1554 ई०) में बूंदी पर अपना अधिकार कर लिया ।

बादशाह शेरशाह के सरदार हाजीखां पठान के साथ, जो किसी कारण से दिल्ली से निकल कर अजमेर आया था, पांच हजार फौज, बहुतसा खज़ाना

सलीम सूर ने सामंत को मदद देकर रणथम्भोर का किलेदार बना दिया होगा । क्योंकि उस समय चित्तौड़ की ताकत तो बहादुरशाह की चढ़ाई व बनवीर के झगड़ों से बिलकुल नष्ट हो रही थी । वास्तव में इस किले के मालिक हमेशा से मेवाड़ के राजा ही रहे ।

1. इसने महाराणा उदयसिंह के अधीनस्थ कई लड़ाईयों में बड़ी बहादुरी दिखाई । जिससे इसको जागीर में फूलिया और बदनौर का पट्टा मिला ।

इस युद्ध का वर्णन गुजरात की तवारीख मिरात-इ-सिकन्दरी में बहुत संक्षिप्त रूप में इस प्रकार लिखा है कि, "हाजीखां गुजरात की तरफ जा रहा था। उसका रास्ता चालीस हजार फौज लेकर महाराणा उदयसिंह ने रोका, और 40 मन सोना और उसके हाथीयों में श्रेष्ठ लड़ाई का 'भट' नामक प्रसिद्ध हाथी व रंगराय पातर मांगी। सोना व हाथी देना तो हाजीखां ने मंजूर किया लेकिन पातर नहीं देने पर लड़ाई हुई। जिसमें महाराणा पराजित हुआ और हाजीखां गुजरात चला गया।"[1]

1714 वि० के वैशाख (रजब 1067 हि० = अप्रैल, 1657 ई०) में उदयपुर के प्रसिद्ध दधवाड़िया चारण खेमराज ने इस घटना का हाल जो मुहणोत नैणसी के पास लिख भेजा था, उसी के अनुसार हमने लिखा है। हमको विश्वास है कि सौ वर्ष के पहले का हाल जो यहां के प्रसिद्ध कवि ने लिख भेजा उसमें अधिक गलती नहीं होगी। क्योंकि जोधपुर व बीकानेर की तवारीख में भी उसी के अनुरूप वर्णन मिलता है।

गुरुवार चैत्र शुक्ल 7, 1616 वि० (6 जमादि उस्सानी, 966 हि० = 16 मार्च, 1559 ई०) को बड़े महाराजकुमार प्रतापसिंह की राणी परमार के पेट से अमरसिंह का जन्म हुआ। महाराणा ने पौत्र होने की बहुत खुशी मनाई और चित्तौड़ से सवार होकर पहले तो श्री एकलिंगजी के दर्शन किये, फिर वहां से शिकार को आहाड़ गांव की तरफ गये।

शिकार खेलते समय एक ऐसी जगह नजर आई, जहां बेड़च नदी एक बड़े पहाड़ी सिलसिले को तोड़ कर मेवाड़ की तरफ चौड़े मैदान में निकली है। उस पहाड़ी नाके को बांध कर वहां एक बहुत बड़ी पाल (बंध) बांधने का आदेश दिया, तथा सब सरदारों और अहलकारों से सलाह की कि, चित्तौड़ का किला एक अलग पहाड़ पर है। इसलिए जब भी बादशाहों ने घेरा, उस समय यह अधिकार से निकल गया और सामान की कमी से किले वालों को मरना पड़ा। यदि इन पहाड़ों के घेरे में राजधानी बनाई जाय तो रसद की भी कमी नहीं होगी और दृढ़ता के साथ पहाड़ी लड़ाई करने का अवसर मिलेगा। महाराणा के आदेश को तारीफ के लायक समझ कर सब ने अर्ज की कि, "पृथ्वीनाथ श्रीजी की यह सलाह बहुत अच्छी और सफलता प्रदान कराने वाली है।" तब महाराणा ने इसी साल में, जहां उदयपुर आबाद है,

---

1. मिरात-इ सिकन्दरी (अं० अ०), पृ० 279। (सं०)

बचाया है। अतः चालीस मन सोना और कुछ हाथी, तथा रंगराय पातर जो तुम्हारे पास है, हमको दो।" तब इन दोनों सरदारों ने अर्ज की कि "पृथ्वीनाथ हाजीखां को कठिनाई के समय आपने शरण में रखा है। इसलिए अब उसके साथ ऐसा बर्ताव नहीं करना चहिये।" परन्तु महाराणा नहीं माना। तब आदेशानुसार लाचार उन दोनों ने वहां जाकर हाजीखां से महाराणा का संदेश कहा। उसने 40 मन सोना और हाथी देना तो स्वीकार कर लिया, लेकिन पातर देने से इंकार किया और कहा कि, "यह मेरी औरत है किस तरह दे सकता हूं।"

इस पठान ने इन सरदारों को विदा करने के बाद सम्पूर्ण विवरण राव मालदेव को लिख भेजा और उससे मदद मांगी। तब राव मालदेव ने उसकी मदद के लिये राठौड़ देवीदास जेतावत, जगमाल वीरमदेवोत, रावल मेघराज, जैतमाल जेतावत, पृथ्वीराज कूंपावत, महेश धड़सिहोत, लक्ष्मण भदावत सिहोत, व जैतसिंह आदि बहादुर राजपूतों को ढ हजार फौज देकर अजमेर की तरफ भेजा। इधर से महाराणा उदयसिंह भी अपनी सेना लेकर, जिसमें बीकानेर का राव कल्याणमल व मेड़तिया जयमल वीरमदेवोत आदि थे, अजमेर की तरफ रवाना हुआ। फाल्गुन कृष्ण 9, 1613 वि० (22 रबिउल अव्वल 964 हि० = 24 जनवरी 1557 ई०) को हरमाड़ा गांव में दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ।[1]

हाजीखां ने धोखा करके एक हजार सवारों सहित एक पहाड़ी की आड़ ली और बाकी पठान व राठौड़ों को सामने खड़ा किया। महाराणा उदयसिंह हरावल में था। दोनों तरफ घोड़ों की बागें उठी। हाजीखां एक तरफ से हरावल पर टूट पड़ा। इस समय राव दुर्गा का घोड़ा मारा गया और वह हाथी पर सवार हुआ। हाजीखां ने हाथी पर कटारी चलाई। राठौड़ देवीदास जेतावत ने वालिसा सूजा से कहा कि, राठौड़ बीजा और धन्ना का बैर लेना चाहता हूँ और उसको मार लिया। तेजसिंह डूंगरसिंहोत भी देवीदास के हाथ से मारा गया। कुल 100 आदमी मेवाड़ के, 150 हाजीखां के और 40 आदमी राव मालदेव के मारे गये। मेवाड़ी सेना की पराजय हुई। महाराणा के ललाट पर तीर लगा। मारवाड़ी राजपूत जीत के नक्कारे बजाते हुए हाजीखां को जोधपुर में राव मालदेव के पास ले गये।

1. जोधपुर राज्य री ख्यात, भाग 1, पृ० 75, 112। (सं०)

उदयपुर से तीन कोस पूर्व की तरफ उदयसागर तालाव की पाल वनवानी शुरू की, जो 1619 वि० (970 हि०= 1562 ई०) में तैयार हुई। इस तालाव की प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ल 3, 1622 वि० (2 रमजान, 972 हि०= 3 अप्रैल, 1565 ई०) को महाराणा ने अपने हाथ से की।

बादशाह अकबर का चित्तौड़ लेना—रविवार, आश्विन कृष्ण 12, 1624 वि० (25 सफर, 975 हि०=31 अगस्त, 1567 ई०) के दिन बादशाह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर ने शिकार के लिये वाड़ी के परगने की तरफ सवारी की[1] और दिल में फौजकशी करना विचार कर मालवा की तरफ जाने का इरादा किया। वाड़ी से धौलपुर व ग्वालियर की तरफ निकल गया। एक दिन धौलपुर के मुकाम पर महाराणा उदयसिंह का छोटा बेटा शक्तिसिंह (जो अपने बाप की नाराजगी से बादशाह के पास चला गया था) बादशाह के दरबार में खड़ा था। उस समय बादशाह ने कहा कि, "हिन्दुस्थान के बड़े-बड़े राजा हमारे दरबार में आकर उपस्थित हुए। परन्तु राणा उदयसिंह नहीं आया। इसलिये हम उस पर चढ़ाई करना चाहते हैं। अत: तुमको भी अच्छी सेवा करनी चाहिये।" इस तरह की बात थोड़ी देर तक बादशाह दिल्लगी में करता रहा और शक्तिसिंह प्रकट के रूप में स्वीकार करता गया। लेकिन मन में शाही इरादे को सच्चा जानकर सोचा कि यदि मैं बादशाह के साथ जाऊं तो मेरे ऊपर लोगों के मन में अपने बाप के प्रदेश पर बादशाह को चढ़ा लाने का सन्देह होने से बड़ी बदनामी होगी। यह विचार कर वह रात के समय अपने साथी राजपूतों को लेकर चित्तौड़ की तरफ चल दिया।[2]

बादशाह ने यह बात सुन कर चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का पक्का इरादा कर लिया। क्योंकि महाराणा उदयसिंह, जिसको अपने राजपूत व पहाड़ों का बड़ा ही जोर और सहारा था, जब तक अधीन नहीं किया जाता तब तक बादशाह की हुकूमत पूरी-पूरी निष्कंटक नहीं हो सकतीथी।

यह विचार कर बादशाह नें मेवाड़ की तरफ कूंच किया तथा शिवपुर किले के पास, जो रणथम्भोर जिले का एक किला था, आकर डेरा दिया।

---

1. बेवरिज० अकबरनामा (अं० अ०) भाग 2, पृ० 442। (सं०)
2. बेवरिज० अकबरनामा (अं० अ०) भाग 2, पृ० 442-43। (सं०)

उससे उत्तर की तरफ एक छोटी पहाड़ी पर अपने महल और उसके उत्तर की तरफ शहर बसाने का आदेश दिया। वहां महलों के कुछ मकान बन भी गये थे, जिनके खण्डहर अब तक मौजूद हैं, जो "मोती महल" के नाम से प्रसिद्ध हैं। लेकिन वहां आबादी कुछ भी नहीं है। उस जगह अब महाराणा की शिकारगाह है।

महाराणा उदयसिंह शिकार खेलते हुए जब पीछोला[1] तालाब पर आया, वहां एक छोटी पहाड़ी पर झाड़ी के अन्दर एक साधू बैठा था। महाराणा घोड़े से उतर कर उसके पास गया। योगी ने कहा कि, "बाबा तुम यहां नगर बसा कर अपनी राजधानी बनाओ तो बहुत अच्छा है। तुम्हारे वंश से यह शहर नहीं जावेगा।"

महाराणा ने उस तपस्वी का[2] कहना स्वीकार किया। जिस जगह वह बैठा था, वहीं अपने हाथ से नींव का पत्थर रखा और महल बनाने के लिये आदेश दे डेरे पर आया। दूसरे दिन जाकर देखा तो वह योगी नहीं मिला। तब धूनी की जगह एक मकान बनाया, जिसके चारों तरफ तीन-तीन दालान हैं। इसलिए इसका नाम "नौचोक्या" रखा गया, तथा आदेश दिया कि मेवाड़ के राजा का राज्याभिषेक धर्मशास्त्र के अनुसार इस जगह होना चाहिए। अब उस मकान में वर्तमान महाराजाधिराजों का पानेरा[3] है। उसके सामने एक दूसरा मकान बना, जिसे अब लोग "नेका की चौपड़" व "पांडे की ओवरी" कहते हैं। इन दोनों के बीच में पत्थर का बना हुआ चौक है जो "राय आंगन" (राज्यागण)[4] कहलाता है। पहले तो महाराणा उदयसिंह ने जनाना रावला (रणवास के महल) बनवाया जहां अब कोठार है। फिर इसी राय आंगन और ऊपर लिखे हुए दोनों मकानों को जनाना रावला बना कर "नेका की चौपड़" के नीचे की मंजिल को मर्दाना मकान बनाया।

महाराणा उदयसिंह ने 1616 वि० (966 हि०= 1559 ई०) में

---

1. यह तालाब विक्रम की 15 वीं सदी में महाराणा लाखा के समय किसी बनजारे ने बनवाया था।
2. इस फकीर के चमत्कारपूर्ण बहुत से कलाम प्रसिद्ध है।
3. जहां महाराणा के पीने का जल रहता है।
4. यह नाम महाराणा संग्रामसिंह व भीमसिंह के समय से प्रसिद्ध है।

देती, अब यही उचित है कि हम लोग किले में रह कर बादशाह से लड़ें और आप अपने महाराजकुमार व रणवास सहित पहाड़ों में चले जांय।" तब महाराणा ने फरमाया कि, "हम किले में ही रहें और रणवास व कुंवर पहाड़ों में चले जावें।" इस पर महाराजकुमार प्रतापसिंह ने निवेदन कि, "आप तो पहाड़ों में पधार कर फिर भी लड़ाइयां कर सकते हैं, और हम जवान हैं इसीलिये पहली लड़ाइयों में हमको ही नियुक्त किया जाय। जैसा कि पूर्व के महाराणाओं ने किया था।" इस पर सब सरदारों ने निवेदन किया कि, "आप रणवास व अपने कुमारों सहित पहाड़ों में जावें। क्योंकि पीछे भी तो आराम से राज्य करने का समय नही हैं। मर-मार कर हम लोगों का बदला व अपना राज्य पुनः लेना होगा।' निदान यही सलाह ठहरी। तब महाराणा 8000 अच्छे बहादुर राजपूतों को चित्तौड़ के किले में नियुक्त कर आप कितने ही सरदार व उनके कुंवर तथा अपने महाराजकुमार व रणवास सहित मेवाड़ के दक्षिणी पहाड़ों में चला गया।

इधर बादशाह अकबर ने भी मांडलगढ़ से कूच कर गुरुवार, मार्गशीर्ष कृष्ण 6, 1624 वि० (19 रबीउल् आखिर, 975 हि०=23 अक्तूबर, 1567 ई०) को[1] चित्तौड़ से 3 कोस उत्तर, में नगरी गांव में डेरा किया।

जब अकबर ने किले की तरफ दृष्टि दी तो वर्षा और बिजली की चकाचौंध के मारे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। थोड़ी देर बाद बादल बिखर जाने पर किला दीखने लगा। तब बादशाह ने पैमाइश वालों से उसका अनुमान करवाया, तो पहाड़ की लम्बाई दो कोस और घेरा पांच कोस मालूम हुआ। जब मोर्चे बनाने लगे तो किले की मजबूती के कारण बहुतसी कठिनाइयां उठानी पड़ी। परन्तु अपने पक्के इरादे से एक महिने में मोर्चाबन्दी पूरी की। इधर राजपूतों ने भी लड़ाई पर कमर बांध जगह-जगह मोर्चे बनाये।

खुद बादशाह अकबर ने अपना मोर्चा उत्तर की तरफ किले के लाखोटा दरवाजे के सामने रखा, तथा किले के भीतर मेड़तिया राठौड़ जयमल वीरमदेवोत ने लड़ाई का मोर्चा लिया। दूसरा मोर्चा राजा टोडरमल और कासिमखां का पूर्व की तरफ किले के सूरजपोल दरवाजे के सामने दिया। किले के भीतर

---

1. बेवरिज, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 464। (सं०)

वहां के लोग शाही सेना का सामना करने में अपने को कमजोर समझ कर महाराणा के किलेदार बून्दी के हाड़ा सुर्जन के पास रणथम्भोर चले गये। बादशाह ने इसे अच्छा शकुन समझ कर नजर बहादुर को थोड़ी फौज के साथ उस किले में छोड़ा और छः मंजिल के बाद स्वयं कोटा पहुँचा। वहां के किले और मुल्क हाड़ौती की हुकूमत शाह मुहम्मद कन्धारी के सुपुर्द कर[1] गागरोन के किले को घेरा। वहां से शाह बदागखां, मुरादखां और हाजी मुहम्मदखां सीस्तानी आदि सहित शहाबुद्दीन अहमद खां को मालवा की तरफ भेजा और खुद चित्तौड़ को रवाना हुआ। कूच के पहिले आसिफखां और वजीरखां को, जो इस मुल्क के जानकार थे इधर भेजा, जिन्होंने आगे बढ़कर मांडलगढ़ के किले को घेरा। वहां का रईस (अधिकारी) राव बल्लू सोलंखी पहले से ही चित्तौड़ चला आया था। थोड़े से लोग जो किले में थे, वे भी शाही सेना आने से निकल भागे। वहां पर कब्जा कर बादशाह मांडलगढ़ से आगे बढ़ा।

इधर कुंवर शक्तिसिंह ने धौलपुर से चित्तौड़ आकर महाराणा उदयसिंह से अर्ज की कि, "बादशाह का चित्तौड़ पर आने का पक्का इरादा है, जो कुछ बन्दोबस्त हो सके वह कीजिये।" महाराणा ने सब सरदार और महाराजकुमारों को इकट्ठा कर सलाह की। मेड़ता के राव वीरमदेव का बेटा जयमल राठौड़, रावत सांईदास चूंडावत[2] रावत साहिबखान चौहान,[3] राजराणा सुलतान, ईसरदास चौहान,[4] चूंडावत पत्ता, राव बल्लू सोलंखी और डोडिया सांडा आदि सरदार व महाराजकुमार प्रतापसिंह, शक्तिसिंह इत्यादि सब उपस्थित थे। जब महाराणा ने पूछा कि, अब किस तरह लड़ना चाहिये ? तब सब सरदारों ने निवेदन किया कि, "पृथ्वीनाथ ! राज्य का बल खजाना व राजपूत हैं और पहले गुजराती बादशाहों की लडाइयों में उसके घट जाने से रियासत कमजोर हो गई है। इसलिये बादशाह अकबर से मुकाबला करने में बरबादी के अतिरिक्त लाभ की कोई स्थिति नहीं दिखाई

---

1. बेवरिज, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 444। (सं०)
2. सलूंबर वालों का पूर्वज। (सं०)
3. कोठारिया वालों का पूर्वज। (सं०)
4. बेदले वालों के पूर्वज राव संग्रामसिंह का छोटा भाई। (सं०)

क पेचदार छत्ता[1] बनाया जाता था। जहां हजारों मजदूर मिट्टी डालते थे, और प्रतिदिन सैकड़ों आदमी किले वालों की बन्दूक व तीरों के निशाना बन कर मारे जाते थे। लालच ऐसी बुरी बला है कि, एक टोकरे मिट्टी के साथ उन लोगों के बदन की मिट्टी भी उसी पहाड़ी और जमीन में मिल जाती थी। बादशाह ने मिट्टी डालने का भाव चांदी के मोल कर दिया था, क्योंकि मिट्टी डालने में बहुतसी जानें समाप्त होने से मजदूरी ज्यादा देनी पड़ती थी।

एक दिन किले के सब सरदारों ने सलाह की कि, यदि बादशाह के पास समझौते का संदेश भेजा जावे और वह स्वीकार करके लड़ाई से हाथ उठा ले तो बहुत अच्छा है। क्योंकि महाराणा तो यहां से पहाड़ों की तरफ चले ही गये हैं और हम लोग नर्मी के साथ पेश आकर इस आफत को टाल देवें तो अच्छा हो। यदि बादशाह हमारी इस नरमी पर भी कठोरतापूर्ण रुख अपनावें तो लड़ाई करने में कमी नहीं करेंगे। इस तरह सब सरदारों ने सलाह कर रावत साहिबखान चौहान व डोडिया ठाकुर सांडा को किले से समझौते के लिये बादशाह के पास भेजा। यह दोनों सरदार बादशाह के डेरों पर पहुँचे। बादशाह ने उनको उसी समय अपने सामने बुला कर सारा हाल पूछा। उन दोनों ने निवेदन किया कि, खुदावंद हम लोगों ने आपका कोई कुसूर नहीं किया है। हमारे मालिक तो पहाड़ों में चले गये हैं और हम लोग आपको पेशकश (नजराना) देना स्वीकार करते हैं, जिसको लेकर किले का घेरा उठा लेवें। क्योंकि पहले से बादशाहों का यही दस्तूर रहा है कि, पेशकश पाने पर मेहरबानी करते हैं। यह प्रार्थना करने पर बादशाह के अमीर व सलाहकारों ने भी निवेदन किया कि, अब समझौता कर लेना उचित है। क्योंकि यह आसमान-सा ऊँचा किला फतह होना मुश्किल है। बादशाह ने उन लोगों की सलाह पर बिलकुल विचार नहीं किया और यही जवाब दिया कि, राणा के आये बिना इस लड़ाई से हाथ उठाने में मुझे शर्म आती है, तथा उन दोनों सरदारों से कहा कि राणा के उपस्थित हुए बिना यह प्रार्थना

---

1. दो दीवारें पाट कर उनमें तीरकश और खिड़कियां रखी गई थीं, और अंदर से किले तक पहुंच कर धावा किया जाता था। यह छत्ता सांप के समान पेचदार होता था, इन पेच व खिड़कियों से हथियार चला कर किले तक पहुंचते थे।

उस दरवाजे का मोर्चा चूंडावतों के मुख्य सरदार रावत सांईदास ने लिया। तीसरा मोर्चा किले के दक्षिण की तरफ चित्तौड़ी बुर्ज के सामने आसिफखां और वजीरखां आदि के देख-रेख में था। किले के भीतर भी अच्छे-अच्छे प्रसिद्ध राजपूत वल्लू सोलंखी आदि नियुक्त हुए। किले के पश्चिम की ओर बादशाही फौज के बड़े-बड़े बहादुर आदमी मोर्चों पर नियुक्त किये गये थे। इसी तरह उनके सामने रामापोल, जोड़लापोल, गणेशपोल, हनुमानपोल और भैरवपोल पर डोडिया ठाकुर सांडा व चौहान ईसरदास व रावत साहिबखान व राजराणा सुलतान आदि थे। खुद बादशाह व बड़े-बड़े सरदार अपनी-अपनी जगह पर लड़ाई करने को तैयार हुए।

अकबर ने मोर्चा बंदी करते समय आसिफखां को बहुत से अमीरों के साथ फौज देकर रामपुरा की ओर रवाना किया था। वहां के अच्छे-अच्छे राजपूत तो किले चित्तौड़ में आ गये थे और राव दुर्गभाण महाराणा उदयसिंह के पास पहाड़ों में चला गया। जो लोग रामपुरा की देख-रेख के लिये वहां रखे गये थे, उनसे लड़ाई हुई। बहुत से राजपूत मारे गये, आसिफखां ने रामपुरा को फतह कर बन्दोबस्त के लिये बहुतसी फौज वहां नियुक्त की और आप चित्तौड़ को लौट आया। इसी तरह हुसैन कुलीखां को बहुतसी सेना के साथ उदयपुर और कुम्भलमेर के पहाड़ों की तरफ रवाना किया था। वह भी पहाड़ों के किनारे-किनारे लूटता हुआ चित्तौड़ पहुंचा। इन्हीं दिनों में एतमादखां गुजराती जो चंगेजखां से हार कर डूंगरपुर में जा छिपा था, बादशाह की सेवा में चित्तौड़ में आकर उपस्थित हुआ और दर्याई हाथी जिसके कान बहुत बड़े थे, नजर किया।[1]

बादशाह की सेना के सरदार आलमखां व आदिलखां आदि किले के चारो तरफ पहाड़ के नीचे दौड़ा-दौड़ करते थे। लेकिन इनकी मेहनत अलाभ-कारी ही होती थी। क्योंकि सेना में से प्रतिदिन बहुत से मारे जाते और बहुत से घायल होते थे। किले वाले भी बड़ी वीरता से लड़ते थे।

जब किले पर कुछ बस न चला तब बादशाह ने दो सुरंगे चित्तौड़ी बुर्ज की तरफ लगाना निश्चित् किया। इसी बुर्ज के नीचे एक छोटीसी पहाड़ी थी, जिस पर सुरंग और मोर्चे वालों की आड़ के लिये मिट्टी डलवा कर उपर

---

1. बेवरिज. अकबरनामा (अं०अ०), भाग 2, पृ० 465–66 (सं०)

रास्ता हो जाना समझ कर शाही सेवकों ने एक बारगी हमला कर दिया। ये लोग दीवार के पास पहुंचे ही थे कि, इतने में दूसरी सुरंग भी उड़ी। जिससे बादशाह की सेना के बहुत से[1] आदमी मारे गये। जिनमें से सैयद अहमद का बेटा जमालुद्दीन जो बरार के सैयदों में से था, मीरखां का बेटा मीरक बहादुर, मुहम्मद सालिह हयात, सुलतान शाह अली एशक आगा, यजदां कुली, मिर्जा बलोच, जानबेग और यार बेग आदि 20 प्रसिद्ध आदमी बादशाह के पास रहने वाले थे।

इसके बाद एक सुरंग आसिफखां के मोर्चे से बीकाखोह और मोर-मगरी की तरफ लगाई गई। परंतु उससे किले के 30 आदमी मारे जाने के अतिरिक्त कुछ अधिक कार्य सिद्ध नहीं हुआ। पहली सुरंग से चित्तौड़ी बुर्ज उड़ गया था, किले वालों ने एक ही रात में चुन कर उसको पहले के अनुरूप ही ठीक बना लिया, और सब सरदार राजपूत फिर मोर्चों पर सतर्क लड़ने को खड़े हो गये। इस समय अपनी सेना के घबरा जाने से बादशाह को किले पर विजय प्राप्त होने की आशा नहीं रही, तो भी उसने अपने आदमियों को बहुत धैर्य प्रदान किया। परन्तु सेना के लोग व स्वयं बादशाह अच्छी तरह जान चुके थे कि, किला बहुत मजबूत है और इसमें लड़ने वाले बहादुर हैं। किले में लड़ाई व खाने-पीने के सामान की कमी नहीं है।[2]

सुरंगों से किले वालों को इतना नुकसान नहीं पहुंचा जितना कि, बादशाह की सेना का हुआ। इसी तरह फिर लड़ाई होती रही। लेकिन बादशाह ने यही सोचा कि, बारूद के प्रयोग से ही किला जीता जा सकेगा।

---

1. अकबरनामा में ये दो सौ और तबकात-इ-अकबरी, व तारीख-इ-फरिश्ता में 500 लिखे हैं।

2. पहली दो बातों के सम्बन्ध में उन लोगों का अनुमान ठीक था। लेकिन तीसरी बात में निस्संदेह गलती होगी। क्योंकि अकबर ने बहुत दिनों से किला घेर रखा था। जब रसद आदि सामान नहीं रहा तब किले के राजपूतों ने आप ही किवाड़ खोल दिये और बड़ी बहादुरी के साथ लड़ कर मारे गये। यदि सामान की कमी न होती तो वे लोग दरवाजे कभी नहीं खोलते और कुछ दिनों तक और भी लड़ते।

स्वीकार नहीं हो सकती।[1] तब डोडिया सांडा ने निवेदन किया कि, हमारे स्वामी तो पहाड़ी प्रदेश के राजा हैं और पहाड़ी लोगों में असभ्यता अधिक होती है। वे इस समय उपस्थित नहीं हैं। इसलिये उनके उपस्थित होने का वचन नहीं दे सकते। हम लोगों को, जो पेशकश देकर लाचारी करते हैं, जबरदस्ती मारना बादशाह के नियमों के विरुद्ध है। इस पर जयपुर के राजा भगवन्तदास ने बादशाह के कान में झुक कर निवेदन किया कि, "देखिये यह कैसा असभ्य आदमी है कि, बादशाह के दरबार में कठोर बातें कर रहा है।" अकबरशाह तो बड़ा कदरदान (गुणग्राही) था। उसने कहा कि, "यह व्यक्ति जो अपने स्वामी का शुभचिन्तक होकर सवालों का जवाब बेधड़क दे रहा है पुरस्कार देने योग्य है।" इससे राजा भगवन्तदास को, जिसने आपसी अनबन के कारण चुगली खाई थी, शर्मिन्दा होना पड़ा। बादशाह ने डोडिया सांडा से कहा कि, राणा के आये बिना लड़ाई तो स्थगित नहीं हो सकती। लेकिन इसके अतिरिक्त जो तुम मांगो सो दिया जावे। सांडा ने अर्ज किया कि; "अब हमको और क्या जरूरत है, जो मांगें। फिर भी आप हुक्म देते हैं तो, केवल इतना ही चाहता हूं कि, यदि मैं इस लड़ाई में मारा जाऊं तो मेरी लाश हिन्दुओं की रीति से जला दी जावे।" बादशाह ने इस बात को स्वीकार किया।

दोनों सरदारों ने किले में आकर सब हाल प्रकट किया। तब कुल राजपूतों ने जीवन की आशा छोड़कर मरने पर कमर बान्धी। दोनों तरफ से भयंकर लड़ाई होने लगी। बाहर बादशाह के हुक्म के अनुसार दोनों सुरगें खुद कर तैयार हो गई। चित्तौड़ी बुर्ज की तरफ वाली सुरंग में से दो शाखें निकली गई। जिनमें से एक के भीतर 120 मन[2] और दूसरी में 80 मन बारूद भरी गई थी। बात का पता चल जाने से किले के लोग भी होशियार हो गये थे। शाही सेना के लोग आदेश के अनुसार सुरंग उड़ाने की प्रतिक्षा में थे कि, जब दीवार उड़े तो भीतर घुसें। माघ कृष्ण 1, (15 जमादि-उस्सानी = 17 दिसम्बर) बुधवार को एक सुरंग ऐसी डाट कर उड़ाई गई[3] कि, जिससे किले का एक बुर्ज 50 आदमियों सहित उड़ गया। उसके पत्थर बहुत दूर-दूर तक गिरे और 50 कोस तक आवाज पहुंची। सुरंग के उड़ते ही

---

1. बेवरिज, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 467 (सं०)
2. यह मन दो या चार सेर तक का माना जाता था।
3. बेवरिज, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 468. (सं०)

आदि ने निवेदन किया कि, यह सरदार प्रबन्ध करने के लिये आज रात में कई बार यहां आ चुका है। यदि अब नहीं आवे तो अवश्य मारा गया समझना चाहिये। थोड़ी देर बाद जब्बार कुली खबर लाया कि, किले की दीवारों में से कोई आदमी दिखाई नहीं देता।

किले में राजपूतों में प्रसिद्ध सरदार मेड़ता के राठौड़ वीरमदेव मेड़तिया का पुत्र जयमल के[1] घुटने में बादशाह की गोली लगी जिससे उसका पैर टूट गया। तब जयमल ने सब सरदारों को एकत्रित कर सलाह की कि, "अब किले में खाने पीने का सामान नहीं रहा। इसलिये उचित है कि, औरत-बच्चों को आग में जला कर किले के दरवाजे खोल दिये जावें। तथा बहादुर राजपूत हाथों में तलवार लेकर अपनी वीरता का प्रदर्शन कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करें।" यह सलाह सब सरदारों ने पसन्द कर "जोहर" (आग में बाल-बच्चों को जलाने) का आदेश दिया। तब राजपूतों ने लकड़ियों का ढेर लगा अपनी-अपनी औरतों व बच्चों को उस में बैठाया और आग लगा दी। फलस्वरूप हजारों जल कर राख हो गये। रावत पत्ता, अपनी मां सज्जाबाई सोनगरी और ठकुरानियों में से सामन्तसी की बेटी जीवाबाई सोलंखिणी, सहसमल की बेटी मदालसा बाई कछवाही, ईसरदास की बेटी भगवती बाई चौहान, पद्मावतीबाई झाली, रत्नाबाई राठौड़, बालेसाबाई चौहान, परमार डूंगरसी की बेटी बागड़ेची आसाबाई आदि और दो पुत्रों व पांच पुत्रियों को आग में जला कर तैयार हो आया। सब सरदारों ने जिन-जिन की ठकुरानियां तथा बाल-बच्चे वहां उपस्थित थे, ऐसा ही किया। जब इस जौहर[2] की आग की लपटें बाहर दिखाई दीं। उस समय शाही फौज के बहुत से आदमी तरह-तरह के विचार करने लगे। तब आंबेर के राजा भगवानदास[3] ने बादशाह से अर्ज कि, यह आग "जौहर" की है। जब राजपूत लोग मरने का पक्का इरादा कर लेते हैं तो, अपनी (रीति के अनुसार) औरतों व बच्चों को जला कर स्वयं

---

1. यह 1619 वि० (969 हि०=1562 ई०) में अकबर के सरदार नागौर के सूबेदार मिर्जा शरफुद्दीन हुसैन को मेड़ते पर चढ़ा लाया। उसके साथ किले पर नियुक्त देवीदास व जगमाल के विरुद्ध बड़ी वीरता से लड़ा था।
2. यह चित्तौड़ का तीसरा और अन्तिम जौहर, सोमवार, फरवरी 23, 1568 ई० की रात में सम्पन्न हुआ। (सं०)
3. सही नाम 'भगवन्तदास'। (सं०)

मोर्चाबन्दी के लिये केवल पत्थरों की दीवारें खड़ी कर उसकी आड़ से शाही सेना के सैनिक किले की तरफ बन्दूकों से गोलियों की बौछार करते थे। खुद बादशाह भी उनके साथ गोलियां चलाता था।

एक दिन बादशाह चकिया नामक हाथी पर बैठ कर किले के चारों तरफ मोर्चे देखता हुआ लाखोटा दरवाजे की तरफ पहुँचा। सब लोग दीवार की आड़ से किले की तरफ वार कर रहे थे। वह भी उनके पास जा खड़ा हुआ और बन्दूक चलाने लगा। जलालखां थोड़ी दूर पर दीवार के सहारे से लड़ाई का तमाशा देख रहा था। किले के भीतर से एक गोली उसके कान के पास होकर निकल गई। तब सब लोगों ने बादशाह से निवेदन किया कि, इस बन्दूकची ने हमारे बहुतसे आदमी मारे हैं। बादशाह ने बन्दूक लेकर तीरकश की तरफ गोली चलाई, वह बन्दूकची मारा गया। वह इस्माईल नाम का व्यक्ति दुर्ग के बन्दूकचियों का सरदार था।[1]

एक दिन बादशाह मोरमगरी पर जो किले से पश्चिम की तरफ है, तोपें चढ़ा रहा था। एक तोप उसके सामने गिर पड़ी, जिससे 20 आदमी मारे गये। बारूद की लड़ाई के काम पर टोडरमल व कासिम खां दर्याई दारोगा (मीर बहर) को नियुक्त किया था। बादशाह स्वयं भी इस काम को देख-रेख रखता था। दो रात, एक दिन दोनों तरफ के बहादुर लड़ाई में ऐसे लगे रहे कि, खाना-पीना तक भूल गये। शाही फौज के गोलन्दाजों ने तोपों से किले की दीवार को बहुत जगह से तोड दिया था। आधी रात होने पर बादशाह की सेना ने हल्ला कर गिरी हुई दीवारों की तरफ से किले में घुसने का प्रयत्न करती और किले के बहादुर राजपूत उनको रोकते थे। इसमें दोनों तरफ के हजारों आदमी मारे जाते थे। किले वाले तेल, रुई, कपड़ा आदि जला कर शाही सेना के आक्रमण को रोकते थे। इस झगड़े में एक सरदार हजारमेखी सिलह पहने हुए दीवार के तीरकश में से बादशाह को दिखाई दिया। तब बादशाह ने उस सरदार पर एक बन्दूक (जिसका नाम संग्राम था) चलाई और राजा भगवानदास[2] व सुजाअतखां से कहा कि, इस बन्दूक की गोली उस सरदार को अवश्य ही लगी है, क्योंकि जब मेरे हाथ की गोली किसी शिकार पर लगती है, तो मुझे पता चल जाता है। तब खानजहां

1. बेवरिज, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 470 (सं०)
2. सही नाम 'भगवन्तदास'। (स०)

राजपूतों को मार-मार कर गिराने लगा। उस पर एक राजपूत ने तलवार का वार किया। हाथी ने उसको सूंड में लपेट कर जमीन पर पटका। इतने में किसी दूसरे राजपूत ने सामने से आकर दूसरा वार किया। हाथी उस तरफ चला, तब पहले वाला राजपूत सूंड में से छूट कर पीछे से हाथी के तलवार मारी। स्वयं बादशाह अकबर का कथन है कि, "किले के बहादुरों में से किसी व्यक्ति ने (जिसको मैं नहीं पहिचानता) ठीक लड़ाई के समय शाही सेना के एक आदमी को लड़ने के लिये आवाज दी। वह खुशी से उसकी तरफ चला। तब किसी दूसरे शाही सेवक ने उसकी मदद करना चाहा। तो उसने उसे रोक दिया और कहा कि, "यह वीरता और पौरुष की बात नहीं है कि, एक आदमी अकेला मुझको लड़ाई के लिये बुलावे और मैं तुमको मदद के लिये साथ लूं।" दोनों का मुकाबला हुआ, जिसमें किले का राजपूत मारा गया। उस आदमी को मैंने बहुत तलाश किया लेकिन वह नहीं मिला। फिर भी बादशाह ने कहा कि, जब मैं गोविन्दश्याम मन्दिर पर पहुँचा उस समय एक महावत एक आदमी को हाथी की सूंड में लिपटा हुआ मेरे समाने लाया। उस समय उसमें कुछ प्राण शेष थे। लेकिन थोड़ी देर में मर गया। महावत ने निवेदन किया कि, यह व्यक्ति कोई किले के सरदारों में से है। क्योंकि इसके साथ बहुत से आदमियों ने प्राण दिये हैं। पूछ-ताछ करने से पता चला कि, वह पत्ता जगावत था।

जब शाही फौज के पहले 50 और बाद में 300 हाथी तक किले में पहुँच चुके और वहां शाही झंडा खड़ा हुआ, उस समय हजारों सेवक और प्रजागण मंदिरों व अपने घरों में लड़ाई करने के लिये सतर्क खड़े थे। वे नंगी तलवारें व भाले लेकर शाही सिपाहियों पर हमला करते और बड़ी बहादुरी के साथ मारे जाते थे। ऐसी लड़ाई न किसी ने देखी और न सुनी होगी। इसका ठीक तरह से वर्णन भी नहीं हो सकता। लड़ाई के समय किले में लड़ाकू राजपूतों के अतिरिक्त 40,000 प्रजा के लोग थे, जिनमें से केवल 1000 आदमी बचे। शेष सब लड़ कर मारे गये। बादशाह ने यहां की प्रजा को लड़ाकू देखकर सबको मारने का आदेश दे दिया।

सूरजपोल दरवाजे पर रावत सांईदास आदि वीर नियुक्त थे, वे भी बड़ी वीरता के साथ लड़ कर मारे गये। इनकी मदद के लिये दूसरे मोर्चे से राजराणा जेता सज्जावत और राजराणा सुलतान आसावत पहुँचे, वे

शत्रुओं पर टूट पड़ते हैं। इसलिये शाही फौज को सावधान रहना चाहिये। बादशाह ने आदेश दिया कि, सूर्य निकलते ही हल्ला कर शाही सेना के लोग किले में घुस जावे।

प्रभात होते ही राजपूतों ने किले के दरवाजे खोल दिये। जब जयमल[1] ने कहा कि, मेरा पैर टूट गया है और घोड़े पर नहीं चढ़ा जाता। तब उसके भाई कला ने कहा कि, मेरे कंधे पर बैठ कर दिल की भड़ास निकालिये। तब जयमल कला के कंधे पर बैठा और वे दोनों तलवार चलाते हुए हनुमान पोल व भैरव पोल के बीच में काम आये। डोडिया सांडा घोड़े पर सवार शाही फौज में तलवार चलाता हुआ गम्भीरी नदी के पश्चिम में मारा गया। इस तरह राजपूत लोगों के भयकर आक्रमण को देख कर बादशाह ने प्रशिक्षित हाथियों की सूंडों में दुधारे व खांड़े बांध आगे बढ़ाया। मदकर हाथी के पीछे जकिया और उसके पीछे सबदलिया और कादरा आदि हाथी चले। बहादुर राजपूत भी तलवारों के हाथ उन पर साफ करने लगे। ईसरदास चौहान ने मदकर हाथी का दांत पकड़ कर महावत से उसका नाम पूछा और उसकी सूंड पर खंजर का वार कर कहा कि, "बादशाह से मेरा मुजरा बोलो।" एक राजपूत ने एक हाथी की सूंड तलवार से काट कर गिरा दी। उस हाथी ने तीस आदमी तो पहले और पन्द्रह सूंड कटने के बाद मारे। मदकर हाथी ने भी सूंड पर तलवार लगने के बाद कई आदमियों को मार डाला। गजराज हाथी घबरा कर किले की तरफ भागा। उस पर आजमखां सवार था। वह घायल होकर थोड़े दिन बाद मर गया। बादशाह अकबर इन्हीं हाथियों के झुण्ड में रह कर अपने लोगों को लड़ाई के लिये आगे बढ़ाता जाता था। जब सेना किले के भीतर घुसने लगी, उस समय चूंडावत पत्ता जगावत रामपोल के भीतर बड़ी बहादुरी के साथ अपने राजपूतों सहित सैकड़ों आदमियों को मार कर मारा गया।

बादशाह अकबर के कहने के अनुसार अबुलफजल लिखता है कि, बादशाह किले की दीवार पर से देख रहे थे कि, सबदलिया हाथी किले में

---

1. अबुलफजल ने बादशाह की "संग्राम" बंदूक से उसी जगह जयमल का मारा जाना लिखा है। लेकिन वह बाहर के विपक्षी लोगों में से था, जैसा सुना वैसा लिख दिया।

सब सरदारों की सलाह से इस लड़ाई से पहले ही महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ छोड़, पहाड़ों में होता हुआ गुजरात की ओर रेवाकांठा पर गोहिल राजपूतों की राजधानी राजपीपला[1] में पहुंच गया था। वहां के राजा भैरवसिंह ने आवभगत की। महाराणा 4 महीने तक वहां ठहरा और फिर रहे-सहे राजपूतों को एकत्रित कर उदयपुर आया। यहां आकर नौचौकियां आदि महलों को जो अधूरे रह गये थे, पूरा करवाया।

अकबर का रणथम्भोर दुर्ग जीतना—दूसरे वर्ष बादशाह अकबर ने रणथम्भोर का किला लिया (जो आजकल जयपुर के महाराजा के अधिकार में है)। पहले इस किले के शासक चित्तौड़ के राजा थे।[2] जिन्होंने वहां की किलेदारी बून्दी के हाड़ा सूरजमल व उसके पुत्र राव सुलतान और सुर्जन (जिसको महाराणा ने सुलतान को अपदस्थ कर बून्दी का स्वामी बनाया था)

---

1. राजपीपला के गोहिलों का इतिहास हम इसी जगह लिखते, परन्तु महाराणा उदयसिंह का वर्णन थोड़ा ही रह गया है, इसलिए इस प्रकरण के अन्त में लिखा जावेगा—ग्रन्थ के सम्पादित संस्करण में यह इतिवृत्त अलग खण्ड में ही दिया जावेगा। (सं०)
2. यह किला विक्रम के 14वें शतक के पहले तो न जाने किसके कब्जे में था, परन्तु लिखी हुई सदी के प्रारम्भ से हमीर चौहान और उसके बाप के अधिकार में था, जिसको अलाउद्दीन खिलजी ने विजय किया था। फिर यह किला मेवाड़ के राजाओं के अधिकार में आया। जिसको लेने की इच्छा बाबर बादशाह की भी थी। शेरशाह सूर ने इसको अपने अधिकार में ले लिया, लेकिन थोड़े दिनों के बाद पुनः मेवाड़ के अधिकार में आ गया। तबकात-इ-अकबरी और इकबालनामा-इ-जहांगीरी आदि पुस्तकों में लिखा है कि, अकबर के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में मुगलों के डर से शेरशाह के नौकर जुझारखां ने यह किला राव सुर्जन को बेच दिया। इससे मालूम होता है कि महाराणा उदयसिंह के इशारे पर उस किलेदार जुझारखां को कुछ रुपये दिये होंगे। क्योंकि उन दिनों बून्दी भी महाराणा उदयसिंह के अधीन ही थी, तथा बून्दी वालों के नाम रणथम्भोर की किलेदारी महाराणा सांगा के समय से चली आ रही थी। इसलिये कोई आश्चर्य की बात नहीं।

भी वहीं काम आये। इस तरह सब राजपूतों ने बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया और मारे गये।

एक हजार 1000 बन्दूकची[1] शाही सेना के डर से अपने-बाल बच्चों को कैदियों की तरह बन्दी बना कर शाही सेना के मध्य से निकले। सेना वालों ने उनको अपना आदमी समझ कर रोक-टोक नहीं की। महाराणा के महलों के सामने समिद्धेश्वर[2] महादेव के मन्दिर के पास और रामपोल दरवाजे पर, जहां पत्ता जगावत मारा गया था, हजारों आदमियों की लाशों के ढेर लग गये।

मंगलवार, चैत्र कृष्ण 12, 1624 वि०, (25 शाबान, 975 हि०= 24 फरवरी, 1568 ई०) को दोपहर के समय बादशाह अकबर ने इस किले पर अधिकार किया[3] और तीन दिन तक वहीं ठहर कर किले का सारा प्रबन्ध किया। वहां का प्रबन्ध ख्वाजा अब्दुल मजीद आसिफखां को सौंप, आप पैदल ही अजमेर की तरफ रवाना हुआ। क्योंकि बादशाह ने ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की मन्नत मानी थी कि, यदि चित्तौड़ का किला फतह हो जावेगा तो मैं जियारत (दर्शन) करने के लिये अजमेर तक पैदल आऊँगा। जब विजयश्री मिली, तब किले से अपने सैनिक पड़ाव और वहां से मांडल तक पैदल चला। जब अजमेर के खादिमों की अर्जियां इस विषय की पहुंची कि, हजरत ख्वाजा साहब का आदेश आपके लिये सवारी पर आने का है, तब बादशाह मांडल से सवार हुआ। परन्तु जब अजमेर एक मंजिल दूर रह गया, तब फिर वहां से पैदल हो, अजमेर में प्रविष्ट हुआ। 10 रोज तक अजमेर में रह कर आगरा की तरफ कूच किया।

---

1. मोतमदखां ने अपनी किताब इकबालनामा-इ-जहांगिरी में लिखा है कि, ये लोग कालपी की तरफ के रहने वाले बक्सरिया मुसलमान थे। किन्तु मेरे मतानुसार ये लोग बंगाली पठान होंगे, जो मुगलों से विरोध होने के कारण चित्तौड़ चले आये थे।
2. यह मन्दिर वह नहीं जो महाराणा मोकल ने किले की दीवार पर बनवाया था। बल्कि वह है जो कीर्ति स्तम्भ के पूर्व की तरफ अब खण्डहर के रूप में पड़ा है।
3. बेवरिज, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 471 (सं०)

1— हम बादशाह को बेटी न दें।
2— हमारे रणवास के लोग "नौरोज"[1] में न जावें।
3— हम अटक नदी के पार नहीं उतरें।
4— आम व खास शाही दरबार में हम शस्त्र लेकर जावें।
5— लालकोट[2] तक हमारा नक्कारा बजे।
6— हमारे घोड़ों के दाग न लगाया जावे।
7— हम किसी हिन्दू राजा के नेतृत्व में युद्ध पर न भेजे जावें।

परन्तु बीकानेर (नहीं जोधपुर) के प्रधान नैणसी मुहणोत ने राजताना की तवारीख[3] में यह शर्तें इस तरह लिखी हैं—

1— हम महाराणा की दुहाई मानें।
2— मेवाड़ पर बादशाह की सेना के साथ न जावें।
3- बादशाह को बेटी न देवें।
4— हमारे रणवास के लोग नौरोज में न जावें।
5— अटक नदी के पार हम न भेजे जावें।
6— हम शाही दरबार में जावें तो शस्त्र न खोलें।
7— हमारे घोड़ों के दाग न लगाया जावे।

इन दोनों शर्तनामों का निर्णय हम आगे लिखेंगे। सुर्जन की प्रार्थना बादशाह ने मंजूर की। तब सुर्जन ने अपने बेटे दूदा और भोज को चैत्र शुक्ल 2, 1626 वि० (अन्तिम रमजान, 976 हि०= 19 मार्च, 1569 ई०) को शाही दरबार में भेज दिया।[4] जिनके साथ विश्वासपात्र हाड़ा सामन्तसिंह को भेजा। जब दूदा और भोज शाही दरबार में पहुँचे तो बादशाह ने बड़ी आवभगत की और दोनों को खिलअत पहनाने का आदेश दिया। जब खिलअत

1. मुगलों के यहां यह एक खुशी का दिन माना जाता है और ईद, बकराईद के समान इसमें बड़ा उत्सव होता है।
2. इनमें से अधिकांश शर्तें ऐसी हैं कि, जिनका प्रमाण हिन्दुस्तान के इतिहासों में नहीं मिलता है।
3. मुहता नैणसी री ख्यात, (भाग 1, पृ० 112) में प्रथम दो शर्तों का ही उल्लेख है। (सं०)
4. बेवरिज०, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 494। (सं०)

आदि को दी थी। जब बादशाह अकबर ने चित्तौड़ का किला जीत कर मेवाड में जगह-जगह अपने थाने बैठा दिये, उस समय उदयपुर के महाराणा पहाड़ों में दिन व्यतीत कर रहे थे । परन्तु बून्दी का हाड़ा सुर्जन इसी किले में कायम रहा। ऐसी स्थिति में महाराणा की हुकूमत तो हाड़ों पर कुछ रही नहीं और वह अपनी वीरता से किले के स्वामी बना रहा।

बादशाह अकबर ने सोचा कि रणथम्भोर का किला जो चित्तौड़ के शासक के समर्थक के अधिकार में है, उसको भी जीत लेना चाहिये। यह इरादा कर सोमवार, पौष शुक्ल 2 तथा 3, 1625 वि० (1 रजब, 976 हि० = 20 दिसम्बर, 1568 ई०) को[1] आगरा से रवाना हुआ। इस किले को लेने के लिये पहले भी बादशाह ने कई बार अपने अमीरों को भेजा था, परन्तु लड़ाई नहीं हुई । अब स्वयं चढ़ाई का विचार कर अलवर और लालसोट होता हुआ मंगलवार, फाल्गुन कृष्ण 7 (21 शाबान, 976 हि० = 8 फरवरी, 1569 ई०) को रणथम्भोर के पास आकर डेरा किया[2] बादशाह ने रण नामक डूंगरी पर से किले को देखकर उसकी ऊंचाई नीचाई व पहाड़ों की स्थिति के अनुसार मोर्चा-बन्दी की। कासिमखां मीर बहर और राजा टोडरमल की देखरेख में बनवाये गये मोर्चे पर बाईस-बाईस जोड़ी बैलों से खींची जाने वाली बड़ी-बड़ी तोपें चढ़ाई गई।

सुर्जन ने भी किले पर अच्छी तरह मजबूती कर ली। दोनों तरफ से लड़ाई होती रही, परन्तु किला मजबूत होने के कारण टूट नहीं सका। तब बादशाह ने "भेद" नीति से आंबेर के राजा भगवानदास के माध्यम से सुर्जन को किला छोड़ देने के लिये कहलाया। राजा भगवानदास ने उसको व्यक्तिगत रूप से यह भी समझाया कि, "यदि आप कुछ दिन और लड़ेंगे तो भी बादशाह किले को जीत कर ही जावेगा । क्योंकि जब चित्तौड़ के समान किले को जिसमें आप जैसे बहुत सरदार विद्यमान थे, जीत लिया। तो इसकी क्या गणना है।" तब सुर्जन ने उसके माध्यम से समझौते के लिये प्रयत्न करना शुरू किया और सात शर्तें लिखकर पेश की। जिनको बून्दी वालों ने अपनी तवारीख में इस तरह लिखा है—

---

1. बेवरिज, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 489। (सं०)
2. बेवरिज, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 490। (सं०)

वह महाराणा उदयसिंह के पास शरण आया, तब महाराणा ने उसको बहुत सम्मान के साथ अपने पास रखा। यह बात बादशाह अकबर, जो दूरदर्शी था ने सुनी, तो उसके दिल में मालवा की तरफ का खटका पैदा हुआ। इसलिये उसने अपने खजानची अमीरहुसैन खां को भेज कर बाजबहादुर को बहुत तसल्ली के साथ अपने पास बुला लिया।

बाज बहादुर के यहां रहने से बादशाही फौजें आ-आकर उदयपुर पर आक्रमण करने लगीं। 1627 वि० (978 हि० = 1570 ई०) में महाराणा कुम्भलगढ़ गया फिर वहां से फौज इकट्ठी कर गोगूंदा आया और 1628 वि० का दशहरा वहीं किया। यह महाराणा जब फाल्गुन महीने में कुछ बीमार हुआ, तो इसने अपने पुत्र जगमाल को जो महाराणी भटियाणी से जन्मा था, युवराज बनाया। क्योंकि महाराणी भटियाणी से इन महाराणा का अधिक प्रेम था। फाल्गुन शुक्ल 15, 1628 वि० (13 शव्वाल, 979 हि० = 28 फरवरी, 1572 ई०) को महाराणा उदयसिंह का देहान्त हुआ।

इस महाराणा के स्वभाव में स्थिरता बहुत कम थी और वह बुद्धि व वीरता में अपने पिता महाराणा सांगा से चौथे हिस्से भी नहीं था, परन्तु विक्रमादित्य से अच्छा था। इसलिये इसकी निंदा नहीं हुई। कर्नल टॉड के लिखने के अनुसार यह बहुत कायर भी नहीं था। क्योंकि इसने लड़ाईयों में अकसर बहादुरी का काम किया। इस महाराणा का जन्म भाद्रपद शुक्ल 10, 1579 वि० (9 शव्वाल, 928 हि०=31 अगस्त, 1522 ई०) को और फाल्गुन शुक्ल 15, 1628 वि० (13 शव्वाल, 979 हि० = 28 फरवरी, 1572 ई०) को देहान्त हुआ।

इसके 24 राजकुमार थे। सोनगरा अक्षयराज की बेटी जैवंताबाई के गर्भ से 1. महाराजकुमार प्रतापसिंह; सज्जाबाई सोलंखिनी के 2. शक्तिसिंह, 3. वीरमदेव; जैवंताबाई मादड़ेची का बेटा 4. जैतसिंह; करमचन्द परमार की बेटी लालाबाई का बेटा 5. कान्ह; वीरबाई झाली का बेटा 6. रायसिंह; लखाबाई झाली के बेटे 7. शार्दूलसिंह व 8. रुद्रसिंह; धीरबाई भटियाणी के बेटे 9. जगमाल, 10 सगर, 11. अगर, 12. साह और 13, पंचायण; इसी तरह 14. नारायणदास, 15. सुल्तान, 16 लूणकरण, 17. महेशदास, 18. चंदा, 19. भावसिंह, 20 नेतसिंह, 21. नगराज, 22. बेरीशाल,

पहनाने के लिये लोग उन्हें दूसरे डेरे में ले जाने लगे तब हाड़ा सामन्तसिंह ने समझा कि, इनको मारने के लिये ले जाते हैं। इस कारण वह म्यान से तलवार खेंच कर चला। राजा भगवानदास[1] के नौकर प्रयागदास ने बहुतेरा समझाया और मना किया, लेकिन सामन्त ने एक नहीं सुनी और यही समझा कि, यह सब धोखा है। इन दोनों लड़कों को मारने के लिये ले जाते हैं। सामन्तसिंह ने झपट कर शाही कामदार पूर्णमल के बेटे पर एक वार किया और बहाउद्दीन मजजूब बदायूंनी के दो टुकड़े कर डाले। अन्त में मुजफ्फरखां के नौकर के हाथ से सामन्तसिंह मारा गया। बादशाह ने सुर्जन व उनके बेटों का कोई दोष नहीं माना और इसको उस राजपूत की मूर्खता ही समझी। फिर सुर्जन के दोनों बेटों को खिलअत देकर विदा किया।[2] दूदा व भोज ने किले में पहुँच कर शाही कृपा का हाल अपने बाप के सामने प्रकट किया। फिर मंगलवार चैत्र शुक्ल 4 (3 शव्वाल=22 मार्च) को[3] सुर्जन भी शाही डेरों में उपस्थित हुआ और किले की चाबियां बादशाह के नजर की। तब बादशाह ने खुश होकर राव की पदवी और चिनारगढ़ आदि परगने इनायत किये। राव सुर्जन के निवेदन पर असबाब निकालने के लिये तीन दिन का समय दिया गया। तब सुर्जन ने वहां से कटक बिजली और धूलधाणी दो तोपें और कल्याणरायजी व चतुर्भुजजी की दो मूर्तियां आदि और कितना ही दूसरा सामान बूंदी पहुँचाया। 3 दिन बाद रणथम्भोर का किला बादशाह ने मेहतरखां को सौंप दिया[4] और आप अजमेर को रवाना हुआ। आठ दिन अजमेर में ठहर कर आगरा की तरफ कूच किया।

बूंदी वाले तो अपने इतिहास "वंश प्रकाश" में सुर्जन को स्वतंत्र राजा होना लिखते हैं, लेकिन हम इसका सही वर्णन बाद में लिखेंगे। चित्तौड़ की लड़ाई के तीसरे वर्ष मालवा का बादशाह बाजबहादुर वहां से निकल कर दक्षिण में निजामुलमुल्क के पास गया था। वह उसको न रख सका था।

---

1. सही नाम "भगवन्तदास" (सं०)
2. सुर्जन को लेने के लिये उनके साथ हुसैन कुलीखां को भेजा।
3. बेवरिज०, अकबरनामा (अं० अ०), भाग 2, पृ० 495। (सं०)
4. नैणसी (भाग 1, पृ० 112) के अनुसार चैत्र सुद 6, 1625 (श्रावणादि)=मार्च 24, 1569 ई० के दिन राव सुर्जन ने किला बादशाह को सौंपा। (सं०)

भयो सरणागत हाजियखान, कियो अनुयी अन युद्ध दिवान ।
उदैपुर और उदैसर थाप, तहां प्रसरयो निज वंश प्रताप ॥ 4 ॥
अकव्वर दिल्लिय ते दलआन, ललक चितोर लियो मुगलान ।
वहीं फिर वत्सर अन्तर आय, लियो रण थम्भक सुर्जणनाथ ॥ 5 ॥
लिख्योवृत गोहिल पिप्पलिराज, वहो विधि पत्तन भाव समाज ।
तदन्वय क्षत्रप पालिय तान, तथा लघु गोहिल वंश वयान ॥ 6 ॥
कह्यो फिर बुन्दिय को इतिहास, कियो तिहिं ठां कुल हड्ड निवास ।
हुमायु दिलीपति जीवन वृत, भयो सुख-दुक्ख लिखो सब वत्त ॥ 7 ॥
भयो बिच सूर पठानन राज, कियो मुगलान कबूतर बाज ।
सुशेर सलीम सिकन्दर शाह, रच्यो इतिहास जु सुक्षम राह[1] ॥ 8 ॥
प्रकाशन आशय सज्जन रान, फत्ते नृप शासन पाय महान ।
कियो कविराज सु श्यामलदास, उदै नृप वीर विनोद विलास ॥ 9 ॥

2. महाराणा प्रतापसिंह —

यह महाराणा फाल्गुन शुक्ल 15, 1628 वि० (13 शव्वाल, 979 हि० = फरवरी 28, 1572 ई०) को गोगुंदा में राज्य गद्दी पर बैठा। जिसका वृत्तान्त इस तरह है – जब महाराणा उदयसिंह का देहान्त हुआ, उस समय सब सरदार व महाराजकुमार महाराणा को दाह क्रिया में गये। कुंवर सगर से ग्वालियर के राजा रामसिंह ने पूछा कि जगमाल कहां है? सगर ने उत्तर दिया कि, "आप क्या नहीं जानते हैं कि वैकुण्ठवासी महाराणा ने उसको राज्य का मालिक बनाया है।" सरदारों में से अक्षयराज (अखैराज) सोनगरा[2] ने रावत कृष्णदास[3] और रावत सांगा[4] से कहा कि, आप चूंडा

---

1. महाराणा उदयसिंह के इतिवृत के साथ मूल वीर विनोद में बूंदी राज्य के साथ ही मुगल बादशाह हुमायूं आदि का इतिवृत है, जो सम्पादित संस्करण में अलग खंड में दिया जावेगा। (सं०)
2. यहां अक्षयराज (अखैराज) सोनगरा का उल्लेख ठीक नहीं हैं। वस्तुतः अखैराज सोनगरा तो शेरशाह सूरी से हुए इतिहास प्रसिद्ध सुमेल के युद्ध (जनवरी 5, 1544 ई०) में ही मारा गया था। (जोधपुर ख्यात०, भाग 1, पृ० 70-71) यहां उसके पुत्र मानसिंह अखैराजोत सोनगरा का उल्लेख होना चाहिये। (सं०)
3. सलूंबर का रावत। (सं०)
4. देवगढ़ का रावत। (सं०)

23. मानसिंह और 24. साहिबखां, कुल राणियां 18, जिनसे कुल 24 पुत्र आदि सन्तान थीं।[1]

महाराणा उदयसिंह के अधीनस्थ क्षेत्र का विस्तार नीचे लिखी हुई जागीरों, तथा जो-जो राजा उसकी सेवा में थे उससे अच्छी तरह मालूम हो सकता है। इस महाराणा के पौत्र अमरसिंह के नाम से संस्कृत भाषा में "अमर काव्य" नामक ग्रन्थ बना हुआ है। उसके अनुसार जागीरें आदि देने का हाल यहां लिखा गया है।

"राव सुलतान को अजमेर पठानों से लेकर दिया, आंबेर के राजा भारमल ने अपने पुत्र भगवानदास को महाराणा की सेवा में भेजा, राव सुलतान को बूंदी से निकल कर सुर्जन को बूंदी की गद्दी, रणथम्भोर की किलेदारी दी और 100 गांव फूलिया के और 100 गांव कुंम्भलगढ़ के दिये। रावत सांईदास को गंगराड़, भैंसरोड़, बड़ौद और बेंगू दिये। ग्वालियर के राजा रामसाह तंवर को बारां, दसौर दिया। मेड़ता के जयमल राठौड़ को 1000 गांवों सहित बदनौर दिया। खीचीवाड़ा के गोपालसिंह खीची और आबू के राजा सेवा करते थे। राव मालदेव के बड़े पुत्र रामसिंह को 100 गांव सहित कैलवा का ठिकाना दिया। ईडर का राव नारायणदास गुजरात के बादशाहों की मदद के कारण सेवा में उपस्थित नहीं होता था।"
— अमर काव्य पृ० 63।

— छन्द मुक्तादाम —

किये वध विक्रम को वनवीर, उदै हरिगे गिरि कुम्भलतीर।
धरे वनवीर तबैं सिर छत्र, सुभट्टन के पट झंझट तत्र ॥ 1 ॥
मिले महिपालहि कुम्भल मेर, निकार दियौ वनवीर हि फेर।
सिरोहिय की धर दावन सार, कियो नृप ऊदल मंद विचार ॥ 2 ॥
सगारथ झल्लन के हित सोध, वढ्यो मरुमाल महीप विरोध।
पदच्युत बुन्दिय तें सुलतान, दियो नृप सुर्जन को यह थान ॥ 3 ॥

---

1. इन चौबीसों में से कई एक के वंशजों की उन्हीं के नाम से खांपें प्रसिद्ध हुई, जिनका वर्णन मेवाड़ के सरदारों के हाल में लिखा जावेगा।

महाराणा प्रतापसिंह कुम्भलगढ़ में रह कर राज्य करने लगा और और यह खबर बादशाह अकबर को भी मिली। परंतु उसने पहले गुजरात का झगड़ा दूर करना जरूरी समझ कर सिद्धपुर की तरफ कूच किया। 1629 विक्रमी (980 हि० = 1572 ई०) में गुजरात को जीत करके डूंगरपुर व उदयपुर की तरफ फौज भेजी, जिसका सेनापति आंबेर का राजकुमार मानसिंह बनाया गया और उनके साथ दूसरे सरदार शाहकुलीखां, मुरादखां, मुहम्मद कुली खां, सैयद अब्दुला, आंबेर के राजा भारमल का छोटा बेटा जगन्नाथ कछवाहा, राजा गोपाल, बहादुरखां, लश्करखां, जलालखां और बूंदी के राव हाड़ा भोज वगैरा को भेजा, तथा हुक्म दिया कि, जो बादशाह की सेवा करना स्वीकार करे, उनकी आवभगत करो और जो प्रतिकूल अर्थात् विरुद्ध खड़े हों उनको सजा दो। यह हुक्म लेकर कुंवर मानसिंह डूंगरपुर पहुँचा वहां रावल आसकरण से लड़ाई हुई,[1] जिसमें दोनों तरफ के बहुत से आदमी मारे गये। बादशाह की फौज ने डूंगरपुर को फतह कर लिया और रावल वहां से निकल कर पहाड़ों में चला गया।

मानसिंह ने डूंगरपुर को कब्जे में लेकर अपनी जरूरत से अधिक फौज को अजमेर भेजा और कुछ फौज के साथ महाराणा को समझाने के लिये 1630 विक्रमी प्रथम असाढ़ (सफर, 981 हि = जून, 1573 ई०) में उदयपुर आया, जिसका महाराणा प्रतापसिंह ने बहुत आदर सत्कार किया और आपस में स्नेह का वर्ताव हुआ।

मानसिंह ने महाराणा प्रतापसिंह को बादशाह की सेवा में ले जाने के विचार से बहुत बहाने और उद्योग किये, परन्तु वे सब अलाभकारी सिद्ध हुए अर्थात् महाराणा ने एक भी बात न मानी।[2] महाराणा ने कुंवर मानसिंह के लिये उदयसागर पर गोठ[3] की तैयारी करवाई और कुंवर अमरसिंह सहित मानसिंह को लेकर उदयसागर पहुंचा। भोजन तैयार होने पर अमरसिंह ने परोसगारी कर कुंवर मानसिंह से भोजन करने को कहा।

---

1. बीलपण का यह युद्ध शनिवार वैशाख वदि 2, 1629 वि० = अप्रैल 18, 1573 ई० को हुआ था (बीलपण की देवली का शिलालेख)।
2. क्योंकि उसके स्वभाव में आजादी घुसी हुई थी।
3. गोठ का अर्थ दावत के भोजन से है।

के पोते हैं. यह काम आप ही की सम्मति से होना चाहिये। क्योंकि बादशाह अकबर जैसा तो दुश्मन सिर पर लगा हुआ है, चित्तौड़ छूट गया और मेवाड़ उजड़ रहा है। अब यह घर का बखेड़ा भी उठा तो फिर इस राज्य के नष्ट होने में क्या संदेह रहा ? रावत कृष्णदास और सांगा ने कहा कि, "पाटवी, हकदार और बहादुर प्रतापसिंह किस कुसूर से अपदस्थ समझा जावे ?" इस विचार के बाद महाराणा की उत्तर क्रिया करके जब सब सरदार वापस आये तो प्रतापसिंह को लाकर गद्दी पर बैठा दिया। जगमाल को उतार कर कहा कि, "आपकी बैठक गद्दी के सामने हैं, सो वहां बैठना चाहिये।"

जगमाल नाराज होकर वहाँ से निकल गया। तब सब सरदारों ने महाराणा प्रतापसिंह को नजराना कर प्रार्थना की कि आज होली का दिन है, सो आप अहेड़ा[1] के शिकार के लिये पधारिये। यदि आप शोक रखेंगे तो पीढ़ियों तक इस दिन की "ओख" (गमी की रस्म जिसमें कुछ भी खुशी न मनायी जाय) रह जायेगी। यह सुनकर महाराणा, नक्कारा बजाये जाने के बाद शिकार खेल कर वापस आये। मारवाड़ी भाषा में कवियों की कही हुई उस दिन की एक कहावत अब तक प्रसिद्ध है "मारीजे किम मांजरे, होली जिमो तुहार।"[2] गोगुंदा से महाराणा सवार होकर कुम्भलगढ़ आया और वहीं राज्याभिषेक का उत्सव किया।

जगमाल गोगुंदा से निकलने के बाद अपने बाल-बच्चों को लेकर जहाजपुर[3] गया। अजमेर के सूबेदार ने उसके बाल-बच्चों के रहने के लिये आज्ञा दी और जहाजपुर का परगना ठेके पर लिख दिया। फिर जगमाल अकबर बादशाह के पास दिल्ली[4] गया और बीते हुए सब समाचार कह सुनाये। बादशाह अकबर ने जहाजपुर का परगना उसको जागीर में दिया।

---

1. होली के दिन शिकार को जाने का राजपूताना में आम रिवाज है। उसे "अहेड़ा" का शिकार कहते हैं।
2. अर्थ—होली जैसे महोत्सव को व्यर्थ खोना अनुचित है।
3. यह परगना बून्दी और जयपुर की सीमा पर उदयपुर से ईशान कोण में मेवाड़ के अन्तर्गत है।
4. यहां "आगरा" होना चाहिये, तब मुगल साम्राज्य की राजधानी "आगरा" ही थी। (सं)०

अपने घर ले गया। असभ्यता से उज्र (प्रतिवाद) करने लगा कि बादशाह के दरबार में जाने का मौका अभी नहीं है।" यहां "उज्र" शब्द से दावत में सम्मिलित न होना तथा बादशाह के पास जाने से इंकार करना भी सिद्ध होता है।

राजपूताना की पुस्तकों में यह हाल ऊपर लिखे अनुसार है। हिन्दी कविता में राम कवि की बनाई हुई "जयसिंह चरित्र" नामक जयपुर की तवारीख में भी यह बात इसी प्रकार लिखी है।

दोहा—राना सो भोजन समय, गही मान यह बान।
हम क्यों जैंवैं आपहू जैवंत हो किन आन ॥ 1 ॥

कुंवर आप आरोगिये, राना भाख्यो हेरि।
मोहि गरानी सी कछू, अबै जैउहूँ फेरि ॥ 2 ॥

कही गरानी की कुंवर, भई गरानी जोहि।
अटक नहीं कर देहुंगो, तूरण चूरण तोहि ॥ 3 ॥

दियो ठेल कांसो कुंवर, उठे सहित निज साथ।
चुलू आन भरि हौं कह्यौ, पोंछ रूमालन हाथ ॥ 4 ॥

इसके अतिरिक्त नैणसी मुहणोत के इतिहास और राजसमुंद्र की प्रशस्ति और बूंदी के वंशभास्कर आदि में भी यह बात इसी तरह लिखी है।

कुंवर मानसिंह तो सीधा आगरा पहुँचा। बादशाह वहां गुजरात की मुहिम से पहिले ही आ चुका था। मानसिंह ने उदयसागर पर हुए प्रीतिभोज का हाल बादशाह से अर्ज किया। अकबर ने कुंवर मानसिंह को बहुत सान्त्वना दी। लेकिन हमारा खयाल है कि, बादशाह दिल में खुश हुआ होगा, क्योंकि राजपूतों का मेल-मिलाप उसको असहनीय था, यद्यपि यह मस्लहत (भलाई) से[1] खाली न था। बादशाह उसी वक्त मेवाड़ पर फौज

---

1. इस बात के दो वर्ष बाद शाहबाजखां किले कुम्भलगढ़ पर गया, उस वक्त उसने राजा भगवानदास और कुंवर मानसिंह को बादशाह अकबर के पास भेज दिया था कि, शायद ये मिल न जावें। (देखो इकबालनामा जहांगीरी की जिल्द 2 के पृष्ठ 321 में हि० 986 वें का हाल) अकबरनामा पृष्ठ 238; बेवरिज (अं० अ० भाग 3

उसका विचार महाराणा को अपने साथ भोजन कराने का था। परन्तु महाराणा ने पेट की गिलानी अर्थात् अजीर्ण का बहाना करके टाला।[1] मानसिंह ने डोडिया ठाकुर भीमसिंह के माध्यम से कहलाया कि, "गिलानी की दवा मैं खूब जानता हूँ। अब तक तो हमने आपकी भलाई चाही. लेकिन आगे के लिये सावधान रहना।" जिस पर महाराणा ने उत्तर दिया कि "जो आप अपनी ताकत से आवेंगे तो मालपुरा तक पेशवाई की जावेगी और जो अपने फूफा के[2] जोर से आवेंगे तो जहां मौका होगा, वहां खातिर करेंगे।" भीमसिंह[3] ने यह बात ज्यों की त्यों कुंवर मानसिंह से कह दी। मानसिंह और भीमसिंह में मौखिक तकरार हुई, जिसमें भीमसिंह ने कहा, कि "तुम जिस हाथी पर चढ़ कर आवोगे, उसी पर भाला मारूं तो मेरा भी नाम भीमसिंह है। अपने फूफा को लेकर जल्दी आना।" इस तरह रस, विरस हो गया और सब घोड़ों पर सवार होकर चल दिये।

मानसिंह के रवाना होने के बाद महाराणा ने खाने की चीजें, चांदी, सोने के पात्रों (वर्तनों) सहित तालाव में फिकवा दीं। जहां कुंवर मानसिंह खड़ा था वहां दो-दो गज जमीन खुदवा कर गंगाजल छिड़कवाया और सब राजपूतों को स्नान करवा कर कपड़े वदलवाये। इस वात को अकबरनामा में अवुलफजल ने संक्षेप में लिखा है कि, "कुंवर मानसिंह आदि उदयपुर पहुंचे, जो राणा का वतन है, वहां पर राणा ने पेशवाई करके वादशाही खिलअत[4] अदब के साथ पहना और मानसिंह को मेहमानदारी के लिये

1. मुसलमानों के सम्वन्ध की नफरत से नहीं खाया।
2. अकवर को इसकी वूआ व्याही गई थी, जिससे जहांगीर पैदा हुआ, इसी कारण फूफा का इशारा वादशाह की तरफ है।
3. भीमसिंह डोडिया लावा (सरदारगढ़) का ठाकुर। (सं०)
4. हमारी राय में खिलअत पहनने के लिये या तो कुंवर मानसिंह ने अपनी कारगुजारी दिखाने के लिये वादशाह से बयान कर दिया होगा या अवुलफजल ने "वादशाही वड़प्पन" दिखाने के लिये लिखा है। अन्यथा खिलअत तो 1671 वि० (1023 हि०=1614 ई०) में महाराणा अमरसिंह ने पहना, जिसकी लज्जा से, यद्यपि वे पांच या छः वर्ष जीवित रहे, लेकिन इस समयावधि में किसी आदमी को मुंह नहीं दिखलाया। प्रतापसिंह ने उसको ताना भी दिया था जिसका वर्णन मौके पर लिखा जायेगा।

बादशाह जहांगीर ने अपने शाहजादे परवेज को महाराणा अमरसिंह पर भेजा, उस समय लिखता है कि, "राणा तुझसे आकर मिले और अपने बड़े बेटे को हमारे पास भेज देवे तो सुलह कर लेना।"[1] इसी तरह जब खुर्रम को भेजा तो समझौता भी स्वीकार हुआ और कुंवर कर्णसिंह जहांगीर के पास पहुंचा। जहांगीर ने उसका वर्णन अपनी किताब में बहुत बढ़ा कर लिखा है। कुंवर कर्णसिंह जब जहांगीर के दरबार में अजमेर गया उस समय इंग्लिस्तान (इंगलैण्ड) के बादशाह जेम्स प्रथम का एलची "सर टॉमस रो" भी वहां मौजूद था। वह लिखता है कि, "पोरस के खानदान का एक राजा मुगल (बादशाह) की सल्तनत में है, जो कि गत वर्ष के पहले कभी ताबे नहीं हुआ था।"[2] इन बातों से प्रकट होता है कि, कुंवर कर्णसिंह से पहले मेवाड़ का कोई पाटवी कुंवर शाही दरबार में नहीं गया। अगर गया होता तो अबुलफजल भी कुछ उसको सविस्तार लिखता। मालूम होता है कि महाराणा प्रतापसिंह का कोई छोटा बेटा या भाई गया होगा। जिसका नाम अबुलफजल ने गलती से "अमरसिंह" लिख दिया है। लेकिन कुंवर मानसिंह की कसक बादशाह के दिल की मुराद को पूरा करने वाली थी।

1932 वि० (983 हि० = 1575 ई०) में बादशाह अजमेर आया[3] और दिल में पक्का इरादा कर लिया कि मेवाड़ के राणा को जेर करना चाहिये। इसलिये कुंवर मानसिंह को, जिसे वह बेटा कहा करता था, इस मुहिम पर रवाना किया।[4] क्योंकि बादशाह जानता था कि मानसिंह और प्रतापसिंह में तकरार[5] हुई है। जिससे लड़ने के लिये वह जरूर आवेगा और मारा

---

1. बेवरिज, तुजुक०, भाग 1, पृ० 26, जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 49। (सं०)
2. एम्बेसी ऑफ सर टामसरो, विलियम फास्टर, पृ० 82। (सं०)
3. मार्च 7, 1576 ई० को अकबर अजमेर पहुंचा। (सं०)
4. अप्रैल 2, 1576 ई० को मानसिंह अजमेर से रवाना। (सं०)
5. मोतमदखां इकबालनामा (हस्तलिखित) की दूसरी जिल्द के 303 पृष्ठ पर लिखता है कि, कुंवर मानसिंह को भेजने से बादशाह का असल मतलब यह था कि, मानसिंह महाराणा की जाति का है, बल्कि अकबर बादशाह के जुलूस के पहले मानसिंह के बाप-दादा राणा के

भेजता, लेकिन दूसरे "मुल्की-इंतिजाम" की फिक्र में लगे रहने के कारण देर हो गई। लगभग 5 या 6 महीने बाद राजा भगवानदास[1] कछवाहा, जिसको अकबर बादशाह बन्दोबस्त के लिये गुजरात में छोड़ आया था, गोगुंदा आया[2] और महाराणा प्रतापसिंह से मिला। इन्होंने उसकी बड़ी आवभगत की। इस मौके पर अबुलफजल अपनी किताब अकबरनामा की तीसरी जिल्द के 44 वें पृष्ठ पर लिखता है[3] कि, "राणा ने अपने बेटे अमरा को राजा भगवानदास के साथ बादशाही खिदमत में भेज कर अपने आने में उज्र किया और कहा कि बादशाही मेहरबानियां होंगी तो फिर मैं भी आजाऊँगा। राणा के बेटे अमरा के साथ राजा भगवानदास आगरा में हाजिर हुआ।" यह बात हमारे ध्यान में नहीं आती। क्योंकि प्रथम तो महाराणा प्रतापसिंह बादशाह की आधीनता और खिलअत पहनने और फरमान लेने से बिलकुल नफरत करते थे। इसी बारे में उसने अपने बेटे अमरसिंह को ताना भी दिया उसका बयान अमरसिंह के हाल में किया जायगा। दूसरे, बादशाह जहांगीर "तुजुक-इ-जहांगीरी"[4] के पृष्ठ 134 पर शाहजादा खुर्रम और महाराणा अमरसिंह के समझौते के वर्णन में लिखता है कि, "राणा अमरसिंह और उसके बाद दादों ने घमंड और पहाड़ी मुकामों के भरोसे पर किसी बादशाह के पास हाजिर होकर ताबेदारी स्वीकार नहीं की है। यह मामला मेरे समय में बाकी न रह जावे।" तीसरे इसके पहले भी जब

---

1. सही नाम भगवंतदास। (सं०)
2. जयपुर की तवारीख में इस तरह लिखा है कि, गुजरात से आते हुए राजा भगवानदास महाराणा प्रतापसिंह से मिले और खाना खाने के समय महाराणा उसके शामिल नहीं बैठे; तब भगवानदास ने कहा कि मेरी तरह मानसिंह का अपमान न करना, क्योंकि उसका मिजाज तेज है। इसके बाद मानसिंह आया और उसके साथ भी वैसा ही वर्ताव किया गया। परन्तु "अकबरनामा" में मानसिंह का पहले और भगवानदास का बाद में आना लिखा है, जैसा कि मूल में लिखा गया है।
3. अकबरनामा (क० सं०), 3, पृ० 67; अकबरनामा, (अं० अ०), 3, पृ० 92-93। (सं०)
4. बेवरिज, तुजुक०, 1, पृ० 250; जहांगीरनामा (हिन्दी), पृ० 318। (सं०)

ने लड़ाई का सब सामान ठीक कर लिया। कुंवर मानसिंह ने भूताला गांव के पास होते हुए शाही सेना सहित खमनोर के निकट हल्दीघाटी के पास प. च कर बनास नदी के किनारे पर डेरा किया। महाराणा प्रतापसिंह भी अपनी फौज को सुसज्जित कर गोगुंदा से चढ़ा। दोनों फौजों में तीन कोस की दूरी थी।

1632 वि० (984 हि० = 1576 ई०) को कुंवर मानसिंह शिकार खेलने के लिये एक हजार सवारों सहित महाराणा की फौज की तरफ अपने डेरों से दो कोस आगे आया।[1] उस समय कितने ही सरदारों ने अर्ज की कि, कुंवर मानसिंह पर हमला करें। लेकिन झाला वीदा[2] ने कहा कि इस तरह दगा करना बहादुरों का काम नहीं है। महाराणा ने भी वीदा के विचार को पसन्द किया। दूसरे रोज कुंवर मानसिंह को महाराणा प्रताप-सिंह के आने की खबर मिली।

1633 वि० द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ल 2[3] (1 रबीउल् अव्वल, 984 हि० = 30 मई, 1576 ई०) को मानसिंह ने अपनी फौज लड़ाई के लिये इस तरह तैयार की कि, दाहिनी तरफ बारहा के सैय्यद और बाईं तरफ गाजीखां बदख्शी और राय लूणकर्ण, हरावल (आगे) में कछवाहा जगन्नाथ, ख्वाजा गयासुद्दीन अली व आसिफखां और चन्दावल में अर्थात् पीछे माधव-सिंह और दूसरे कई अमीरों को नियुक्त किया। मेहतरखां को बहुत से अमीरों के साथ फौज के आगे[4] रवाना किया। महाराणा प्रतापसिंह ने भी अपनी फौज को इस तरह तैयार किया। ग्वालियर का राजा रामसिंह तंवर अपने बेटों शालिवाहन, भवानीसिंह व प्रतापसिंह सहित, व भामाशाह अपने भाई ताराचन्द सहित दाहिनी तरफ और झाला मानसिंह जैतसिंहोत सजावत, झाला वीदा सुलतानोत और सोनगरा मानसिंह अक्षयराजोत बाईं तरफ नियुक्त हुए। हरावल में डोडिया भीमसिंह, रावत कृष्णदास चूंडावत, रावत

1. यह बात मुहणोत नैणसी ने लिखी है।
2. झाला वीदा सुलतानोत, सादड़ी वालों का पूर्वज। (सं०)
3. यह तिथि सही नहीं है। (सं०)
4. मेहतर खाँ को वस्तुतः चंदावल में रखा था। अल्बदायूनी, (अं० अं०,) 2 पृ० 238 (सं०)

जावेगा। कुंवर मानसिंह के साथ बड़े-बड़े सरदार किये जिनके नाम ये हैं— गाजीखां वदख्शी, ख्वाजा गयासुद्दीनअली, आसिफखां, सैयद अहमदखां, सैयद हाशिमखां जगन्नाथ कछवाहा[1] सैयद राजू, मेहतरखां, माधवसिंह कछावाहा,[2] मुजाहिदवेग, राय लूणकर्ण[3] आदि।

हल्दी-घाटी की लड़ाई—जब कुंवर मानसिंह शाही फौज लेकर मांडलगढ़ पहुंचा, उस वक्त महाराणा प्रतापसिंह भी कुम्भलगढ़ से निकल कर गोगुंदा आया और लड़ाई के लिये विचार विमर्श किया। महाराणा की सलाह तो यही थी कि माडलगढ़ के पास जाकर मानसिंह से मुकावला करें। लेकिन सब सरदारों ने अर्ज की कि कुंवर मानसिंह अपनी ताकत से नहीं आया है। वह अपने फूफा अर्थात् वादशाह की फौज लेकर आया है। इसलिये आपके लिये भी उचित है कि पहाड़ों में रह कर उसको वहादुरी दिखलावें। जिस पर यही वात पक्की ठहरी।

कुंवर मानसिंह भी, महाराणा से लड़ना और उदयसागर तालाव पर कहे हुए अपने वोल को सिद्ध करना कुछ छोटी वात नहीं समझता था। इसलिये वहुतसी फौज इकट्ठी करने के वाद जब लड़ाई का पूरा सामान तैयार हो गया तो उसने वहां से मोही[4] गांव में आकर डेरा किया। महाराणा

शर्म और घमण्ड से इस वार उसके मुकावले पर आकर लड़ाई करे। अवुलफजल अकवरनामा की तीसरी जिल्द पृष्ठ 151 (अकवरनामा, भाग 3, पृ० 173; (अं० अ०), भाग 3, पृ० 244) में लिखता है, कि, कुंवर मानसिंह मांडलगढ़ पहुंच कर फौज इकट्ठी करने के लिये ठहरा। राणा निहायत गरूर से गुस्से में आया और बादशाह की ताकत पर ध्यान न रख कर वादशाह की फौज के सरदार मानसिंह को अपना अधीनस्थ जमींदार विचार कर, लड़ाई के लिये मांडलगढ़ आना चाहता था।

1. जगन्नाथ कछवाहा आंवेर के राजा भारमल का तीसरा पुत्र। सं०)
2. माधवसिंह (माधोसिंह)—आम्वेर के कछवाहा राजा भगवंतदास का दूसरा पुत्र। (सं०)
3. राय लूणकर्ण-शेखावत खाप के मूल पुरुष शेखा का प्रपौत्र रायमल का पौत्र और सूजा का पुत्र। (सं०)
4. यह गांव अव महाराणा की तरफ से भाटी राजपूतों की जागीर में है।

का राजा रामसिंह अपने तीनों बेटों सहित बड़ी बहादुरी से लड़कर काम आये। चारण जस्सा और केशव बारहट भी मारे गये। इसी समय में डोडिया ठाकुर भीमसिंह ने अपने घोड़े को बढ़ा कर कुंवर मानसिंह के हाथी पर उड़ाया और कहा कि, "मैं भीमसिंह आ गया हूँ संभलना।" ! यों कह कर बर्छा चलाया। सो मानसिंह तो बच गया और बर्छा होदे में लग कर रह गया। लेकिन भीमसिंह बड़ी बहादुरी के साथ मारा गया। महाराणा प्रतापसिंह ने अपने चेतक नामक घोड़े को उड़ा कर कुंवर मानसिंह से कहा कि, "तुझसे जहां तक हो सके बहादुरी दिखला[1] प्रतापसिंह आया।" सो मानसिंह तो हाथी के होदे में झुक कर बच गया और महाराणा प्रतापसिंह का बर्छा होदे में लगा। महाराणा के चेतक घोड़े के दोनों अगले पेर कुंवर मानसिंह के हाथी के सिर पर लगे और हाथी की सूंड में जो खांडा अर्थात् तलवार (दुधारा) थी, उसके वार से महाराणा के घोड़े का पिछला पैर कट गया। महाराणा ने घोडे को पीछे मोड़ कर यह समझ लिया कि, कुंवर मानसिंह का काम तमाम हो गया। शाही फौज की हरावल भाग निकली।

मुन्तखब् उत् तवारीख का लेखक मौलवी अब्दुलकादिर, जो उस लड़ाई में उपस्थित था, लिखता है कि, शाही फौज की भागने वाली हरावल (सेना) पांच या छः कोस तक भाग चुकी थी और अबुलफजल अकबरनामा में बना कर लिखता है कि करीब था कि, शाही फौज भागे, लेकिन इसी अरसे में शाही चंदावल फौज ने एकदम आगे बढ़ कर हौरा मचाया कि बादशाह आ गये, जिससे शाही फौज की मजबूती हुई और मेवाड़ी फौज के पैर उखड़ गये। पानड़वे के भीलों का सरदार पूंजा राणा लड़ाई के शुरू में ही भाग निकला। महाराणा ने अपना घोड़ा गोगुंदा की तरफ बढ़ाया, जिसका पीछा दो मुसलमान सरदारों ने किया। महाराणा प्रतापसिंह का छोटा भाई महाराज शक्तिसिंह, जो शाही फौज में विद्यमान था, प्रकट-रूप में शाही सरदारों की मदद के लिये रवाना हुआ। लेकिन इसकी अंदरूनी मंशा अपने भाई को मदद पहुँचाने की थी। पीछे से उन दोनों अमीर मुसलमानों को उनके साथियों सहित हमला करके शक्तिसिंह ने मार लिया। उन दोनों अमीरों के नाम मेवाड़ की पोथियों में "खुरासानखां" व "मुलतानखां" लिखे हैं। अनुमान से मालूम

---

1. डोडिया भीमसिंह और महाराणा प्रतापसिंह का यह विवरण मेवाड़ वालों के कथनानुसार लिखा है।

सांगा (संग्रामसिंह), राठौड़ रामसिंह[1] और पठान हकीमखां सूर और चन्दावल में अर्थात् पीछे भीनों का सरदार मेरपुर का राणा पूंजा, पुरोहित गोपीनाथ, पुरोहित जगन्नाथ, पड़िहार कल्यान, मेहता जयमल वछावत, मेहता रतनचन्द खेमावत, महासहाणी जगन्नाथ और चारण जैसा और केशव (सौदा बारहट) नियुक्त हुए।

पहर दिन चढे घाटी पर दोनों फौजों का मुकाबला हुआ।[2] अबुल-फजल लिखता है कि, "ये दोनों सेनायें लड़ाई की दोस्त और जिन्दगी की दुश्मन थी। जिन्होंने जान तो सस्ती और इज्जत मंहगी कर दी।" महाराणा का बाईं तरफ का लश्कर दाहिनी तरफ के बादशाही लश्कर पर टूट पड़ा। राय लूणकर्ण भाग कर शाही फौज के दाहिनी तरफ आ घुसा और सीकरी वाले शेखजादे भी एकदम भागे। महाराणा का तीर शेख मन्सूर के कूल्हे पर लगा। गाजीखां हिम्मत करके पहले तो खड़ा रहा, लेकिन एक अंगुली कटने के बाद भाग गया। महाराणा की हरावल फौज ने शाही हरावल फौज को शिकस्त दी।

महाराणा की तरफ से लूणा हाथी और शाही फौज का गजमुक्ता हाथी आपस में लड़ने लगे। शाही हाथी घायल होकर भागने को था कि, इसी समय लूणा हाथी के महावत के गोली लगी, जिससे वह गिर गया और हाथी भी पीछे मुड़ गया। फिर महाराणा के रामप्रसाद हाथी और शाही फौज के गजराज हाथी में लड़ाई हुई। इस समय भी रामप्रसाद हाथी के महावत के गोली लगी और हाथी बादशाही फौज के हाथ लगा।

निदान पहर दिन चढ़े से दोपहर तक दोनों फौजों में खूब मुकाबला हुआ। महाराणा की तरफ से जयमल का बेटा राठौड़ रामदास जगन्नाथ कछवाहा के विरुद्ध लड़ कर मारा गया। झाला मानसिंह व बीदा तथा ग्वालियर

---

1. राठौड़ रामसिंह=रामसाह, मेड़तिया जयमल वीरमदेवोत का सातवां पुत्र। (सं०)
2. हल्दी घाटी के युद्ध की सही तारीख-अमरदाद 7 तीर इलाही=21 रबी-उल्-अव्वल, 984 हि० =सोमवार, आषाढ़ वदि 7, 1633 वि० =जून 18, 1576 ई०। अकबरनामा, भाग 3, पृ० 174-175; (अं० अ०), भाग 3, पृ० 244-246। (सं०)

आदमियों के[1] अतिरिक्त किसी से मुकाबला नहीं हुआ। क्योंकि महाराणा तो कोल्यारी की तरफ अपने बहादुर घायल आदमियों की सुरक्षा में लग रहे थे। कुंवर मानसिंह ने बहुत सारी सेना को गोगुंदा के थाने पर नियुक्त कर अजमेर की तरफ कूच किया। रामप्रसाद हाथी जो लड़ाई के वक्त शाही फौज के हाथ आया था, वह पहले ही मौलवी अब्दुलकादिर बदायुनी के साथ बादशाह की खिदमत में भेज दिया गया था। जब मानसिंह शाही दरबार (अजमेर) मे पहुंचा तो बादशाह ने खुश होकर उसकी बहुत आवभगत की और अपने सब बहादुरों की इज्जतें बढ़ाई।

कर्नल टॉड अपनी किताब में यह लड़ाई शाहजादा सलीम के साथ होना लिखता है। परन्तु यह ठीक नहीं। क्योंकि बादशाह अकबर ने महाराणा से विरोध होने के कारण कुंवर मानसिंह को भेजा था और यह लड़ाई विक्रमी 1633[2] द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ल (984 हि०, शुरू रबीउल् अव्वल=जून, 1576 ई०) में हुई, जिस समय जहांगीर अर्थात् शाहजादा सलीम की उम्र 6 वर्ष की थी। क्योंकि इस शाहजादे का जन्म आश्विन कृष्ण 3, विक्रमी 1626 (977 हि०, 16 रबीउल् अव्वल=29 अगस्त 1569 ई०) को हुआ था। सोचने से भी यह बात सिद्ध हो सकती है कि, ऐसी उम्र में शाहजादा लड़ाई पर नहीं भेजा जा सकता। इसके अतिरिक्त

---

1. ये दस बीस आदमी महाराणा के महल मन्दिरों की रक्षा करने के लिये रह गये थे, जो मुकाबले में मारे गये।
2. मेवाड़ की पोथियों में इस लड़ाई का होना विक्रमी 1632 (983 हि० =1575 ई०) में लिखा है और फारसी तवारीखों के हिसाब से विक्रमी 1633 (984 हि० =1576 ई०) है। इसका निर्णय इस तरह हो सकता है कि यहां विक्रमी सम्वत् ज्योतिष के तरीके से व साहूकारों में व जंत्रियों में तो चैत्र शुक्ल 1 से मानते हैं तथा फसली सम्वत् मेवाड़ के कुल सरकारी मुलाजिम श्रावण कृष्ण 1 से गिनते हैं। हमने अपनी किताब में ज्योतिष, आम रिवाज और जंत्रियों के आधार पर लिखा है, जिससे विक्रमी 1633 को हुआ। क्योंकि इसी सम्वत् की वैशाख शुक्ल 2 को हिजरी 984 का मुहर्रम शुरू हुआ और ज्येष्ठ महीना अधिक पड़ा, तथा यह रियासती सम्वत् उस समय भी इसी तरह समझा जाता था जैसा की अब माना जाता है।

होता है कि, वे खुरासान और मुलतान के रहने वाले थे और उनके ये खिताबी नाम होंगे।

शक्तिसिंह ने अपने भाई प्रतापसिंह को आवाज दी कि, "आप किस तरह चले जाते हैं, अपने घोड़े को देखिये कि वह तीन पैर से चल रहा है।" महाराणा ने अपने भाई की आवाज सुन कर घोड़े को रोका और दोनों भाई उतर कर मिले। शक्तिसिंह ने उन दोनों मुसलमानों के मारने का हाल कहा। महाराणा का घोड़ा पैर कटने के सिवाय भी बहुत जख्मी हो गया था, जिससे उसी जगह गिर कर मर गया। शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा नजर किया,[1] जिस पर सवार होकर महाराणा आहोर होते हुए कोल्यारी ग्राम में पहुँचे।

मेवाड़ की पोथियों में लिखा है कि, महाराणा के पास बीस हजार सवार और कुछ पैदल थे। जिनमें से सिर्फ आठ हजार बच कर कोल्यारी में पहुँचे, बाकी सब मारे गये और कितने ही भाग गये। मेवाड़ की पोथियों में कुंवर मानसिंह के संग 80,000 फौज लिखी है और फारसी तवारीखों में कोई संख्या नहीं है। अबुलफजल लिखता है कि, गर्मियों के कारण से गनीम का पीछा शाही फौज ने नहीं किया। लेकिन लड़ाई के हाल से मालूम होता है कि, लड़ाई करने की शक्ति दोनों में नहीं रही थी। अलबत्ता फतह का झंडा बादशाही फौज के हाथ रहा।

महाराणा प्रतापसिंह के चेतक घोड़े का चबूतरा हल्दीघाटी में बनाया गया जो अब तक विद्यमान है।[2] महाराज शक्तिसिंह ने वापस शाही फौज में पहुँच कर प्रकट किया कि महाराणा प्रतापसिंह ने घोड़े को मार कर उन दोनों मुसलमान सरदारों को भी साथियों सहित कत्ल कर डाला।

कुंवर मानसिंह दो रोज के बाद बादशाही फौज के साथ गोगुंदा आया, जो महाराणा का पहाड़ी निवास स्थान था। लेकिन वहां दस बीस

1. शक्तिसिंह विषयक इस कथानक को अधिकांश इतिहासकार अविश्वसनीय मानते हैं। (सं०)
2. चेतक का यह स्मारक बालेचा ग्राम में है, जिसका इधर पुनर्निमाण किया गया है। (सं०)

महाराणा प्रतापसिंह कोल्यारी गांव से गोगुंदा होते हुए मजेरा ग्राम में राणेराव तालाब की पाल पर पहुंचे, तथा मुल्क (मेवाड़) में फौज भेज कर बादशाही थानेदारों को निकाल दिया और अपना आधिपत्य जमाया। गोगुंदा के थाने पर मांडण कूपावत को रख कर महाराणा स्वयं कुम्भलगढ़ किले में चले गये और मेहता नर्बद को वहां का क़िलेदार नियुक्त किया।

जब यह खबर बादशाह को मिली तो क्रोधित होकर उसी संवत् व सन् में वह मेवाड़ की तरफ आया। महाराणा ने भी किले कुम्भलगढ़ में लड़ाई की तैयारी की। महाराणा का ससुर ईडर का राव नारायणदास भी महाराणा के लिखने के अनुसार उन बादशाही थानों पर हमले करने लगा, जो गुजरात की तरफ थे। बादशाह अकबर भी इस हंगामे का हाल सुनकर बढ़ा चला आ रहा था। जब मांडल वगैरा मेवाड़ के थानों की तरफ ठहरते हुए मोही गांव में पहुंचा तो वहां से अपनी सब फौज को ठीक कर गोगुंदा की तरफ रवाना हुआ।[1] साफ मुल्क (समतल प्रदेश) में कुछ लड़ाई नहीं हुई। लेकिन पहाड़ियों में घाटियों आदि जगहों पर शाही फौज पर महाराणा के राजपूत कहीं-कहीं पर हमला करते थे। बड़ी लड़ाई कहीं नहीं हुई। बादशाह स्वयं गोगुंदा आ पहुंचा। महाराणा प्रतापसिंह के बहुत से राजपूत पहले हल्दी घाटी की लड़ाई में मारे गये थे, इसलिये फौजी ताकत की कमी से मुकाबला नहीं किया गया। लेकिन महाराणा की वीरतापूर्ण हिम्मत और शारीरिक शक्ति में बिलकुल फर्क नहीं आया। उन्होंने समय की जरूरत को देख कर अपने ससुर नारायणदास को साथ लेकर पहाड़ों में लड़ाई करना ठीक समझा।

बादशाह ने मुकाबले के लिये गोगुंदा से पहाड़ों में फौज भेजी, जिसमें कुतुबुद्दीनखां, राजा भगवानदास और कुंवर मानसिंह थे। वे सब लोग हल्दी घाटी के पास इधर-उधर फिर कर वापस बादशाही फौज में शामिल हुए।

फिर बादशाह ने ईडर की तरफ किलीचखां, ख्वाजा गयासुद्दीन, नकीबखां, तीमूर बख्शी, मीर अब्दुल गोस और नूरकिलीच वगैरा को रवाना

---

1. अकबरनामा, भाग 3, पृ० 194; (अं० अ०), भाग 3, पृ० 274 के अनुसार अकबर मोही से ही नवम्बर 27, 1576 ई० को बांसवाड़ा चला गया था। (सं०)

राजपूताना की प्रमुख तवारीखों में भी लिखा है कि, यह लड़ाई कुंवर मानसिंह के साथ ही हुई और महाराणा प्रतापसिंह के जमाने का चित्रपट (अर्थात् तस्वीरों का नक्शा) उस समय के चित्रकारों के हाथ का बना अब तक मौजूद है, जिसमें शाहजादे सलीम का निशान भी नहीं है। सिर्फ दोनों तरफ के सरदारों सहित कुंवर मानसिंह व महाराणा प्रतापसिंह की तस्वीरें हैं। जयपुर के पुस्तकालय की दो तीन तवारीखी पोथियों में भी कुंवर मानसिंह व महाराणा प्रतापसिंह से इस लड़ाई का होना लिखा है। "अकबरनामा" में अबुल-फजल ने भी साफ-साफ कुंवर मानसिंह से मुकावला होना लिखा है। इसी तरह "मुन्तखब्-उत्-तवारीख' व फारसी की सभी किताबों में प्रतापसिंह और कुंवर मानसिंह के मध्य लड़ाई होना लिखा है। कर्नल टॉड ने महाबतखां को भी शाहजादा सलीम के साथ इस लड़ाई में सम्मिलित होना लिख कर उसे महाराणा उदयसिंह के पुत्र महाराज सगर का बेटा बतलाया है। लेकिन यह भी गलत है। क्योंकि वह उम्र में जहांगीर से भी छोटा और काबुल के रहने वाले सैयद गयूरबेग का बेटा था जो जिले ईरान के शहर शीराज से काबुल से आकर रहा था और जिसका असली नाम जमानबेग था और जहांगीर ने तख्तनशीन होकर उसको 'महाबतखां' का खिताब दिया। इसके पहले यह अहदियों में नौकर था। इसका सविस्तार विवरण "मआसिर उल् उमरा" नामक पुस्तक आदि में लिखा है।

जब कुंवर मानसिंह गोगुंदा से अजमेर गया तब कई सरदारों को शक्तिशाली फौज के साथ गोगुंदा के थाने पर छोड़ गया था और बादशाह अकबर ने भी कई अमीरों को फिर वहां भेजा। लेकिन महाराणा प्रतापसिंह ने घायल बहादुरों का इलाज करा कर अपने राजपूत व भीलों की ताकत से कुल पहाड़ी रास्ते व नाके बन्द कर दिये। न रसद आदि खाने का सामान पहुंचने दिया और न किसी छोटे गिरोह को बाहर निकलने दिया। शाही फौज के आदमी हवालाती कैदियों के अनुसार गोगुंदा में पड़े थे। जो कभी थोड़े आदमी रसद वगैरा लेने के लिये फौज से अलग जाते तो उन पर महाराणा के राजपूतों का धावा होता था। जब शाही फौज के लोग बहुत घबरा गये और खाना पीना न मिल सका, तब मेवाड़ के राजपूतों से लड़ते-भिड़ते पहाड़ों से निकल कर बादशाह के पास अजमेर पहुंचे। बादशाह इन लोगों पर बहुत नाराज हुआ। लेकिन बाद में सब हाल सुनकर इनको दोष रहित समझा।

दावा कोई नहीं कर सकेगा। इस तरह समझा कर महाराणा को बाहर जाने को तैयार किया। कुम्भलगढ़ में राव अक्षयराज का बेटा भाण किलेदार नियुक्त किया गया। महाराणा प्रतापसिंह किले से निकल कर राणकपुर में आ ठहरा। जहां से रवाना होकर ईडर की तरफ चूलिया ग्राम में पहुंचा।

किले पर बादशाही फौज के हमले होने लगे। बहादुर राजपूत लड़कर फौज के हमलों को रोकते थे, परन्तु आखिरकार शाही फौज के बहादुर किले पर चढने लगे। उस समय किले वालों ने भी किवाड़ खोल दिये।[1] राव भाण सोनगरा वगैरा बहुत से प्रसिद्ध बहादुर राजपूत किले के दरवाजों व मन्दिरों पर मारे गये और शाहबाजखां ने फतह के साथ किले पर बादशाही झंडा स्थापित किया।

कुम्भलगढ़ किले की फतह आषाढ़ कृष्ण 30, (29 रबीउल् अव्वल = 5 जून, 1578 ई०) को हुई।[2] यह किला विक्रमी 1509 (हि० 856 = 1452 ई०) में बनवाया गया था और तब से अब तक इस पर किसी शत्रु का अधिकार नहीं हुआ था। शाहबाजखां ने कुम्भलगढ़ किले में सुदृढ़ बन्दोबस्त कर गोगुंदा की तरफ कूच किया।

महाराणा का प्रधान भामाशाह कुम्भलगढ़ की प्रजा को लेकर मालवा में रामपुरा की तरफ चला गया, जहां राव दुर्गा ने उसको साथियों सहित बड़ी सावधानी से रखा। यहां शाहबाजखां ने गोगुंदा व उदयपुर में शाही फौज के थाने बैठा दिये।

इसी सम्वत् व सन् में भामाशाह व उसका भाई ताराचन्द मालवा के प्रदेश से दण्ड के 25,00,000 रुपये और 20,000 अशर्फियें लेकर चूलिया ग्राम में महाराणा प्रतापसिंह के पास पहुंचे और रुपये व अशर्फियें नजर कीं। इस समय महासाहणी रामा प्रधान का काम करता था, जिसके

---

1. किले में एक बड़ी तोप के फट जाने से वहां की सामग्री सब जल गई थी। अकबरनामा, भाग 3, 238; (अं० अ०), भाग 3, पृ० 338, 340। (सं०)

2. सही तिथि 24 फरवरदीन = अप्रैल 3, 1578 ई०। अकबरनामा, भाग 3, पृ० 238; (अं० अ०), भाग 3, पृ० 340। (सं०)

किया। ईडर की सरहद पर महाराणा प्रतापसिंह व राव नारायणदास से मुकाबला हुआ।[1] उमरखां पठान व हसन बहादुर वगैरा शाही फौज के अधिकारी बहुत से फौजी सिपाहियों के साथ मारे गये और आखिर में ईडर पर बादशाह का अधिकार हो गया।

मेवाड़ में बादशाह अकबर ने गोगुंदा (मोही) से बांसवाड़ा की तरफ कूच किया। जहां पर बांसवाड़ा का रावल प्रतापसिंह और डूंगरपुर का रावल आसकरण पहली बार राजा भगवानदास[2] के माध्यम से बादशाह की सेवा में हाजिर हुए। इसके बाद बादशाह ने मोही व मदारिया में बहुत-सी फौजें रख कर थाने बैठाये। मोही में गाजीखां और शरीफखां, मुजाहिदखां व सुबहान कुली तुर्क वगैरा और मदारिये में अब्दुल रहमान मुअय्यिद बेग और अब्दुर्रहमान जलालुद्दीन वगैरा को नियुक्त कर बादशाह स्वयं वापस लौटा और पंजाब की तरफ रवाना होकर लाहौर पहुंचा।

विक्रमी 1635, चैत्र (मुहर्रम, 986 हि० = मार्च, 1578 ई०) में बादशाह अकबर ने बड़ी सुसज्जित फौज के साथ शाहबाजखां को कई अमीरों सहित कुम्भलगढ़ की तरफ भेजा। शाहबाजखां जब तैयार होकर चला, तब उसको शक हुआ कि राजा भगवानदास[2] और कुंवर मानसिंह जो मेरे साथ हैं, राणा के ही जाति के (राजपूत) होने से मिलावट न कर लें। इसलिये सोच विचार कर दोनों को बादशाह की सेवा में रवाना कर दिया और अपने साथ बैरमखां के बेटे मिर्जाखां खानखाना, शरीफखां व गाजीखां वगैरा बहादुरों को लिया। महाराणा प्रतापसिंह भी कुम्भलगढ़ के किले पर मौजूद थे। राजपूत लोग शाही फौज पर पहाड़ों की घाटियों में हमला करने लगे। एक दिन मेवाड़ी राजपूतों ने रात के समय छापा मारा और शाही फौज के 4 हाथी किले में लाकर महाराणा को नजर किये। जब शाही फौज ने नाडोल व कैलवाड़ा की तरफ नाकाबन्दी कर किले के रास्ते रोक दिये और रसद का पहुँचना कठिन हो गया तब सब राजपूतों ने महाराणा प्रतापसिंह से अर्ज की कि, घिर कर मरना आपका काम नहीं है। हम लोग किले में अच्छी तरह लड़ेंगे, यदि आप मारे जावेंगे तो प्रदेश का

---

1. लड़ाई अक्तूबर 20, 1576 ई० को हुई। अकबरनामा भाग, 3, पृ० 192-193; (अं० अ०), भाग 3, पृ० 272। (सं)
2. सही नाम 'भगवन्तदास'। (सं०)

हो गया था, उठा कर अपने किले में ले आया।[1] शाहबाजखां दूसरी तरफ रवाना हुआ। यह हाल सुनकर महाराणा प्रतापसिंह ने चांवड से कूच किया। सो दशौर (मंदसौर) वगैरा मालवा के शाही थानों को तहस-नहस करते और दण्ड लेते हुए चावंड में आ पहुंचे।

फिर बादशाह ने मिर्जाखां खानखाना को फौज देकर मालवा की तरफ भेजा, जिससे भामाशाह जाकर मिला। मिर्जाखां ने महाराणा को बादशाह की सेवा में ले जाना चाहा, लेकिन भामाशाह ने मंजूर नहीं किया।[2]

जब छप्पन के राठौड़ो[3] ने शोर मचाया तब महाराणा ने लूणा चांवडिया राठौड़ को चावंड से निकाल कर वहां अपनी राजधानी बनाई और आस-पास, दूर नजदीक जहां शाही थाना सुनते वहीं जाकर छापा मारते। चावंड में महाराणा ने चामुंडा माता का मंदिर[4] और अपने रहने के लिये छोटे-छोटे महल बनवाये। कुछ दिनों बाद बांसवाड़ा व डूंगरपुर वालों को, जो बादशाह की सेवा में उपस्थित हो चुके थे, फौज भेज कर अपने अधीन किया।

विक्रमी 1637 (हि० 988 = 1580 ई०) में महाराणा प्रतापसिंह का यह सब हाल सुनकर बादशाह ने शाहबाजखां को सुसज्जित फौज देकर मेवाड़ की तरफ भेजा।[5] उसके साथ गाजीखां बदख्शी और शेख मुहम्मद

---

1. लगभग जनवरी, 1579 ई० के बाद। (सं०)
2. लगभग दिसम्बर, 1580 ई० के अन्त में मिर्जाखां अजमेर का सूबेदार नियुक्त हुआ। (सं०)
3. राठौड़ सोनिग के वंशज, जो छप्पन क्षेत्र के बड़े भूमिया थे। (सं०)
4. मन्दिर तो अब तक साबित है और महलों के खण्डहर पड़े हैं।
5. मेवाड़ पर शाहबाजखां की दूसरी चढ़ाई दिसम्बर 15, 1578 ई० को हुई, जिससे लौट कर वह अप्रैल 6, 1579 ई० को शाही दरबार में उपस्थित हुआ था। नवम्बर 11, 1579 ई० को शाहबाजखां ने मेवाड़ पर तीसरी बार चढाई की। मई, 1580 ई० में वहां से बुला कर उसे बंगाल के विद्रोह को दबाने के लिये भेज दिया गया। मेवाड़ पक्षीय ग्रंथों में इन आक्रमणों की सही तिथियां नहीं होने से सारा विवरण अव्यवस्थित ही है। (सं०)

वदले भामाशाह को अव यह काम सौंपा गया। उस समय के किसी कवि ने मारवाड़ी भाषा में एक दोहा कहा था, जो यहां लिखा जाता है—

दोहा[1]—भामो परधानो करै, रामो कीधौ रद्द।
घरची वाहर करण नू, मिलियो आय मरद्द ॥1॥

महाराणा प्रतापसिंह ने भामाशाह की वहुत आवगत की और उसके व अपने साथी राजपूत सरदारों सहित दिवेर के शाही थाने पर हमला किया। उस थाने पर सुलतानखां मुगल अधिकारी था, जिसकी छाती में राजकुमार अमरसिंह के हाथ का वर्छा लग कर घोडे के शरीर में से होता हुआ पार निकल गया और वह घोड़े सहित मारा गया। एक दूसरे राजपूत के हाथ की तलवार हाथी के लगी, जिससे उसका पिछला पैर कट गया।[2] इसके वाद जहां-जहां शाही थानों पर थोड़े आदमी थे वे सव घवरा कर भाग गये। वहलोलखां नामक मुगल के महाराणा के हाथ को तलवार लगी, जिससे वह घोड़े सहित मारा गया। इसी तरह इस थाने पर दूसरे आदमी भी मारे गये। दिवेर की नाल पर महाराणा ने कब्जा कर लिया। महाराणा ने वहां से चल कर हमीरसर तालाव पर जो, कुम्भलगढ़ के नजदीक है, पड़ाव डाला। कुम्भलगढ़ में वन्दोवस्त के लिये शाही फौज के थोड़े से आदमी रह गये थे। वे महाराणा की दहशत से किला छोड़ कर भाग गये। वहां भी वन्दोवस्त करते हुए महाराणा ओवरा ग्राम में आ ठहरा। वहां से जावर पर अधिकार कर छप्पन, वागड़ के पहाड़ों में विजय प्राप्त कर चावंड में निवास किया।

महाराणा ने भामाशाह के भाई ताराचन्द को मालवा में रामपुरा की तरफ भेजा था, जिसको शाहवाजखां ने जा घेरा। ताराचन्द वहां से लड़ाई करता हुआ वसी के नजदीक पहुंचा, जहां घायल होने के कारण घोड़े से गिरा। लेकिन वसी का राव देवड़ा सांईदास उस घायल को, जो वेहोश

---

1. अर्थ—भामाशाह प्रधाना करता है, रामा दूर किया गया और देश की तरफदारी करने को वह मर्द आ मिला।

2. लगभग सन् 1582 ई० के वर्षाकाल के वाद। अमरकाव्य (प्रताप-स्मृति ग्रंथ, 2. पृ० 43-45)। (सं०)

श्रावण शुक्ल 12, 1640 वि० (1 रजब, 991 हि० = 1 अगस्त, 1583 ई०[1]) को कुंवर अमरसिंह की स्त्री के गर्भ से राजकुमार कर्णसिंह का जन्म हुआ। उन्हीं पहाड़ों में महाराणा प्रतापसिंह ने समयानुसार अपने घर पौत्र होने की खुशी की।

इसी संवत् के कार्तिक शुक्ल 11 (10 शव्वाल=27 अक्तूबर) को महाराणा उदयसिंह का पुत्र जगमाल, जो महाराणा प्रतापसिंह का भाई था, सिरोही में राव सुलतान देवड़ा से लड़कर मारा गया। जिसका हाल इस तरह है – महाराज जगमाल की शादी सिरोही के राव मानसिंह की बेटी के साथ हुई थी और मानसिंह के औलाद नहीं थी। इसलिये सब राजपूतों ने मिलकर सिरोही का राजतिलक राव सुलतान भाणावत को दिया। राव मानसिंह की राणी बाड़मेरी को गर्भ था। अतः वह निकल कर अपने पीहर बाड़मेर चली गई। वहां उसके बेटा पैदा हुआ। देवड़ा बिजा हरराजोत बड़ा बहादुर आदमी था और राव सुलतान भी उसकी सलाह से रियासत का काम करता था। लेकिन राव सुलतान के काका सूजा रणधीरोत की, जिसके पास अच्छे-अच्छे राजपूत सवार मौजूद थे, बिजा से दुश्मनी हो गई। इससे बिजा ने सूजा को मारने और राव सुलतान को गादी से अपदस्थ करने, तथा मानसिंह के बेटे को बाड़मेर से लाकर गादी पर बैठाने का इरादा किया और अपने भाईयों से कहा कि, सूजा को मारना चाहिए। उसके भाइयों ने मना किया। लेकिन बिजा ने नहीं माना और रावत शेखावत, बालीशा देवड़ा व जगमाल देवड़ा को भेज कर सूजा को मरवा डाला, और आप भी वहां जा पहुंचा। देवड़ा गोविन्ददास भी इसी लड़ाई में मारा गया। फिर बिजा ने मानसिंह के बेटे को बाड़मेर से बुलाया और राव सुलतान को कालंधरी गांव में कैद रख कर आप कुंवर की पेशवाई के लिये गया। पीछे से राव सुलतान ने देखा कि, बिजा आकर मुझे मार डालेगा, इसलिये देवड़ा डूंगरोत व चीवा से कहा कि, मुझको निकाल दो तो मैं जन्म भर तुम्हारा अहसानमन्द रहूंगा। इस तरह राव सुलतान निकल कर रामसेण चला गया।

---

1. यहां से आगे की सारी ईसवी तारीखें नई गणाना के अनुसार ही दी गई हैं, जो यूरोप में अक्तूबर 5, 1582 ई० से प्रयुक्त की जाने लगी थी। तदनुसार श्यामलदास ने भी आगे की सारी ईसवी तारीखें नई गणाना के अनुसार ही दी है। (सं०)

हुसैन व तीमूर और मीरजादा अलीखां वगैरा को रवाना किया। इन लोगों ने जहाजपुर व मालवा की तरफ से मेवाड़ के पहाड़ों पर बहुत से हमले किये, लेकिन कामयाब नहीं हुए। बादशाह ने शाहबाजखां को इस मुहिम से बुला कर बंगाल की तरफ भेज दिया।

विक्रमी 1639 (हि० 990=1582 ई०) में बादशाह अकबर ने आंबेर के राजा भारमल के बेटे राजा जगन्नाथ कछवाहा को जाफरखां बदख्शी सहित मेवाड़ पर भेजा,[1] जिसने मांडलगढ़, मोही और मदारिया आदि मेवाड़ के प्रदेशों में बहुत से थाने बैठाये।

महाराणा प्रतापसिंह ने भी जहां अवसर पाया वहां इन लोगों से मुकाबला किया। मेवाड़ में आम हुक्म[2] जारी कर दिया कि, जो कोई एक बिस्वा जमीन भी खेती करके मुसलमानों को हासल देगा उसका सिर काट दिया जावेगा। इस हुक्म के अनुसार खेती करना सम्पूर्ण मेवाड़ में बंद हो गया। किसान लोग अपने बाल-बच्चों सहित खेती का सामान लेकर दूसरे इलाकों में जा बसे। जितने शाही थाने नियुक्त किये गये थे, उनके लिये खाने-पीने की रसद भी अजमेर की तरफ से पूरे प्रबन्ध के साथ मगाई जाती थी। शाही सेवकों के सामने कभी राजपूतों का छोटा गिरोह आता तो उसको कत्ल या कैद किये बिना नहीं छोड़ते थे। इसी तरह राजपूतों के काबू में जब कभी शाही सेवक आ जाता तो वे भी अपना बदला लेने में कमी नहीं करते। ऊंटाला को शाही फौज के किसी थानेदार ने एक किसान से एक किस्म की सब्जी खेत में बुवाई थी। इसका हाल सुनकर महाराणा प्रतापसिंह ने रात के समय शाही फौज के बीच में जाकर जिसने हुक्म के खिलाफ सब्जी बोई, उस किसान का सिर काट डाला। बहुत से फौजी आदमियों ने भी महाराणा पर आक्रमण किया, सो यह उनसे लड़ते-भिड़ते वापस पहाड़ों में चले आये। इसके बाद एक बिस्वा जमीन में कहीं खेती नहीं हुई।

---

1. दिसम्बर 5, 1584 ई० को ही वह फतेहपुर सीकरी से रवाना हुआ था। (सं०)

2. ये आदेश शाहबाजखां की पहली चढाई के समय ही लगभग सन् 1577 ई० के अन्तिम महीनों में दिये गये थे। (सं०)

सिरोही से 4000 आदमी लेकर चढ़ा और रास्ते में कालंधरी ग्राम पर आकर मोर्चाबंदी की। तब देवड़ा समरा, सूरा व विजा ने राव सुलतान से कहा कि, "हमको कालंधरी जाने से क्या मतलब है? सीधे सिरोही चलना चाहिये।" यों कह कर ये लोग राव सुलतान को सिरोही की तरफ लाये।

कालंधरी से एक कोस के फासले पर पहुँचे थे कि, वहां राव कल्ला भी अपनी फौज लेकर सामने आ उपस्थित हुआ। लड़ाई शुरू हुई, दोनों तरफ के बहादुर राजपूत खूब लड़े। राव सुलतान की तरफ के दस, बीस बड़े आदमी मारे गये। देवड़ा समरा का भाई सूरा नरसिंहोत भी काम आया। राव कल्ला के भी कई राजपूत चीबा, पत्ता सीसोदिया, मुकुन्ददास सीसोदिया, श्यामदास सीसोदिया और दलपत वगैरा मारे गये। अन्त में राव सुलतान ने विजयी पाई, और राव कल्ला यहां से निकल कर कहीं पहाड़ों में जा छिपा। राव सुलतान सिरोही का मालिक हुआ, जिसका बड़ा मुसाहिब देवड़ा विजा था। फिर राव सुलतान व देवड़ा विजा के भी आपस में बिगाड़ होने लगा। राव ने अच्छे-अच्छे राजपूतों को अपनी तरफ मिला लिया। यहां तक कि विजा के भाई लूणा और माना को भी अपना हितैषी बना कर विजा को सिरोही से निकाल दिया।

विजा अपनी जागीर के ग्राम में जाकर कुछ फसाद उठाने को था कि, इसी समय में बीकानेर के महाराजा रायसिंह, जिसको बादशाह अकबर ने गिरनार व सोरठ का सूबा दिया था. वहां जाता हुआ सिरोही आ निकला। राव सुलतान ने उससे मुलाकात कर अपनी सारी हकीकत कह सुनाई। तब महाराजा रायसिंह ने राव सुलतान से सिरोही का आधा राज्य बादशाह के नजर करने का इकरार लिखवा कर मदना पातावत को 500 सवारों के साथ राव सुलतान की मदद के लिये छोड़ दिया और आप गिरनार पहुंच कर वहां से बादशाह के दरबार में सिरोही के हालात लिख भेजे। उस समय महाराणा उदयसिंह का बेटा जगमाल बादशाह की सेवा में उपस्थित था, जिसको सिरोही का जानकार और वहां के राव मानसिंह देवड़ा का दामाद समझ कर आधा राज्य बादशाह ने लिख दिया, जिस के कारण महाराज जगमाल वहां रहने लगा।

राव सुलतान भी जगमाल से प्रेम रखता था। लेकिन देवड़ा विजा

जब देवड़ा विजा ने देवड़ा सूजा को मारा था, उस समय सूजा का एक बेटा माला तो मारा गया और दूसरे पृथ्वीराज व श्यामलदास सूजावत को इनकी मां छिपा कर रामसेण में ले आई।

विजा देवड़ा जो राव मानसिंह के बेटे की पेशवाई के लिये गया था, उसके लड़के को अपनी गोद में लिया, लेकिन देव इच्छा से वह लड़का उसी रात में मर गया, जिससे विजा देवड़ा उदास होकर फिर सिरोही आया। उसने देवड़ा समरा व सूरा से कहा कि, "मुझको सिरोही का राजतिलक दे दो।" जिस पर दोनों ने इंकार किया और जवाब दिया कि, "राव लाखा की औलाद में बीस आदमी मौजूद हैं। तुमको सिरोही का राजतिलक नहीं दिया जा सकता।" इस पर विजा की उनसे तकरार हुई जिससे वे यहां से निकल गये। यह बात महाराणा प्रतापसिंह ने सुनकर अपने भानजे राव कल्ला मेहाजलोत को फौज देकर सिरोही का मालिक कर दिया। विजा यहां से निकल कर ईडर चला गया। राव सुलतान भी कल्ला के अधीन होकर सिरोही में आ गया। देवड़ा चींवा और खेमा भारमलोत राव कल्ला के मुसाहिब थे। देवड़ा समरा और सूरा भी कल्ला के पास आ गये। चींवा और समरा व सूरा में झगड़ा हो गया। तब समरा व सूरा दोनों गुस्से में आकर निकल गये और राव सुलतान को अपने पास बुला कर सिरोही का मालिक बनाने का इरादा किया। विजा देवड़ा भी इनके लिखने के अनुसार ईडर से रवाना हुआ और उसके आने की खबर सुन कर राव कल्ला ने देवड़ा रावत हामावत को 500 सवार देकर घाटे पर लड़ने को भेजा। रावत हामावत माल ग्राम में और देवड़ा विजा ब्रह्माण ग्राम में आ गये। दोनों ग्रामों की सीमा पर मुकाबला हुआ, जिसमें राव कल्ला के चालीस आदमी मारे गये और 60 घायल हुए। विजा के भी बहुत से राजपूत काम आये, लेकिन विजा विजयी होकर रामसेण ग्राम में सुलतान से जा मिला। विजा के आने से सुलतान को बड़ा बल मिला। जालौर के हाकिम मलिकखां को भी अपनी मदद के लिये सुलतान ने बुला लिया। 3000 आदमी तो इनके और 1500 मलिकखां[1] के हो गये। यह बात सुन कर राव कल्ला भी

---

1. मलिकखांन नाम नैणसी मुहणोत ने अपनी किताब में लिखा है। लेकिन तवारीख गुजरात राजस्थान में इसका नाम "मलिखांनजीखांन" लिखा है, जो वास्तव में "मलिक खांनेजहां" मालूम होता है।

बारहट ईसर सेलहत वाला, मांगलिया किसना, धांधू खेतसी, राजसी राघावत, भाटी कान्ह ग्रांवावत, मांगलिया गोपाल भोजावत, राठौड़ खीमा रायसलोत, ईदा ग्रौर चारण मेहडू जाडा[1] वगैरा लोग शाही मददगारों के साथ मारे गये। यह बात महाराणा प्रतापसिंह ने सुनी, लेकिन् गादीनशीनी के मतभेद से जगमाल के मरने का कुछ शोक नहीं किया।

इन महाराणा के समय में बादशाह ग्रकबर ने ऊंटाला, मोही, मदारिया, चित्तौड़, मांडल, मांड़लगढ़, जहाजपुर और मन्दसौर वगैरा में बड़े मजबूत थाने बैठा दिये थे, जिनमें हर एक जगह हजारों ग्रादमियों की सेना रखी गई थी। महाराणा ने शाही थानों पर कई बार हमला किया, ग्रौर कहते हैं कि, इन्होंने ग्रपने बदन से जिरह बख्तर को एक घड़ी भर भी दूर नहीं किया। इनकी सम्पूर्ण जिन्दगी शमशेर हाथ में लिये बहादुराना बर्ताव से गुजरी। ग्राराम करना बिलकुल हराम हो गया था। यह भी प्रसिद्ध है कि, जिस समय ग्रकबर बड़ी सुसज्जित फौज लेकर खुद गोगुंदा ग्राया ग्रौर बादशाही फौजें महाराणा के पीछे चारों तरफ से लगीं, उस समय एक जगह महाराणा के भोजन की तैयारी हो रही थी, जहां दुश्मनों ने ग्रा घेरा। वहां से हट कर दूसरे पहाड़ों में भोजन तैयार करने का हुक्म दिया। इसी तरह एक दिन में रसोई के लिये सात स्थान बदलने पड़े तो भी ग्राराम से भोजन नहीं मिला।

1646 वि० (997 हि० = 1589 ई०) में महाराणा प्रताप ने फिर फौज इकट्ठी कर शाही थानों पर हमला किया, जो उसके प्रधान भामाशाह की हिम्मत से हुग्रा था। चित्तौड़, मांडलगढ़ ग्रौर ग्रजमेर के ग्रतिरिक्त सभी बादशाही थाने उठा दिये गये, जिस पर बादशाह ग्रकबर ने बहुतसी फौज देकर मानसिंह, माधवसिंह व जगन्नाथ कछवाहा[2] को कई मुसलमान सरदारों

---

1. यह वही जाडा मेहडू है जिसको जगमाल ने जहाजपुर दे दिया था। जडा मेहडू ने थोड़े समय तक जहाजपुर को ग्रपने ग्रधिकार में रखा ग्रौर बाद में जहाजपुर तो जगमाल को सौंप दिया ग्रौर उसी परगने में से सरसिया ग्राम ग्रपनी ग्रौलाद के लिये रख लिया, जो ग्रब तक उसकी ग्रौलाद के कब्जे में मौजूद है।
2. इस समय ये तीनों ही कश्मीर में थे। (ग्रकबरनामा, ग्रं० ग्र०, भाग 3, पृ० 825, 829, 830) इस समय करौली के राजा गोपालदास जादव

जगमाल के पास आ रहा, जो जगमाल[1] को कहने लगा कि, आपके ससुर के महल व किले में सुलतान रहता है सो आपको छीन लेना चाहिये। इसका कहना जगमाल को भी पसन्द आया। एक दिन राव सुलतान तो कहीं बाहर गया था और पीछे से जगमाल ने उसके मकानों पर हमला किया लेकिन कामयाबी हासिल नहीं हुई, जिसकी शर्मिन्दगी से जगमाल ने दिल्ली जाकर बादशाह अकबर को अपनी बीती हुई घटनाऐं कह सुनाई।

बादशाह ने मदद के लिये उसको फौज दी और वह शाही फौज लेकर सिरोही आया। इसका आना सुनकर राव सुलतान आबू के पहाड़ों में जा बैठा। जगमाल कुल राज्य का मालिक होकर सिरोही के किले में रहने लगा। लेकिन देवड़ा विजा की सलाह से राव रायसिंह चन्द्रसेणोत व कोलीसिंह दांतीवाड़ा वाले को शाही फौज सहित साथ लेकर जगमाल ने राव सुलतान पर चढाई की। देवड़ा विजा हरराजोत व राठोड़ खींवा मांडणोत को राव सुलतान के राजपूतों पर दूसरी तरफ विदा किया। जब विजा हरराजोत ने महाराज जगमाल से कहा कि, "मैं आपसे जुदा हूंगा तो राव सुलतान आपकी तरफ जरूर आवेगा।" तब राठोड़ रायसिंह चन्द्रसेणोत ने जवाब दिया कि "क्या जहां मुर्गा होता है, वहीं फज्र (सवेरा) होती है? यह सुनकर देवड़ा विजा तो दूसरे पहाड़ों की तरफ राव सुलतान के राजपूतों से लड़ने को गया, लेकिन राव सुलतान व देवड़ा समरा ने अपनी सेना सहित कार्तिक शुक्ल 11, 1640 वि० (10 शव्वाल 991 हि०=27 अक्तूबर, 1583 ई०) को धावा कर विजय पाई। महाराज जगमाल लड़ाई में मारा गया और बहुत से सरदार उसके साथ काम आये, जिनके नाम नीचे लिखे जाये हैं—

राव रायसिंह चन्द्रसेणोत, दांतीवाड़ा का कोलीसिंह, गोपालदास किशनदासोत गांगावत राठोड़, सादूल (शार्दूल) महेसोत कूंपावत, राठौड़ पूर्णमल्ल मांडणोत कूंपावत, राठोड़ लूणकर्ण सुरताणोत गांगावत, राठौड़ केसरदास ईसरदासोत, चौहान शेखा भांभणोत, पड़ियार गोरा राघावत, पड़ियार भाण अभावत, देवा ऊदावत, भाटी नेतसी, मांगलिया जयमल,

---

1. जगमाल की स्त्री देवड़ी भी हमेशा रो-रो कर अपने पति से कहती कि, मेरे बाप के रहने की जगह से सुलतान को निकाल देना चाहिये।

वि०[1] (11 मुहर्रम 947 हि० = 28 मई, 1540 ई०) में और राज्याभिषेक फाल्गुन शुक्ल 15, 1628 वि० (13 शव्वाल, 979 हि० = 9 मार्च, 1572 ई०) को हुआ था।

महाराणा का कद लम्बा और पुष्ट, आंखें बड़ी, चेहरा और मूंछें बड़ी, हाथ लम्बे और सीना चौड़ा था। पुराने रिवाज के अनुसार डाढ़ी नहीं रखते थे, रंग गेहुंआ था। चेहरे पर ऐसा तेज था कि तस्वीर देख कर अब भी हर एक आदमी पर रोब छा जाता है। इनके बेटे अर्थात् महाराजकुमार नीचे लिखे अनुसार थे—

महाराणी अजबांदे पंवार के गर्भ से अमरसिंह और भगवानदास; महाराणी सोलंखिणी पूरबाई के गर्भ से सहसा और गोपाल; महाराणी चंपाबाई झाली के गर्भ से कचरा सांवलदास और दुर्जनसिंह; महाराणी जसोदाबाई चहुवान के गर्भ से कल्याणदास; महाराणी फूलबाई राठौड़ के गर्भ से चांदा व शेखा; महाराणी शाहमतीबाई हाड़ी के गर्भ से पूरा; महाराणी खीचण आसाबाई के गर्भ से हाथी और रामसिंह; महाराणी आलमदेबाई चहुवान के गर्भ से जसवन्तसिंह; महाराणी रत्नावतीबाई परमार के गर्भ से माना; महाराणी अमराबाई राठौड़ के गर्भ से नाथा और महाराणी लखाबाई राठौड़ के गर्भ से रायभाण।

महाराणा प्रतापसिंह की छत्री अर्थात् समाधि उदयपुर से दक्षिण की तरफ 17 कोस की दूरी पर प्रसाद ग्राम व जयसमुद्र के बीच चांवड में विद्यमान है।

---

1. अमर काव्य में, जो महाराणा राजसिंह के समय में बना है, जेष्ठ शुक्ल 13 (मंगवार, मई 18, 1540 ई०) लिखी है और नैणसी मुहंणोत के लिखने से 3 (ज्येष्ठ शुक्ल3 = रविवार, मई 9, 1540 ई०) मालूम होती हैं।
चण्डू ज्योतिषी के वंशजों के पास सुरक्षित प्राचीन जन्म-पत्रिका संग्रह में भी ज्येष्ठ शु० 3 तिथि मिली एवं गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसी को स्वीकार किया, तथा यही तिथि अब सर्वमान्य है। (सं०)

के साथ मेवाड़ पर भेजा। इन लोगों ने नये सिरे से हर एक जगह थाने जमा दिये।

एक दिन महाराणा प्रतापसिंह किसी पहाड पर फूस के झोंपड़ों में अपनी राणियों और बेटों सहित सो रहे थे कि, मेह बरसने लगा। उस समय महाराणा तो एक झोंपड़ी में तलवार हाथ में लिये सावधान बैठे थे और दूसरे छप्पर में कुंवर अमरसिंह मौजूद था। जब ऊपर से पानी टपकने लगा, तब कुंवराणी ने लम्बा सांस खेंच कर कहा कि, "हम इस दुःख से कभी पार उतरेंगे या नहीं ?" तब महाराजकुमार ने जवाब दिया कि, "हम क्या करें ? दाजीराज[1] के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते।" कुंवर और कुंवरानी की ये बातें सुनकर महाराणा प्रतापसिंह ने सवेरे सब सरदारों को इकट्ठा कर उनसे महाराजकुमार अमरसिंह के सामने रात की सुनी हुई बातों का इशारा जता कर कहा कि, "ऐ सरदार लोगों ! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरे बाद में यह अमरसिंह, जो दिल से आराम चाहता है, कभी तकलीफ नहीं उठावेगा, और मुसलमान बादशाहों के दिये हुए खिलअत पहनेगा और फरमान को अदब के साथ लेना और अधीनस्थ रहना स्वीकार करेगा। हमारे बेदाग वंश को अपने आराम के लिये दाग लगावेगा।" कुंवर अमरसिंह इस बात को सुनकर बहुत लज्जित हुआ, लेकिन अपने पिता के सामने कुछ न कह सका। दिल में दृढ़ निश्चय कर लिया कि, "मैं हर्गिज बादशाहों का आज्ञाकारी नहीं बनूंगा।"

महाराणा प्रतापसिंह का वैकुण्ठवास माघ शुक्ल 11, 1653 वि० (10 जमादियुस्सानी, 1005 हि० = 29 जनवरी, 1597 ई०) को 57 वर्ष की उम्र पाकर चावंड ग्राम में हुआ।[2] इनका जन्म जेष्ठ शुक्ल 13, 1596

को अजमेर की सूबेदारी दी गई, परन्तु सन् 1590 ई० के प्रारम्भ में ही बयाना में उनका देहान्त हो गया। (अकबरनामा, अं० अ०, भाग 3, पृ० 868)। (सं०)

1. "दाजीराज" शब्द मेवाड़ के राजा व राजवंशी अपने बाप के लिये बोलते हैं।
2. अबुलफजल ने महाराणा प्रताप की मृत्यु तिथि 7 बहमन, सन् जुलूस 41 तदनुसार जनवरी 16, 1597 ई० (O.S.) लिखी है। अकबरनामा, (अं० अ०) भाग 3, पृ० 1069। (सं०)

अध्याय—आठवां

महाराणा अमरसिंह प्रथम

इन महाराणा का राज्याभिषेक माघ शुक्ल 11, 1653 वि० (10 जमादियुस्सानी 1005 हि० = 29 जनवरी, 1597 ई०) को चांवड़ में हुआ। जिसका वृत्तांत इस तरह है कि, गद्दी पर बैठते ही इन्हें महाराणा प्रतापसिंह की वह बात याद आई जो उन्होंने ताने के साथ मुसलमानों की नौकरी करने व खिलअत पहनने के बारे में कही थी।

गद्दी पर बैठने के समय से ही महाराणा अमरसिंह ने तलवार से लड़ाई के अतिरिक्त और दूसरे सब काम स्थगित रखे। पहले इन्होंने कुल बादशाही थाने उठा कर मेवाड़ में अपना अमल जमाया, जिसका हाल बादशाह ने भी सुना।

बादशाह अकबर महाराणा प्रतापसिंह के देहान्त का हाल सुन कर बहुत फिक्र और हैरानी के साथ चुप हो रहा। यह हाल देख कर सब दरबारी लोगों को बड़ा अचम्भा हुआ कि, महाराणा प्रतापसिंह के मरने से बादशाह को खुश होना चाहिये न कि उदास। उस समय चारण दुरसा आढा ने मारवाड़ी भाषा में एक छप्पय कहा, जिसका उल्लेख सुन कर बादशाह ने उसको सामने बुलाया और उस छप्पय को सुना। लोगों ने समझा कि, बादशाह दुरसा से जरूर नाराज होगा। परन्तु अकबर ने इनाम देकर कहा कि, इस चारण ने प्रतापसिंह के मरने पर मेरे उदास होने के कारण को प्रकट कर दिया। वह छप्पय यह था—

छंद गीतिका— वसु नैन अंग शशांक वत्सर रान ऊदल पात भौं ।
जगमाल गद्दिय वैट ताहि उठाय पातल नाथ भौं ।।
फिर कच्छ राजकुमार मानहि रान भोजन कैन कौं ।
वढ़ि क्रोध त्यों भगवानदास महीप मेलन व्हैन कौं ।।1।।

वनि घोर युद्ध अथोर पातल मान हरदी घाठ पैं ।
तव क्रोध वोधहि सोंध शाह अनेक जोधन दाट पैं ।
मेवार आगम धार दुग्ग पहार घेरन फेर को ।
भट सेन साजरु शाहवाज विरोध कुम्भलमेर को ।।2।।

इसलाम और प्रताप युद्ध विरुद्ध सेन पलाय कैं ।
लघु सव्ज खेत निहार खेतियकार मार मलाय कैं ।
जगमाल अर्बुदनाथ होय विरोध जुज्भ शताप भौ ।
परलोक वास प्रताप तें इसलाम सेन अताप भौ ।।3।।

इतिहास अकवरशाह[1] रीतिरु नीति प्रीति विलेखतें ।
उर वृत्त सज्जन रान होन प्रकाश लेखन लेखतें ।।
कविराज श्यामलदास ने फतमाल शासन मान कैं ।
यह ग्रन्थ वीर विनोद खंड प्रताप पूरन ठानि कैं ।।4।।

---

1. महाराणा प्रताप के विवरण के साथ कविराजा श्यामलदास में मुगल वादशाह अकवर का विवरण भी लिख दिया है जो सम्पादित संस्करण के अंतिम भाग में लिखा जावेगा। (सं०)

लूट कर पहाड़ों में चला आया। इनका काम यही था कि धावा मार कर पहाड़ों में चले आवें।

बादशाही फौज के काबू में महाराणा नहीं आया, तब बादशाह तो दक्षिण की तरफ विद्रोह सुन कर चला गया और शाहजादा सलीम को राजा मानसिंह कछवाहा सहित अजमेर में छोड़ा, परन्तु शाहजादा आगरा होता हुआ प्रयाग की तरफ चला गया। यहां बादशाही फौज के ऊंटाला, मोही, मदारिया, कोसीथल, बागौर, मांडल, मांडलगढ़ और चित्तौड़ वगैरा में थाने बैठ गये।

1957 वि० (1009 हि० = 1600 ई०) में महाराणा अमरसिंह ने मेवाड़ के बादशाही थानों पर हमला करने की तैयारी कर पहले ऊंटाला के थानेदार कायमखां मुगल पर चढाई की और ग्राम ऊंटाला को घेर लिया। शाही फौज के बहादुरों ने भी लड़ाई के लिये महाराणा की पेशवाई की और खूब मुकाबला होकर दोनों तरफ के सैकड़ों आदमी मारे गये। कायमखांन मुगल को खुद महाराणा ने मारा। शाही फौज के बहुत से भाग कर बिखर गये और बहुतसों ने ऊंटाला की गढ़ी का सहारा लिया। जब महाराणा ने अपने बहादुर राजपूतों को किले पर हमला करने का हुक्म दिया, तो शाही सेवकों ने भी किले से तीर, बन्दूक चलाना शुरू किया। जिससे मेवाड़ की फौज के सैकड़ों आदमी निशाना बन कर मारे गये।[1]

महाराणा की फौज में कायदा (परम्परा) था कि हरावल में चूंडावत और चन्दावल में (फौज के पीछे) शक्तिसिंह के बेटे पोते शक्तावत रहें। इस बात से चूंडावत हर एक बात में शक्तावतों को ताना दिया करते थे। इस वक्त महाराणा अमरसिंह ने हुक्म दिया कि ऊंटाला के किले में जो हमारी फतह का निशान पहले स्थापित करेगा, उसी के नाम पर हरावल होगी। यह आदेश सुन कर शक्तावत व चूंडावत दोनों समूहों के सरदार अपनी-अपनी सेना सहित किले की तरफ चले। बल्लू शक्तावत[2]

---

1. अमरकाव्य में यह हमला सम्वत् 1664 वि० के बाद लिखा है।
2. बल्लू शक्तावत, महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह का तीसरा पुत्र। (सं०)

छप्पय—अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अण नामी ।
गो आडा गवड़ाय, जिको वहतो धुर वामी ॥
नव रोजै नह गयौ, न गो आतशां नवल्ली ।
न गो भरोखा हेठ, जेथ दुनियाण दहल्ली ॥
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी ।
निसास मूक भरिया नयण, तो मृत शाहप्रतापसी ॥1॥

अर्थ—अपने घोड़े को दाग[1] नहीं लगवाया, अपनी पाघ (सिर) क
किसी के सामने नहीं झुकाया। आडा[2] गवाता हुआ चला गया जो कि
हिन्दुस्तान के भार की गाड़ी को वांई तरफ से खेंचने वाला था।[3] "नौरोज"
के जलसे में कभी नहीं गया, नये आतश (वादशाही डेरों) में नहीं गया
ऐसे झरोखे के नीचे नहीं आया जिसका प्रभुत्व दुनिया पर फैला हुआ था
इस तरह का गहलोत राणा (प्रतापसिंह) विजयी होकर चला गया। जिस
वादशाह ने जवान को दांतों में दवाया और वह ठंडा श्वास लेकर आंखों
पानी भर लिया। ऐ प्रतापसिंह ! तेरे मरने से ऐसा हुआ।

जब वादशाह ने वहुत दिनों तक महाराणा अमरसिंह का जोर-शो
सुना तो विक्रमी 1655 (1007 हि०=1598 ई०) में मेवाड़ पर चढा
की। महाराणा भी सामना करने की तैयारी में व्यस्त हुआ। पहले वादशा
ने फौज भेजी और फिर आप स्वयं भी उदयपुर की तरफ चला। महाराण
ने वादशाही फौज पर कई वार हमले किये और वहुत से वादशाही परग

---

1. वादशाही दस्तूर से उन घोड़ों के पुट्ठे पर दाग लगाया जाता था
जो वादशाही फौज में नौकरी देते थे।
2. राजपूताना में अव तक रिवाज है कि—ऐसी कविता की जाती
जिसमें उससे अनवन रखने वाले पर ताना हो। प्रतापसिंह के साम
इस तरह के सोरठे ढोली गाया करते थे, जैसा कि—

सोरठा—अकवर घोर अंधार, ऊंघाणा हीन्दू अवर।
जागे जग दातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥1॥
अइरे अकवरियाह, तेज तुहालो तुर्कड़ा।
नय नय नीसरियाह, राण विना सहराजवी ॥2॥

3. वहादुर राजपूतों को राजपूताना के कवि यह उपमा देते हैं।

फौज में रहकर शाही मुलाजिमों पर हमेशा हमला करता रहा। इस समय भी उसने सब से बढ़ कर बहादुरी दिखलाई। जिस पर बादशाह ने शाहरुख को हुक्म दिया कि, उग्रसेन को बहुत बड़ी सजा देकर उसका प्रदेश छीन लेना चाहिये। शाहरुख ने आंबेर वाले राजा भारमल के बेटे, राजा जगन्नाथ को बहुत सी फौज देकर मांडल के थाने पर नियुक्त किया और आप चित्तौड़ होता हुआ बांसवाड़ा पहुँचा। वहां रावल उग्रसेन ने सामना किया, जिसमें सैकड़ों राजपूत और मुसलमान मारे गये। शाहरुख विजयी होकर बांसवाड़ा में ठहरा और रावल उग्रसेन ने वहां से निकल कर शाही प्रदेश मालवा को लूटना शुरू किया। बहुत से शाही सेवकों को मारा और प्रजा से दण्ड लिया। यह खबर सुन कर शाहरुख अपनी फौज सहित मालवा की तरफ चला। तब उग्रसेन ने मालवा से लौट कर अपने प्रदेश पर अधिकार कर लिया। शाहरुख ने फिर पहाड़ों की तरफ रुख नहीं किया।

अब थोड़ा सा हाल महाराज सगर का लिखा जाता है जो महाराणा प्रतापसिंह के समय में नाराज होकर दिल्ली[1] चला गया था।

महाराज जगमाल महाराणी भटियाणी के गर्भ से उत्पन्न महाराणा उदयसिंह का बेटा था। जिसका जन्म रविवार, प्रथम आसाढ कृष्ण 5, 1611 वि०[2] (18 जमादियुस्सानी, 961 हि० = 21 मई, 1554 ई०) को और उसके छोटे भाई सगर का जन्म भाद्रपद कृष्ण 3, 1613 वि० (17 रमजान, 963 हि० = 25 जुलाई, 1556 ई०) को हुआ था।

जब महाराज जगमाल जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, सिरोही में राव सुलतान से लड़ कर मारा गया तो उसका छोटा भाई सगर महाराणा के पास ही रहा। महाराणा अमरसिंह ने[3] अपनी बाई का सम्बन्ध करने

---

1. यहाँ आगरा होना चाहिये, क्योंकि तब मुगल साम्राज्य की राजधानी आगरा ही थी। (सं०)
2. मुहता नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 23। (सं०)
3. यहां महाराणा प्रताप का उल्लेख होना चाहिये। जिसने अपनी पोती व युवराज अमरसिंह की पुत्री की शादी सिरोही के राव सुल्तान के साथ की थी। (सं०)

दरवाजे की तरफ गया और रावत जैतसिंह कृष्णावत[1] दीवार की तरफ। वल्लू शक्तावत ने अपने हाथी के महावत से कहा कि, "हाथी को हूल कर दरवाजे के किवाड़ तुड़वा।" हाथीवान ने कहा कि, "हाथी मुकना (बिना दांत का) है, और किवाड़ों में भाले लगे हैं। इसलिये टक्कर नहीं मारता।" रावत वल्लू ने किवाड़ के भालों पर खड़े होकर हाथीवान को कहा कि, "मेरे बदन पर हाथी को हूल दे। नहीं तो तुझको मार डालूंगा।" उसने वैसा ही किया। जब कि वल्लू के बदन पर हाथी झुका तो उसी वक्त रावत जैतसिंह कृष्णावत सीढी लगा कर दीवार पर चढा और किलेवालों की तरफ से उसकी छाती में गोली लगी। जब वह सीढी से गिरने लगा तो अपने साथियों से कहा कि, "मेरा सिर काट कर किले में फेंक दो।" जिस पर उसके राजपूतों ने वैसा ही किया और सीढियों से चूंडावत किले पर चढ़ गये। शक्तावत भी किवाड़ तोड़ कर भीतर चले आये। किला फतह हुआ। शाही सेवक व कर्मचारी अधिकांश तो मारे गये और बहुत से पकड़ लिये गये। महाराणा ने शक्तावतों और चूंडावतों की तारीफ कर उनकी इज्जतें बढाई। हरावल चूंडावतों की साबित रही। इस लड़ाई में रावत जैतसिंह, शक्तावत वल्लू, रावत तेजसिंह खंगारोत[2] के अतिरिक्त और भी बहुत से बहादुर मारे गये।

इसके बाद यहां से कूच कर महाराणा अमरसिंह मांडल और बागौर वगैरा के थाने उठाते हुवे मालपुरा तक पहुंचे। कितनेक शाही थानेदार लड़े और कितने ही भाग कर अजमेर चले गये।

बादशाह ने यह खबर सुनकर मिर्जा शाहरुख को बड़ी फौज के साथ मेवाड़ की तरफ विदा किया। महाराणा मालपुरा से लौट कर वापस उदयपुर चला आया। बादशाह को बांसवाड़ा वाले रावल उग्रसेन पर अधिक गुस्सा आया। क्योंकि डूंगरपुर और बांसवाड़ा (बांसवाला) के दोनों रावल पहले से बादशाह अकबर के नौकर हो चुके थे, किन्तु मानसिंह जो बांसवाड़ा का मालिक बन गया था, उसको उठा कर महाराणा प्रतापसिंह ने रावल उग्रसेन को गद्दी पर बैठा दिया था। इसलिये उग्रसेन महाराणा

---

1. सलूंबर वालों का पूर्वज। (सं०)
2 चूंडा के प्रपौत्र खंगार के पुत्र किशना का बेटा। (सं०)

का वरसना बंद हो गया ?" उन्होंने कहा कि, नहीं हुआ। तव कुंवर ने उठ कर झरोखे से निगाह डाली, तो विजली की रोशनी से परनाले की धार के नीचे घास पड़ी हुई दिखाई दी। वह उस सिपाही की इस कार्यवाही से खुश हुआ और सोचा कि, यह आदमी गरीव सिपाही नहीं है। किसी वड़े घराने का वेटा या किसी अमीर का खास मुसाहिव है। जो किसी कठिनाई के कारण इस स्थिति को पहुँचा है। एक लौंड़ी से कहा कि, "नीचे जाकर इससे पूछताछ कर कि तेरा नाम, ग्राम और खानदान क्या है ?" उसने पूछताछ की तो सगरा सिसोदिया मालूम हुआ। मानसिंह को शक हुआ कि, महाराज सगर तो नहीं है। तव कुंवरानी ने अपनी धाय को भेजा, जो सगर को वचपन से पहचानती थी। उसने भटियाणी के हुक्म से उसको जाकर आवाज दी कि, "तुम्हारा नाम क्या है ?" सगर ने जवाव दिया कि, "तुमको मेरे नाम से क्या काम है ? अगर कोई काम हो तो कहो।" उसकी आवाज पहचान कर धाय नजदीक गई और प्रकाश में पूरा पहचान कर गले लिपट गई और कहा कि, "ओ हो लालजी ! तुम्हारी यह क्या हालत है ?"

धाय की यह आवाज सुनकर कुंवर मानसिंह भी नीचे दौड़ा आया और सगर का हाथ पकड़ कर महल में ले गया। जहां सव हाल पूछा। सगर ने जो गुजरा था, कह सुनाया। इसके वाद अपनी मौसी से मिला। मानसिंह ने पोशाक मंगा कर उसको पहनाई और प्रकट रूप से अपने पास रखने लगा। कुछ समय वाद महाराजा मानसिंह वादशाही सेवा में दिल्ली जाने लगा। तव सगर से कहा कि, "आप अगर अपने दिल की अभिलाषा पूरी करना चाहें तो वादशाही नौकरी के विना कुछ भी नहीं हो सकता।" यह समझा कर उसे अपने साथ ले गया। सगर ने वादशाह के सामने भी अपनी सव आप वीती कह सुनाई। जिस पर वादशाह ने कहा कि, "हम अपनी कृपा से तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे।"

देवड़ा विजा भी महाराज सगर के पास उपस्थित हो गया था। एक दिन वादशाह ने जोधपुर के महाराजा उदयसिंह से, जिसको मोटा राजा भी कहते थे, कहा कि, "हम जामवेग को फौज देकर तुम्हारे साथ भेजते हैं और सगर भी तुम्हारे साथ जावेगा। तुम्हारे भतीजे रायसिंह चन्द्रसेणोत और सगर के भाई जगमाल को सिरोही के देवड़ों ने मार डाला था। सो तुम लोग भी शाही मदद लेकर उनको नष्ट करो।" जव महाराजा उदयसिंह,

लिये सिरोही के राव सुलतान को कहलाया। यह बात सुन कर महाराज सगर ने महाराणा प्रतापसिंह से अर्ज की कि, "हमने भी इसी घर में जन्म लिया है। आप हमारे मालिक और हम आपके अधीनस्थ भाई हैं। मेरे बड़े भाई जगमाल जिसको सिरोही के राव सुलतान व देवड़ा समरा, सूरा ने मार डाला, उसकी चिता हमारे कलेजे में जल रही है और आप अपनी बाई का सम्बन्ध हमारे शत्रु सिरोही के राव के साथ करते हैं। तो हमारा वैर लेने वाला कौन है?" यह सुनकर महाराणा प्रतापसिंह (जगमाल के गद्दीनशीन होने की बात को याद करके) कहा कि, "कुल सीसोदिये हमारे भाई हैं। जिनमें से बहुत से मारे जाते हैं। हम किस किसका वैर लेते फिरें। इसके अतिरिक्त हम राजाओं के सामने सब राजपूत बराबर हैं।" सगर ने उठ कर सलाम किया कि, "हमको रुखसत हो।" महाराणा ने कहा कि, "बेशक चले जाओ, तुम्हारे जाने से हमारा कोई हर्ज नहीं। लेकिन इस तर्ज पर जाना तभी समझा जावे कि, आप खुद अपने पराक्रम से प्रसिद्धि प्राप्त करो। अन्यथा यह स्पष्ट है कि, हमारे घराने के नाम से दिल्ली जाकर मुसलमानों की नौकरी करके पेट भरोगे।"

इस बात को सुन कर सगर चुपचाप अपने मकान पर चला आया। किसी को कुछ भेद नहीं दिया। आधी रात के समय एक तलवार हाथ में लेकर अकेला पैदल ही चल दिया और आंबेर के कुंवर मानसिंह के सिपाहियों में जाकर नौकरी करली। बहुत समय बीत जाने के बाद एक दिन सगर आंबेर के महलों के नीचे रात के समय पहरा दे रहा था और राजा मानसिंह महाराणी भटियाणी के साथ महल में सो रहा था। यह भटियाणी रावल लूणकरण भाटी की उन दो बेटियों में से एक थी, जिनमें से बड़ी बहिन की शादी महाराणा उदयसिंह के साथ हुई थी और जिसके गर्भ से जगमाल, सगर वगैरा पांच बेटे पैदा हुए। छोटी की शादी मानसिंह के साथ हुई थी। वही भटियाणी, सगर की मौसी, कुंवर मानसिंह के पास उपस्थित थीं। अन्धेरी रात के समय मूसलाधार मेह बरस रहा था। महल की छत के परनाले से नीचे पत्थरों पर पानी गिरने की जोर से आवाज सुन कर सगर ने दिल में सोचा कि, इस समय कुंवर और कुंवरानी दोनों खुशी में है। इस परनाले के पानी की आवाज उनको बेशक बुरी मालूम होती होगी। सगर ने घोड़ों की अश्वशाला से घास लाकर पानी की उस धार के नीचे डाल दिया। जिससे वह आवाज बंद हो गई। कुंवर ने लौंडियों से पूछा कि, "क्या पानी

महाराज सगर ने आदाव बजा लाकर नज्र दी। लेकिन राणा का खिताब नाम मात्र के लिये था। फिर अकबर ने मेवाड़ की तरफ कोई बड़ी चढाई नहीं की। इससे महाराणा अमरसिंह को फुरसत मिली और मेवाड़ को आबाद करने लगा। फिर बादशाह अकबर का देहान्त हो गया।[1]

अकबर के बाद शाहजादा सलीम तख्त पर बैठा। उसने अपना लकब (पदवी) "नूरुद्दीन मुहम्मद जहांगीर" रखा। उसने तख्त पर बैठते ही अपने बाप की उस अभिलाषा को, जिसे वह दिल में रख कर मरा था, याद किया तथा कहा कि, "उदयपुर के राणा की मुहिम मेरे बाप ने मेरे नाम लिख दी थी। इसलिये मुझे पहले इसी काम को करना जरूरी है।" ऐसा दस्तूर भी है कि, जब कोई राजा या बादशाह तख्तनशीन होता (गद्दी पर बैठता) है, तो अपना प्रभाव जमाने के लिये किसी कठिन काम में हाथ डालता है।

1662 विक्रमी के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष (रजब, 1014 हि० = नवम्बर, 1605 ई०) में बादशाह जहांगीर ने अपने शाहजादा परवेज को महाराणा अमरसिंह पर चढ़ाई के लिये भेजा और उसके साथ नीचे लिखे सरदार किये।[2]

आसिफखां वजीर, अब्दुर्रज्जाक मामूरी बख्शी, आसिफखां का चाचा दीवान मुख्तारबेग, राजा भारमल का बेटा जगन्नाथ, महाराणा उदयसिंह का बेटा राणा सगर, राजा मानसिंह कछवाहा का भाई माधवसिंह, रायमल शेखावत, शेखरुकुनुद्दीन पठान, शेरखां, अबुलफजल का बेटा शेख अब्दुर्रहमान, राजा मानसिंह का पोता महासिंह, सादिकखां का बेटा जाहिदखां, वजीर जमील, कराखां तुर्कमान, मनोहरसिंह[3] शेखावत और 1000 अहदी। इन

---

1. बादशाह अकबर की मृत्यु 4 अजर, ईलाही सन् 50 तदनुसार जमादि उस्सानी 13, 1014 हि० (अक्तूबर 17, 1605 ई० = मार्गशीर्ष कृष्ण 1, 1662 वि०) को हुआ था। (सं०)
2. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 16-17। (सं०)
3. यह राव मनोहरसिंह फारसी भाषा अच्छी जानता था और उसमें शायरी भी करता था। बादशाह जहांगीर ने प्रशंसा के साथ जिसका

सगर, जामबेग व देवड़ा विजा फौज लेकर सिरोही आये तो वहां राव सुलतान ने इनसे लड़ाई की। जिसमें देवड़ा समरा नरसिंहोत बड़ी बहादुरी से लड़कर मारा गया। देवड़ा पत्ता सावन्तसिंहोत, तोगा सूरावत और चींवा व जैता खीमावत आदि राव सुलतान के बहुत से राजपूत मारे गये। उस समय राव सुलतान निकल कर पहाड़ों में चला गया। देवड़ा विजा मारा गया। तब सगर अपने घायल राजपूतों को उठाने और दुश्मन के घायलों को मारने लगा। राव सुलतान के नेगी चारण दुरसा आढा को घायल पड़ा देख कर सगर ने कहा कि, "यह देवड़ों का कोई बड़ा सरदार है। इसको भी दूध पिलाना[1] चाहिये।" तब दुरसा ने कहा कि, "मैं चारण हूं। तुमको राजपूत होकर मुझे मारना उचित नहीं।" सगर ने कहा कि, "समधी थोड़े जीने के लिये दूसरे की औलाद बनना बहादुरों का काम नहीं है।" इस पर दुरसा ने कहा कि, "मैं सचमुच चारण हूँ।" सगर ने जवाब दिया कि "तुम सच ही चारण हो, तो यह समरा देवड़ा जो अभी अच्छी तरह बहादुरी से मारा गया है। उसकी प्रशंसा में कोई दोहा कहो।" उसने भी उसी समय मारवाड़ी भाषा में यह दोहा कहा—

दोहा—धर रावां जस डूंगरां, वृद पोतां सत्र हाण।
समरे मरण सुधारियो. चहूँ थोकां चहुँवाण ॥ 1 ॥

अर्थ—समरा ने चारों तरफ से अपना मरण सुधारा। सिरोही के रावों की जमीन मजबूत की। पहाड़ों की तारीफ करवाई कि, जिनमें रह कर कई लड़ाईयां कीं। अपने बेटे पोतों को इस बात का अभिमान दिया कि, हमारा बुजुर्ग प्रसिद्ध था और शत्रुओं को नुकशान पहुंचाया।"

सगर ने दुरसा को पालकी में बैठा कर उसकी हिफाजत करवाई। सिरोही के प्रदेश को तहस-नहस कर महाराजा उदयसिंह जोधपुर और महाराज सगर दिल्ली गये। बादशाह अकबर ने इसको अपने पास रखा और कहा कि, "तुमको हम उदयपुर का राणा बना देवेंगे। क्योंकि तुम्हारे भाई जगमाल की यही अभिलाषा थी जो कि, पूरी नहीं हुई। अब यह काम तुम पूरा करो और राणा अमरसिंह को अपना अधीनस्थ बनाओ आज से हमने तुमको "राणा" का खिताब दिया।"

---

1. दूध पिलाने से इशारा मारने का है। हिन्दुओं के धार्मिक विश्वास से यह शरीर छोड़ कर दूसरा जन्म लेवे और अपनी मां का दूध पीवे।

तो वादशाही खालसे में सम्मिलित किया गया। मेवाड़ का चित्तौड़ से पश्चिम की तरफ का भाग विलकुल वीरान पड़ा था। केवल पहाड़ी प्रदेश महाराणा अमरसिंह के अधिकार में रहा। केवल चित्तौड़ से पूर्वी इलाका कुछ खैराड़, आंतरी और थोड़ासा मालवा का टुकड़ा ही सगर की जागीर में था। वादशाही मुलाजिमों ने कहा कि हम मददगार हैं अपने प्रदेश को आवाद करके आप अपने अधिकार में लाओ। लेकिन सगर से यह कब हो सकता था।

चित्तौड़ और उदयपुर के बीच की जमीन को राजपूत और मुसलमान बहादुरों के बलिदान की भूमि कहना चाहिये। क्योंकि कोई दिन ऐसा नहीं जाता था कि, मेवाड़ी राजपूतों ने शाही मुलाजिमों पर हमला न किया हो। गुजरात, मालवा व अजमेर का शाही मुल्क लूट-लूट कर मेवाड़ी राजपूत अपना और अपने मालिक का खर्च चलाते थे। कभी शाही फौज के बहादुर पहाड़ों में घुस कर राजपूतों को कैद व कत्ल करते थे, कभी मेवाड़ी बहादुर वादशाही वहादुरों को मार कर हटा देते थे।

1663 वि० के चैत्र शुक्ल पक्ष (1014 हि० जिलहिज=1606 ई० मार्च) में शाहजादा परवेज चारों तरफ की शाही फौज को मिला कर ऊंटाला और देवारी (देवड़ा बारी) के मध्य आया। महाराणा अमरसिंह ने भी अपने कुल राजपूतों को इकट्ठा करके शाही फौज पर हमला करने का विचार किया। पानड़वा के भील सरदार पूंजा राणा के बेटे (रामा) को हजारों भीलों का सेनापति बना कर पहाड़ों में अपनी फौज का मददगार और शाही फौज की रसद लूटने के लिये नियुक्त किया। रात के समय शाही सेना पर महाराणा अमरसिंह ने हमला किया। इस हमले से दोनों तरफ के बहादुरों ने अपने खून से जमीन को लाल कर दिया। वादशाही सेना का बहुत नुकसान हुआ, शाहजादा परवेज भाग कर मांडल की तरफ चला गया।

इस लड़ाई का उल्लेख फारसी इतिहास ग्रंथों में कहीं भी नहीं लिखा। केवल बहुत से हमलों का होना लिख कर लिखा है कि, 1663 वि० के वैशाख (1015 हि० के मुहर्रम=1606 ई० अप्रैल) में जहांगीर ने परवेज को खुसरो के विद्रोह के कारण आगरा की सुरक्षा के लिये बुला लिया। अतः वह मेवाड़ की मुहिम पर वादशाही फौज कितने ही सरदारों को सौंप कर महाराणा अमरसिंह के बेटे वाघसिंह को लेकर लाहौर में उपस्थित हुआ।[1]

1. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 70, 74 (सं०)

सब को अपने-अपने सैनिक दलों सहित शाहजादा के साथ कर दिया। बादशाह जहांगीर अपनी किताब "तुजुक-इ-जहांगीरी" में लिखता[1] है कि, "मेरे बाप की अभिलाषा पूरी करने के लिये मैंने मेरे जुलूस के मौके पर जो बड़े-बड़े मनसबदार मय अपनी जमइयतों के इकट्ठे हो गये थे, उन सब उमरावों को मैंने इस बड़ी मुहिम पर भेज दिया।"

इस तरह परवेज ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। महाराणा अमरसिंह ने पहले तो अपने देश को उजाड़ कर दिया कि, जिससे शाही सेना को खाने पीने की रसद नहीं मिले। जब शाहजादा परवेज की फौज के कई हिस्से होकर अजमेर से मेवाड़ की तरफ रवाना हुए तो महाराणा के बहादुर राजपूतों ने भी देसूरी, बदनौर, माण्डल, मांडलगढ़, चित्तौड़ की तलहटी की शाही फौजों पर हमला करना शुरू किया। इन लड़ाईयों में माण्डल पर अचलदास चूंडावत[2] व बसी के पहाड़ों में जयमल सांगावत[3] वगैरा बहुत से राजपूत शत्रुओं को मार कर मारे गये तथा शाहजादा परवेज ने शाही हुक्म के अनुसार राणा सगर को राणा बना कर चित्तौड़ में गद्दी पर बैठाया और अपने दादा अकबर के वचन को पूरा किया। सगर भी अपने बड़े भाई जगमाल का इरादा पूरा करने के लिये मेवाड़ का राजा बन कर चित्तौड़ पर चंवर उड़वाने लगा। लेकिन यह ऐसा राजा था कि, "काग हंस की चाल चलने लगा, सो अपनी भी भूल गया।" क्योंकि जो मेवाड़ के अधीन का आबाद प्रदेश था – जैसे बदनौर, हुरड़ा, मांडल, जहाजपुर, मांडलगढ़, वह सब

एक शेर अपनी किताब में लिखा है—
गरज जि खिल्कति सायह हमी बुवद कि कसे।
व नूरि हज्रति खुर्शेद पाय खुद न निहद।
अर्थ का दोहा
चरण दैन रवि किरण पै, दोष जान करतार।
यह छाया पैदा करी, हरज मिटावन हार॥

1. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 16 (सं०)
2. अचलदास गोइंददास सता कांधलोत चूंडावत, मेघसिंह का छोटा भाई। (सं०)
3. जयमल सांगावत – सांगा सिंघ कांधलोत चूंडावत का सबसे छोटा पुत्र। (सं०)

बादशाह ने महाबतखां को तीन हजारी जात और 2500 सवार का मनसब दिया। खिलअत, घोड़ा, हाथी और पटका, जड़ाऊ खंजर इनायत किया। दूसरे उमरावों को, जो उसके साथ थे, इनाम देकर विदा किया।[1] महाबतखां बड़े गर्व के साथ शाहजादा परवेज की सेना की खराबी का बदला लेना चाहता था। वह अजमेर से निकल कर मेवाड़ में जगह-जगह शाही थाने बैठाता हुआ ऊंटाला तक पहुँचा। यहां अपनी फौज को संगठित करके पहाड़ों में होकर महाराणा अमरसिंह को विजित करना चाहता था। उसी समय में जब उसको दो तीन दिन इस पड़ाव पर नहीं गुजरे होंगे कि, महाराणा अमरसिंह ने पहाड़ों से उदयपुर में आकर अपने राजपूतों को शाही फौज पर हमला करने का हुक्म दिया और आप भी पहाड़ों से बाहर निकला।

रात का समय था। रावत मेघसिंह गोविन्ददासोत चूंडावत ने अपनी होशियारी से एक रणनीति सोच कर अपने दस बीस राजपूतों को कीरों के भेस में भैंसों के साथ कर शाही सेना में भेज दिया। उन भैंसों पर खरबूजों के बदले जो वे लोग बेचा करते हैं, अतिशबाजी भर दी। जब वे लोग अपने भैंसों को लेकर शाही सेना में महाबतखां की ड्योढी के पास पहुँचे, तो रावत मेघसिंह ने दस बीस आदमियों को गाय व बैलों के सींगों से फलीते बन्धवा कर तीन तरफ से शाही फौज की तरफ चलाया। महाबतखां की ड्योढी पर उन राजपूतों ने भैंसों की अतिशबाजी में आग डाली। जंगल में बहुतसी रोशनी दिखाई देने से वे लोग घबराकर भागने लगे। हर एक को यह विश्वास हो गया कि बड़ी भारी सेना आ पहुंची। जिधर जिसका मुंह उठा भाग निकला।

रावत मेघसिंह ने अपने पांच सौ सवारों से शाही सेना पर हमला कर दिया। जिससे नवाब महाबतखां को भी भागना पड़ा।[2] इस खबर के मिलते ही मेवाड़ के सभी सरदारों ने शाही फौज का पीछा किया। कहते हैं कि, उसी रात में जितने थाने महाबतखां ने बैठाये थे, वे सब भाग गये।

---

1. 24 रबीउल् आखिर, 1017 हि० (बुधवार, प्र० भादवा वदि 11, 1665 वि० = जुलाई 27, 1608 ई०) के दिन महाबतखां को रवाना किया था। बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग I, पृ० 147। (सं०)
2. बेनी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ जहांगीर, पृ० 232। (सं०)

बल्कि जहांगीर बादशाह ने अपने तुजुक में शाहजादा परवेज की इस लड़ाई में विजयी होना लिखा है। लेकिन इस लड़ाई का हाल राजपूताना की बहुतसी पोथियों में लिखा है, जिसकी तस्दीक ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी लेफ्टिनेण्ट कर्नल अलिग्जेण्डर डाऊ की हिन्दुस्तान की तवारीख[1] की तीसरी जिल्द के 43 वें पृष्ठ से स्पष्ट है। डाऊ लिखता है कि, "परवेज से बहुत नाराज होकर जहांगीर ने उसको वली अहद (युवराज पद) के अधिकार से अपदस्थ कर दिया तथा शाही कर्मचारियों ने अलग-अलग चिट्ठियां बादशाह को लिखी जिनमें एक दूसरे पर दोषारोपण किया गया था।"

कर्नल डाऊ के अनुसार ही कर्नल टॉड भी अपनी किताब में परवेज का पराजित होना लिखता है। लेकिन हमारे लिखने के विपरीत वह यह लड़ाई कुम्भलगढ़ के स्थान पर खमनोर में होना लिखता है।

महाराज सगर ने चित्तौड़ पर नये उमराव और सरदार बनाना शुरू किया। महाराणा उदयसिंह के पड़पोते शक्तिसिंह के पोते अचलदास के बेटे नारायणदास को 84 गांवो सहित बैंगू और 84 गांव सहित रतनगढ़ जागीर में दिया।

बादशाह जहांगीर ने मुइज्जुल् मुल्क को बख्शी बना कर मेवाड़ पर भेजा। इसी फौज ने मिर्जा शाहरुख के पुत्र बदीउज्जमां को गिरफ्तार किया जो मालवा में कुछ उपद्रव खड़ा कर महाराणा अमरसिंह से मिलना चाहता था। इस सेना ने भी बहुतसी दौड़ धूप की। लेकित बादशाह का असली मतलब पूरा नहीं हुआ। तब बादशाह जहांगीर ने 1665 वि० चैत्र शुक्ल पक्ष (जिलहिज, 1016 हि०=1608 ई० मार्च) में महाबतखां को नीचे लिखी हुई सुसज्जित बहुसंख्यक सेना देकर मेवाड पर भेजा। 12000 जंगी सवार और सरदार लड़ने वाले 500 पैदल, 2000 बरकन्दाज, 10 तोप गजनाल और शुतरनाल 60 हाथी व 20,00,000 लाख रुपये का कोष।[2]

---

1. हिस्ट्री ऑफ हिन्दुस्तान, एलक्जेण्डर डाऊ कृत।
2. जून, 1608 ई० के दूसरे सप्ताह में नियुक्त किया था। बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 146; जहांगीर० (हिन्दी) पृ० 216। (सं०)

जाती थी। जिसकी खबर अम्बाव के पहाड़ों में महाराणा अमरसिंह को मिली। उस समय कुंवर कर्णसिंह नीचे लिखे हुए राजपूतों को साथ लेकर चढ़े—

शेखा राणा प्रतापसिंहोत. कुंवर वाघसिंह अमरसिंहोत, झाला शत्रुसाल मानावत,[1] सोलंखी वीरमदेव, राठौड़ किसनदास (कृष्णदास) गोपालदासोत, राठौड़ हरिदास बलुओत, सीसोदिया माधवसिंह, शार्दुलसिंह राणा उदयसिंहोत, सहसमल राणा प्रतापसिंहोत, सींधल वीदा, सींधल सांवलदास वीदावत, कुंवर अर्जुनसिंह अमरसिंहोत, माधवसिंह राणा उदयसिंहोत, राठौड़ माला भीमकरणोत, देवड़ा पत्ता कलावत, सींधल अमरा भांडावत, सींधल तोगा भांडावत, सोनगरा केशवदास भाणावत, अक्षयराज का पोता सोनगरा सावन्तसिंह नारायणदासोत और चूंडावत दूदा सांगावत वगैरा। जब मारवाड़ में सोनगरा नारायणदास, डोडिया गोपालदास, डोडिया सादा, डोडिया सूजा, डोडिया अगरा, डोडिया जगमाल कतार लूटने को पहुँचे तो खबर लगी कि, कतार निकल कर पहले ही अजमेर चली गई। इसलिये ये निराश होकर वापस मुड़े। उस समय अब्दुल्लाखां की बादशाही फौज जो थानों पर नियुक्त थी, आ पहुंची। नाडोल से भाटी गोविन्ददास भी अपनी सेना लेकर शाही फौज में शामिल हुआ। भादराजून और मालगढ़ के पास शाही सेवकों से मुकाबला हुआ। भयंकर लड़ाई होने के बाद कुंवर कर्णसिंह भाग कर पहाड़ों में चला गया। दोनों तरफ के अधिकांश बहादुर काम आए। कर्णसिंह की तरफ के नीचे लिखे हुए राजपूत मारे गये—

दूदा सांगावत, राठौड़ हरीदास, नारायणदास सोनगरा, डोडिया गोपालदास, डोडिया सादा, डोडिया सूजा, डोडिया अगरा और डोडिया जगमाल। यह लड़ाई 1668 वि० (1020 हि० = 1611 ई०) में हुई। इसके बाद अब्दुल्लाखां की सेना कुछ दिनों तक मेवाड़ में इधर-उधर घूमती रही। मेवाड़ के राजपूत भी जहां मौका देखते हमला करते।

एक समय कैलवा ग्राम के निकट राठौड़ ठाकुर मनूमनदास मुकुन्द-दासोत ने शाही फौज पर छापा मारा। अब्दुल्लाखां से भी बादशाह की इच्छा के अनुरूप काम नहीं हुआ।[2]

---

1. शत्रुशाल मानावत झाला का उल्लेख ठीक नहीं है। वह जो इस समय जोधपुर के राजा की सेवा में था। (सं०)
2. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०); भाग 1, पृ० 251-52। (सं०)

इस लड़ाई में शाही फौज के हजारों आदमी मारे गये और माल असबाब मेवाड़ के राजपूतों ने लूटा। बादशाह जहांगीर ने नाराज होकर महाबतखां को बुला लिया।[1] परवेज की पराजय की तरह इस का उल्लेख भी जहांगीर ने अपनी पुस्तक तुजुक-इ-जहांगीरी में नहीं लिखा है। केवल इतना ही लिखा कि राणा की लड़ाई जैसी चाहिये थी, नहीं हुई। इससे उसको बुला लिया। लेकिन इतना ही लिखने से ऊपर लिखी हुई लड़ाई की सच्चाई मालूम हो सकती है।

केवल चित्तौड़ पर शाही फौज सहित महाराज सगर व मांडल के थाने पर राजा जगन्नाथ कछवाहा भारमलोत ठहरा रहा। लेकिन संवत्[2] विक्रमी 1666 (1018 हि० = 1609 ई०) में राजा जगन्नाथ बीमार होकर मर गया। जिसकी सफेद पत्थर की छत्री मांडल में 1670 वि० (1022 हि० = 1613 ई०) में बनाई गई, जो अब तक विद्यमान है। इसका जन्म पौष कृष्ण 9, 1609 वि० (23 जिलहिज, 959 हि०=10 दिसम्बर, 1552 ई०) का था। इस राजा के मरने का बादशाह जहांगीर को भी बहुत दुःख हुआ।

फिर जहांगीर ने अब्दुल्लाखां को बहुत बड़ी फौज देकर मेवाड़ पर भेज दिया।[3] पहले महाबतखां ने मोही के परगने में पहुँच कर पूछताछ की कि, अमरसिंह का खटला (परिवार) कहां रहता है? किसी ने कह दिया कि, महाराणा के बाल-बच्चे जोधपुर के राजा सूरसिंह के प्रदेश में रहते हैं। तब उसने राजा सूरसिंह से सोजत का परगना जब्त करके राठौड़ करमसेण उग्रसेणोत को इस शर्त पर दे दिया कि, राणा व राणा का खटला उस तरफ आवे तो हमको फौरन खबर दो। जब अब्दुल्लाखां आया तो सूरसिंह के कुंवर गजसिंह ने अपना परगना वापस लेने की कोशिश की। अब्दुल्लाखां ने सोजत वापस देकर गजसिंह को नाडोल के थाने पर नियुक्त किया।

अहमदाबाद से एक कतार कुछ खजाना व सामान लेकर आगरा को

---

1. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 155। (सं०)
2. नैणसी मुहणोत ने विक्रमी 1665 लिखा है, लेकिन तुजुक-इ-जहांगीरी वगैरा किताबों को देखने से विक्रमी 1666 मालूम होता है
3. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 155; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 225। (सं०)

किया गया ।[1] महाराणा अमरसिंह ने बादशाही फौज से 17 (सत्रह) लड़ाईयां कीं। जब अपने बाप का वचन उनको याद आता तो जोश में आकर शाही सेवकों पर हमला किये बिना नहीं रहते थे। लेकिन सम्पूर्ण हिन्दुस्तान के बादशाह के साथ छोटे से प्रदेश का मालिक कब तक बराबरी कर सकता है। इसके अतिरिक्त आमदनी का प्रदेश बिलकुल वीरान हो गया। प्रजा इलाका छोड़कर भाग गई। केवल पहाड़ी हिस्सों में भील लोग आबाद थे, जिनसे

दनी की जागीर रह गई है और नूरपुर से आधा मील की दूरी पर खुश नगर में उसका निवास है।

विक्रमी 1914 (1274 हि० = 1857 ई०) के गदर के बाद अंग्रेजी सरकार ने किले नूरपुर को तोड़ कर आधा किला और कुछ बाग बगीचा भी वर्तमान राजा यशवंतसिंह को दे दिया।

1. राजा दलीप, 2. जैतपालभेट, 3. त्रिपाल, 4. बुधपाल, 5. जरीपत, 6. जयपाल, 7. सकूनी, 8. जगरथ, 9. राम, 10. गोपाल, 11. अर्जुन, 12. विद्वारथ, 13. झगड़मल्ल, 14. राम 2, 15. कीरत, 16. धीखो, 17. जमता, 18. कैलाश, 19. नागा, 20. पृथ्वीमल्ल, 21. भीलो, 22. बखतमल्ल, 23. पहाड़मल, 24. बासू, 25. जगतसिंह, 26. राजरूप, 27. मानधाता, 28. दयाधाता, 29. पृथ्वीसिंह, 30. फतहसिंह, 31. बीरसिंह. 32. यशवन्तसिंह।

ताम्रपत्र की नकल

श्री रामोजयति

श्री गणेशप्रसादातु, श्री एकलिंग प्रसादातु

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंहजी आदेशातु पुरोहित व्यास कस्य, 1 ग्राम भीथ्यो रेवली री पाखती रो उदक आघाट करे मया कीधो 1669 वि० वर्षे सावण कृष्ण 9 रवेऊ* स्वदत्त परदत्तं वायेहरंति वसुंधरा षष्टी वर्ष सहसराणा विष्टायांजायते क्रमी। दुए श्रीमुख प्रति दुए साह डूंगरसी, लिखतं पेचोली शंकरदास।
*अर्थ—रेमल्या के पास वाला भींत्या ग्राम समर्पण किया। जुलाई 12, 1612 ई०। (सं०)

1. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 200, जहांगीर० (हि०), पृ० 270। (सं०)

तब 1668 वि० (1020 हि०=1611 ई०) में अब्दुल्लाखां को वादशाह ने चार लाख (4,00,000) रुपये देकर गुजरात की सूबेदारी पर भेजा और मेवाड़ की लड़ाई पर उसके वदले राजा वासू[1] नियुक्त होकर रवाना

---

1. राजा वासू, तंवर राजपूत, पंजाव के पहाड़ी जिले के ग्राम नूरपुर का राजा था, जो इलाके जालन्धर जिले कांगड़ा में गिना जाता है। इसका कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त नूरपुर के पुरोहित सुखानन्द के कागजों से मालूम हुआ, जो विक्रमी 1941 (1301 हि०=1884) ई० में यहां (उदयपुर) आया था। उस पुरोहित के पास महाराणा अमरसिंह के समय 1669 वि० श्रावण कृष्ण 9, रविवार, (22 जमादियुल अव्वल, 1021 हि०=12 जुलाई, 1612 ई०) का एक ताम्रपत्र भी है, जिसकी नकल ऐतिहासिक विवरण के साथ नीचे लिखी जाती है।

   राजा दलीप से जव दिल्ली की राजधानी छूटी और उसके पुत्र जैतपाल भेट ने नूरपुर को अपनी राजधानी वनाया। उससे 24वीं पीढ़ी में राजा वासू हुआ, जो वादशाह जहांगीर के भेजने से अपने प्रधान पुरोहित व्यास सहित चित्तौड़ आया। उस समय राजा वासू ने महाराणा अमरसिंह से व्रजराज स्वामी के नाम से प्रसिद्ध और मीरावाई की पूजी हुई एक मूर्ति मांगी, जो अव नूरपुर के किले में है। इस पर महाराणा ने उसके प्रधान पुरोहित व्यास को वह मूर्ति एक ग्राम सहित, जिसका ताम्रपत्र नीचे लिखा जायेगा, संकल्प करके दे दी। इससे मालूम होता है कि, महाराणा अमरसिंह से राजा वासू मिल गया था।

   राजा वासू का वेटा जगतसिंह वड़ा प्रतापी हुआ जो वादशाहों से अधिकतर लड़ता रहा। इसके अधिकार में कई लाख का प्रदेश हो गया था। यह जगतसिंह किसी साधू के कहने से हिमालय में जाकर गल गया।

   जगतसिंह से छठी पीढी में राजा वीरसिंह के समय में राजा रणजीतसिंह सिक्ख ने इनका वहुतसा प्रदेश छीन लिया। वल्कि धोखे से लाहोर में उसे वुलाया और कैद करके किला नूरपुर भी ले लिया। वीरसिंह ने कैद से छूटने के वाद कई वार हमले किये, लेकिन राजधानी हाथ नहीं आई।

   वर्त्तमान राजा के अधिकार में दस-वारह हजार सालना आम-

को सात घड़ी रात गये आगरा से अजमेर की तरफ रवाना होकर मार्गशीर्ष शुक्ल 7 (5 शव्वाल=20 नवम्बर) को अजमेर में दाखिल हुआ ।[1]

बादशाह ने अपना पड़ाव अजमेर में रखना उचित जान कर शाहजादा खुर्रम को मेवाड़ पर जाने का हुक्म दिया ।[2] शाहजादा को कपड़े, गहना, हाथी, घोड़े, हथियार, खिलअत व खिताब से बढा कर नीचे लिखे हुए सरदार उमरावों को साथ दिया ।

जोधपुर का राजा सूरसिंह राठौड़ उदयसिंहोत, नवाजिशखां, सैफखां, तरबियतखां, अबुलफतह दक्षिणी, राजा सूरसिंह का भाई कृष्णगढ़ का राजा कृष्णसिंह, सगर राणा उदयसिंहोत, सुलैमान बैग वाकिआ नवीस, बूंदी का राव रतन हाड़ा, राजा सूरजमल तंवर, नूरपुर के राजा वासू का बेटा जगतसिंह, राजा विक्रमादित्य भदोरिया, सैयदअली खिताब सलाबतखां, सैयद हाजी हाजीपुरी, शाहरुख का बेटा मिर्जा बदीउज्जमां, मीर हिसामुद्दीन, रज्जाकबेग उजबक, दोस्तबेग, ख्वाजा मुहसिन, अरबखां, बारहा का सैयद शिहाब ।

पौष शुक्ल 15, 1670 विक्रमी (14 जीकाद, 1022 हि० = 26 दिसम्बर, 1613 ई०) को[3] शाहजादा खुर्रम, जिसकी उम्र 21 वर्ष 11 महीने 11 दिन की थी, रवाना किया गया । सूबे मालवा से खान आजम मिर्जा अजीज कोकलताश सूबेदार, फरेदूखां सरदारखां और वहां के सब मनसबदार और सूबे गुजरात से अब्दुल्लाखां बहादुर सूबेदार, दिलावरखां काकड़, सजावारखां, जाहिद, यारबेग वगैरा मनसबदार, तथा सूबे दक्षिण में जो बादशाही सेना शाहजादा परवेज के अधीन थी, उसमें से राजा नरसिंहदेव बुन्देला, मुहम्मदखां, याकूबखां नियाजी, हाजीबेग उजबक, मिर्जा मुराद

---

1. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 253; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 322 । (सं०)
2. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 256 । (सं०)
3. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 256, जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 324 के अनुसार शुक्रवार 6 दै को शाहजादा खुर्रम अजमेर से रवाना हुआ था । (सं०)

लड़ाई की मदद के अतिरिक्त कुछ आमदनी नहीं हो सकती थी। वि० 1624 (हि० 975=1567 ई०) से 1670 वि० (1022 हि०=1613 ई०) तक हजारों आदमियों व रणवास वगैरा का खर्च बड़ी मुश्किल से चलाया गया।

राजपूत लोगों में से दो-दो, चार-चार पीढ़ियां सब की मारी गई थीं। पहाड़ों के चारों तरफ से बादशाही फौजों के हमले होते थे। आज एक बहादुर राजपूत मौजूद है, कल मारा गया। परसों उसके बेटे ने भी हमला कर अपनी जान दी। उसकी बेवा औरतें अपने पतियों के साथ आग में जलती थीं। उन लोगों के लड़के-लड़की जो कम उम्र रह जाते, उनका पालन पोषण भी महाराणा को ही करना पड़ता था। जिस पर भी यह भय था कि हमारे राजपूतों की औलाद मुसलमान के हाथ पड़ कर गुलाम न बनाई जावें। अगर कभी ऐसा हो भी जाता था तो उस बात का मानसिक आधात महाराणा अमरसिंह के दिल में छेद करता था। एक-एक दिन में कई जगह रसोई (खाना) करनी पड़ी है। अर्थात् एक जगह भोजन तैयार हुआ और शाही सेवकों ने आ घेरा। फिर दूसरी जगह बनाना पड़ा। वहां भी दुश्मनों ने आ दबाया। तब तीसरी जगह किसी पहाड़ की खोह में रोटियां होने लगीं। छोटे-छोटे बच्चे अपने-अपने मां बाप से खाना मांगते, वे उनको दम दे कर दिन कटाते थे। लेकिन धन्य है, मेवाड़ के उन बहादुर राजपूतों को, कि ऐसी तकलीफें उठाने पर भी अपने बाप-दादों की इज्जत और कहावतों पर विचार करके मरते और मारते थे। जो कोई आदमी निकल कर शाही सेवक होता था, उस पर हजारों लानत मलामत करते थे। लेकिन जो महाराजा शक्तिसिंह के समान अपने दिल में स्वामी की भलाई को दृढ रख कर शाही नौकरी करते, ऐसे लोगों को अपने एलची (दूत) के मुआफिक जान कर खबर वगैरा का काम निकालते थे। राजपूत लोग यह लानत मलामत महाराज जगमाल व सगर जैसे जाति के शत्रुओं पर करते थे।

जब शाहजादा परवेज व महावतखां और अब्दुल्लाखां वगैरा पराजित होकर निराश हो चुके, तो बादशाह जहांगीर ने सोचा कि हमारे जाने के बगैर उदयपुर का महाराणा ताबे नहीं हो सकता। तब खुद बादशाह आश्विन शुक्ल 3, 1670 वि० (2 शाबान, 1022 हि०=18 सितम्बर, 1613 ई०)[1]

---

1 बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 249; जहांगीर० (हिन्दी) पृ० 317। (सं०)

आया, जहां दूसरी तैयारी की। राजा सूरसिंह ने शाहजादा को ऊंटाले में ठहरने की राय दी थी, लेकिन उसकी सलाह के विपरीत 1670 वि०, फाल्गुन (मुहर्रम 1023 हि० = फरवरी 1614 ई०) को वह उदयपुर आ पहुंचा। गुजरात से अब्दुल्लाखां भी बहुत बड़ी सेना के साथ शाहजादा के पास उदयपुर में उपस्थित हुआ। खुर्रम ने पहाड़ों में घुस कर हमला करने का पक्का विचार कर नीचे लिखे लोगों को अलग-अलग तैयार किया—

पहले सैनिक समूह का अधिकारी अब्दुल्लाखां बहादुर फीरोजजंग, जो अहमदाबाद से आया था; दूसरी फौज का मालिक दिलावरखां कावड़ और उसकी मदद के लिये बैरमबेग बख्शी; तीसरी सेना का सेनापति सैयद सैफखां व कृष्णगढ़ का राजा कृष्णसिंह राठौड़; चौथे गिरोह का मुख्या मीर मुहम्मद तकी मीर बख्शी हुआ। इन चारों फौजों ने हर तरफ लूटना, मारना, जलाना और गिरफ्तार करना शुरू किया।

महाराणा अमरसिंह ने भी अपने बहादुर राजपूत चौहान राव बल्लू,[1] चौहान रावत पृथ्वीराज,[2] राठौड़ सांवलदास, झाला हरदास, पंवार शुभकरण चूंडावत रावत मेघसिंह, चूंडावत रावत मानसिंह, झाला कल्याण,[3] सोलंखी वीरमदेव,[4] राठौड़ कृष्णदास, सोनगरा केशवदास भाणावत, डोडिया जयसिंह भीमसिहोत[5] वगैरा को अपने काका भाई व बेटों सहित अलग-अलग सेनापति बना कर शाही फौज का मुकाबला करने को तैयार किया। राजपूत लोगों का यह काम था कि पहाड़ों में शाही फौज को घुसने न दें उनको असावधान देख कर धावा करें और रसद लूटें। लेकिन जहांगीर स्वयं अजमेर में बैठ कर कुल हिन्दुस्तान की फौज को मेवाड़ के पहाड़ों पर विदा कर चुका, तो एक मेवाड़ का राजा कहां तक लड़ सकता था। बादशाही फौज पहाड़ों में अपना कब्जा बढ़ाती जाती थी। अब्दुल्लाखां ने जो पहाड़ों में बढ़ गया था, महाराणा के आलमगुमान नामक हाथी को, जो पांच हाथियों सहित उसके

---

1. वेदले वालों का पूर्वज। (सं०)
2. कोठारिया वालों का पूर्वज। (सं०)
3. देलवाड़ा के राज राणा मानसिंह झाला का दूसरा पुत्र (सं०)
4. रूपनगर वालों का पूर्वज (सं०)
5. लावा (सरदारगढ़) का ठाकुर। (सं०)

सफवी, शिर्जाखां, अल्लाह यार कूका, गजनीखां जालौरी वगैरा सबको हुक्म हुआ कि शाहजादा खुर्रम की मदद के वास्ते शाही सेना में शामिल हों।

हमने बादशाहनामा की एक बात (जिल्द 1, पत्र 165 से) जिसको मौलवी अब्दुल हमीद लाहोरी ने लिखा है का उल्लेख करना जरूरी समझा। क्योंकि फारसी इतिहासकारों के अतिरिक्त खुद बादशाह जहांगीर भी अपनी शाही फौजों की हार व दुर्दशा के हाल को पचा गया। मुल्ला अब्दुल हमीद लिखता है कि, राणा की मुहिम पर जाने पर शाहजादा परवेज, महाबतखां व अब्दुल्लाखां ने परेशानी व सरगर्दानी के अतिरिक्त कुछ फायदा नहीं उठाया।

इस उदाहरण को देखने से पढ़ने वालों को विश्वास होगा कि, ऊपर लिखी हुई पराजयों से भी बढ़कर शाही फौजों की खराबियां हुई हैं। अतः हमको मेवाड़ का इतिहास लेखक जान कर तरफदारी का दोष कोई नहीं लगावेंगे। हमने बहुतसी लड़ाइयों का हाल जो कर्नल टॉड वगैरा ने लिखा है, छोड़ दिया। क्योंकि एक तो छोटी-छोटी लड़ाइयों के लिखने से तवालात (विस्तार) हो जाती है। दूसरे हमारी सन्तुष्टी के लायक प्रमाण नहीं मिले। खैर, अब हम असली मतलब को बयान करते हैं।

जब शाहजादा बादशाही फौज सहित मांडल में, जो मेवाड़ में उदयपुर से ईशान कोण की तरफ करीब 40 कोस के है, पहुंचा। मुल्ला अब्दुल हमीद बादशाहनामा की जिल्द 1 पत्र 167 पर लिखता है कि, "सुलतान परवेज व महाबतखां इस जगह से आगे नहीं बढ़े थे। सो वास्तव में उनका यहां से कामयाबी के साथ आगे बढ़ना नहीं जान पड़ता। क्योंकि जब बढे तब खराब हालत से वापस आये।

शाहजादा खुर्रम को पहले यह चिन्ता हुई कि, उदयपुर में हमारे पास रसद पहुंचने का पक्का बन्दोबस्त किया जावे। इसलिये सेना की एक टुकड़ी जमालखां तुर्की के साथ मांडल में छोड़ी। फौज का दूसरा हिस्सा कपासन में दोस्तबेग और ख्वाजा मुहसिन के अधीन किया। तीसरा थाना ऊंटाला में सैयद हाजी को सौंपा। चौथा नाहर मगरा के थाने पर अरबखां के अधीन रहा। पांचवां थाना डबोक में नियुक्त किया तथा छठे देवारी के थाने पर सैयद शिहाब बारहा को रखा। ये छओं थाने बैठा कर शाहजादा उदयपुर

मुकुन्ददास गोडवाड़ में राणकपुर के मन्दिरों का विध्वंस करने वाली वादशाही फौज से लड़ कर मारा गया। जिसका वेटा मन्मनदास वदनौर और विजयपुर का जागीदार रहा।

देलवाड़ा का जागीरदार झाला मानसिंह की शादी महाराणा उदयसिंह की वेटी से हुई थी और वह द्वितीय जेष्ठ शुक्ल 2, 1633 वि० (1 रवीउल् अव्वल 984 हि० = 31 मई, 1576 ई०) को[1] हल्दीघाटी में शाही फौज से लड़कर मारा गया था। उसके वेटों—शत्रुसाल, कल्याण और आसकरण में से शत्रुसाल महाराणा प्रतापसिंह की वहिन का वेटा होने के कारण उग्रस्वभाव के साथ वोलचाल में महाराणा से खटपट रखता था। किसी समय देलवाड़ा में दस्तक (चौंस) होने पर महाराणा प्रतापसिंह से रूवरू झगड़ा हो गया। शत्रुसाल नाराज होकर निकला। महाराणा ने अंगरखे का दामन पकड़ कर रोका। उसने पेशकब्ज से दामन काट डाला। महाराणा ने कहा कि, "शत्रुसाल नाम वाले को मैं कभी अपने राज्य में नहीं रखूंगा।" शत्रुसाल ने अर्ज किया कि, "मैं जीवन भर सीसोदियों की नौकरी नहीं करूंगा।" यह कह कर वह यहां से निकल जोधपुर के महाराजा सूरसिंह के पास चला गया। उसको वहां भाद्राजून का पट्टा जागीर में मिला। महाराणा ने राठौड़ मन्मनदास को देलवाड़ा इनायत किया। मन्मनदास ने अर्ज की कि, शत्रुसाल आपकी वहिन का वेटा है। अर्ज मारूज (प्रार्थना करने) या प्रेम से उसका ठिकाना उसको वापस दिया जावे, तो मेरी हंसी होगी। महाराणा ने कसम खाकर कहा कि, तुम्हारी जिन्दगी तक देलवाड़ा तुम से कदापि तागीर नहीं होगा। शत्रुसाल के छोटे भाई कल्याण और आसकर्ण देलवाड़ा खालसा होने से कुछ समय तक चीरवा में रहे, जो ब्राह्मणों का सांसण ग्राम है। जब महाराणा प्रतापसिंह का देहान्त हुआ और महाराणा अमरसिंह ने वादशाही फौजों से वहुतसी लड़ाईयां की, तब कल्याण ने भी महाराणा को कई लड़ाइयों में अपनी वहादुरी दिखलाई। महाराणा ने किसी जागीर का हुक्म दिया। कल्याण ने अर्ज की कि, "हमारे वाप का

---

1. हल्दी घाटी के युद्ध की सही तारीख अमरदाद 7 तीर इलाही = 21 रवी-उल् अव्वल, 984 हि० = सोमवार आषाढ वदि 7, 1633 वि० = जून 18, 1576 ई०। अकवरनामा, भाग 3, पृ० 174-175, (अं० अ०), भाग 3, पृ० 244-246। (सं०)

हाथ आया, चैत्र शुक्ल 11, 1671 वि० (9 सफर 1023 हि०=22 मार्च, 1614 ई०) को लाकर शाहजादा को नजर किया।

जब महाराणा अमरसिंह ने शाही फौजों का जोर और अधिक देखा तो लाचार चावंड को छोड़ कर ईडर के पहाड़ों की तरफ चला। उस समय ये हाथी पीछे रहे गये थे। जिनको अब्दुल्लाखां के आदमियों ने पकड़ लिया। महाराणा के कई हाथी दिलावरखां व बैरमबेग के कब्जे में भी आ गये और दूसरे सरदारों ने भी जिसके हाथ आया शाहजादा के पास पहुंचाया। शाहजादा ने अपने दीवान जादूराय के साथ आलमगुमान हाथी सहित जीते हुए सत्रह हाथी बादशाह जहांगीर के पास अजमेर भेज दिये।[1] बादशाह ने इन हाथियों को देखकर और विजय की खुशखबरी सुन कर अपने बेटे खुर्रम को बहुत तारीफ के साथ खास अपने हाथ से फरमान लिख भेजा। शाहजादे ने बादशाही फौजों के नीचे लिखे हुए थाने कायम कर दिये।

कुम्भलगढ़ में बदीउज्जमां को अच्छे बन्दूकदारों सहित; झाड़ौल में सैयद सैफखां को; गोगुंदा में राणा सगर को; आंजणा में दिलावरखां को; औगना में फरेदूखां और हाड़ा रतनसिंह बून्दी वाले को; चावड में मुहम्मद तकी मीरबख्शी को; बीजापुर में बैरमबेग को, जावर में इब्राहीमखां को; मादड़ी में मिर्जा मुराद को; पानवाड़ा में सजावारखां को; केवड़ा में जाहिद और सादड़ी में राठौड़ राजा सूरसिंह की फौज को नियुक्त किया।

इन थानों में से हर एक पर इस प्रकार फौज रखी गई थी कि, एक दूसरे की मदद का सहारा न देखें। इस तरह मेवाड़ के उत्तरी पहाड़ों को शाही फौजों ने अपने अधिकार में कर लिया। जिससे उनके लिये रसद आने में कुछ भी खटका नहीं रहा। क्योंकि उत्तरी मेवाड़ में राजपूतों का पहुंचना बिल्कुल बन्द हो गया था। महाराणा और उसके सरदार व बाल-बच्चे दक्षिणी पहाड़ों में रहे। गर्मियों की मौसम में कभी-कभी, कहीं-कहीं लड़ाइयां होती रहीं।

बदनौर वालों का पूर्वज जयमल मेड़तिया, जो 1624 वि० (975 हि०=1567 ई०) को चित्तौड़ की लड़ाई में मारा गया था, उसका बेटा

---

1. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 259-60; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 327। (सं०)

मेवाड़ के पहाड़ों में चला गया और कल्याण अपना घोड़ा मारे जाने और स्वयं घायल होने के कारण बादशाही फौज से घिर गया। वह एक मन्दिर में बैठ कर कमान से तीर चलाने लगा और जब तक तीर रहे किसी को नजदीक नहीं आने दिया। जब तीर नहीं रहे तो लोगों ने उसको चारों तरफ से हमला करके गिरफ्तार कर लिया। नवाब अब्दुल्लाखां ने घायल राज कल्याण को पालकी में बैठा कर शाहजादा खुर्रम के पास भेज दिया। शाह-जादे ने महरम पट्टी वगैरा इलाज करने का आदेश दिया।

शत्रुसाल ने पहाड़ों में स्वस्थ होकर गोगुंदा के थाने पर, जहां राणा सगर वगैरा शाही सेवक बड़ी जर्रार फौज के साथ नियुक्त थे, हमला किया। क्योंकि शत्रुसाल तो जोधपुर से मरना ठान कर निकला था। इसलिये गोगुंदा की फौज से लड़ता हुआ रावल्यां गांव में मारा गया। यह खबर सुन कर महाराणा अमरसिंह ने सब सरदारों के सामने आदेश दिया कि शत्रुसाल गोगुंदा में मारा गया। जिससे उसकी औलाद के लिए हमने गोगुंदा जागीर में इनायत किया। फिर शान्ति हुई तो उस समय गोगुंदा शत्रुसाल के छोटे बेटे कान्ह की जागीर में रहा, तथा बड़ा नाथसिंह मदार का जागीर-दार कहलाया जो अब देलवाड़ा के अधीनस्थ राजपूतों में है। इसका अधिक विवरण सरदारों के इतिहास में लिखा जायेगा।

राज कल्याण के स्वस्थ होने के बाद शाहजादे ने उसको कैद से छोड़ दिया, (जिसका विवरण बादशाहनामा की पहली जिल्द के प्रथम दौर, दूसरे हिस्से के दूसरे पत्र में लिखा है)।

बरसात आने पर शाही फौजों ने अपने-अपने थानों को मजबूत किया और मेवाड़ी राजपूत कभी-कभी रात या दिन को धावा मार जाते थे। जब बरसात व्यतीत हुई और सरदी का मौसम आया तो शाही फौज ने अधिक ताकत पाई।

दिन ब दिन मेवाड़ी राजपूतों का बल कम होने लगा। तब सब रियासत के आदमियों ने कहा कि, "अब समझौता किये बिना राज्य रहना कठिन है।" महाराणा ने हुक्म दिया कि, "एक दोहा हम लिख देते हैं, जो खानखाना अब्दुर्रहीम के पास पहुंचाया जाय। क्योंकि वह अकबर बादशाह का मुसाहिब और हमारा ईमानदार मित्र है। उसका उत्तर आने पर हम

ठिकाना तो देलवाड़ा है, वहीं इनायत कीजिये।" महाराणा अमरसिंह ने कहा कि, "देलवाड़ा तो राठौड़ मन्मनदास की जिन्दगी तक उसके अधिकार में रखने के लिये श्री दाजीराज (पिता) का हुक्म है, जिसको हम नहीं मिटा सकते।"

जब 1667 वि० (1019 हि० = 1610 ई०) में राठौड़ मन्मनदास का देहान्त हुआ, तब राज कल्याण को महाराणा अमरसिंह ने देलवाड़ा इनायत किया। राठौड़ मन्मनदास का बेटा सांवलदास बदनौर में रहा।

शाहजादा खुर्रम की फौज के दबाव के समय में झालों को अपने शुभ-चिन्तक राजपूत जान कर महाराणा अमरसिंह ने राज कल्याण को आदेश दिया कि, "तुम जोधपुर जाकर अपने भाई शत्रुशाल को ले आवो। हम उसको दूसरी जागीर देंगे।" महाराणा के आदेश से कल्याण जोधपुर की तरफ गया। शत्रुसाल अपने स्वामी पर बादशाही फौज की चढाई जान कर सूरसिंह के साथ शाही फौज में नहीं आया। जोधपुर में कुंवर गजसिंह ने शत्रुसाल को हंसी के तौर पर कहा कि, "आज कल महाराणा अपनी रानियों सहित पहाड़ों में दौड़ते फिरते हैं।" शत्रुसाल ने कहा कि, "हां दूसरों के अनुसार बादशाहों को बेटियां देकर आराम लेना उन्होंने पसन्द नहीं किया। अतः इज्जत की तकलीफ को बेइज्जती के आराम से अच्छा जानकर मुसलमानों को वे अपनी बहादुरी दिखला रहे हैं।" कुंवर गजसिंह ने गुस्से में आकर कहा कि, "ऐसे शुभचिन्तकों को तो शाही फौज से लड़कर मरना चाहिये।" शत्रुसाल उठ खड़ा हुआ और कुंवर से कहा कि "मैं आपकी नसीहत को गनीमत जानकर शाही फौज से लड़ूंगा।"

शत्रुसाल जोधपुर से रवाना होकर मेवाड़ की तरफ आ रहा था। कल्याण रास्ते में मिला तथा महाराणा का हुक्म अपने भाई को सुनाया। शत्रुसाल ने सुन कर जवाब दिया कि, "मैंने महाराणा की नौकरी करने की सौगन्ध खाई है और जिस काम के लिये बुलाते हैं वह काम करना मेरा कर्तव्य है।" जोधपुर में घटित घटना भी अपने भाई को कह सुनाई। दोनों भाइयों ने सलाह कर मेवाड़-मारवाड़ के बीच पहाड़ी घाटे की अंवल संवल की नाल में नवाब अब्दुल्लाखां के अधीन जो शाही फौज नियुक्त थी, उस पर हमला किया। दोनों तरफ के बहादुर खूब लड़े। कल्याण और शत्रुपाल के झाला भोपत वगैरा बहुत से राजपूत मारे गये। शत्रुसाल तो घायल होकर

जाते हैं। गूलर के फल खा खाकर दिन काटने पड़ते हैं। इस पर भी मरने के अतिरिक्त इज्जत बिगड़ने का भय लगा रहता है। क्योंकि मेवाड़ी राजपूतों के वाल-वच्चे पकड़े जाने पर राठौड़ व कछवाहा उनको देख कर हंसते हैं। हमारी वहादुराना हिम्मत को जंगलीपन और अपनी आरामी को बुद्धिमानी जान कर घमण्ड करते हैं। हम लोग मरने से डर कर आप से यह नहीं कहते हैं। 47 वर्ष वड़ी-वड़ी तकलीफें उठा कर निकाले, और यह आशा नहीं कि, कव तक तकलीफें समाप्त होंगी! यह सुन कर कुंवर कर्णसिंह ने कुल भाई-वेटे और राजपूतों की वहादुरी व शुभचिन्तन पर हजारों धन्यवाद देकर कहा कि, 'मैं भी जानता हूं कि मेरे प्यारे भाई और राजपूत गूलर के फल खा-खाकर शाही फौजों पर हमला करते हैं। लेकिन दाजीराज (अमरसिंह) श्री महाराणा प्रतापसिंह के उस ताने को जो उन्होंने वादशाह के अधीनस्थ वनने के विषय में दिया था, याद करके कदापि समझौता करना नहीं चाहते।" तव झाला हरदास और पंवार शुभकर्ण ने अर्ज की कि, "हम सब लोग सुलह करने को तैयार होंगे, तो अकेले महाराणा क्या कर सकते हैं? प्रथम शाहजादा खुर्रम की इच्छा को जांचे कि, पाटवी वड़े कुंवर शाही दरवार में जाने पर समझौता कर सकता है या नहीं? अगर आपके जाने पर समझौता हो जावे तो कुछ हानि नहीं! क्योंकि अपने यहां पाटवी कुंवर की बैठक प्रथम श्रेणी के कुल उमराव सरदारों के नीचे है। वादशाह तो यह समझेंगे कि पाटवी कुंवर आ गया और हम अपने यहां से इस वात को एक सरदार का जाना विचार लेंगे।

इन दोनों सरदारों की सलाह सवने पसन्द की और एक मत होकर कह दिया कि यही करना चाहिये। लेकिन कुंवर कर्णसिंह ने कहा कि, "यह सलाह महाराणा के कान तक पहुंचेगी तो कभी पसन्द नहीं करेंगे। इसलिये तुम दोनों आदमी उनके विना हुक्म शाहजादा खुर्रम के पास चले जाओ।" तव उन्होंने अर्ज की कि, "पहले कागज भेज कर शाहजादा की इच्छा के विषय में पूछताछ कीजिये कि अगर इस शर्त पर समझौता स्वीकार हो तो किया जावे। अन्यथा हम लोग राजपूत हैं, तलवार से सवाल जवाव करेंगे।" इसको भी सवने पसन्द किया और इस विषय का कागज राय सुन्दरदास[1] के

---

1. मेवाड़ की पोथियों में जयपुर वाले कछवाहों के माध्यम से भेजा जाना लिखा है, शायद उनमें से भी कोई सम्मिलित होगा।

जवाब देंगे।" यह दोहा किसी दोस्त के माध्यम से कासिदों के हाथ दक्षिण में खानखाना के पास पहुँचाया गया और उसने भी उसका जवाब दोहे में लिख भेजा। वे दोनों दोहे नीचे लिखे जाते हैं।

महाराणा का लिखा हुआ दोहा—

गौड़ कछाहा राठवड़, गोखां जोख करंत।
कहजो खानांखान ने, वन चर हुआ फिरंत ॥1॥

अर्थ—गौड़, कछवाहा, राठौड़ महलों के झरोखों में आराम करते हैं। इसलिये खानखाना को कहना कि हम (महाराणा) वन मानुष हुए फिरते हैं। महाराणा का यह इशारा था, कि तुम कहो तो हम भी अपनी आजादी को छोड़कर मुसलमान बादशाहों के नौकर कहलावें। यह दोहा पढ़कर खानखाना अब्दुर्रहीम ने मारवाड़ी भाषा ही में जवाबी दोहा लिखा—

जवाबी दोहा—

धर रहसी रहसी धरम, खप जासी खुरसाण।
अमर विशम्भर ऊपरां, राखो निहचो राण ॥1॥

अर्थ—जमीन और ईमान रहेगा, और खुरासानी लोग अर्थात् मुगल नष्ट हो जायेंगे। ऐ राणा अमरसिंह ! आप इस दुनिया के पालने वाले पर भरोसा रखें। अब्दुर्रहीम का यह मतलब था कि जमीन और ईमानदारी सदा कायम रहती है तथा बादशाहत हमेशा गारत हुआ करती है। इसलिये हिम्मत रखनी चाहिये, अर्थात् हीनता के आराम से इज्जत की तकलीफ अच्छी है।

यह खानखाना अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी का जानकर व कवि था। हिन्दी कवियों के माध्यम से महाराणा की और उसकी दोस्ती थी।

इस दोहे के पहुँचने से महाराणा को और भी अधिक हिम्मत हुई। अपने सरदारों को वह दोहा बतलाया। फिर कुछ दिनों तक ऐसी लड़ाइयां होती रहीं कि जिन्दगी की आशा भी बाकी नहीं रही।

इसलिये कुल राजपूतों ने मिलकर कुंवर कर्णसिंह से सलाह की कि, अब क्या करना चाहिये ? खाने को अन्न व पहनने को कपड़ा नहीं रहा। लड़ाई का सामान भी नहीं है, एक-एक घराने की चार-चार पीढ़ियां मारी गई। किसी के बाल-बच्चे मुसलमानों के हाथ पड़ जाते हैं, तो लौंडी गुलाम बनाये

आ पड़ी है। उस खामोशी के आलम में थोड़ी देर के बाद महाराणा ने कहा कि, "मैं अकेला अब क्या कर सकता हूँ? तुम सब लोगों की यही मरजी है तो मुझको भी सहना पड़ेगा। दाजीराज का ताना सहन करने का इरादा मेरा नहीं था, लेकिन ईश्वर ने आँख से दिखाया।" सब सरदारों ने जो बुद्धिमान और अनुभवी थे, बहुतसी नसीहतों से अर्ज किया कि बादशाह के सामने आपके बड़े कुंवर भेजे जा रहे हैं, जो उमराव के बराबर हैं। तब महाराणा ने कहा कि, "तुम लोग जो मेरी तसल्ली के लिये बातें करते हो वह सब ठीक है। लेकिन फरमान की पेशवाई को जाना, खिलअत पहनना और शाहजादा के पास जाकर सलाम करना, जो आज तक मेरे बड़े-बूढ़ों ने कभी नहीं किया, वह मुझको करना पड़ा।" इस तरह अफसोस करने के बाद दस्तूर के अनुसार पेशवाई वगैरा कर शाही फरमान लिया गया।

इसके बाद सबको शाहजादा के पास इकट्ठा जाने में धोखे का भय होने से कुंवर कर्णसिंह को डेरों पर छोड़ कर महाराणा अमरसिंह शाहजादा खुर्रम के पास गया।[1] महाराणा के तीनों बेटे भीमसिंह, सूरजमल, बाघसिंह और सहसमल व, कल्याण वगैरा भाइयों ने महाराणा को अकेला नहीं जाने दिया और साथ हो लिये। इनके अतिरिक्त दूसरे भी 100 उच्च श्रेणी के बहादुर राजपूत सरदार अपने-अपने चुने हुए सेवकों सहित महाराणा के साथ गोगुंदा स्थित शिविर में सेना के निकट पहुंचे तो शाहजादा ने महाराणा की पेशवाई के लिये अब्दुल्लाहखां बहादुर (गुजरात का सुबेदार), राजा सूरसिंह (जोधपुर वाला), राजा नरसिंह देव बुन्देला, सूखदेव व सैयद सैफखां बारहा को भेजा। इन लोगों ने सेना के बाहर आकर पेशवाई की और बड़ी इज्जत के साथ उनको शाहजादा के पास लाये। दस्तूर के अनुसार सलाम कलाम के बाद महाराणा को शाहजादे के बांई तरफ बैठाया गया।

---

1. रविवार, 26 बहमन सन् जुलूस 9 तदनुसार, मोहर्रम 16, 1024 हि० (फाल्गुन वदि 2, 1671 वि० = फरवरी 5, 1615 ई०) को महाराणा अमरसिंह शाहजादा खुर्रम के पास उपस्थित हुआ था— बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 274-275; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 343। (सं०)

माध्यम से शाहजादा के पास भेजा गया। सुन्दरदास ने शाहजादा के पास जाकर इस समझौते का सम्पूर्ण हाल जिस तरह कुंवर कर्णसिंह चाहता था, अर्ज किया। तब खुर्रम के इशारे पर सुन्दरदास ने आश्वासन का जवाब लिखा। जिससे कुंवर कर्णसिंह ने हरदास झाला और पंवार शुभकर्ण को भेज दिया। इसके बाद शाहजादा ने मौलवी शुकरुल्लाह और सुन्दरदास को महाराणा अमरसिंह के पैगामी कागज देकर बादशाह जहांगीर की सेवा में अजमेर को रवाना किया। इन दोनों सरदारों ने वहां पहुंच कर सम्पूर्ण हाल बादशाह से अर्ज किया। जिससे वह खुश हुआ और इस खुश खबरी पहुंचाने के बदले मुल्ला शुकरुल्लाह को "अफजलखां" व राय सुन्दरदास को "रायरायां" का खिताब देकर उसी समय वापस उदयपुर भेज दिया तथा महाराणा अमरसिंह के नाम एक फरमान जिस में बहुतसी खातिर, तसल्ली की बातें लिखी थी और एक ढाके की मलमल के टुकड़े पर केसर की रंगत का बादशाह के खास पंजे का निशान लगा हुआ (जो अभी तक रियासत में विद्यमान है) भेजा।[1] इस पंजे के निशान से बादशाह का यह मतलब था कि, इसको हमारा वचन समझ कर राणा अमरसिंह कुछ भय नहीं करें तथा शाहजादा को लिखा कि, राणा उदयपुर जिन शर्तों के साथ अर्जी पेश करे उसे मंजूर कर कुंवर कर्णसिंह को हमारे पास ले आओ। सुन्दरदास और शुकरुल्लाह के अजमेर से वापस आने पर झाला हरदास व शुभकर्ण दोनों तसल्ली का जवाब पहुंचने से राय सुन्दरदास के माध्यम से शाहजादा के पास उपस्थित हुए जिनको बहुत तसल्ली देकर शाही फरमान देकर अपने आदमियों के साथ विदा किया।

गोगुंदा के पश्चिमी पहाड़ों में, जिनको आजकल ढाणा बोलते है, महाराणा अमरसिंह अपने राजपूत व भाई बेटों सहित आ गये थे। ये पहाड़ बड़े ही विकट हैं। जब इतनी बात हो चुकी और फरमान कुंवर कर्णसिंह के पास पहुंच गया, तब सभी सरदार व भाई-बेटों के साथ कुंवर कर्णसिंह ने महाराणा के पास जाकर समझौते का सब हाल अर्ज किया। महाराणा अमरसिंह सुनकर चुप हो गये। जबान से कुछ नहीं कहा। लेकिन चेहरे पर ऐसी उदासी छा गई कि, मानो कोई आसमानी बला एकदम उनके सिर पर

---

1. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 273-74; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 341-42। (स०)

दिये। तव कुंवर ने अपना सामान व्यवस्थित करके शाहजादा के साथ चलने की तैयारी की।

शाहजादा खुर्रम कुंवर कर्णसिंह को लेकर कूच दरकूच फाल्गुन कृष्ण 5, 1671 वि० (19 मुहर्रम्म, 1024 हि०=18 फरवरी, 1615 ई०) को अजमेर पहुंचा।[1] जहां बादशाह के आदेश से सब अमीरों ने शाहजादा की अगवानी की। दूसरे रोज शाहजादा बादशाही दरबार में उपस्थित हुआ। उस समय बादशाह जहांगीर की खुशी जो कोई व्यक्ति मालूम करना चाहे वह तुजुक-इ-जहांगीरी को देख ले।[2] जब कुंवर कर्णसिंह बुलाया गया उस समय इंगलैण्ड के बादशाह जेम्स प्रथम का वकील सर टामस रो शाही दरबार में मौजूद था। वह लिखता है[3] कि, "बादशाह ने कुंवर कर्ण को कटहरे के भीतर बुलाया और उसका सिर चूमा।" बादशाह जहांगीर लिखता है[4] कि— "मैंने कर्ण की जंगली तबियत देखकर उसको खुश करने के लिये मेहरबानी की कोई बात बाकी नहीं रखी। उसको खिलअत और तलवार जड़ाऊ और दूसरे दिन तलवार जड़ाऊ, फिर जड़ाऊ जीन सहित खासा इराकी घोड़ा प्रदान किया। उसी दिन कर्ण जनाना महल पर गया, तो नूरजहां बेगम की तरफ से खिलअत तलवार जड़ाऊ जीन सहित घोड़ा और 1 हाथी मिला। बाद में एक माला मैंने कर्ण को दी। दूसरे दिन हाथी खाशा बख्शा।"

बादशाह ने चाहा कि, कर्ण को सभी चीजों में से एक-एक देनी चाहिये। इसलिये तीन बाज, 3 जुर्रे, 1 तलवार खासा, 1 जिरह बख्तर और दो अंगुठियां, एक लाल जड़ी हुई दूसरी पन्ने की, बख्शी। इस महीने के अंत में

---

1. शनिवार, 10 इस्फन्दार के दिन शाहजादा अजमेर के निकट देवरानी (देवराई) नामक स्थान पर पहुँचा और रविवार, 11 इस्फन्दार तदनुसार 30 मोहर्रम्म 1024 हि०=फाल्गुन सुदि 2, 1671 वि०= फरवरी 19, 1615 ई० के दिन वह बादशाह के दरबार में उपस्थित हुआ था। बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०); भाग 1, पृ० 276। (सं०)
2. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 277-78। (सं०)
3. फास्टर०, द एम्बैसी आफ सर टामस रो, पृ० 127। (सं०)
4. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 277-78; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 344-45। (सं०)

महाराणा अमरसिंह की तरफ से एक बहुत उम्दा लाल[1] जो तोल में 8 टांक और कीमत में रु० 60,000 का था और दूसरे बहुमूल्य जवाहरात, जड़ाऊ शस्त्र, 9 हाथी व 9 घोड़े शाहजाहा को नज्र किये गये। शाहजादा ने भी खिलअत और जड़ाऊ जमधर व तलवार, जड़ाऊ और सोने के साज सहित घोड़ा 1 और चांदी की झूल सहित हाथी 1 दिया। महाराणा के 3 बेटे, दो भाई व 5 राजपूत सरदारों में से, जो बड़े इज्जतदार थे, हर एक को खिलअत और जड़ाऊ जमधर और घोड़ा, और चालीस अमीर सरदारों को खिलअत व घोड़ा और पचास राजपूतों को खाली खिलअत दिये और बड़े आदर सत्कार के साथ महाराणा को विदा किया। शुकरुल्लाह अफजलखां व सुन्दरदास रायरायां को महाराणा को पहुंचाने के लिये पेशवाई की जगह तक भेजा।

महाराणा वापस अपने स्थान पर गया और कुंवर कर्णसिंह को शाहजादा के पास जाने की आज्ञा दी। शाहजादा ने भी अफजलखां व राय-रायां सुन्दरदास को हुक्म दिया कि, आज ही कुंवर कर्णसिंह को लावें। क्योंकि आज की ही तारीख ज्योतिपियों ने रवानगी के लिये निश्चित् की हैं।

कुंवर कर्णसिंह उसी दिन शाहजादा के पास गया। इज्जत के साथ अफजलखां और सुन्दरदास पेशवाई कर के उसको ले आये। शाहजादा ने कर्णसिंह को खिलअत व जड़ाऊ जमधर व सोने के सामान सहित घोड़ा व चांदी के गहने व झूल सहित हाथी दिया। जब शाहजादा ने कर्णसिंह को अपने साथ अजमेर चलने के कहा तो कर्णसिंह ने अपने प्रदेश की बर्बादी और कष्टों का हाल कह कर जल्दी यात्रा न कर सकने का प्रतिवाद किया। शाहजादा ने सफर खर्च के लिये 50,000 रु० नकद अपने पास से कुंवर को

1. यह लाल मारवाड़ के राजा मालदेव के पास था, जो उसके बेटे चंद्रसेन ने महाराणा उदयसिंह को दिया था। जब शाहजादा खुर्रम ने अजमेर पहुंच कर जहांगीर की नजर किया, तो जहांगीर ने इस लाल पर यह खुदवाया कि बसुल्तान खुर्रम दर हीने मुलाजमत, राना अमरसिंह पेशकश नमूद। वही लाल 1938 वि० (1298 हि०=1881 ई०) में किसी सौदागर के मध्यम से हिन्दुस्तान में बिकने को आया था, जिसका उल्लेख कई अखबारों में सुना गया।

सलाह और तदवीर से बखिलाफ न होकर उनकी जगह पर उनके पास हाजिर होते रहें। आदेश के विरुद्ध कोई काम न हो, अपने कायदे पर जमे रहें। —5 करोड़, 30 लाख, 6 हजार 8 सौ 32 दाम राणा अमरसिंह के बेटे कुंवर कर्ण की जागीर—

याददाश्त—के अनुसार तारीख दिन आजर, 31 वीं उर्दीबिहिश्त सन् 10 जुलूस, बृहस्पतिवार, 22 रबीउस्सानी सन् 1024 हिजरी[1] को बादशाह के श्रेष्ठ सरदार और बादशाह के कामों के मुखत्यार एतिमादुद्दौला के रिसाले में और बड़े अकलमंद हकीम मसीहुज्जमां की चौकी में और छोटे शुभचिन्तक इसहाक की वाकिआनवीसी की बारी में बुजुर्ग हुक्म जारी हुआ कि, राणा अमरसिंह के बेटे कुंवर कर्ण को पांच हजारी जात और सवार मनसब के अनुसार इस तरह जागीर मुकर्रर हो।

बादशाही याददाश्त के मुवाफिक लिखा गया। यह लिखावट वाकिए के अनुसार है –

बयान— लिखावट का एतिमादुद्दौला द्वारा अर्ज करे। बयान – बादशाही दरगाह के हाजिरबाश मुखलिसखां के हाथ से लिखा हुआ तारीख 5 वीं खुर्दाद, सन् 10 जुलूस तदनुसार 27 वीं रबीउस्सानी[2] को दुबारा अर्ज होकर एतिमादुद्दौला के हाथ से बुजुर्ग फरमान लिखा जावे।

मुकर्रर तनख्वाह
5 हजार सवार मए खास – 52 लाख 30 हजार 40 दाम
खास पांच हजारी जात 12 लाख दाम, मुकर्रर वर्ष के सवार।
रियासती हिस्से के –
5 करोड़ 72 लाख दाम खास चौथ के,
5 करोड़, 39 लाख दाम **माल**
38 लाख 6 हजार 7 सौ 34 दाम—परगना, रतलाम के उज्जैन जिला सूबा मालवा से।

---

1. ज्येष्ठ कृष्ण 9, 1672 वि० = मई 11, 1615 ई०। (सं०)
2. मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण 14, 1672 वि० = मई 16, 1615 ई०। (सं०)

कालीन नमदा तकिया और हर तरह की खुशबू और सोने के बरतन व दो बैल गुजाराती और दुशाले वगैरा 100 किशतियों में रख कर कर्ण को दिये और दिन-दिन मेहरबानी अधिक बढती रही। नीलम और मोतियों की एक माला जिसमें लाल था, बख्शी और पांच हजारी जात और सवार का मनसब दिया।[1]

बादशाह ने ज्येष्ठ कृष्ण 9, 1672 वि० (22 रबीउस्सानी, 1024 हि० = 21 मई, 1615 ई०) को कुंवर कर्णसिंह को जिस तफसील (ब्यौरे) के साथ जागीर प्रदान की, उस फरमान का अनुवाद नीचे लिखा जाता है—

जहांगीर बादशाह के फरमान की नकल—

उन इकरारों के अनुसार जो 19 वीं तीर सन् 10 जुलूस[2] को हुए हैं, इस समय मेहरबानी के रूप में बड़े दर्जे वाला फरमान जारी किया जाता है कि, बुजुर्ग सरदार मेहरबानियों के लायक बादशाह के पसन्दीदा, बड़ी इज्जत वाले खानदानी राणा अमरसिंह के बेटे कुंवर कर्ण की जागीर में पांच करोड़ तीस लाख छः हजार आठ सौ बत्तीस दाम मुकर्रर होकर सौंपे जाते हैं।

मुनासिब है कि, बड़े हाकिम, अहलकार, जागीरदार और कामदार दीवानी वाले, बादशाही हुक्म मानने वाले और कामों को संभालने वाले बड़े पाक हुक्म के अनुसार तामील करके उन परगनों का जिक्र किये हुए आदमी के कब्जे में छोड़कर वहां के कायदों में किसी तरह का फर्क न डालें।

चौधरी, कानूनगो, पटेल, रैय्यत और किसानों को चाहिये कि नीचे लिखे हुए परगनों में ऊपर लिखे हुए आदमी को अपना जागीरदार (हाकिम) जान कर अच्छी तरह दीवानी की रस्मों के कायदे के अनुसार फसल दर फसल और वर्ष दर वर्ष जवाबदेही करते रहें। किसी तरह इस काम में कमी न करें। उस (कर्ण) के हिसाबी गुमाश्तों की

---

1. 7 फरवरदी जुलुसी सन् 10 (तदनुसार 14 सफर, 1024 हि० = रविवार, फाल्गुन सुदि 15, 1671 वि० = मार्च 5, 1615 ई०) के दिन राजकुमार कर्ण को मनसब मिला। बेवरिज, तुजुक० (अं०अ०), भाग 1, पृ० 281। (सं०)
2. शुक्रवार, 13 जमादियुल आखिर, 1024 हि०=आसाढ सुदी 15, 1672 वि०=जून 30 1615 ई०। (सं०)

3 करोड़ 15 लाख 54 हजार 7 सौ दाम फसल रबी तविश्कां-ईल से।[1]

(दूसरी लिखावट आधी तविश्कांईल से)

50 लाख दाम आधी रबी तविश्कांईल बदनौर परगने से।

एक करोड़ 35 लाख 38 हजार 5 सौ 66 दाम फसल खरीफ तविश्कांईल से।

आधे के मुवाफिक-2 करोड़ 62 लाख[2] 50 हजार दाम।

38 लाख 6 हजार 7 सौ 34 दाम परगना रतलाम, जिला उज्जैन, सूवा मालवा से निकाले गये।

33 लाख 99 हजार दाम रावल गिरधरदास जमींदार बांसवाला की जागीर में से रबी तविश्कां ईल से निकालने का हुक्म हुआ।

4 लाख 7 हजार 7 सौ 34 दाम शमशेर अरब की जागीर रबी तविश्कां ईल अपने तौर पर खरीफ तविश्कां ईल से निकालने का हुक्म हुआ।

5 लाख 36 हजार 7 सौ 37 दाम द्वारिकादास की जागीर में से।

52 हजार 5 सौ 2 दाम शमशेर अरब की अधिक जागीर।

इस तरह 44 लाख, 93 हजार 2 सौ 36 दाम।

2 करोड़ 31 लाख 43 हजार 2 सौ 66 दाम।

46 लाख 40 हजार 7 सौ दाम रबी तविश्कांईल में से।

50 लाख दाम आधी रबी तविश्कांईल परगना बदनौर से।

---

1. हिन्दू लोग चार या बारह वर्ष का एक युग मानते हैं। उसी तरह तुर्किस्तान के लोगों ने बारह वर्ष का एक दौर ठहरा कर उन बारह वर्षों के नाम अलग-अलग जानवरों के नामों पर रखे हैं। जिनका फल भी उन्हीं जानवरों की आदत से निकालते हैं। उन जानवरों के नाम यह हैं—

   1. सिचक़ां=चूहा, 2. ऊद=गाय, 3. पारस=चीता, 4. तविश्कां=खरगोश, 5. लोए=मगर, 6. पीलां=सर्प, 7. योंत=घोड़ा, 8. कोए=गाडर, 9. बीचे=बन्दर, 10. तखाकू=मुर्ग, 11. ईत=कुत्ता, 12. तुंगोज=सूअर।

   और ईल वर्ष को कहते हैं, जिससे जानवर के नाम के बाद ईल लगाया जाता है—जैसे तविश्कां ईल आदि।

2. लिखे गये आंकड़ों के अनुसार "69 लाख" होना चाहिये। (सं०)

बयान—एतिमादुद्दौला के हाथ से बादशाह की महफील में तजवीज होकर बादशाह के दस्तख्त हुए। (असल कागज दफ्तर में है।)

याददाश्त के करार से—दिन आजर उर्दी[1] सन् 10 जुलूस मुवाफिक शनिवार, 28 वीं सफर, सन् 1024 हिजरी को[2] उम्दा सरदार, बादशाह के वजीर, मुल्क के बख्शी ख्वाजा अबुलहसन के रिसाले में और मेहरबानी के लायक दाऊदखां ख्वाजा इब्राहिम हुसैन की चौकी में, और बादशाही दरगाह के ताबेदार असकरी मामूरी की वाकिआनवीसी की बारी में बुजुर्ग हुक्म जारी हुआ कि, राणा अमरसिंह का बेटा कुंवर कर्ण, "पांच हजारी जात और सवार" के मनसब पर सम्मानित हो। याददाश्त के मुवाफिक लिखा गया। (यह बयान वाकिआनवीस की लिखावट के अनुसार है।)

दूसरा बयान—बुजुर्ग सरदार एतिमादुद्दौला की लिखावट का दुबारा अर्ज में पहुँचा। और बयान मेहरबानी के लायक मिर्जा सादिक की लिखावट का तारीख आबान, फरवरदी, सन् 10 जुलूस तदनुसार 1 रबीउल्-अव्वल्, सन् 1024 हिजरी[3] "पांच हजारी जात और पांच हजार सवार" बादशाह से अर्ज हुआ।

इकरार की लिखावट—(कुंवर कर्ण के दस्तखत से) 19 वीं खुर्दाद, सन् 10 जुलूस[4] के मुवाफिक मतलब इस लिखे हुए से है कि मेरा नाम कुंवर कर्ण है, पांच करोड़ उन्तालीस लाख दाम की जागीर नीचे लिखे हुए इलाकों में से बखिलाफी से अपनी रजामन्दी के साथ कबूल करता हूं। लिखावट एतिमादुद्दौला की विश्वास किया जावे। निचे लिखे हुए मुवाफिक—

5 करोड़ 39 लाख 2 सौ 66 दाम

(लिखावट-एतिमादुद्दौला के हाथ से रबी तविश्कां ईल की)

---

1. यहां "दिन दै बा आजर (8) फरवरदी" होना चाहिये। (सं०)
2. चैत्र कृष्ण 14, 1671 वि० = मार्च 18, 1615 ई०। (सं०)
3. आबान, फरवरदी सन् 10 जुलूस = 10 फरवरदी = 1 रबीउल अव्वल सन् 1024 हि० = सोमवार, चैत्र शुक्ल 1, 1672 वि० = मार्च 20, 1615 ई०। (सं)
5. मंगलवार, 12 जमादियुल अव्वल, 1024 हि० = ज्येष्ठ शुक्ल 13, 1672 वि० = मई 30, 1615 ई०। (सं०)

26 लाख 50 हजार 5 सौ 30 दाम खरीफ तविश्कांईल से।
80 लाख 50 हजार 5 सौ 30 दाम वदनौर वगैरा—

50 लाख दाम वदनौर से आधी रवी ताविश्कांईल से निकालने का हुक्म हुआ –

47 लाख 41 हजार दाम नरहरदास से निकाले हुए,

2 लाख 59 हजार दाम किशनसिंह, मोटा राजा के वेटे से निकाले हुए।

4 लाख दाम उपरमाल, उग्रसेन की जागीर से रवी तविश्कां ईल से निकालने का हुक्म हुआ।

26 लाख 50 हजार 5 सौ 30 दाम भैंसरोड वगैरा, राव चांदा से खरीफ तविश्कां ईल से निकालने का हुक्म हुआ।

14 लाख 50 हजार 5 सौ 30 दाम भैंसरोड़।

12 लाख दाम नीमच।

परगना—80 लाख 11 हजार 4 सौ 34 दाम जीरण वगैरा
38 लाख 6 हज़ार 7 सौ 34 दाम परगना रतलाम, जिला उज्जैन, सूवा मालवा से ऊपर लिखे अनुसार निकालने का हुक्म हुआ।
42 लाख 4 हज़ार 7 सौ 1 दाम—

29 लाख 77 हजार 8 सौ 75 दाम जीरण, जिला चित्तौड़, सूवा अजमेर रावत सगर की जागीर से रवी तविश्कां ईल से निकालने का हुक्म हुआ।

12 लाख 26 हजार 7 सौ 95 दाम, वसार आदि जिला मन्दसौर रवी तविश्कां ईल से—

9 लाख 66 हजार 3 सौ 75 दाम वसार,

2 लाख 60 हजार 4 सौ 20 दाम गयासपुर।

आधी रवी तविश्कां ईल से 2 करोड़ 69 लाख 50 हजार दाम।
80 करोड़ 44 लाख 38 हजार 7 सौ 61 दाम परगना उदयपुर वगैरा सूवा अजमेर से।

परगना—उदयपुर वगैरा जो हमेशा वादशाही नौकरी की तनख्वाह में रहा है, करार याद्दाश्त वाके दिन आजर तारीख शुरू माह ख़ुर्दाद इलाही

1 करोड़ 35 लाख 38 हजार 5 सौ 66 दाम खरीफ तविश्कांईल में से।

परगना फूलिया वगैरा सूवा अजमेर से—

2 करोड़ 19 लाख 16 हजार 4 सौ 41 दाम।

29 लाख 77 हजार 8 सौ 75 दाम परगना जीरण से, जो दूसरी जागीर में लिखा गया।

1 करोड़ 89 लाख 38 हजार 5 सौ 66 दाम।

4 लाख रवी तविश्कां ईल से।

50 लाख आधी रवी तविश्कां ईल परगना वदनौर से।

1 करोड़ 35 लाख 38 हजार 5 सौ 66 दाम खरीफ तविश्कां ईल से।

फूलिया वगैरा, रावत सगर की जागीर में से, जिसकी रवी तविश्कां ईल भामावत करोरी की नौकरी खालसा से मुकर्रर हुई। खरीफ तविश्कांईल से जागीरदार को हुक्म मिला।

1 करोड़ 8 लाख 88 हजार 31 दाम।

44 लाख दाम असल 30 लाख दाम, इजाफा 14 लाख दाम फूलिया भामावत कम्वो की नौकरी में।

64 लाख 88 हजार 31 दाम मांडलगढ़ वगैरा हरीदास की नौकरी में

44 लाख 3 हजार 2 सौ 72 दाम मांडलगढ़—

13 लाख 47 हजार 7 सौ 1 दाम खालसा,

30 लाख 55 हजार 5 सौ 65 दाम रावत सगर की जागीर।

25 लाख 87 हजार 2 सौ 81 दाम पुर, रावत सगर से उतर कर—

19 लाख दाम खास जागीर,

6 लाख 87 हजार 2 सौ 81 दाम कमी।

8 लाख दाम वागीर रावत सगर की जागीर से—

4 लाख 20 हजार 8 सौ 75 दाम खास जागीर,

3 लाख 79 हजार 1 सौ 25 दाम अधिक।

45 हजार 1 सौ 85 दाम हमीरपुर।

4 लाख दाम रवी तविश्कांईल से।

50 लाख दाम आधी रवी तविश्कांईल से।

9 लाख 5 हजार 9 सौ दाम शाह ग्राबाद उर्फ बसार—

8 लाख 12 हजार 3 सौ दाम बादशाही रिग्रायत,

92 हजार 7 सौ दाम ग्रधिक।

4 लाख 20 हजार 8 सौ दाम सादड़ी रावत सगर सेउतार कर।

2 लाख 63 हजार 8 सौ 12 दाम कोस्माना।

2 लाख दाम ग्ररनोद।

1 लाख 60 हजार दाम मदारिया।

1 लाख 8 हजार 9 सौ दाम इस्लामपुर।

परगना—80 लाख दाम डूंगरपुर, गैर ग्रमली।

बयान—जुम्दतुल्मुल्क के खत का,—डूंगरपुर की जमा एक करोड़ साठ लाख दाम करार पाई। ग्रधिक के बारे में दूसरा जो कुछ हुक्म होगा ग्रमल में लाया जावेगा। बाकी जिला कुम्भलगढ़ ग्रौर जिला गोगुंदा वगैरा राना ग्रमरसिंह के मुल्क में से।

80 करोड़ 25 लाख 11 हजार 2 सौ 39 दाम।

मुवाफिक याद्दाश्त दिन गांश 14 तारीख महीना खुर्दाद इलाही सन् 10 जुलूस, तदनुसार बृहस्पतिवार, तारीख 7 जमादियुल ग्रव्वल, सन् 1024 हिजरी[1] रिसाला एतिमादुद्दौला, चौकी हकीम मसीहुज्जमा, नौबत वाकिग्रानवीसी इस्हाक में, बादशाह का ग्रादेश जारी हुग्रा कि, जागीर कुंवर कर्ण की खास ग्रौर सवार पांच हजारी, एवज परगने रतलाम, जिला उज्जैन, सूबे मालवा से इस तरह मुकर्रर हो—

38 लाख 6 हजार 7 सो 34 दाम की जमा कुंवर कर्ण की जागीर में बहाल।

मुकर्रर तनख्वाहा नीचे लिखे ग्रनुसार है—

29 लाख 13 हजार 5 सौ 66 दाम—

18 लाख 13 हजार 5 सौ 66 दाम जिला जहाजपुर सूबा ग्रजमेर राजा सूरजसिंह की जागीर से।

11 लाखदाम इस्लामपुर जिला चित्तौड़ कर्मसेन व रामसिंह से उतार कर।

---

1. ज्येष्ठ शुक्ल 8, 1672 वि०=मई 25, 1615 ई०। (सं०)

सन् 10 जुलूस तदनुसार शुक्रवार (23) रबीउस्सानी सन् 1024 हिजरी[1] रिसाला नवाब शाहजादा इज्जतदार और चौकी इरादतखां और नौवत वाकियानवीसी मुहम्मद जाहिद मर्वारीद में जारी हुआ, राना के क्षेत्र के पास वाले कतिपय परगने एक अवधिसे दो तरफी अमल में रहे और वे पगरने मेहरवानी से तनख्वाह में जागीरदारों को मिले, यद्यपि स्पष्ट है कि, जागीरदार कुछ नहीं पाते थे।

इस वक्त कि, जागीर और तनख्वाह कुंवर कर्ण की पेश है, हुक्म हुआ कि आधी तनख्वाह दें, और अर्ज करें कि, परगना मजकूर जो कागजों में अमली सीगे में दाखिल हैं उनमें से आधी गैर अमल तनख्वाह होती है। तब हकीकत उस तरफ की बादशाह से अर्ज हुई तब बादशाह का आदेश जारी हुआ कि, कुंवर कर्ण की अर्ज के अनुसार वे परगने उसको देवें और दीवान आधे में गैर अमल समझ करके तनख्वाह देवें। **मुआफिक तस्दीक याददाशत** के लिखा गया। **हाशिये का बयान** वाकिए के मुवाफिक है, **जुम्दतुल्मुक के खत** से टिप्पणी दोबारा अर्ज में पहुंची।

मुखलिसखां के खत से दूसरी टिप्पणी तारीख 5 खुर्दाद माह इलाही सन् 10 तदनुसार 27 रबीउस्सानी सन् 1024 हिजरी[2] को दूसरी बार अर्ज हुई।

64 लाख 38 हजार 7 सौ 61 दाम, उदयपुर वगैरा 3 परगने।

21 लाख 20 हजार दाम उदयपुर चार परगना भीलवाड़ा।

11 लाख 75 हजार 7 सौ 29 दाम वैंगू, रावत सगर की जागीर से।

5 लाख 5 हजार[3] 9 सौ दाम शाहजादा आबाद, उर्फ कपासन रावत सगर की जागीर से—

6 लाख दाम बादशाही रिआयत,

4 लाख 85 हजार 9 सौ दाम अधिक।

---

1. शुक्रवार, ज्येष्ठ कृष्ण 10, 1672 वि० = मई 12, 1615 ई०। (सं)
2. मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण 14, 1672 वि० = मई 16, 1615 ई०। (सं०)
3. नीचे लिखे गये आंकड़ों की जोड़ के अनुसार यहां पर "10 लाख 85 हज़ार" होना चाहिये। (सं०)

10 कबा, 10 कमरबन्द और छठे दिन एक लाल और 2000 रु० की एक कलंगी कर्ण को दी। जब कर्ण ने घर जाने की रुखसत पाई तो घोड़ा और हाथी खासा, खिलअत और मोतियों का एक कीमती झुब्बा 50,000 रु० का और 2000 रु० का कीमती खंजर कर्ण को देकर राणा अमरसिंह के लिये घोड़ा व हाथी देकर मुबारिक खां सजावल को पहुंचाने के लिये साथ किया।

जहांगीर बादशाह फिर लिखता है कि–"मैंने कुंवर कर्ण को उपस्थित होने के समय से रवानगी तक जवाहरात, शस्त्र और नकद वगैरा जो कुछ दिया, उसकी कीमत दो लाख है। इसके अतिरिक्त 110 घोड़े और 5 हाथी दिये। शाहजादा खुर्रम ने जो सामान और नकद कई बार दिया है, वह इसके अतिरिक्त है। बहुतसी प्रेम व नसीहत की बातें राणा अमरसिंह को कहलाईं।"

इस पुस्तक को पढने वालों को याद रखना चाहिये कि, जिस तरह ब्रिटिश इण्डिया गवर्मेन्ट इस समय में अफगान लोगों के साथ व्यवहार कर रही है, उसी तरह मेवाड़ी राजाओं के साथ जहांगीर ने किया था। अगर मुसलमान बादशाहों के साथ मेवाड़ी राजपूतों का यह मामला वर्तमान समय के बाद हुआ होता, तो हम बेशक ब्रिटिश इण्डिया गवर्मेन्ट व उसकी अफगान राजनीति को उपमा और उसको उपमेय कहते। लेकिन उसके पहले और इसके बाद में होने से प्रतीप अलंकार समझना चाहिये। इंगलैण्ड के बादशाह जेम्स प्रथम का दूत सर टॉमस रो उस समय वहां मौजूद था। उसने केन्टरबरी के आर्च बिशप अर्थात् केन्टरबरी के मुख्य लॉर्ड पादरी को जो चिट्ठी लिखी उसमें वह लिखता है कि, "पोरस के खानदान का एक राजकुमार मुगल बादशाह के दरबार में आया। जिसको बड़े मुगल (बादशाह) ने बख्शिशों से आधीन बनाया है, तलवार के जोर से नहीं।"[1] अब सोचना चाहिये कि, इस चिट्ठी के विवरण से या जहांगीर की कर्ण के साथ मुल्की तदबीर से स्पष्ट है कि इस घराने के राजकुमारों को दिल्ली के मुसलमान बादशाह किस कठिनता के, साथ अपने काबू में लाये थे।

कुंवर कर्णसिंह अजमेर से निकल कर अपने प्रदेश मेवाड़ को जितना हो सका आबाद करता हुआ उदयपुर पहुंचा और महाराणा अमरसिंह को

---

1. फास्टर, दी एम्बैसी ऑफ सर टामस रो, पृ० 90। (सं०)

वादशाही याददाश्त के अनुसार लिखा गया—

बयान हाशिये का घटना के अनुसार है—बयान जुम्दतुल्मुल्क ने दूसरी बार अर्ज किया। बयान मुखलिसखां के खत से तारीख आठवीं माह तीर, सन् 10[1] को दूसरी दफा वादशाह से अर्ज हुआ। बयान जुम्दतुल्मुल्क के खत से यह कि आलीशान फरमान लिखा जावे।

मनसव आदि देने के बाद वादशाह ने लिखा है कि, कुंवर कर्ण की रुखसत के दिन नजदीक आ गये थे और मैं बन्दूक चलाने का अपना फन कर्ण को दिखलाना चाहता था। इसी समय में शिकारी एक शेरनी के आने की खबर लाये। मैंने अहद किया था कि, नर शेर के अतिरिक्त मादा का शिकार नहीं करूंगा। लेकिन इस विचार से कि, शायद इसके जाने तक कोई और शेर न मिले, शेरनी के ही शिकार पर मुतवज्जिह हुआ (ध्यान दिया) तथा कर्ण से पूछा कि, जिस जगह तुम कहो, वहीं गोली लगाऊं। तब कर्ण ने दाहिनी आंख में लगाने को कहा। इत्तफाक से उस वक्त हवा तेज चल रही थी और सवारी की हथनी भी शेर के भय से घबराकर एक जगह नहीं ठहर रही थी। इन दो बातों के होने पर भी मेरी गोली निश्चित जगह याने दाहिनी आंख में लगी। खुदा ने मुझे उसके सामने शर्मिन्दा नहीं किया। खास बन्दूक कुंवर कर्ण ने मांगी, मैंने उसी वक्त उसको देदी।[2]

फिर मैंने सभा में कुंवर कर्ण को कवाय खासा (काश्मीर का परम नरम दुशाला), 12 हिरन और 10 कुत्ते ताजी[3], दूसरे दिन 40 घोड़े, तीसरे दिन 41 घोड़े, चौथे दिन 20 घोड़े,[4] पांचवें दिन 10 चीरे,

---

1. सोमवार, 2 जमादियुल आखिर, 1024 हि० = असाढ शुक्ल 3, 1672 वि० = जून 19, 1615 ई०। (सं०)
2. वेवरिज, तुजुक (अं० अ०), भाग 1, पृ० 286-287; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 345। (सं०)
3. वेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 289-290; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 347। (सं०)
4. वेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 293-294; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 361। (सं०)

बून्दी वाले को मिली । इस पर भी किले रणथम्भोर में विश्वसनीय सेवा और कुल कारबार भारमल के ही हाथ रहा था । इस शुभचिन्तक घराने के आदमी सभी अच्छे ही थे परन्तु भामाशाह के नाम से ओसवाल जात के हर एक महाजन को घमण्ड होता है। जिस तरह वस्तुपाल, तेजपाल अन्हलवाड़ा के सोलंखी राजाओं के प्रधान थे और जिन्होंने आबू पर जैन के मन्दिर बनवाये, वैसा ही पराक्रमी और प्रसिद्ध भामाशाह को भी जानना चाहिये। उसकी सेवा के बदले महाजनों के बड़े उत्सवों में वर्तमान समय तक उसकी औलाद के कावड़िये महाजन सबसे पहले पेशानी पर तिलक पाते हैं। अब उन लोगों में कोई प्रसिद्ध आदमी नहीं रहा, तो भी भामाशाह का नाम सारे प्रदेश में प्रसिद्ध है।

कुंवर कर्णसिंह उदयपुर आया और प्रदेश की प्रजा को बुला कर आबाद किया। कुछ दिनों बाद कुंवर कर्णसिंह के बड़े पुत्र भंवर[1] जगतसिंह को हरदास झाला और बहुत से राजपूतों सहित बादशाह जहांगीर के पास भेजा।[2] बादशाह ने 20,000 रुपये, 1 हाथी, 1 घोड़ा और खिलअत तथा शाल खासा भंवर जगतसिंह को, और 5000 रुपये 1 घोड़ा व खिलअत हरदास झाला को देकर विदा किया।[3]

जब कुंवर कर्णसिंह अजमेर से उदयपुर आया था, तभी सगर अपने राणा पद को किले चित्तौड़ में छोड़ कर अपने बाल-बच्चों सहित जहांगीर के पास पहुंचा। तब बादशाह ने उसको रावत का खिताब और ऊमरी भदौरा का परगना जागीर में दिया। जो अब तक उसकी औलाद के अधिकार में चला आ रहा है।

चित्तौड़ किला महाराणा अमरसिंह के अधिकार में आया। लेकिन नारायणदास अचलदासोत शक्तावत ने, जो सगर का जागीरदार था, बेगूं

---

1. दादा की विद्यमानता में कुंवर के बेटे को मेवाड़ में भंवर कहते हैं।
2. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 296; जहांगीर० (हन्दी), पृ० 363-364। (सं०)
3. 10 इस्फन्दार के दिन, बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 310-311; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 377। (सं०)

वड़ी रंजीदा हालत में पाया। वह अपने नाम पर बने अमर महल में एकान्त-वासी था ! महाराणा अमरसिंह ने कर्णसिंह के आते ही राज्य का सम्पूर्ण काम उसको सौंप दिया । कोठार व राय (राज्य) आंगन तथा उसके पूर्व पश्चिम की चौपाड़े, जो अब "नीका की चौपाड़", "पाण की ओवरी" तथा "पाणेरा" के नाम से प्रसिद्ध है, महाराणा उदयसिंह ने बनवाये थे और महाराणा प्रतापसिंह ने रहने के लायक थोड़ीसी इमारत चावण्ड में बनवाली थी, क्योंकि लड़ाई की तकलीफों से उनको उदयपुर में अधिक रहने का मौका नहीं मिला। महाराणा अमरसिंह ने, जिसका प्रधान भामाशाह ओसवाल कावड़िया गोत्र का महाजन वड़ा बुद्धिमान और बहादुर था, उसी के प्रधाने में महलों का प्रथम दरवाजा जिसको "वड़ी पोल" कहते हैं और "अमर महल" जो जनाना महलों के नजदीक है बनवाये थे।

भामाशाह वड़ा काम का आदमी था । महाराणा प्रतापसिंह के शासनकाल के प्रारम्भ से महाराणा अमरसिंह के राज्य के ढाई तथा 3 वर्ष तक प्रधान रहा । ऊपर लिखी हुई बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में इसने हजारों आदमियों का खर्च चलाया । यह प्रसिद्ध प्रधान माघ शुक्ल 11, सम्वत् 1656 वि० (9 रजव, 1008 हि०=27 जनवरी, 1600 ई०) को 51 वर्ष 7 महीने की उम्र में परलोक को सिधाया। इसका जन्म सोमवार, आषाढ शुक्ल 10, 1604 वि० (9 जमादियुल अव्वल, 954 हि० = 27 जून, 1547 ई०) को हुआ था । इसने मरने के एक दिन पहले अपनी स्त्री को अपने हाथ की लिखी हुई एक वही दी और कहा कि, इसमें मेवाड़ के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ है। जिस समय तकलीफ हो यह वही उन (महाराणा) की नजर करना । यह शुभचिन्तक प्रधान इस वही में लिखे हुए खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक खर्च चलाता रहा । मरने पर इसके वेटे जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने प्रधान पद दिया था। वह भी शुभचिन्तक आदमी था, लेकिन भामाशाह की बराबरी का होना कठिन था।

जव कुंवर कर्णसिंह वादशाह जहांगीर के पास अजमेर गया, तब शाह जीवराज भी साथ था । जीवराज के वाद भी महाराणा कर्णसिंह ने उसके बेटे अक्षयराज को प्रधाना दिया। इसके घर में तीन पीढी तक तीन महाराणाओं का प्रधाना रहा। भामाशाह के बाप भारमल को महाराणा सांगा ने रणथम्भोर की किलेदारी दी थी । जो वाद में सूरजमल हाड़ा

मुनासिब है कि, हाकिम, कामदार, जागीरदार, दीवानी के अहलकार और हिसावी जिम्मेदार पाक और बुजुर्ग हुक्म के मुआफिक अमल करके उस गांव और जागीर को जिक्र किये हुए आदमी के कब्जे में छोड़ दें। किसी तरह का फर्क और कोई तब्दीली उसके कायदों में न करें।

चौधरी, कानूनगो, पटेल, प्रजा किसान वगैरा को चाहिये कि जिक्र किये हुए रावत को अपना जागीदार (हाकिम) जानें।

दीवानी और माली हिसाव किताव को दस्तूर के मुवाफिक हर फसल और हर वर्ष उसे समझावें और जवाब देते रहें।

किसी तरह इसमें कमी न करें, उसकी हिसावी युक्तियों का विरोध न करके हर वात के लिये जिक्र किये हुए रावत के पास हाजिर होते रहें। आदेश का पालन आवश्यक समझें।

कागज के पीठ की तहरीर

जागीर..............................

रावत मेघा के नाम याददास्त के मुआफिक यह है —

सुवह के वक्त दिन आसमान 27 इस्फन्दार इलाही संनू 10 जुलूस बुधवार, 27 सफर, हिजरी 1025[1] को जुम्दतुलमुल्क मदारुल्महाम मुख्तारुद्दौला, एतिमादुद्दौला के रिसाले में और नेकवख्त मुस्तफाकां की चौकी, और वादशाही तावेदार मुहम्मदअली शुकूरुल्लाह की वाकिआनवीसी में वुजुर्ग रोशन हुक्म जारी हुआ कि रावत मेघा की जागीर जात चार सौ और सवार दो सौ इस तरह मुकर्रर की जावे।

तसदीक के मुवाफिक लिखा गया। बयान वाकिआनवीस का — सही है। दूसरा बयान जुम्दतुल्मुल्क, महारुल्महाम, एतिमादुद्दौला वजीर के खत से दूसरी वार अर्ज हुआ। दूसरा बयान खास मुसाहिव दयानतखां ने 11 जुलूस, मंगलवार, 10 रवीउल्अव्वल, सनू 1025 हिजरी[2] को कार्रवाई में हुक्म के

---

1. चैत्र कृष्णा 14, 1672 विक्रमी=16 मार्च, सनू 1616 ई०। (N. S) (सं०)
2. मंगलवार, चैत्र शुक्ल 12, 1673 वि० = मार्च 19, 1616 ई०। O. S.) (सं०)

का अधिकार नहीं छोड़ा। कुंवर कर्णसिंह ने रावत मेघसिंह गोइन्ददासोत चूंडावत को उसे निकाल देने के लिये भेजा। मेघसिंह ने वेगूं जाकर नारायणदास को समझाया कि, महाराणा अपने मालिक व मां-बाप हैं। उनसे सामना नहीं करना चाहिये। इस तरह समझाने से नारायणदास वहां से निकल गया और वेगूं व रतनगढ़ पर महाराणा का अधिकार हो गया।

महाराणा अमरसिंह के आदेश से कुंवर कर्णसिंह ने बल्लू चौहान को वेगूं का पट्टा लिख दिया। जिससे नाराज होकर रावत मेघसिंह ने उदयपुर आकर रुखसत चाही। कुंवर कर्णसिंह ने ताने के तौर पर कहा कि, "क्या बादशाह के पास जाकर मालपुरा का पट्टा पाओगे?" इसी ताने पर रावत मेघसिंह वहां से निकल कर आगरा पहुंचा।

एक दिन बादशाह जहांगीर ने कहा कि, "तुमने एक रात में मेवाड़ के कुल बादशाही थाने किस तरह उठा दिये थे। उसी तरह का लिबास पहन कर हमारे सामने आओ।" मेघसिंह ने डेरे पर जाकर अपने राजपूतों सहित काले कपड़े पहने और सिर पर धौंकड़े की टहनियों के बदले रजके की कलंगियें लगा कर छोटी मश्क पानी पीने की बगल में रखी। बन्दूक तलवार कस कर बादशाह के सामने आया। तब जहांगीर ने कहा कि, "इसको काली मेघ कहना चाहिये।" बादशाह खुश हुआ और मेघसिंह की निवेदन के अनुसार मालपुरा जागीर में दे दिया। इस सम्बन्ध में बादशाह का फरमान व शाहजादा खुर्रम का निशान, जो मेघसिंह और उसके बेटे नरसिंहदास के नाम आया था, उनका अनुवाद यहां लिखा जाता है—

जहांगीर बादशाह का फरमान, रावत मेघसिंह के नाम।

फरमान अब्दुल मुजफ्फर नूरुद्दीन
मुहम्मद जहांगीर बादशाह गाजी

इस वक्त बड़े दरजे का नेक फरमान जारी किया जाता है कि, बत्तीस लाख अड़तीस हजार पांच सौ दाम की जागीर परगना मालपुरा की शुरू फसल रबी ईत ईल (चैती) से मौजूद जमाने के मुआफिक, रावत मेघा की तनख्वाह की जागीर में मुकर्रर की जावे।

रावत मेघसिंह के नाम शाहजादा खुर्रम का निशान—

(गोल मोहर में)

खुदा
शाहेजहां करदो बुलन्द इकवालु
दाद अफ़सर व खुर्रमशाह विन-
शाहे जहांगीर इब्न शाह
अकवर

(मोहर में)

निशान, आलीशान खुर्रम, इब्ने अबुल्
मुजफ्फर, नूरुद्दीन मुहम्मद जहांगीर
बादशाह गाजी।

बराबरी वालों में श्रेष्ठ रावत मेघ, शाही मेहरबानी का उम्मीदवार होकर जाने, हम उसको अपना शुभचिन्तक, कारगुजार राजपूत जानते थे। इसलिये हमने उसको कांगड़ा के झगड़े पर नियुक्त किया था। उसने अपनी जागीर में जाकर इस कदर देर लगा दी कि, शुभचिन्तक मददगार तावेदार विश्वास के योग्य राजा विक्रमादित्य ने सूरजमल के मामले को रोके रखा। इसलिये बड़े हजरत (जहांगीर) बुजुर्ग दरजे के बादशाह ने उसकी जागीर उतारने के लिये हुक्म दिया था। लेकिन शुभचिन्तक सरदार, मेहरबानियों के योग्य कुंवर भीम ने हमसे अर्ज किया कि वह जरूरत के कारण ठहर गया है। अब पूरा खयाल है कि, वह रवाना हो चुका होगा। इस बात को हमने बादशाही हुजूर में अर्ज करके उसकी जागीर साबिक दस्तूर बहाल रखी है और बुजुर्ग निशान उस मामले के बाबत हमने भेज दिया।

दुबारा उसका एक खत शुभचिन्तक सरदार ख्वाजा अबुलहसन के नाम पहुँचा। जिसका मजमून हजरत शहनशाह के हुजूर में अर्ज हुआ तो मालुम हुआ कि, वह अब तक कांगड़ा के लश्कर की तरफ रवाना नहीं हुआ। इसलिये बड़े हजरत ने उसकी जागीर उतार कर खास शुभचिन्तक बड़े दरजे के सरदार मेहरबानी के लायक बादशाह के मोतवर आसिफखां को इनायत फरमा दी। यदि वह चाहता है कि, इस कुसूर का एवज करे और बड़े हजरत उसका दोष माफ करें, तो उचित है कि, अच्छी जमइयत लेकर बाला-बाला अपने घर से जिक्र किये हुए राजा के पास चला जावे। जब कि राजा उसके और नियमानुसार उसकी जमइयत के पहुंच जाने के विषय की अर्जी लिखेगा, तो उस वक्त हम बड़े हुजूर की खिदमत में अर्ज करके उसका कुसूर माफ करा देंगे और बड़े दीवान को हुक्म देंगे कि, किसी दूसरे मुनासिब इलाके से

अनुसार दूसरी वार अर्ज हुआ। दूसरा वयान जुम्दतुल्मुल्क वजीर के खत से—फरमान लिखा जावे।

200 सवार मए खास—
2238500 दाम तनख्वाह,
मुकर्रर एवज—परगना भरसावर, जिला उज्जैन, सूवा मालवा से, जो केशवदास को तनख्वाह में मिला था।
10,00,000 दाम दूसरी वार अधिक तनख्वाह. 200 सवार।
32,38,500 दाम।

मुकर्रर तनख्वाह परगना मालपुरा, जिला रणथम्भोर, सूवा अजमेर में से, जो मिर्जा रुस्तम से उतार कर खासला में दाखिल हुआ था।

टिप्पणी याद्दाश्त—दिन आसमान, 27 वहमन, 10 जुलूस, तदनुसार मंगलवार, 27 मुहर्रम, सन् 1025 हिजरी[1] को वड़े सरदार वख्शियुल्मुल्क ख्वाजा अवू इस्हाक के रिसाले और मेहरवानियों के लायक तातारखां की चौकी में, वाकिआनवीस के मुताविक यह मतलव है कि, रावत मेघा का मनसव जागीर के अतिरिक्त है। वादशाही हुक्म जारी हुआ कि, जात और सवार के अनुसार सम्मानित रहें।

दयानतखां की लिखावट से—सन् 10 जुलूस तदनुसार मंगलवार को कार्रवाई की फर्द दोवारा अर्ज हुई—चार सौ जात, दो सौ सवार।

वयान जुम्दतुल्मुल्क वजीर का—यह है कि, शुरू ईत ईल से वाकिए में दाखिल करें। दूसरा वयान जुम्मदतुल्मुल्क का - यह है कि जिक्र किये हुए रावत मेघा की तनख्वाह के लिये जागीर में वांट दिया जावे।

(गोल मोहर में)

जिशाहे		तातारखां
जहांगीर किश्वर	32,38,500 दाम	मुरीदे जहांगीर
कुशाय। शुदह राय		वादशाह
वनमालिये राम राय		

---

1. फाल्गुन कृष्ण 14, 1672 वि०=फरवरी 6, 1616 ई०। (सं०)

इस वात में कमी न करें। उसकी हिसावी युक्तियों के विरुद्ध न रह कर उसके पास हाजिर होते रहें। इस हुक्म के अनुसार पालना आवश्यक समझें। तारीख 22 उर्दी विहिश्त इलाही सन् 11 जुलूस[1] तदनुसार सन् 1025 हिजरी।

पीठ की तफसील

जागीर..

रावत मेघा के वेटे नरसिंहदास के नाम याददास्त-मुवाफिक दिन आसमान, 27 इस्फन्दार तदनुसार बुधवार, 27 सफर सन् 1025 हिजरी को[2] जुम्दतुलमुल्क मदारुलमहाम एतिमादुद्दौला वजीर के रिसाले में और नेक खानदान मुस्तफाखां की चौकी में, वादशाही नौकर मुहम्मद हयात शुक्रुल्लाह की वाकिआनवीसी के मुवाफिक बुजुर्ग हुक्म जारी हुआ कि रावत मेघा के वेटे नरसिंहदास की जागीर, चार वीसी जात 20 सवार वावत मुकर्रर की जावे।

तम्दीक से लिखा गया—हाशिये का वयान वाकियानवीस के खत से—सही है। दूसरा वयान जुम्दतुलमुल्क वजीर के खत से—दुबारा अर्ज हुआ। दूसरा वयान बादशाह के मुसाहिब दयानतखां के खत से—दिन आवान 10 फरवरदी, सन् 11 जुलूस, तदनुसार बुधवार, 11 रवीउल अव्वल, सन् 1025 हि० को[3] मुहम्मद हयात खुशनवीस की वाकिआनवीसी से दुवारा अर्ज हुआ। दूसरा वयान वजीर के खत से लिखा गया कि, फरमान लिखा जावे—

21 सवार मए खास	वावत..............................
मुकर्रर दरमाहा—	फी नफर 20 (वीस) सवार
30,800 दाम	16,800 दाम—
खास............	मुकर्रर वार्षिक अतिरिक्त
चार वीसी जात-—	3,38,600 दाम

1. बुधवार, 24 रवीयुल आखिर, 1025 हि०=ज्येष्ठ कृष्ण 11, 1673 वि० मई 1, 1616 ई०। (सं०)
2. चैत्र कृष्ण 14, 1672 वि०=मार्च 6, 1616 ई०। (सं०)
3. चैत्र शुक्ल द्वितीय 12, 1673 वि०=मार्च 20, 1616 ई०। (सं०)

तनख्वाह के रूप में उसकी जागीर जारी कर दें। यदि इस तरीके पर अमल न करे और हमारी सेवा में नौकरी का इरादा रखता हो, तो तुरन्त हाजिर हो जावे कि, उसके लायक मेहरबानियों के साथ उसको सम्मानित किया जावे और जो नहीं, तो जहां चाहे चला जावे, कोई रोकने वाला नहीं है। तारीख 26 बहमन, इलाही सन् 13 जुलूस,[1] मुताबिक सन् 1028 हिजरी।

पीठ की इबारत

बड़े शुभचिन्तक ताबेदार अफजलखां के रिसाले और वाकिआनवीसी में जारी हुआ।

(गोल मोहर में)

शुक्रुल्ला
अफ्जलखां बन्द-
इ-शाहजहां

नरसिंह दास की जागीर के लिये जहांगीर बादशाह का फरमान

फरमान अबुलमुजफ्फर नूरुद्दीन मुहम्मद
जहांगीर बादशाह गाजी।

इस वक्त बुजुर्ग फरमान जारी किया गया कि, परगना मालपुरा जिला रणथम्भोर, सूबा अजमेर में से शुरू रबी ईंत-ईल से 2,98,100 दो लाख अठ्ठानवे हजार एक सौ दाम की जागीर रावत मेघा के बेटे नरसिंहदास की जागीरी तनख्वाह में मुकर्रर की जावे। मुनासिब है कि, हाकिम, जागीरदार और दीवानी के अहलकार और हर तरह के बादशाही नौकर हुक्म के अनुसार अमल करके उल्लेख किये हुए आदमी के कब्जे में रख दें। किसी तरह वहां के नियमों कायदों में हेर-फेर न करें। चौधरी, कानूनगो, पटेल, रैय्यत और किसानों को लाजिम है कि, उल्लेख किये हुए आदमी को वहां का जागीरदार समझ कर माली और दीवानी जवाब देही दस्तूर के अनुसार उसके पास फसल दर फसल और साल दर साल करते रहें, किसी तरह

1. गुरुवार, 28 सफर, 1028 हि० = फाल्गुन कृष्ण 15, 1675 वि० = फरवरी 4, 1619 ई०। (सं०)

छोटी गोल मोहर में
सादिक खां
मुरीदे जहांगीर
बादशाह

जहांगीर बादशाह की तरफ से रावत मेघसिंह
के मनसब व जागीर का फरमान—

अल्लाह—अकबर

तारीख दिन आजर शुरू मिहर, इलाही सन् 13 जुलूस तदनुसार, सोमवार, शव्वाल सन् 1027 हिजरी को[1] जुम्दतुल्मुल्क मदारुलमहाम बादशाही सरदार एतिमादुद्दौला वजीर के रिसाले में और बड़े दरजे के सरदार मोतमदखां की चौकी और बादशाही तावेदार अलीनकी की वाकिआनवीसी में बुजुर्ग हुक्म जारी हुआ कि, रावत मेघ वगैरा की जागीर 500 पांच सौ जात, 250 सवार के बावत नीचे लिखी तफसील के अनुसार मुकर्रर की जावे—

बादशाही याददास्त के अनुसार लिखा गया—

मीजान—

32,58,200 दाम मुकर्रेरा तनख्वाह—
25,04,700 दाम अगले दस्तूर के मुवाफिक—
7,04,500 दाम—13 उर्दीविहिश्त, इलाही सन् 13 जुलूस[2] को हुई इन दिनों की तरक्की,
23,000 दाम हाथियों की खुराक
32,35, 200 दाम—

1. 4 शव्वाल, 1027 हि=आश्विन शुक्ल 5, 1675 वि०=सितम्बर 14, 1518 ई०। (सं०)
2. रविवार, 17 जमादियुल अव्वल, 1027 हि०=ज्येष्ठ कृष्ण 4, 1675 वि०=मई 3, 1618 ई०। (सं०)

40,370 दाम मुकर्रर दरमाहा— 48,400 दाम खास

2,98,100 दाम

याददाश्त का बयान—रोज खुर्दाद छठी इस्फन्दार सन् 10 जुलूस तदनुसार बुधवार, 6 सफर, सन् 1025 हिजरी[1] को बड़े दरजे के सरदार बादशाह के शुभचिन्तक बख्शियुल्मुल्क ख्वाजा अबू इस्हाक के रिसाले में और नेक खानदान मुस्तफाखां की चौकी और बादशाही नौकर मुहम्मद मुकीम की वाकिआनवीसी में बुजुर्ग हुक्म जारी हुआ कि, रावत मेघा के बेटे नरसिंहदास का मनसब, जो बाप के साथ इन दिनों राना के पास से आया, जात और सवार इस मुवाफिक मुकर्रर किया जावे।

बयान वाकिआनवीस के खत से सही है। दूसरा बयान —जुम्दतुलमुल्क मदारुलमहाम एतिमादुद्दौला वजीर के खत से दुबारा अर्ज हुआ। दूसरा बयान मेहरबानियों के योग्य दयानतखां के खत से—दिन आबान 10 फरवरदी सन् 11 जुलूस तदनुसार बुधवार,[2] आदेशानुसार अर्ज हो गया—

चार बीसी, बीस सवार।

मुकर्रर तनख्वाह परगना मालपुरा, जिला रणथम्भोर, सूबा अजमेर से, जो मिर्जा रुस्तम से वापस खालसा में करोड़ी के अधीन मुकर्रर हुआ; दूसरा बयान जुम्दतुलमुल्क वजीर के खत से—वाकिए में दाखिल किया जावे—2,98, 100 दाम।

(छोटी गोल मोहर में) (बड़ी गोल मोहर में)

हसन खां
मुरीदे जाहांगीर
शाह

जि शाहे जाहांगीर
किश्वर कुशाय, शुदह
राय बनमालिये
रामराय

1. फाल्गुन शुक्ल 8, 1672 वि०=फरवरी 14, 1616 ई०। (सं०)
2. 11 रबीयुल आखिर, 1027 हि०=चैत्र शुक्ल द्वितीय 12, 1673 वि०=मार्च 20, 1616 ई०। (सं०)

1027 हिज़री[1] अलावल की वाकिआनवीसी में दुबारा अर्ज हो गया। वजीर के खत से यह बयान लिखा गया कि तफसील करदें—

500 जात, 250 सवार

400 चार सौ जात 200 दो सौ सवार पहला मनसब—
100 जात 50 सवार दो वर्ष दो महीने सोलह दिन बाद इन दिनों में तरक्की दी गई—
पहला मनसब चार सौ जात दो सवार, इन दिनों की तरक्की एक सौ जात, पचास 50 सवार।
दो सौ सवार
मुकर्रर दरमाहा—
2,29,400 दाम

खास.............................. अर्दली
400 जात, 1450 दाम

200 दो सौ सवार—1,71,400 दाम
अधीनस्थ मनसबदार—
13,880 दाम 3 आदमी, तीन बीसी—
फूलदास हरीदास
115 बीसी 4600 दाम
4600 दाम, 31 दाम, 4600 दाम।

अर्दली 197, 6.00,800 दाम, 1,81,600 दाम।
58,000 दाम।
सालाना अतिरिक्त मुकर्रर
25,23,400 दाम
1,97,450 दाम खास

अर्दली खास दाम	अर्दली मनसबदार
1.90,500 दाम	37,350 दाम
23,25,350—	7,40,500 दाम

मसौदा..............................

1. ज्येष्ठ कृष्ण 10, 1675 वि० = मई 9, 1618 ई०। (सं०)

जागीर

जात 500 (पांच सौ) सवार 250 (ढाई सौ)

251 सवार मए खास

मुकर्रर दरमाहा—3,07,200 दाम

खास............... मातहत जमइयत...............

500 पांच सौ जात—2440 दाम। 250 सवार

मनसवदार—13,800 दाम 3 तीन आदमी—2,21,400 दाम

फूलदास, हरीदास, परसराम (प्रति व्यक्ति) 4600 दाम।

बीसी बीसी बीसी

जमइयत— 247

6,00,800 दाम

1,97,600 दाम

96,000 दाम

सालाना अतिरिक्त मुकर्रर

33,81,400 दाम।

3,81,350 दाम।

खास—चार मनसवदार 2,64,000 दाम, 37,350 दाम।

याददाश्त का बयान—तारीख आजर 13 उर्दीविहिश्त सन् 13 जुलूस तदनुसार रविवार, 17 जमादियुल अव्वल, सन् 1027 हिजरी,[1] को बड़े इज्जतदार, श्रेष्ठ सरदार बख्शियुल्मुल्क ख्वाजा अबुल्हसन के रिसाले में और बड़े अकलमन्द होशियार हकीम मसीहुज्जमां की चौकी और बादशाही नौकर मुहम्मद मुकीमहिजाजी की वाकियानवीसी के मुताबिक, बुजुर्ग हुक्म जारी हुआ कि, रावत मेघ असल मनसब और तरक्की के साथ सम्मानित हों।

बख्शी की तस्दीक से याददास्त लिखी गई—हाशिये का बयान वाकिआ नवीस के खत से—सही है। बयान वजीर के खत से—दुबारा अर्ज हुआ। दूसरा बयान श्रेष्ठ सरदार दयानतखां के खत से आजर इस्फन्दार 19 उर्दीविहिश्त सन्, 13 जुलूस, तदनुसार शनिवार, 23 जमादियुल अव्वल, सन्

---

1. ज्येष्ठ कृष्ण 4, 1675 वि० = मई 3, 1618 ई०। (सं.)

रणथम्भोर सूबा अजमेर जो मिर्जा रुस्तम से उतार कर बादशाही खालसा मुकर्रर हुआ था, शुरू रबी लोय ईल 27 इसफन्दार मुज सन् 10 जुलुस[1] से—

2,66,200 दाम परगना ताल, जिला मंदसौर, सूबा मालवा फसल खरीफ लोय ईल से।

7,40,500 इन दिनों की तरक्की एक सौ जात, पचास सवार मनसब,

23,000 दाम हाथियों की खुराक

7,30,500 दाम[2]

मुकर्रर तनख्वाह 7,30,500 दाम।

बयान—जुम्दतुल्मुल्क वजीर के खत से फसल खरीफ ईत ईल से 8,07,061 दाम जागीर परगना इकनोद, जिला मन्दसौर, सूबा मालवा से, जो सेवा किशन मारू से उतारी गई और जिसको बांसवाड़ा परगने में एवज किया गया—

1,76,561 दाम दूसरे को तनख्वाह दी जायेगी।

6,30,500 दाम।

बयान—कुबूलियत—इस लिखावट का यह मतलब है कि, मैं रावत मेघ हूँ, 6,30,500 दाम परगना इकनोद में शुरू फसल खरीफ ईत ईल से मैंने स्वीकार किये। वह बयान सनद के तौर पर मैंने लिख दिया ता० 5 शहरीवर इलाही सन् 1027 हिजरी[3] मकाम महमूदाबाद—

मदद खर्च के एवज में याददाश्त के अनुसार रोज बहमन दूसरी शहरीवर इलाही सन् 13 जुलूस, तदनुसार 4 रमजान, सन् 1027 हिजरी[4] को मेहरबानियों के योग्य सरदार मोतमदखां के रिसाले और मेहरबानियों के योग्य आकिलखां की चौकी और बादशाही नौकर अब्दुलवासिअ की वाकिआ

---

1. बुधवार, 27 सफर, 1025 हि० = चैत्र कृष्ण 14, 1672 वि० = मार्च 6, 1616 ई०। (सं०)
2. आंकड़ों के अनुसार "7,63,500 दाम" होते हैं। (सं०)
3. मंगलवार, 7 रमजान, 1027 हि० = भाद्रपद शुक्ल 8, 1675 वि० = अगस्त 18, 1618 ई०। (सं०)
4. शनिवार, भाद्रपद शुक्ल 5, 1675 वि० = अगस्त 15, 1618 ई०। (सं०)

रावत मेघ का भाई, तीन वीसी जात दो वीसी सवार—

19,000 दाम 11 सवार, मुकर्रर दरमाहा

ख़ास—तीन वीसी जात	अर्दली 10 सवार
275 दाम	800 दाम।
11,000 दाम	7,000 दाम।

मुकर्रर सालाना अतिरिक्त

2,09,000 दाम बख़्शिश—

30,250 दाम खास—

1,78,750 दाम मुकर्रर तनख्वाह—

32 35,200 दाम—

31,35,200 जागीर,

1,00,000 मदद खर्च।

बयान—जुम्दतुलमुल्क एतिमादुद्दौला वजीर के खत से लिया गया कि वाकिए में दाखिल करें।

बयान—तारीख 20 रमजान, सन् 1027 हिजरी[1] का, इस लिखावट मे यह मतलव है कि, मैं वादशाही दरगाह का नौकर रावत मेघ हूँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि, तीन महीने के वाद कांगड़ा के मुत्सद्दियों के पास जाकर नियमानुसार घोड़ों को फौज का दाग कराया जावेगा। अगर न कराया जावे तो तरक्की की जागीर जब्त फरमावें। (यहां कई फिकरे लिखे गये)

जुम्दतुलमुल्क वजीर का यह वयान है कि, यह आदमी कांगड़ा की नौकरी पर नियुक्त किया गया और हजरत शाहजादा तजवीज करते हैं कि, अपने पुराने आदमियों के घोड़ों को वहां पर फौजी दाग हासिल करावें। इसलिये यह लिखा हुआ मंजूर किया जाता है। लेकिन यदि वायदे की अवमानना करे तो जागीर उतार लें।

बयान- वख्शियुलमुल्क सादिकखां का यह है कि, मंजूर रखें।

25,04, 700 दाम साविक दस्तूर परगना मालपुरा वगैरा से—

22,38,500 दाम परगना मालपुरा जिला—

---

1. सोमवार, आश्विन कृष्ण 6, 1675 वि० = अगस्त 31, 1618 ई०। (सं०)

जब शाही फौज कांगड़ा की तरफ जाने लगी, तो मेघसिंह को भी उसमें जाने का हुक्म हुआ। उसने इंकार किया, परन्तु अपने तीनों बेटों रामचन्द्र, लक्ष्मण और कल्याण को शाही फौज के साथ भेज दिया। लक्ष्मण और कल्याण तो कांगड़ा की लड़ाई में मारे गये और रामचन्द्र के वापस आने पर रावत मेघसिंह ने कहा कि, 'तुम हमारे काम के नहीं रहे। क्योंकि अटक[1] उतर जाने के बाद आदमी मुसलमान हो जाता है।" लाचार रामचन्द्र को मुसलमान होना पड़ा। यह बात जहांगीर ने सुनी तो उसको काजी का[2] खिताब और फीरोजपुर जागीर में दिया। यह बेगूं वालों का बयान है।

चैत्र शुक्ल 3, 1673 वि० (5 रबीउल अव्वल, 1025 हि०=20 मार्च, 1616 ई०) को कुंवर कर्णसिंह बादशाह जहांगीर के पास दिल्ली पहुंचा[3] और 100 अशर्फी, एक हजार रुपये, चार घोड़े और एक हाथी नजर किया, फिर कुछ दिन ठहर कर वापस लौटते हुए मालपुरा में आया। मेघसिंह ने बहुत आवभगत की। भोजन करते समय कुंवर कर्णसिंह ने हाथ खेंच लिया। तब मेघसिंह ने अर्ज की कि, चाकरी बतलानी चाहिये। आप भोजन क्यों नहीं करते? उसने उत्तर दिया कि, "तुमको दाजीराज ने बुलाया है उदयपुर चलना चाहिये।" मेघसिंह ने पहली नाराजगी का गुबार निकाला लेकिन कुंवर ने सांत्वना दी तो मेघसिंह ने चलना स्वीकार किया। तब कुंवर ने भोजन किया। मेघसिंह उदयपुर आया और महाराणा अमरसिंह से बेगूं का पट्टा[4] उसको मिला और बल्लू चौहान को बेगूं के बदले गंगार का परगना जागीर में दिया गया। कुछ समय बाद खुर्रम ने मेघसिंह को बुलाने के लिये निशान लिख भेजा।

---

1. शायद वह फौज अटक नदी के पार किसी काम के लिये गई होगी। अन्यथा कांगड़ा इलाका अटक के पार नहीं है।
2. काजी कोई खिताब नहीं है और न यह किसी नये मुसलमान को मिलता है। बल्कि यह एक पद का नाम था जो किसी बड़े जानकार व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे को नहीं मिलता था।
3. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 317; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 383। (सं०)
4. जागीर का विवरण निम्न है—बेगूं ग्राम 84 से, रतनपुर ग्राम 84 से, गोठोलाई ग्राम 42 से, नीमोता ग्राम 12 से, बांसिया ग्राम 12 से और तीन ग्राम उदयपुर के पास घास लकड़ी के वास्ते दिये।

नवीसी में खिदमतगारखां ने अर्ज किया कि, रावत मेघ मदद खर्च अर्थात् खालसा का महसूल अदा करने में उज्र और बहाना करता है। बुजुर्ग हुक्म जारी हुआ कि नियमों और सनद के अनुसार जो कुछ सरकारी मदद खर्च रावत मेघ के जिम्मे है उसे बादशाह के दीवानी अहलकार उसकी जागीर से वसूल कर लें।

याददाश्त के मुवाफिक तस्दीक लिखी गई—

5300 दाम, मदद खर्च-याददाश्त 10 दे, इलाही सन् 11 जुलूस[1] के अनुसार हुक्म हुआ कि 5000 रुपये रावत मेघ के महसूली दारोगा कमालहुसैन से लिये जावें और मुचलका लिखवाया जावे कि, फसल रबी और खरीफ ईलाईल सन् 12 जुलूस से उसकी जागीर परगना मालपुरा में से अजमेर के फौजदार शार्दूल के पास भिजवा दें, कि वह खजाने में पहुँचा देगा।

1078 वसूल हुए, शार्दूल को लिख दिया जावे—

4322 निश्चित् अवधि के अनुसार, जब बराबर होंगे, एवज दिया जावेगा।

बयान—जुम्दतुलमुल्क एतिमादुद्दौला का यह है कि वह कांगड़ा की लड़ाई पर मुकर्रर हुआ, उसकी सम्पूर्ण तनख्वाह में से मदद खर्च के तौर पर 1,00,000 दाम बादशाही काम के लिये वसूल किये जावें। दुबारा वजीर के बयान से ताकीद लिखी गई कि, वह नौकरी पर नियुक्त हुआ है, उसकी तनख्वाह से 1,00,000 दाम वसूल किये जावें।

1,00,000 दाम।

(हाशिया में) अल्लाहू अकबर

वाकिए के अनुसार है—

अल्लाहू अकबर (खुदा बुजुर्ग है)

दिन आबान 10 वीं तारीख मिहर, सन् 13 जुलूस तदनुसार बुधवार, 13 शव्वाल, 1027 हिजरी को[2] नईमा के वाकिए में दुबारा अर्ज हो चुका, और नौकरी के वास्ते जबरदस्त हुक्म जारी हुआ।

---

1. शनिवार, 21 जिल्काद, 1025 हि०=मार्गशीर्ष कृ० 9, 1673 वि०=दिसम्बर 21, 1616 ई०। (सं०)
2. ज्येष्ठ कृ० 14, 1675 वि०=23 सितम्बर, 1618 ई०। (सं०)

फेर कर मेघसिंह का एक हाथी ले गया। मेघसिंह वापस आया तो अपने बेटे नरसिंहदास को निकाल दिया और अपने भाई-बन्धु चूंडावतों की फौज इकट्ठी करने लगा। लेकिन बाद में वंश नाश होने के विचार से मेघसिंह ने सब्र किया। पंवार केशवदास से जिसके पट्टे में भैंसरोड गढ़ था, मेघसिंह की लड़ाई हुई, तो मेघसिंह के छोटे बेटे राजसिंह ने केशवदास को भाला मार कर हाथी से गिरा दिया। भैंसरोड में भी मेघसिंह का अधिकार हो गया, लेकिन महाराणा अमरसिंह ने नाराज होकर वापस वह स्थान पंवारों को दिलवाया।

मरते समय मेघसिंह ने महाराणा से अर्ज कराया कि मेरे बाद मेरे ठिकाने का मालिक राजसिंह रहे। जब रावत मेघसिंह का देहान्त हो गया तब आपस का झगड़ा मिटाने के लिये नरसिंहदास को तो गोठोलाई, जो चूंडावतों का कदीमी वतन है और राजसिंह को बेगूं, रतनगढ़ वगैरा देकर दोनों का दरजा बराबर रखा।

बुधवार, माघ शुक्ल 2, 1676 विक्रमी (1 रबीउल् अव्वल, 1029 हि० = जनवरी 26, 1620 ई०) को महाराणा अमरसिंह का देहान्त उदयपुर में हुआ। उसकी अन्तिम यात्रा बड़ी धूमधाम के साथ अहाड़ ग्राम में पहुंची। वहां गंगोद्भव कुण्ड पर उसकी दग्ध क्रिया की गई। उनके साथ 10 रानी, 9 खवास और 8 सहेलियां कुल 27 औरतें सती हुईं। महाराणा कर्णसिंह ने उनकी सफेद पत्थर की बहुत बड़ी छत्री बनवाई जो अब तक विद्यमान है। (महाराणा कर्णसिंह बड़ा पिता-भक्त था। कहते हैं कि, वह 12 महीने तक अपने पिता के दग्ध स्थान पर रहा और वहां अर्ज करके सब राज्य का कारोबार चलाता था।) इन महाराणा का जन्म चैत्र कृष्ण 30, संवत् 1616 विक्रमी (28 जमादियुस्सानी, 967 हि०=26 मार्च, 1560 ई०) को हुआ था।

महाराणा अमरसिंह का कद लम्बा, रंग गेहुँआ, सियाही मायल आंखें बड़ी, रोबदार चेहरा और तेज मिजाज था। लेकिन वह दयावान और सच्चा व मिलनसार, दोस्ती का पूरा, और इकरार को पूरा करने वाला था। इनके देहान्त का मेवाड़ के सरदार, भाई. बेटे, प्रजा वगैरा सभी को बहुत बड़ा रंजहुआ। इनके गुजरने की खबर काश्मीर से लौटते हुए बादशाह जहांगीर को

जब बादशाह जहांगीर दक्षिण की तरफ गया, तो शाहजादा खुर्रम उदयपुर आया। महाराणा अमरसिंह ने मुलाकात की। शाहजादा ने उनको और उनके भाई बेटों को जड़ाऊ तलवार, घोड़े, हाथी, खिलअत वगैरा दिये। महाराणा ने भी 5 हाथी, 27 घोड़े व जवाहरात का भरा हुआ एक थाल नजर किया। परन्तु शाहजादा ने तीन घोड़े लेकर बाकी सामान वापस कर दिया।

शाहजादा खुर्रम के साथ डेढ हजार सवार सहित कुंवर कर्णसिंह का दक्षिण में जाना निश्चित् हुआ।[1]

कुंवर कर्णसिंह ने दक्षिण की लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी दिखलाई। कुछ दिनों बाद जहांगीर के पास जाकर इसकी खुश खबरी सुनाई और उदयपुर चला आया।[2]

फिर राजा भीम (महाराणा अमरसिंह का बेटा)[3] व भंवर जगतसिंह शाही दरबार में गये और काश्मीर की यात्रा में बादशाह के साथ रहे। इन दोनों राजकुमारों पर बादशाह निहायत मेहरबानी करता था। बादशाह जहांगीर के लौटने के समय ये दोनों राजकुमार भी सेना के साथ थे।

इन्हीं दिनों में रावत मेघसिंह चूंडावत और शक्तावतों में झगड़ा हो गया। जिसका हाल इस तरह है कि, बेगूं के एक ग्राम का रहने वाला शक्तावत पीथा बाघावत मेघसिंह को अपना मालिक नहीं समझता था। इसलिये मेघसिंह ने उसका ग्राम जला दिया। तब पीथा ने नारायणदास शक्तावत के पास भिणाय में जाकर सब हाल कहा। जिससे भाई-बन्धु, सगे-सम्बन्धी सब 1200 सवार इकट्ठे करके नारायणदास ने चढाई की। उस समय मेघसिंह तो कहीं विवाह करने को गया था और उसका बड़ा बेटा नरसिंहदास किले के किवाड़ बन्द कर के बैठा रहा। नारायणदास बेगूं के चारों तरफ घोड़ा

1. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 1, पृ० 344-45। (सं०)
2. बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 2, पृ० 54। (सं०)
3. महाराणा अमरसिंह के मरणोपरान्त काश्मीर यात्रा के मध्य गुरुवार, 4 तीर (जून 15, 1620 ई०) को भीम को राजा की पदवी प्रदान की गई थी। बेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 2, पृ० 162; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 672। (सं०)

कलियान सता मकवान दहूं । जिनके गुन फैलिय चक्क चहूं ॥
जब शाहिय फौजन ज़ोर चढ्यो । रजपूतनपें दुख घोर बढ़यो ॥6॥

अमरेशरु खान सलाह करी । निच बानि नसीहत काव्य भरी ॥
पतशाहन तें नृप संधि नई । सुल्तान दिवान मिलान भई ॥7॥

अजमेरहि कर्ण कुमार गये । जिनपैं अति शाह प्रसन्न भये ॥
तज रानप रावत सम्र बने । भट मेघ रिसानरु मान मनें ॥8॥

अमरेश गये शिवलोक सही । जिनकी सब आदत रीत कही ॥
अभिलाप मनोभव सथ्जनतें । फ़तमाल प्रभा गुन कज्जनतें ॥9॥

सब बींरन वीर विनोद लह्यो । कविराज तवें यह खंड कह्यो ॥
यह वीर कथा श्रुत धीरे धरे । भ्रम होय यथा लखि शुद्ध करे ॥10॥



मिलो ।[1] उसने कुंवर जगतसिंह व भीमसिंह को वहुत तसल्ली दी । वादशाह लिखता है कि—"मैंने भीम व जगतसिंह को खिलअ्रत देकर राजा कृष्णदास को कुंवर कर्ण के लिये तसल्ली का फरमान व खिलअ्रत और एक हाथी और एक घोड़ा देकर विदा किया । जिसने जाकर मातमपुर्सी व गद्दीनशीनी की रस्म अदा की ।"[2]

इन महाराणा के 6 वेटे—1. कर्णसिंह, 2. सूरजमल; 3. भीम, 4. अर्जुनसिंह, 5. रतनसिंह, 6. वाघसिंह और एक वेटी वछवन्तां वाई थी ।

इनके समय के 18 वर्ष तो लड़ाई झगड़ों में वीते और पिछले 5 वर्ष देश में शान्ति रही ।

छन्द त्रोटक

जवही शिवलोक प्रताप गये । अमरेश वरेश नरेश भये ॥
पत शाहिय फौज प्रवंध कियो । वह थाकन व्यूह वखेर दियो ॥1॥

सुत ऊदल सागर मान मते । गत कूरम मान कुमार नते ॥
पहुचे वहिं संग दिलीप ढिगे । पद रानप पायरु रीत डिगे ॥2॥

सुल्तान चढ़्यो पर्वेज़ जवे । अमरेश किये वहु जुद्ध तवे ॥
कछु राज चितौर कियो सगरे । जिहते वल जीवनको विगरे ॥3॥

चढ खान महावत धार धुके । रजपूतन में इस्लाम रुके ॥
पत शाहिय थानक लूट लिये । फिरकें अव्दुल्ल प्रफुल्ल आये ॥4॥

चढ कें फिर कर्ण कुमार लरे । अरु वासुकि सेनद होय अरे ॥
सुल्तान चढ्यो जव शाह जहां । घुस पव्वय वोलत रान कहां ॥5॥

---

1. गुरुवार, 17 इस्फन्दार माह इलाही, जुलूसी सन् 14. के दिन सुलतानपुर नामक ग्राम में यह सूचना दरवार में पहुंची थी ।—वेवरिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 2, पृ० 123; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 635 । (सं०)
2. वेवारिज, तुजुक० (अं० अ०), भाग 2, पृ० 123-124; जहांगीर० (हिन्दी), पृ० 635 । (सं०)

पूर्णतल्ले नृपस्ततः ॥ 12 ॥ तस्माच्छ्रीजयराजविग्रहनृपौ श्रीचन्द्रगोपेन्द्र-कौतस्माद् दुल्लर्भगूवकौ शशिनृपो गूवाकसच्चंहनौ ॥ श्रीमद्वप्पयराजविंध्य-नृपती श्रीसिंहराड्किग्रहौ श्रीमद्दुर्ल्लभगुंदुवाक्पतिनृपाः श्रीवीर्यरामोऽनुज ॥ 13 ॥ चामुंडोवनिपेतिराणकवरः श्रीसिंहटो दूसलस्तभ्द्रताथ ततोपि वीसलनृपः श्रीराजदेवोप्रियः पृथ्वीराजनृपोथ तत्तनुभवो रासल्लदेवीविभुस्तत्पुत्रो जयदेव इत्यवनियः सोमल्लदेवीपतिः ॥14॥ हत्वा चाच्चगसिन्धुलाभिध-यशोराजादिवीरत्रयं क्षिप्तं कूरकृतांत वक्त्रकुहरे श्रीमार्गदुर्गान्वितं ॥श्रीमत् सोलणदण्डनायकवरः संग्रामरंगांगणे जीवन्नेव नियंत्रितः करभके येनष्टनि........ सात् ॥ 15 ॥ अर्णोराजोस्य सूनुर्घृतहृदयहरिः सत्ववारिष्टसीमो गांभिर्यौ-दार्यवीर्यः समभवदपरालब्धमध्योनदत्मीः ता तच्चित्रं जंतजाद्यस्थितिरधृतमहा-पंकहेतुर्न्नमथ्यो न श्रीमुक्तो न दोषाकररचितरतिर्न्न द्विजिह्वाधिसेव्यः ॥ 16 ॥

यद्राजांकुशवारणं प्रतिकृतं राजांकुशेन स्वयं येनात्रैव न चित्रमेत—पुनर्मन्यामहे तं प्रति ॥ तच्चित्रं प्रतिभासते सुकृतिना निर्व्वाणनारायणन्यक्कराचरणेन भंगकरणं श्रीदेवराजंप्रति ॥ 17 ॥ कुवलयविकासकर्त्ताविग्रहराजोजनिस् ततोचित्रं ॥ तत्तनयस्तच्चित्रं यन्न जडक्षीणसकलंकः ॥ 18 ॥ भादानत्वं-चक्रे भादानपतेः परस्य भादानः ॥ यस्य दधत्करवालः करालतां करतला-कलितः ॥ 19 ॥ कृतांतपथसज्जोभूत् सज्जनो सज्जनो भुवः ॥ वैकुंतं कुंतपालोगाद्यतो वैकुंतपालकः ॥ 20 ॥ जावालिपुरं ज्वालापुरं कृता-पल्लिकापिपल्लीव ॥ नड्डूलतुल्यं रोपान्नड्डूलं येन शौर्येण ॥ 21 ॥ प्रतोल्यां

च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः ॥ ढिल्लिकाग्रहणश्रांतमाशिकालाभलंभितं ॥ 22 ॥ तज्ज्येष्ठभ्रातृपुत्रोभूत् पृथ्वीराजः पृथूपमः ॥ तस्मार्दजितहेमांगो हेमपर्वतदानतः ॥ 23 ॥ अतिधर्मरतेनापि पार्श्वनाथस्वयंभुवे ॥ दत्तं मोराकरीग्रामं भुक्तिमुक्तिश्चहेतुना ॥ 24 ॥ स्वर्णादिदाननिवहैर्दशभिर्मह-द्भिस्तोलानरैर्नगरदानचयैश्च विप्राः ॥ येनार्चिताश्चतुरभूपतिवस्तपालमाक्रम्य चारुमनसिद्धिकरीगृहीतः ॥ 25 ॥ सोमेश्वराल्लब्धराज्यस्ततः सोमेश्वरो नृपः ॥ सोमेश्वरनतो यस्माज्जनसोमेश्वरोभवत् ॥ 26 ॥ प्रतापलंकेश्वर इत्यभिख्यां यः प्राप्तवान् प्रौढ़प्रथुप्रतापः ॥ यस्याभिमुख्ये वरवैरिमुख्याः केचिन्नृ-मृताः केचिदभिद्रुताश्च ॥ 27 ॥ येन पार्श्वनाथाय रेवातीरे स्वयंभुवे ॥ शासने रेवणाग्रामं दत्तं स्वर्गायकांक्षया ॥ 28 ॥ अथ कारापकवंशानुक्रमः तीर्थे श्रीनेमिनाथस्य राज्ये नारायणस्य च ॥ अंभोधिमथनाद्देववलिभिर्वल-शालिभिः ॥ 29 ॥ निर्गतः प्रवरोवंशो देववृंदैः समाश्रितः ॥ श्रीमाल-

—बीजोलिया-प्रशस्ति—

श्री पार्श्वनाथजी के कुण्ड से उत्तर की तरफ कोट के पास की चट्टान पर उत्कीर्ण ।

ओऽम् ।। ओऽम् नमो वीतरागाय । चिद्रूपं सहजोदितं निरवधि ज्ञानैक-निष्ठार्प्पितं नित्योन्मीलितमुल्लसत्परकलं स्यात्कारविस्फारितं सुव्यक्तं परमाभ्दुतं शिवसुखानदास्पदं शाश्वत नौमि स्तौमि जपामि यामि शरणं तज्ज्योतिरात्मोत्थितम् ।। 1 ।। नारत गत: कुग्रहसंग्रहो वा नो तीव्रतेजा.........
............व:......... .....नव सुदुष्टदेहोऽपूर्व्वो रविस्तात्समुदे वृषो व: ।। 2 ।।
— भूयाच्छ्री शान्ति, शुभविभवभंगी भवभृतां विभोर्यस्याभाति स्फुरितनखरोचि: करयुगं विनम्राणामेषामखिलकृतिनां मंगलमयीं स्थिरीकर्त्तुं लक्ष्मीमुपरचित-रज्जुव्रजमिव ।। 3 ।। नामाश्वेन येन प्रवलबलभृता पूरित: पांचजन्य:.........
.................रदलमलिना...................पद्माग्रदेशै: ।। हस्तांगुष्टेन शांर्ङ्गं धनुरतुलवलं कृष्टमारोप्य विष्णोरंगुल्यां दोलितोयं हलभृदवनतिं तस्य नेमें स्तनोमि ।। 4 ।। प्रांशुप्राकारकांतां त्रिदशपरिवृढ़व्यूहवद्धावकाशां वाचालां केतु कोटिक्वणदनघमणी किंकिणीभि: समंतात् ।। यस्य व्याख्यानभूमीमहहकिमिद-मित्याकुला: कौतुकेन प्रेक्षंते प्राणभाज: स खलु विजयतां तीर्थकृत्पार्श्व-नाथ: ।।5।। वर्द्धतां वर्द्धमानस्य वर्द्धमान महोदय: ।। वर्द्धतां वर्द्धमानस्य वर्द्धमान महोदय: ।। 6 ।। सारदां सारदां स्तौमि सारदानविसारदां ।। भारतीं भारतीं भक्तभुक्तिमुक्तिविशारदां ।।7।। नि: प्रत्यूहमुपास्महेनितपतो नन्यानपि-स्वामिन: श्रीनाभेयपुर: सरान् परकृपापीयूपपाथोनिधीन् ।। ये ज्योति: परभागभाजनतया मुक्तात्मतामाश्रिता: श्रीमन्मुक्तिनितंविनी स्तनतटे हारश्रियं विभ्रति ।। 8 ।। भव्यानां हृदयाभिरामवसति: सद्धर्महे-स्थिति: कर्म्मोन्मूलन-संगति: शुभततिर्निर्वाधिवोधोदधृति: ।। जीवानामुपकार कारणरति: श्रेय: श्रियां संसृतिर्देयान्मे भवसंभृति: शिवमतिं जैंने चतुर्विशति: ।। 9 ।। श्री चाहमानक्षितिराजवंश: पौर्वोप्यपूर्वोपि जडावतद्ध: भिन्नोनचा-नचरंध्रयुक्तो नोनि: फल: सारयुतोनतोनो ।।10।। लावण्यनिर्मलमहोज्वलितांगयाष्टि रच्छोच्छलच्छु-त्रिपय: परिधानधात्री ।।—गपर्व्वतपयोधरभारभुग्ना साकंभराजनिजनीवततोपि विष्णो: ।। 11 ।। विप्रश्रीवत्सगोत्रे भूदहिच्छत्रपुरे पुरा ।। सामंतोनंतसामंत

गुरुप्रणाममनसः पंचाणुशुद्धव्रताः पंचैते तनया गृहस्थविनयाः श्रीसीयकश्रेष्टिनः ॥ 48 ॥ आद्यः श्रीनागदेवो भूल्लोलाकश्चोज्वलस्तथा ॥ महीधरो देवधरो द्वावेतावन्यमातृजौ ॥ 49 ॥ उज्वलस्यांगजन्मानौ श्रीमद्दुर्ल्लभलक्ष्मणौ ॥ अभूतां भुवनोद्भासियशोदुर्ल्लभलक्ष्मणौ ॥ 50 ॥ गांभीर्यं जलधेः स्थिरत्वमचलात्तेजस्विता भास्वतः सौम्यं चन्द्रमसः शुचित्वममरस्रोतस्विनीतः परम् ॥ एकैकं परिगृह्य विश्वविदितो यो वेधसा सादरम् मन्ये बीजकृते कृतः सुकृतिना सल्लोलकश्रेष्ठिनः ॥ 51 ॥ अथागमन्मन्दरमेषकीर्त्ति श्री विध्यवल्लीं धनधान्यावल्लीं ॥ तत्रालुभावादभितल्पसुप्तः कंचिन्नरेशं पुरतः स्थितं सः ॥ 52 ॥ उवाच कस्त्वं किमिहाभ्युपेतः कुतः सतं प्राह फणीश्वरोहं ॥ पातालमूलात्तव देशनाय श्रीपार्श्वनाथः स्वयमेष्यतीह ॥ 53 ॥ प्रातस्तेनसमुत्थाय न कंचन विवेचितं ॥ स्वप्नस्यांतर्मनो भावा यतोवातादिदूषिताः ॥ 54 ॥ लोलाकस्य प्रियास्तिस्रो बभूवुर्मनसः प्रियाः ॥ ललिता कमलश्रीश्च लक्ष्मीर्लक्ष्मी सनाभयः ॥ 55 ॥ ततः संभक्तां ललितां बभाषे गत्वा प्रियां तस्य निशि प्रसुप्तां ॥ श्रृणुष्व भद्रे धरणोहमेहि श्री.................... ...दर्शयामि ॥ 56 ॥ तया स चोक्तो......... .... सत्यमेवतत्तु श्रीपार्श्वनाथस्य समुद्धृतिं सः प्रसादमर्चा च करिष्यतीह ॥ 57 ॥ गत्वा पुनर्लोलिकमेवमूचे भोभक्त सक्तानुगतातिरक्ताः ॥ देवे धने धर्मविधौ जिनेष्टौ श्रीरेवतीतीरमिहाप पार्श्वः ॥ 58 ॥ समुद्धरैनं कुरु धर्मकार्यं त्वं कारय श्रीजिनचैत्यगेहं येनाप्स्यसि श्रीकुलकीर्तिपुत्रपौत्रोरुसंतानसुखादिवृद्धिं ॥59॥ तदे——माख्यं वनमिह निवासो जिनपते स्तएते ग्रावाणाः शठकमठमुक्ताःगगनतः ॥ सधारामे................ ...दुपरचयतः कुण्डसरितस्तदत्रैतत्स्नानं ....निगमं प्राप परमं ॥ 60 ॥ अत्रास्त्युत्तममुत्तमादिशि पुरं साद्धुष्टमंचोच्छ्रितं तीर्थं श्रीवरलाइकात्र परमं देवोऽतिमुक्ताभिधः ॥ सत्यश्चात्र घटेश्वरः सुरनतो देवः कुमारेश्वरः सौभाग्येश्वरदक्षिणेश्वरसुरौ मार्कण्डरिचेश्वरौ ॥ 61 ॥ सत्योंवरेश्वरो देवो ब्रह्ममहेश्वरावपि ॥ कुटिलेशः कर्करेशो यत्रास्ति कपिलेश्वरः ॥ 62 ॥ महानालमहाकालपरश्वेश्वरसंज्ञकाः ॥ श्रीत्रिपुष्करतां प्राप्ता धरित्रिभुवनार्चिताः ॥ 63 ॥ कर्त्तिनाथं च के.................................. .. ..मिस्वामिनः ॥ संगमीसः पुटीसश्च मुखेश्वरघटेश्वराः ॥ 64 ॥ नित्यप्रमोदितो देवो सिद्धेश्वरगयायुसः ॥ गंगाभेदनसोमेश गुरुनाथपुरांतकाः ॥ 65 ॥ संस्नात्री कोटिलिंगानां यत्रास्ति कुटिला नदी ॥ स्वर्णजालेश्वरो देवः समं कपिलधारया ॥ 66 ॥ नाल्प-

पत्तने स्थाने स्थापितः शतमन्युना ॥ 30 ॥ श्रीमालशैलप्रवरावचूलः पूर्वोतरः सत्वगुरुः सुवृत्तः ॥ प्राग्वाटवंशोस्ति बभूव तस्मिन् मुक्तोपमो वैश्रवणाभिधानः ॥ 31 ॥ तडागपत्तने येन कारितं जिनमंदिरं ॥——
भ्रांत्या यमस्ततत्वमेकत्र स्थिरतां गता ॥ 32 ॥ योचीकरच्चंद्रसुरिप्रभाणि व्याघ्रेरकादौ जिनमंदिराणि ॥ कीर्त्तिद्रुमारामसमृद्धिहेतोर्विभाति कंदा इव यान्यमंदाः ॥ 33 ॥ कल्लोलमांसलितकीर्त्तिसुधासमुद्रः सद्बुद्धिवंधुरवधूधरणीधरेशः ॥ वीरोपकारकरणप्रगुणांतरात्मा श्रीचच्चुलस्तुतनयः........पदेऽभूत् ॥ 34 ॥ शुभंकरशतस्यसुतोजनिष्ट शिष्टैर्महिष्टैः परिकीर्त्यकीर्तिः ॥ श्रीजासटोसूत तदंगजन्मा यदंगजन्मा खलुपुण्यराशिः ॥35॥ मंदिरं वर्द्धमानस्य श्रीनाराणकसंस्थितं ॥ भाति यत्कारितं स्वीयपुण्यस्कंधमिवोज्वलम् ॥ 36 ॥ चत्वारश्चतुराचाराः पुत्राः पात्रं शुभश्रियः ॥ अमुण्यामुण्यधर्माणो वभूवुर्भार्ययोर्द्वयोः ॥ 37 ॥ एकस्यां द्वावजायेतां श्रीमदाम्बटपद्मटौ अपरस्या (मजायेतां सुतौ) लक्ष्मटदेसलौ ॥ 38 ॥ पाकाणां नरवरे वीरवेश्मकारणपाटवं ॥ प्रकटितं स्वीयवित्तेन धातुनैव महीतलं ॥ 39 ॥ पुत्रौ पवित्रौ गुणरत्नपात्रौ विशुद्धगात्रौ समशीलसत्वौ ॥ वभूवतुर्लक्ष्मटकस्य जैत्रौ मुनिंदुगमेंद्वभिधौ यशस्त्रौ ॥ 40 ॥ षट्षण्डागमबद्धसौहृदभराः षड्जीवरक्षाकराः षड्भेदेंद्रियवश्यतापरिकराः षट्कर्मक्लृप्तादराः षट्षंडावनिकीर्त्तिपालनपराः षाड्गुण्यचिंताकराः ॥ षड्दृष्ट्यंबुजभास्कराः समभवन् षड्देशलस्यांगजाः ॥ 41 ॥ श्रेष्टीदुद्दकनायकः प्रथमकः श्रीगोसलोवागजिद्देवस्पर्श इतोऽपि सीयकवरः श्रीराहको नामतः ॥ एते तु क्रमतो जिनक्रमयुगा भौजैकश्रृङ्गोपमा मान्या राजशतैर्वदान्यगतयो राजंति जंतूत्सवाः ॥ 42 ॥ हर्म्यं श्रीवर्द्धमानस्याजयमेरोर्विभूषणं ॥ कारितं यैर्महाभागैर्विमानमिव नाकिनां ॥ 43 ॥ तेषामंतः श्रियः पात्रं सोयकश्रेष्टिभूषणं ॥ मंडलकरं महादुर्गं भूषयामास भूतिना ॥ 44 ॥ योन्यायांकुरसेचनैकजलदः कीर्तेर्निधानं परं सौजन्यांवुजिनीविकासनरविः पापाद्रिभेदे पविः ॥ कारुण्यामृतवारिधिविलसने राकाशशांकोपमो नित्यंसाधुजनोपकारकरणव्यापारबद्धादरः ॥ 45 ॥ येनाकारि जिताग्निनेमिभवनं देवाद्रिशृंगोद्धुरं चंचत्कांचनचारुदंडकलशश्रेणिप्रभाभास्वरं ॥ खेलत्खेचरसुन्दरीश्रमभरं भंजवद्ध्वजोद्वीजनैर्धत्तेष्टापदशैलश्रृंगजिनभृत् प्रोद्दामसद्मश्रियं ॥ 46 ॥ श्रीसीयकस्य भार्ये स्तो नाग श्रीमामटाभिधे ॥ आद्यायाम्युस्त्रयः पुत्रा द्वितीयाया सुतद्वयम् ॥ 47 ॥ पंचाचारपरायणात्ममतयः पंचांगमंत्रोज्वलाः पंचज्ञानविचारणाः सुचतुराः पंचेन्द्रियार्थोज्जयाः ॥ श्रीमत्पंच-

ख्यातपदार्थदानचतुरश्चिंतामणेः सोदरः ।। सोभूच्छ्रीजिनचंद्रसूरिसुगुरुस्तत्पादपंके-रुहे योभृंगायतपत्रलोलकवरस्तीर्थं चकारैप सः ।। 83 ।। रेवत्या सरितस्तटे तरुवरायत्राव्हयंते मृशं शाखा बाहुलतोत्करैर्नरसुरान् पुंस्कोकिलानां रुतैः ।। मत्पुष्पोच्चयपत्रसत्फलचयै रानिर्मलैर्वारिभिर्भोभोम्यर्चयताभिषेक यत वा श्रीपार्श्वनाथं प्रभुं ।। 84 ।। यावत्पुष्करतीर्थसैकतकुलं यावच्च गंगाजल यावत्तारक चंद्रभास्करकरा यावच्च दिक् कुंजराः ।। यावच्छ्रीजिनचंद्रशासन-मिदंयावन्महेंद्रं पदं तावत्तिष्ठतु सत् प्रशस्तिसहितं जैनं स्थिरं मंदिरं ।। 85 ।। पूर्वतो रेवतीसिन्धुर्देवस्यापि पुरं तथा ।। दक्षिणस्यां मठस्थानमुदीच्यां कुण्ड-मुत्तमं ।। 86 ।। दक्षिणोत्तरतोवाटी नानावृक्षैरलंकृता ।। कारितं लोलिकेनै-तत् सप्तायतनसंयुतं ।। 87 ।। श्रीमन्म—रसिंहोभूद्गुणभद्रो महामुनिः ।। कृता प्रशस्ति रेषा च कविकंठविभूषणा ।। 88 ।। नैगमान्वयकायस्थ छीत्तिगस्य च सूनुना ।। लिखिता केशवेनेयं मुक्ताफलमिवोज्वला ।। 89 ।। हरसिगसूत्रधारोथ तत्पुत्रो पाल्हणो भुवि ।। तदंगजेमाहडेनापि निर्मितं जिनमंदिरं ।। 90 ।। नानिगपुत्रगोविन्द पाल्हणसुतदेल्हणौ उत्कीर्णा प्रशस्तिरेषा च कीर्तिस्तंभं प्रतिष्ठितं ।। 91 ।। प्रसिद्धिमगवद्देव काले विक्रमभास्वतः शड्विशद्वादशशते फाल्गुने कृष्णपक्षके ।। 92 ।। तृतीयायां तिथौ वारे गुरौ तारे च हस्तके ।। धृतिनामनि योगे च करणे तैतले तथा ।। 93 ।। संवत् 1226 फाल्गुनवदि 3[1]

कांवारेणग्रामयोरंतराले गुहिलपुत्रराο दाम्वरमहंघणसिंहाभ्यां दत्त क्षेत्र डोहली 1 खडुंवराग्रामवास्तव्यगौडसोनिग वासुदेवाभ्यां दत्तडोहलिका 1 आंतरी ग्राप्रतिगणकेरायतागामीयमहंतमलीं वडियोपलिभ्यां दत्तक्षेत्र डोहलिका 1 बडोवाग्राम वास्तव्यपारिग्रहीग्राल्हणेन दत्त क्षेत्र डोहलिका 1 लघुविकौली-ग्रामसं-गुहिलपुत्रराο शाहरूमहत्तममाहवाभ्यां दत्त क्षेत्र डोहलिका 1 बहुभिर्व-सुधा भुक्ता राजभिर्भरतादिभिः ।। यस्य यस्य भूमी तस्य तस्य तदा फलम् ।। 1 ।।

1. गुरुवार, फरवरी 5, 1170 ई०. (सं०)

——

मृत्युर्न वा रोगा न दुर्भिक्षमवर्षणम् ।। यत्र देव प्रभावेण कलिपकप्रधर्षणम् ।। 67 ।। षण्मासे जायते यत्र शिवलिंगं स्वयंभुव ।। तत्र कोटिश्वरेतीर्थे का श्लाघा क्रियते मया ।। 68 ।। इत्येवंज..................कृत्त्वावतारक्रिया ।। कर्त्ता पार्श्वजिनेश्वरोऽत्र कृपया सोत्पाद्य वासः पतेः शक्तेर्वैक्रियकश्रियस्त्रिभुवन-प्राणिप्रवोधं प्रभुः ।। 69 ।। इत्याकर्ण्य वचोविभाव्य मनसा तस्योरगः स्वामिनः सः प्रातः प्रतिवुध्य पार्श्वमभितः क्षोणीं विदार्य क्षणात्तावत्तत्र विभुं ददर्श सहसा निःप्राकृताकारिणं कुंडाभ्यर्णतपोवधानदधतं स्वायंभुवः श्रीश्रितं ।। 70 ।। नासीद्यत्र जिनेंद्रपादनमनं नो धर्मकर्मार्जनं न स्नानं न विलेपनं न च तपोध्यानं न दानार्चनं ।। नो वा सन्मुनिदर्शनं...................... ।। 71 ।। तत्कुंड मध्यादथ निर्ज्जगाम श्रीसीयकस्यागमनेन पद्मा ।। श्रीक्षेत्रपालस्तद-थांम्बिका च श्रीज्वालिनी श्रीधरणोरगेशः ।। 72 ।। यदावतारमाकार्षीदत्र पार्श्वजिनेश्वरः ।। तदानागह्लदे यक्षगिरिस्तत्र पपात सः ।। 73 ।। यक्षोपि दत्तवान् स्वप्नं लक्ष्मणब्रह्मचारिणः ।। तत्राहमपि यास्यामि यत्र पार्श्वविभुर्मम ।। 74 ।। रेवतीकुण्डनीरेण या नारी स्नानमाचरेत् ।। सा पुत्रभर्तृसौभाग्यं लक्ष्मीं च लभते स्थिरां ।। 75 ।। ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वश्यो वा शूद्र एव च ।। अंत्यजो वापि स्वर्गं च संप्राप्नोत्युत्तमां गतिं ।। 76 ।। धनं धान्यं धरां धर्मं धैर्यं धौरेयतां धियं ।। धराधिपतिसन्मानं लक्ष्मीं चाप्नोति पुष्कलाम् ।। 77 ।। तीर्थाश्चर्यमिदं जनेन विदितं यन्दीयते सांप्रतं कुष्टप्रेतपिशाचकुज्वर-रुजा हीनांगगंडापहं ।। सन्न्यासं च चकार निर्गतभयं घूकश्रृगालीद्वयं काकीना-कमवाप देवकलया किं किं न संपद्यते ।। 78 ।। श्लाघ्यं जन्मकृतं धनं च सफलं नीता प्रसिद्धिमतिः मद्धर्मोपि च दर्शितस्तनुरुहस्वप्नोपितः सत्यतां ।। ....परदृष्टिदूपितमनाः सद्दृष्टिमार्गे कृतो जैन....... .... तमाश्रीलोलकः श्रेष्टिनः ।। 79 ।। किंमेरो श्रृंगमेतत् किमुत हिमगिरेः कूटकोटिप्रकाण्ड किं वा कैलासकूटं किमथ सुरपतेः स्वर्विमानं ।। इत्थं यत्तर्क्य-नेम्म प्रतिदिनममरैर्मर्त्यराजोत्करैर्वा मन्ये श्रीलोलकस्य त्रिभुवनभरणा-दुच्छ्रितं कीर्तिपुंजम् ।। 80 ।। पवनसुतपताका पाणितो भव्यमुख्यान् पटुपटहनिनादादाह्वयत्येपजैन. ।। कलिकलुपमथोच्चैर्दूरमुत्सारयेद्वा त्रिभुवन-विभु—भानृत्यतीवालयोयं ।। 81 ।। ———स्थानकमाधरंति दधते काश्चिच्च गीतोत्सवं काश्चिद्विप्रतितालवंशललितं कुर्वंति नृत्यं च काः ।। काश्चिद्वाद्यमुपा-नयन्ति निभृतं वीणास्वरं काश्चन यः प्रौच्चैर्ध्वजकिंकिणीयुवतयः केपां मुदेना-भवत् ।। 82 ।। यः सद्वृत्तयुतः सुदीप्तिकलितस्त्रासादिदोपो ज्झितश्रिता-

